संगीत का विशेष प्रकाशन

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र

(दूसरा भाग)

['हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति' द्वितीय भाग मराठी का हिन्दी अनुवाद]



लेखक—

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे





अनुवादक—

पं० सुदामाप्रसाद 'संगीताचार्य'



सम्पादक—
लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रकाशक—
प्रभूलाल गर्ग



संगीत कार्यालय, हाथरस

द्वितीय संस्करण 卐 मूल्य ६) रुपया

प्रथम संस्करण मार्च १९५३
द्वितीय संशोधित संस्करण नवम्बर १९५७
मुद्रक
संगीत प्रेस, हाथरस

अपनी ओर से

हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति द्वितीय भाग का यह हिन्दी भाषान्तर सङ्गीत रसिकों और जिज्ञासुओं के हाथों में पहुँच रहा है। प्रथम भाग की रीति पर प्रश्नोत्तर-शैली से ग्रन्थकार ने इस भाग में भैरव थाट के समस्त रागों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही आरम्भ के लगभग १५० पृष्ठों में श्रुति स्वर-चर्चा करते हुए ग्रन्थकार ने भरत, नारद, मंडूक, शाङ्गदेव, रामामात्य, सोमनाथ, पार्श्वदेव, पुण्डरीक, अहोबल, लोचन आदि पद्धति-निर्माताओं के तत्सम्बन्धी मतों का सूक्ष्म अध्ययन उपस्थित किया है। यह प्रकरण प्रत्येक सङ्गीत-रसिक अध्येता के हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री है।

इसके साथ-साथ ग्रन्थकार ने अपनी चर्चा के बीच-बीच में जिस-जिस विषय को छुआ है, उस पर मनोरंजक और महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। कहीं ग्रन्थकार पाश्चात्य आलोचकों की मान्यताओं को तौलता है, कहीं किसी प्राचीन पद्धतिकार की सम्पूर्ण पद्धति का परिचय देने लगता है और कहीं अपने अनुभव की मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक घटनाओं का उल्लेख करता है। ग्रंथकार की अगाध विद्वत्ता के अनुरूप ही इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है, अतः पद्धति प्रेमी शिक्षार्थियों के लिये इस ग्रन्थ के वाक्य स्मृति-वाक्य जैसे महत्वपूर्ण हो जाते हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। स्वनामधन्य पं० विष्णुनारायण भातखण्डे की इस अमर कृति का यथार्थ मूल्यांकन स्वल्प शब्दों द्वारा करना असम्भव है। इन्हीं महापुरुष का कृतित्व और उसकी सफलता का सबसे प्रबल एवं प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज उत्तर भारत के लगभग सभी सङ्गीत विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए शिक्षण कार्य सम्पन्न किया जारहा है।

प्रथम भाग का अनुवाद कार्य समाप्त होते ही 'सङ्गीत' के संचालक माननीय प्रभूलाल गर्ग ने द्वितीय भाग का अनुवाद कार्य-भार मेरे निर्बल कन्धों पर पुनः डाल दिया था। यह श्री गर्ग जी के उत्साह और साहस का ही परिणाम है जो सङ्गीत संबंधी दुर्लभ सामग्री राष्ट्रभाषा के माध्यम से रसिकों को प्राप्त हो रही है। यद्यपि व्यवसायिक दृष्टि से, एवं प्रकाशक के नाते लाभ-हानि के विचार से यह प्रकाशन जोखिम से खाली नहीं कहा जा सकता; फिर भी आशा है कि प्रथम भाग के अनुरूप इस द्वितीय भाग का भी सङ्गीत प्रेमियों एवं शिक्षार्थियों में स्वागत होगा।

प्रथम भाग के प्रकाशन के उपरान्त स्नेहियों और मित्रों ने मुझे जो कुछ सुझाव पहुँचाये थे, उनका यथाशक्ति पालन प्रस्तुत भाग में मेरे द्वारा हुआ है। साथ ही मैं प्रथम भाग के संशोधित रूप को भी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने में प्रयत्नशील हूँ एवं भविष्य में आशान्वित हूँ कि इसी प्रकार सुझाव पहुँचाकर मुझे उत्साहित करते रहेंगे।

इस द्वितीय भाग के अनुवाद की प्रतिलिपि तैयार करने में साथी अध्यापक बंधुओं ने अमूल्य सहायता की है, अतः उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। श्रीयुत नर्मदाप्रसाद दुबे और चि० हरिप्रसाद बहोरे की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उनके स्नेह और बंधुत्व की अवज्ञा करना होगा।

सुदामाप्रसाद दुबे
(अनुवादक)

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र

(हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति)

भाग दूसरा

अनुक्रमणिका



भातखण्डे संगीत-शास्त्र (भाग २)

[हि० सं० प० थ्योरी मराठी भाग २ का हिन्दी अनुवाद]

अध्याय १

प्रिय मित्रो ! पिछली बार मैंने तुम्हें यमन, बिलावल व खमाज, इन तीन थाटों के प्रचलित रागों के विषय में आवश्यक बातें बताई थीं। ठीक है न ? मैं समझता हूँ कि वे सभी राग प्रायः सभी स्पष्ट नियमों के साथ अब तुम्हारी समझ में आ चुके होंगे। मेरी इच्छा इसी सम्बन्ध में तुम्हें और आगे ले जाने की है। एक बार तुम अपनी संगीत पद्धति के वे डेढ़सौ राग व्यवस्थित रीति से समझ जाओगे, तभी मुझे सन्तोष होगा।

पिछली चर्चा के समय एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान पहुँचा होगा। वह बात यह थी कि यद्यपि हमारे सभी संस्कृत व देशी भाषा के सङ्गीत-ग्रन्थकर्त्ताओं ने श्रुतियों व स्वरों के विषय में अपने-अपने तरीकों से थोड़ी बहुत चर्चा अवश्य की है, फिर भी मैंने तुम्हें इस चर्चा में अधिक गहराई तक नहीं जाने दिया। हमारे ग्रंथ रचयिताओं का मत है कि श्रुति व स्वर-ज्ञान ही प्रत्येक सङ्गीत पद्धति की नींव है। यह बात नहीं कि उनका यह मत मुझे ज्ञात नहीं है, परन्तु अभी तुमने सङ्गीत विषय में प्रवेश ही किया है और ऐसी हालत में तुम्हें एक कठिन और विवादग्रस्त चर्चा में डाल देना सम्भवतः तुम्हारे लिये हितकर कार्य न होगा, ऐसा मेरा खयाल था। एक प्रकार से मैं समझता हूँ कि मैंने उचित ही किया है। परन्तु अब परिस्थिति में बड़ी भिन्नता आ गई है। इस समय जिधर देखते हैं उधर हमारे विद्वान संगीतज्ञ, मासिक पत्रों व सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में श्रुतियों व स्वरों के विषय में चर्चा कर रहे हैं। ऐसे समय में इस विषय पर चुप बैठे रहना उचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही तुम्हारी दृष्टि भी अब पर्याप्त विस्तृत हो चुकी है। अतः यदि दो शब्द इस विषय पर भी मैं अपनी चर्चा चलाते हुए कह दूँ, तो अनुचित न होगा। मैं यह तो कह ही चुका हूँ कि बीच-बीच में होने वाले तुम्हारे तर्कपूर्ण प्रश्नों से मुझे सहायता ही मिलती है। शिष्य का सुशिक्षित होना भी एक आनन्ददायी संयोग है। चाहे आरम्भ में उसे इस विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान कम मात्रा में प्राप्त हो, परन्तु उसके विचार व तर्क करने की प्रणाली निराली ही होती है। जहां उसे गुरु ने एक बात बताई कि उसकी सुसंस्कृत-बुद्धि उस एक बात के सहारे चार नवीन बातें खोज सकती है। निष्कपट गुरु और सुशिक्षित शिष्य का मिलना बड़ा अमूल्य संयोग माना है।

तुम्हें स्मरण होगा कि मैंने पिछली बार दो-तीन बातों की ओर विशेष रूप से तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया था। वे ये बातें थीं। हमारा संगीत भिन्न-भिन्न कारणों से धीरे-धीरे परिवर्तित होता चला आया है, परन्तु अभी भी उसका सम्बन्ध ग्रन्थों से लगाने योग्य स्थिति मौजूद है। हमारी संगीत पद्धति के सम्पूर्ण मूल तत्व प्राचीन ही हैं। अपने संस्कृत ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं और संगीत की अभीष्ट दिशा में उन्नति चाहने वालों के लिये थोड़े बहुत उपयोगी भी सिद्ध हो सकते हैं। तुम सहज में ही समझ सकते हो कि, जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में संगीत में परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे ग्रन्थ लिखने वाले ग्रन्थकारों को नई-नई बातें अपने-अपने ग्रन्थों में संग्रहीत करना आवश्यक होता गया। और ऐसा ही हुआ भी तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? आगे चलकर जब संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखने वाले न रहे, तब देशी भाषाओं में ग्रन्थ रचना होने लगी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सब स्वाभाविक ही हुआ है। यद्यपि देशी भाषाओं के ग्रन्थों से संस्कृत न जानने वाले पाठकों को बड़ी सुविधा प्राप्त हुई, परन्तु यह भी कहना पड़ेगा कि इसी के परिणाम स्वरूप संस्कृत ग्रन्थों की दुर्बोधता भी बढ़ती गई। यह कहना भी गलत नहीं है कि संगीत, क्रमशः विद्वानों के हाथों से निकलकर अशिक्षितों के हाथों में चला गया व अभी तक भी अधिकांश रूप में वह ऐसी ही स्थिति में है। ऐसी दशा में ग्रन्थों में वर्णित नियमों की ओर दुर्लक्ष्य होना सहज संभव है। प्रत्यक्ष गायकों ने मनमाने ढङ्ग से अपने गले तैयार करके समाज की रुचि में एक भ्रष्टता उत्पन्न करदी। यह रुचि-भ्रष्टता इस समय वज्रलेप जैसी दृढ़ होकर जम गई जान पड़ती है। निरक्षर गायक लोग आजकल 'पंडित' शब्द का उपयोग "संगीत के सम्बन्ध में व्यर्थ बकवास करने वाला व्यक्ति" के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं! वास्तव में यह सुशिक्षितों की प्रशंसा तो नहीं है। समाज की रुचि को उत्तम दिशा में मोड़ने का उत्तरदायित्व संगीत व्यवसायी लोगों पर ही होता है, परन्तु उस उत्तम दिशा को पहचानने के लिये किसी प्रकार का सुसंस्कार भी आवश्यक है। गायकों में यह सुसंस्कार न होने के कारण हमारे कदम सङ्गीत में जितने आगे पड़ने चाहिये थे, उतने आगे नहीं पड़ सके। तो भी, अभी भी हमारी स्थिति बिलकुल निराश होने योग्य नहीं हुई। हमारे पास संस्कृत व प्राकृत (देशी भाषा) के ग्रन्थों की पर्याप्त सामग्री है, और कहीं-कहीं अभी भी प्राचीन संस्कारों के गायक-वादक भी मौजूद हैं। यह सहायता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रायः सङ्गीतज्ञ प्रत्येक सङ्गीत विद्यार्थी को अपने विषय के समस्त उपलब्ध ग्रन्थों को पढ़ने व संग्रह करने की सलाह देते हैं। मेरी दृष्टि से यह उचित ही है। प्रत्येक ग्रन्थ-रचयिता ने अपने समकालीन सङ्गीत को व्यवस्थित रीति से अपनी रचना में वर्णित करने का प्रयत्न किया है, यह अध्ययन विद्यार्थियों के लिये बहुत सहायक है। प्रत्येक ग्रन्थ से किसी न किसी प्रकार का नवीन ज्ञान विद्यार्थी को मिलना सम्भव है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध बात है कि हमारे देशी भाषा के संपूर्ण लेखकों को प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के रचनाकारों व उनकी रचनाओं पर बड़ा गर्व रहा है।

पिछली बार मैंने बार-बार संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण तुम्हें सुनाये थे, उसका भी यही कारण था। उस समय मेरा उद्देश्य देशी भाषा में रचित ग्रन्थों का तिरस्कार करना नहीं था। दूसरा, मेरा यह भी उद्देश्य था कि तुम जैसे सुशिक्षित लोगों को सङ्गीत का थोड़ा सा इतिहास भी समझाना चाहिये। अब इस चर्चा के बीच-बीच में मैं,

यथा प्रसङ्ग देशी भाषा के सङ्गीत ग्रन्थों के विषय में भी अवश्य बोलता जाऊँगा। अस्तु, अब मैं अपने मुख्य विषय की ओर लौटता हूँ, किन्तु ऐसा करने के पूर्व एक विषय पर तुम्हारे विचार जानने की मेरी इच्छा है । पिछले समय हमने इस विषय की चर्चा प्रश्नोत्तर पद्धति द्वारा की थी, अब आगे हमें उसी प्रश्नोत्तर पद्धति से ही चर्चा करनी चाहिये, अथवा तुम लोग प्रश्न न करते हुए चुप बैठे रहोगे और मैं ही व्याख्यान के रूप में जानकारी देता चलूँ ? मुझे याद है कि पिछले समय मैं यह कह चुका हूँ कि तुम्हारे जैसे बुद्धिमान विद्यार्थी को प्रश्न पूछने का कष्ट देने की भी आवश्यकता नहीं, साथ ही यह बात भी सत्य है कि, किसी भी महत्वपूर्ण विषय को समझने व समझाने के लिये प्रश्नोत्तर पद्धति ही अधिक सुविधाजनक होती है । यह भी कहना ठीक है कि हमारे कुछ प्राचीन ग्रन्थकर्त्ताओं ने कुछ विषयों को इसी प्रकार से सीखा-सिखाया है, परन्तु यह तो तुम्हारी सुविधा का प्रश्न है। तुम्हें जैसा रुचिकर हो, वैसा ही करने का मेरा निश्चय है। तुम्हारे प्रश्न करते रहने से, मेरे बोलने को ओर तुम्हारा अधिक ध्यान रहेगा, और मुझे भी यह दिखाई देता रहेगा कि मेरा कथन कितने अन्शों में तुम समझते जा रहे हो; यह लाभ अवश्य होगा । तुमने अपने बुद्धि बल से मुझे पीछे छोड़ा कि, मैंने अपने को धन्य समझा । "शिष्यादिच्छेत्पराभवम्" ऐसा कहने वाले शिक्षकों में से मैं अपने को भी एक समझता हूँ। तो फिर, अब निस्संकोच रूप से मुझे बतादो कि हमें किस पद्धति को स्वीकार करना है ।

प्रश्न—जिस अभिप्राय से आपने यह बात हमारी पसन्द पर निर्भर कर दी है, उस उद्देश्य को देखते हुए हमें भी यह प्रामाणिक रूप से कहना पड़ेगा कि समय-समय पर प्रश्न करते रहने से हमें उत्तम रूप से बोध होता है। अतः आप पहिले जैसी ही चर्चा चालू रखिये !

उत्तर—बहुत अच्छी बात है। तो अब भैरव थाट के रागों की ओर बढ़ना है न ?

प्रश्न—तनिक ठहरिये। अभी आपने कहा था कि, आजकल श्रुति स्वर-चर्चा सभी ओर होती जा रही है। जबकि ऐसा हो रहा है, तब इस विषय पर इस समय थोड़ी सी चर्चा यदि आपके द्वारा की जावे तो कैसा रहेगा ? हमतो समझते हैं कि इस प्रकार करने से चाहे इस प्रसिद्ध चर्चा में भाग लेने की सामर्थ्य हम में उत्पन्न न हो सके, परन्तु हम उसे समझ तो अवश्य सकेंगे। हमें बहुत विस्तृत जानकारी अपेक्षित नहीं है, केवल इस चर्चा को समझने योग्य व हमारे स्वतः के योग्य बातें ही बता दीजिये, जिससे हम किसी निश्चय पर पहुँच सकें। बस इतना ही पर्याप्त होगा।

उत्तरः—ऐसा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु एक बात तुम्हारे ध्यान में ला देना आवश्यक है कि यह स्वर श्रुति चर्चा, सदैव ग्रंथों के आधार पर ही की जाती है अतः ऐसा करते हुए मुझे कदम-कदम पर ग्रंथों के उद्धरणों की सहायता लेनी आवश्यक होगी। इससे तुम्हें ऊबना न चाहिये।

प्रश्नः—नहीं, नहीं, वह तो उलटे हमारे लिये आनन्द-दायक बात ही होगी।

उत्तरः—तो ठीक है। अब हम उसी विषय पर थोड़ी बहुत चर्चा करेंगे । पिछली बार भी मैं उस सम्बन्ध में थोड़ा सा बोल चुका हूँ, परन्तु अब मैं उस विषय को एक क्रम से हाथ में लेता हूँ। मेरे कथन की ओर ठीक रूप से ध्यान देना । जब भी मैं अनेक

लोगों के मत बताऊँगा, तब प्रत्येक विषयों व सिद्धान्तों पर अपना स्वतः का मत भी बताता चलूँगा। जो तुम्हें उचित जँचे पसन्द करते जाना। यह मैं स्पष्टता से स्वीकार करूँगा कि श्रुति स्वरों का विषय अभी भी विवाद-ग्रस्त स्थिति में है। हमें भी इस विषय में सिद्धान्त बनाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक ग्रन्थकार अपनी-अपनी बुद्धि-सामर्थ्य के अनुसार कल्पना करते हैं, अतः मत-भेद होना स्वाभाविक ही है। यह सदैव होता आया है, और होता चला जावेगा, यह सृष्टि क्रम ऐसा ही है। लोगों की कल्पना पर जिस प्रकार हम दोषान्वेषण करते हैं, उसी प्रकार क्या अपना कल्पना-छिद्रान्वेषण लोग न कर पायेंगे? प्रत्येक लेखक का हेतु अपने विचार निष्कपट रूप से समाज के सम्मुख उपस्थित करना होता है। इससे जनसाधारण के हृदय में उसके प्रति अपने आप श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो जाते हैं। पाठकों को कोरी दांभिक प्रवृत्ति से घृणा होती है। उन्हें तो ज्ञान प्राप्त होना चाहिये। इस श्रुति-स्वर-प्रकरण में, अपनी ओर से मैं कुछ नहीं कहूँगा। इस समय उपलब्ध ग्रन्थों में इस विषय की जो-जो बाते हैं, वही मैं व्यवस्थित रूप से तुम्हारे सामने रखता जाऊँगा। जहां तुम्हें शंका उत्पन्न हो, वहां मुझ से प्रश्न करना चाहिये। यदि तुम्हारे मन में कोई नवीन विचार उत्पन्न हो तो निर्भय रूप से उसे मुझे बताना, हम उस पर भी विचार करेंगे।

प्रश्नः—इस समय किन-किन ग्रन्थों को उपलब्ध समझना चाहिये?

उत्तरः—वे निम्न प्रकार हैं—नारदीशिक्षा, मांडूकीशिक्षा, भरत नाट्यशास्त्र, संगीत-रत्नाकर, संगीतसमयसार, संगीतदर्पण, सद्रागचन्द्रोदय, रागतरंगिणी, स्वरमेलकलानिधि, रागविबोध, पारिजात, अनूपविलास, अनूपरत्नाकर, अनूपांकुश, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, संगीतसारामृत, इत्यादि! इस समय इतने ग्रन्थ भी क्या कम हैं?

सामवेद के समय में सङ्गीत की क्या स्थति थी, यह मैं नहीं बता सकूँगा। क्योंकि ऐसी जानकारी देने वाले विद्वान से आजतक मेरी भेंट नहीं हुई। श्रुति व स्वरों के विषय में केवल किसी व्यक्ति की कोरी कल्पना मुझे ग्राह्य नहीं है, वरन ग्रंथों के आधार पर यदि कोई सिद्धांत स्थापित करे, तो वह अधिक योग्य होगा। अस्तु, अब हम मुख्य विषय की ओर बढ़ें। यह तो तुम्हें ज्ञात ही होगा कि "श्रुति" शब्द 'श्रु' (सुनना) इस धातु से निकला है। यह भी मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि संगीतोपयोगी नादों का विचार करते हुए इस शब्द का अर्थ भी हमें सीमित करना पड़ेगा। हमारे प्राचीन सङ्गीत-ग्रंथकर्त्ता यदि किसी एक बात पर एकमत हुए हैं, तो वह यही कि सङ्गीतोपयोगी संभव नादों या श्रुतियों की संख्या एक सप्तक में २२ मानी जाती है और इसी प्रमाण से शुद्ध स्वर ७ माने जाते हैं। यद्यपि इन नादों का स्थान सभी के मत से एक सा नहीं है, तथापि उक्त नाद-संख्या के विषय में मतभेद नहीं है। यह मान्यता श्रुति-स्वर-चर्चा के प्रारम्भ में बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस मान्यता के कारण हमें इस नीरस चर्चा में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि आरंभिक अवस्था में समाज में एक-दो या तीन स्वरों का गायन प्रचलित था। मैं यह नहीं कहता कि यह सब निरुपयोगी है, परन्तु अफ्रीका या दक्षिण अमेरिका के असभ्य लोगों के सङ्गीत में कितने स्वरों का उपयोग होता है, यह निश्चय करने का कार्य हमें घर बैठे करने की अपेक्षा उद्योगी पाश्चात्य विद्वानों को करने के लिये सौंपना क्या अधिक उचित नहीं है? आजकल सर्वत्र अंग्रेजी का प्रचार हो गया है, उसमें

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखित इस विषय के ग्रन्थ जिज्ञासु व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु, हमें मानव प्राणी के आदिम काल के संगीत की चर्चा नहीं करनी है। इस सम्बन्ध में अँग्रेजी भाषा के सङ्गीत के इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ तुम्हें पढ़ने चाहिये। कहीं-कहीं आवश्यकता होने पर मैं भी उन ग्रन्थों के उद्धरण तुम्हें आगे पढ़कर सुनाऊँगा, परन्तु यह हमारा मुख्य विषय नहीं है। हमारी चर्चा का विषय तो २२ श्रुति व सप्त स्वर निश्चित होने के पश्चात् रचे हुए ग्रन्थों पर विचार करना है।

एक सप्तक में २२ श्रुतियां होने की स्वल्प कल्पना तुम्हें पहिले से है। मैं तुम्हें यह भी बता चुका हूं कि तीन सप्तक से अधिक स्वरों में सभी व्यक्ति नहीं गा सकते। अभी हम यही मान कर आगे बढ़ें। "एक सप्तक में २२ से अधिक सङ्गीतोपयोगी नाद निकलना बिलकुल असम्भव है" हमारे ग्रन्थकारों के सन्मुख ऐसी ही कुछ धारणा रही थी। हमारे ग्रन्थकार चतुर थे। उन्होंने २२ से अधिक नाद गले से निकालना असम्भव मानकर और यह समझकर कि यह धारणा आगामी पीढ़ी में आदरपूर्वक स्वीकार होकर चलती रहे, अपने ग्रन्थों में लिख दिया कि मानव शरीर में नाद उत्पन्न करने की केवल २२ नाड़ियां ही हैं। वीणा वाद्य तो उनके पास था ही। बस, उस वाद्य के खड़े तार और आड़ी तरबें देखकर ही सम्भवतः उपरोक्त कल्पना उन्हें उत्पन्न हो गई हो। यह कल्पना बहुत प्राचीन है और हमारे सङ्गीतज्ञ विद्वान इस समय भी उसे दृढ़ता पूर्वक पकड़े हुए हैं। यह बाईस नाड़ियां कहां और कैसी होती हैं तथा उनसे २२ नाद किस प्रकार निकलते हैं, ऐसे अविश्वास सूचक प्रश्न ये विद्वान पूछने ही नहीं देते। मैंने देखा है कि ये लोग संगीत की इन अनेक गूढ़ताओं को छोड़ते हुए बहुत सरल और सुविधापूर्ण ऐसा उत्तर दे दिया करते हैं कि "इस विषय में बहुत कुछ रहस्य है" या "यह शास्त्रों में लिखा कथन है।" प्राचीन कल्पना तथ्यपूर्ण है, इसे सिद्ध करने के लिये हमारे विद्वान सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन व उसका उपयोग भी करते हैं, परन्तु प्राचीन कल्पना भी भ्रमपूर्ण हो सकती है, इसे कदापि स्वीकार नहीं करते। यह बात उनकी समझ में नहीं आती कि प्राचीन ग्रन्थकार भी हमारे जैसे ही सीधे-सादे व्यक्ति थे तथा हमारे जैसी उनके द्वारा भी भूलें होना सम्भव है। अस्तु, इन २२ नाड़ियों को खोज निकालने का कार्य हमें नहीं करना है, बल्कि यह मान्यता लेकर आगे बढ़ना उपयुक्त है कि हमारे ग्रन्थकारों ने एक सप्तक में क्रमिक ध्वनि-वृद्धि वाले २२ नाद माने हैं। इन २२ नादों के उन विद्वानों ने सुन्दर-सुन्दर नाम उन्हें व्यवहार में पहिचानने के लिये रख दिये हैं। परन्तु मित्रो! इन सुन्दर नामों से ही हमारा कार्य पूर्ण नहीं होता। ये २२ नाद अपने कानों में प्रत्यक्ष होने आवश्यक हैं। अतः इस समय हमारे विद्वान यह कौनसा नाद है और इस पर कौनसा स्वर स्थापित होना चाहिये, आदि प्रश्नों की चर्चा करते रहते हैं। यहां एक भूल न कर बैठना कि प्राचीन २२ नाद अर्थात् बिलकुल भरत, मतङ्ग के द्वारा गाये जाने वाले नादों की ही हमारे वर्तमान विद्वान शोध कर रहे हैं, ऐसी भ्रमयुक्त धारणा तुम्हारी न होनी चाहिये।

प्रश्न—नहीं, नहीं! ऐसा हम क्यों समझेंगे? उन नादों में परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह मुख्य बात ही यहां हमें समझनी है।

उत्तर—तुमने ठीक कहा। एक इच्छित नाद को षड्ज मानकर ग्रहण करने पर शेष नादों के प्रमाण, ग्रंथों के बताये हुए ढङ्ग पर कौन-कौन से होते हैं, इस प्रश्न पर हमें

विचार करना है। नादों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रमुख दो साधन अपने यहां प्रसिद्ध ही हैं!

प्रश्न—भला, वे कौन से साधन हैं?

उत्तर—पहिला साधन तार की लम्बाई का, व दूसरा साधन नाद के कंपनों का। कम्पन की सहायता से नाद सम्बन्ध स्थिर करने की कल्पना हमारे संस्कृत ग्रन्थकर्त्ता जानते थे, यह बात हमारे विद्वानों द्वारा समर्थित नहीं होती। तार की लम्बाई से नाद सम्बन्ध स्थिर करने की कल्पना अवश्य ही बहुत प्राचीन ज्ञात होती है। हमारे विद्वान कहते हैं कि तार की लम्बाई का व कम्पन का परस्पर उत्तम सम्बन्ध होता है। कम्पन जानने पर तार की लम्बाई निकाली जा सकती है व तार की लम्बाई ज्ञात होने पर आन्दोलन (कम्पन) निकाले जा सकते हैं। यह कार्य गणित का है अतः इसमें त्रुटि होना सम्भव नहीं है। सूक्ष्म स्वरों के आन्दोलन आदि बातें बताने वालों की अन्य सब बातों में अनुकूलता होने पर उनका मत समाज के द्वारा आदर प्राप्त करता है।

प्रश्न—अनुकूलता से क्या आपका तात्पर्य यंत्र-तंत्र (वाद्य-वादन) की अनुकूलता से है?

उत्तर—वह तो होना ही चाहिये, परन्तु और भी कुछ बातें होनी आवश्यक हैं, ऐसा मेरा मत है।

प्रश्न—वे कौनसी?

उत्तर—प्रथम तो उसे स्वतः ही उत्तम स्वर-ज्ञान व राग-ज्ञान होना चाहिये। फिर श्रेष्ठ सङ्गीत सम्प्रदाय के अनुभवी घरानेदार, स्वर-ज्ञानी, ऐसे गायक की संपूर्ण सहायता भी प्राप्त होनी चाहिये। प्रायः ऐसे प्रत्यक्ष गायक अशिक्षित पाये जाते हैं, इनका योग्य उपयोग करने का ज्ञान होना इतना सरल व सुविधा पूर्ण नहीं होता, जितना हम समझते हैं।

प्रश्न—तो आपका कथन यह है कि, ऐसे सूक्ष्म स्वरों के विषय में एक व्यक्ति स्वर लगावे, दूसरा उसे पसंद करे व परख करे, तीसरा तार की लम्बाई देखे, चौथा श्लोकों को उपस्थित करे, पांचवां गणित शास्त्र प्रयुक्त करे। यह रीति भी संपूर्ण रूप से समाधान-कारक नहीं हो सकती?

उत्तर—मेरा कथन तुम्हारे ध्यान में ठीक आ गया। ऐसी कार्य पद्धति में विभागीय रूप से श्रम होने के कारण एकाध बार उलटा-सीधा परिणाम उत्पन्न हो सकता है, व उससे समाज में व्यर्थ की कलह व मतभेद बढ़ना सम्भव है। एक दूसरे की सहायता व सहानुभूति तो आवश्यक है ही, परन्तु ये सहायक यदि उत्तम स्वरज्ञानी व रागज्ञाता नहीं हुए तो उनके कथन का प्रभाव नहीं हो सकता। मैं एक क्षण के लिये भी यह नहीं कहूँगा कि हमारे श्रुति स्वर-चर्चा करने वाले विद्वान ऐसे नहीं हैं। जो योग्य व अधिकारी विद्वान हैं, उनके मतभेदों को तुम्हें सदैव आदर देना है। मैंने तो यह एक सामान्य सूचना दी है क्योंकि हमारे लेखकों में कदाचित कोई-कोई स्वरज्ञान-शून्य भी दिखाई पड़ सकते हैं।

प्रश्न—फिर ऐसे लोग ग्रन्थ लिखने की ओर कैसे प्रवृत्त हो जाते हैं?

उत्तर—Rittar साहेब ने कुछ पश्चिमी लेखकों के विषय में क्या कहा है, देखो-

About none of the other arts has so much nonsense been written as about music. A person scarcely able to distinguish one tone or note from another, one air from another, will not hesitate to judge of and condemn fine musical works in a most imperative manner; nay, I have seen criticism, novels, and sketches on musical subjects written by persons who could not sing or play the simplest tune and to whom theory was a "terra-in cognita"

यह अनुभव जबकि पश्चिम की ओर आ सकता है तो हमारे यहां क्यों नहीं आ सकता ? श्रेष्ठ अधिकारी विद्वान को तो सम्मान मिलेगा ही । अस्तु, अब अपने विषय पर चर्चा करने के पूर्व मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि तुमने 'सितार' या 'वीणा' वाद्यों को प्रत्यक्ष रूप से देखा है ?

प्रश्न—हां हां, हमें आजकल सङ्गीत का चस्का लग गया है न ! मैं कई बार समय मिलते ही अपने नगर के प्रसिद्ध बीनकार वज़ीर खां के यहां जा बैठता हूं । हममें से एक-दो तो सितार सीखते हुए भी पाये गये हैं । परन्तु देखिये, खूब याद आई-यह चर्चा चलने से मैं एक बात पूछ रहा हूँ कि कोई-कोई कहते हैं कि गायक की अपेक्षा तंतकार (तंतु वाद्यों के वादक) श्रेष्ठ होते हैं । क्या यह कथन ठीक है ?

उत्तर:—गायक की अपेक्षा तंतकार का स्वरज्ञान पर विशेष अधिकार होना संभव है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा । परन्तु रागों के विषय में तो मैं कहूँगा कि दोनों की अड़चन एक सी ही रहेगी । रागों के नियम जिसे ज्ञात नहीं, वह अंधा ही है, चाहे वह गायक हो अथवा तंतकार । इसमें उनकी रुचि-अरुचि की गुंजाइश ही नहीं है । परसों मैंने एक सितारिये का सितार सुना । उसने अपनी अँगुलियां खूब तैयार करली थीं, परन्तु उसका राग-ज्ञान बिलकुल निरुपयोगी था । 'मारवा' नामक जो एक राग है वैसा उसने आरम्भ किया, फिर दोनों मध्यम लगाये, फिर खुशी-खुशी पंचम का प्रयोग भी करने लगा । केवल उसकी तैयारी अवश्य विलक्षण थी, परन्तु उसे उसके नियम कुछ भी ज्ञात नहीं थे ।

प्रश्न—आपने उससे यह पूछा था क्या ?

उत्तर—हाँ, उसने कहा कि उसे नियम ज्ञात नहीं हैं । कोई ऐसा उत्तर भी दे सकता है कि यह कोई अप्रसिद्ध राग स्वरूप होगा, परन्तु ऐसा ही उत्तर कोई गायक नहीं दे सकता क्या ? सारांश यह है कि गायक की अपेक्षा तंतकार अधिक विद्वान होता है, ऐसा कोई नियम नहीं । राग के नियम-धर्म जिसे भी उत्तम रूप से ज्ञात होंगे, वही आदर का पात्र होगा ।

अच्छा, अब मैं अपने विषय की ओर लौटता हूँ । मुझे यह जानकर बड़ा संतोष हुआ कि तुमने सितार और वीणा को देखा है और हाथों में भी लिया है । इससे मेरा काफी परिश्रम बच गया । सितार में कितने तार होते हैं, उन्हें कैसे मिलाया जाता है, बाज का तार कौनसा है ? परदा, मेरु, घोड़ी, चलथाट, अचलथाट, आदि बातें विस्तार सहित बताने की अब बिलकुल आवश्यकता नहीं है । केवल 'बिलावल थाट' इतना कह देने पर ही उस

थाट के परदों की व्यवस्था एकदम तुम्हारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जावेगी। मुझे स्मरण है कि एक बार मैंने अपने शिष्यों को बताया था कि सितार पर तार सप्तक के स्वर नीचे के भाग में तथा मंद्र सप्तक के स्वर ऊपर के भाग में बजाये जाते हैं एवं 'शारीर-वीणायां दारव्यां तु विपर्ययः" इस वाक्य से ही यह बात निकाली होगी। मेरा यह कथन सुनकर मेरे शिष्यों को इतना आश्चर्य हुआ कि उस दिन का सारा व्याख्यान इसी सम्बन्ध पर होता रहा।

प्रश्न—अब ऐसा भय नहीं रहा, क्योंकि इस सम्बन्ध में हमें बहुत जानकारी मिल चुकी है, आप बेशक आगे बढ़ें।

उत्तर—अच्छी बात है। आजकल उपलब्ध संगीत ग्रन्थों में मांडूकीशिक्षा नारदीशिक्षा व भरतनाट्यशास्त्र, ये ग्रन्थ ही अति प्राचीन मानने का व्यवहार दिखाई पड़ता है। हम भी थोड़ी देर के लिये ऐसा ही मान लेते हैं।

प्रश्न—परन्तु पाश्चात्य विद्वानों और हमारे विद्वानों ने तो प्राचीन ग्रन्थों की बड़ी लम्बी-लम्बी सूचियां दी हैं।

उत्तर—हां, परन्तु वे केवल सूची मात्र ही हैं। वे सम्पूर्ण ग्रन्थ आज उपलब्ध भी हैं, ऐसा न समझ बैठना। मैं इस देश के बड़े-बड़े व संगीत के लिये प्रसिद्ध शहरों में घूमा हूँ, वहां कौन-कौन से ग्रन्थ आज मौजूद हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। मैं ऐसा नहीं कहता कि जो ग्रन्थ मुझे दिखाई नहीं दिये वे संसार में हैं ही नहीं। परन्तु तुमने कहा उसी प्रकार की कल्पना साथ लेकर मैंने प्रवास किया था, यह अवश्य कहूँगा। किसी-किसी ग्रंथ नाम के स्थान पर संस्कृत टीका का नाम ही सूची निर्माताओं ने लिख दिया है। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि, इस संगीत ग्रंथों की प्रसिद्ध सूची के ग्रंथों का अधिकांश भाग नष्ट हो गया है। हमें अभी तो भरत, नारद, मंडूक को ही प्राचीन मानकर चलना उचित है। यदि किसी ने इससे अधिक प्राचीन जानकारी दी तो और अच्छी बात है। भरत आदि का काल निश्चित करने का कार्य हम अपने सिर पर नहीं लेंगे संभवतः यह कार्य कठिन भी होगा। कैसी-कैसी कठिनाई उपस्थित होंगी, उनका अनुमान तुम्हें संक्षेप में कराये देता हूँ। हमारे किसी वर्तमान विद्वान का मत है कि भरत तीसरी शताब्दी में हुआ था और उस समय 'राग' शब्द का प्रचार ही नहीं था। इधर कल्लिनाथ की टीका में राग स्वरूपों के वर्णन में भरत का आधार लिया हुआ दिखाई देता है। तब फिर यह भरत पहिले से भिन्न व्यक्त होना चाहिये। कोई यह तर्क भी कर सकते हैं कि भरत नाम ही कुटुम्ब वाचक है। नारदी शिक्षा में "ग्राम-राग" का स्पष्ट उल्लेख है। तब यह कौनसा नारद है व किस समय में हुआ, ये प्रश्न भी हमारे सामने उपस्थित होंगे। इस प्रकार की उलझनों से बिना लिखित प्रमाणों के हम कैसे सुरक्षित रूप से यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। मेरी समझ से हमारे लिये यही सुरक्षित मार्ग है कि जहां-जहां ऐसे ऐतिहासिक महत्व के प्रश्न उत्पन्न हों, वहां ये प्रश्न उस विषय के निष्णात विद्वानों को निर्णय के लिए सौंप दें। हमें बहुरूपियापन का या सर्वज्ञता का दावा नहीं करना चाहिए। ग्रंथकारों ने क्या कहा, यह हमारा विषय है। मगर उन्होंने यह कब, किस काल में कहा यह खोजना हमारा विषय नहीं है। हमें श्रुति स्वर-प्रकरण पर उनके ग्रंथों द्वारा प्रकाश चाहिए। उसमें भी केवल उनकी कल्पना व उनका शब्द पांडित्य ही हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकता।

प्रश्न—क्या ग्रंथकारों द्वारा ऐसी रचनाऐं भी हुई हैं?

उत्तर—हां, रत्नाकर की टीका यदि तुम देखो तो विश्वावसु, मतंग, तुम्बरु, भरत, कोहल, आदि के उल्लेख व उद्धरण प्राप्त होंगे। यदि हम अन्वेषण की दृष्टि से देखें तो यह सारा पांडित्य बिलकुल निरुपयोगी है। शार्ङ्गदेव ने अपना श्रुतिप्रकरण बड़े ही नवीन तरीके से लिखा है और यह बहुत कुछ युक्तिसंगत भी है। कल्लिनाथ की टीका के प्रपंच में अभी मैं तुम्हें नहीं ले जाऊँगा, क्योंकि उस टीका का शब्दशः अनुवाद अपने किसी विद्वान ने किया है, वह तुम पढ़ देखना। श्रुति व स्वर के भेद-प्रभेद कथन करते हुए संस्कृत ग्रन्थकारों ने जो पांडित्य प्रदर्शित किया है, वह देखकर हँसी आती है। उस समय यह चल गया, परन्तु अब युग दूसरा हो गया है। उनके इस 'अव्यापारेषु व्यापार' का हम समर्थन नहीं करेंगे। रणन व अनुरणन तथा उसके भेद, इनसे उत्पन्न होने वाले श्रुतित्व व स्वरत्व का अन्वेषण करने में हमें अब समय नहीं खर्च करना है। प्रत्येक श्रुति भिन्न तार पर स्थापित करने की अव्यवहारिकता का महत्व शार्ङ्गदेव ने नहीं समझा परन्तु हमारे ग्रंथकारों में भी ऐसे क्वचित ही हैं, जो परंपरागत धारणा को बदलने का साहस करें। इस प्रसंग में हमें प्रत्येक संस्कृत ग्रंथकार द्वारा निर्धारित श्रुतियों व स्वरों के स्थान को जांचकर देखना है। आजकल हम प्रायः अपने अशिक्षित-गायकों पर हँसते हैं, जिन्हें श्रुति व स्वरों के भेद-प्रभेद व इनके सम्बन्धों का ज्ञान नहीं है। परन्तु यह विषय हमारे सम्पूर्ण ग्रन्थकार भी समझे हुए थे, यह बात भी नहीं पाई जाती। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारे वर्तमान, सुशिक्षित संगीतज्ञ विद्वानों की भी इस विषय में भ्रमपूर्ण धारणा नहीं है। मेरी समझ से ऐसा अज्ञान, प्रत्येक काल में समाज में रहा है तथा रहता है। पूर्वी भारत में प्रवास करते हुए मेरी भेंट एक सुशिक्षित विद्वान से हुई, उनसे श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम आदि की भी चर्चा हुई। उनकी व मेरी इस सम्बन्ध में जो बातें हुईं, क्या तुम उन्हें सुनना चाहते हो?

प्रश्न—अवश्य बताइये, क्या-क्या बातें हुईं?

उत्तर—उस वार्तालाप का सारांश मैंने अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा है:—

"मैं:—महाराज, आप तो सुशिक्षित हैं, अतः मुझे विश्वास है कि आप इस विषय में पूर्ण रूप से युक्तिसंगत व तर्कपूर्ण चर्चा करेंगे। आप अवश्य ही संगीत के विषय को पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध नहीं करेंगे, यह मुझे आशा है।

पंडित—मैं बहुत धर्मनिष्ठ मनुष्य हूं तथा प्राचीन शास्त्रों का मानने वाला भी हूं। मैंने तो अपने पंडितों के नाद पर विचार और 'ओम्' शब्द से सर्व सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, इस विषय को आगे बढ़ाया है।

मैं—महाराज, मुझे खेद है कि मैं इतने गहरे पानी में नहीं उतर पाया हूँ। मैं तो केवल संगीत शास्त्र के ग्रन्थों से ही चिपटा रहा हूं। उसमें से भी मैं शरीर सम्बन्धी व नादोत्पत्ति सम्बन्धी विचारों का भाग अपने वार्तालाप में छोड़ने को तैयार हूँ।

पंडित—क्या तुम ब्राह्मण हो ?

मैं—जी हां, मैं ब्राह्मण हूँ। यह बात नहीं है कि मेरी श्रद्धा ईश्वर पर नहीं है। परन्तु मैं संगीत व धर्म इन दोनों विषयों को अलग-अलग रहने देना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि अब इन दोनों विषयों को इस युग में परस्पर मिला देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने से संगीत की उन्नति में बाधा ही उपस्थित होगी।

पंडित—मैं तुम्हारे मत का नहीं हूँ। शरीर से षड़ज आदि स्वर कैसे पैदा होते हैं, जब तुम यह नहीं जानते तो तुम्हें दूसरी क्या बात समझाई जावे ?

मैं—अच्छी बात है, संक्षेप में यही समझा दीजिये ?

पंडित—तुम ब्राह्मण हो, अतः तुम्हारे कुछ समझ जाने की आशा भी है। मुसलमान आदि तो इसे क्यों समझेंगे ?

मैं—जी हां, यह लाभ तो मुझे है ही। परन्तु, षड़ज के विषय में आप क्या कह रहे थे ?

पंडित—सुनो, अपनी पीठ की हड्डी के सिरे पर, अर्थात् हमारे बैठने की जगह के निकट, पांच, छः हड्डियां एक में एक जुड़ी हुई हैं। यहीं से षड़ज अर्थात् इन छः हड्डियों से उत्पन्न होने वाला, नाद निकलता है। इसीलिये इसका 'षड़ज' हुआ। प्रायः लोग षड़ज का अर्थ करते हैं, "अन्य छः स्वरों का उत्पादन करने वाला" परन्तु लोगों को यह शास्त्रीय रहस्य क्या मालूम ? हमारे प्राचीन ऋषियों ने शरीर के अन्दर चक्र माने हैं। क्या यह झूँठ ही है ? यह बात बड़ी गंभीर व रहस्यपूर्ण है। मैंने इस विषय पर घंटों तक विचार किया है।

मैं—पंडित जी, इतनी छोटी उम्र में (ये लगभग ३० वर्ष के दिखाई देते थे) ही आपने इधर बहुत समय दिया !

पंडित—यह तो मेरा शौक़ है। अच्छा, श्रुति आदि क्या हैं, यह तुम समझते हो ? लोग कहते हैं कि ये स्वरों के छोटे-छोटे भाग हैं। कोई वर्तमान काल के विद्वान इन्हें Quarter tones कहते हैं, यह सब झूठ है।

मैं—मैं भी ऐसे ही समझने वालों में हूं, परन्तु शायद यह भ्रमपूर्ण धारणा होगी ?

पंडित—निस्संदेह, तुमने इन्द्रधनुष तो देखा ही होगा। क्या तुम इन्द्रधनुष के रंगों को अलग-अलग कर सकते हो ?

मैं—मुझसे यह नहीं हो सकता।

पंडित—तो बस, हो गया। यही विशेषता इन श्रुतियों में समझो "सा" कहा कि उसकी ४ श्रुतियां भी आ गईं, क्योंकि वे तो इसका अङ्ग ही हैं, उन्हें कौन व कैसे अलग कर पायेगा ? वे निराली दिखाई ही नहीं देंगी। बिना इनके एकत्रित हुए "सा" उत्पन्न

ही नहीं होगा। अजी, कोई पदार्थ दो या तीन पदार्थों का Chemical Compound (रसायनिक मिश्रण) हो, तो उस मिश्रित पदार्थ में वे पदार्थ अलग-अलग कभी भी दिखाई नहीं पड़ेंगे।

मैं—तो आपके मत से श्रुतियों का उपयोग कैसे व क्या होगा ?

पंडित—उपयोग, यह तुमने क्या पूछा ? तुम जिन स्वरों का उपयोग करते हो, वे कहां प्रयुक्त होते हैं ? वे ही तो श्रुतियों के मिश्रण के परिणाम हैं। मैं अपना मत तुम्हें स्पष्ट रूप से ही बताये देता हूँ। "श्रुति किसी को न तो कभी दिखाई दी है, और न कभी दिखाई पड़ेगी ही"।

मैं—महाराज ! आप मुझे इसके लिये क्षमा करेंगे कि मुझे आप जैसे विद्वान् से ऐसा मत सुनकर कुछ आश्चर्य हो रहा है। परन्तु आपके कथनानुसार अदृश्य श्रुतियों को, अवयव रहित स्वरों से अलग करते हुए उनकी ४, ३, २, ४, ४, ३, २ की व्यवस्था किसने, कब और कैसी की होगी ?

पंडित—यही तो सम्पूर्ण गुप्त रहस्य है ! यह एक कोरी कल्पना ही है।

मैं—परन्तु यह कल्पना भी किसी आधार पर की गई होगी ?

पंडित—वह इस तरह तुम्हारी समझ में नहीं आवेगी।

प्रश्न—यह पंडित तो विलक्षण ही दिखाई पड़ते हैं। भला, इन्होंने यह सब धारणा कहां से सामग्री लेकर तैयार की होगी ?

उत्तर- मेरी समझ में उसका मूल यह रहा होगा:—

"श्रुतेश्चतुर्थ्यादेर्मारुताद्याहतोत्पन्नप्रथमध्वनेरनंतरंभावी; प्रथमतंत्र्यामाहतायां तद्देशावच्छेदेन प्रथमध्वनिरुत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु प्रथमध्वनिव्यापको ध्वनिप्रवाहस्तदनंतरं श्रूयते तदनुरणनं, तदेवात्मा यस्य सः स्वरः। यथाऽप्सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते। आकाशे वा विहंगानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः।"

प्रश्न—इस संस्कृत वर्णन का उस पंडित ने जो अर्थ किया, वैसा तो कोई भी कर सकता है न ?

उत्तर—परन्तु फिर उस संस्कृत पण्डित का ही मूल्य कितना था, यह भी लोगों की समझ में आ जावेगा। अस्तु, आगे सुनो !

"मैं—महाराज ! मूर्च्छना का क्या अर्थ है, एक बार इसे भी समझा दीजिये ?

पंडित—प्रयत्न करता हूँ। तुमने सितार पर काफी राग की गत 'दादिर दारा दारदा' सुनी है।

मैं—हां, यह गत मेरी सुनी हुई है।

पंडित—इसमें मैंने कौनसा अक्षर छुपाया है, यह तुम्हारी समझ में आया ?

मैं—मेरी समझ से उसका अन्तिम अक्षर 'दा' जो पंचम पर आता है, उसे ही आपने गुप्त रखा है।

पंडित—निस्सन्देह, यही मैंने छोड़ा है। अब देखो, सा रे ग म स्वर मैंने स्पष्ट रूप से दिखाये, परन्तु पंचम को छुपा दिया, ऐसा करने पर भी तुम्हें वह दिखाई दिया। ठीक है न ? वह तुम्हारी दृष्टि के सम्मुख बिना मेरे प्रयत्न के उपस्थित होगया और ऐसा एक बार हुआ कि उसके पिछले स्वरों का कार्य पूरा हुआ। तुम्हीं देखो, पंचम स्वर मन में आते ही पिछले सारे स्वर अपने आप तुम्हें विस्मृत हो गये। इन स्वरों के अदृश्य हो जाने को ही हमारे प्राचीन विद्वानों ने मूर्च्छना कहा है। देखा न, कैसा अद्भुत शास्त्रीय रहस्य है ? योग्य अधिकारी के बिना इसमें कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। यह मूर्च्छना का मर्म बिना गुरू के कैसे समझ में आ सकता है ?

मैं—मैं तो स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूं कि यह व्याख्या मैंने आज ही पहिली बार सुनी है। मेरी तो बात ही क्या, परन्तु कोई यह भी कह सकते हैं कि हमारे बहुत से संस्कृत व देशी भाषाओं के ग्रन्थकर्त्ताओं ने यह मर्म नहीं समझा होगा। हां, मूर्च्छना की व्याख्या अवश्य सभी की प्रायः एक ही है।

पण्डित—अजी, तुम ग्रन्थों की उक्तियों का अर्थ जैसा ऊपरी-ऊपरी करते हो, मैं वैसा नहीं करता। मैं Philosophy (तत्व ज्ञान) की दृष्टि से देखता हूं। प्राचीन पंडित क्या मूर्ख थे ? उनके लिखने की शैली ही भिन्न थी, अर्थात् स्वरों का आरोह-अवरोह यानी मूर्च्छना ! परन्तु आरोह, अवरोह करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी ? यह भी किसी ने खोज की है ? इस बात पर विचार करने में साधारण मनुष्य का तो मस्तक चकराने लगेगा। गत बजाते हुए ऐसे गुप्त स्वर सदा दिखाये जाते हैं। कभी सा, कभी प और कभी रे, इस प्रकार स्वर गुप्त हो सकते हैं।

मैं—महाराज ! मूर्च्छना के सम्बन्ध में आपकी कल्पना मुझे थोड़ी सी समझ में आ गई। अब 'ग्राम' के विषय में बताइये।

पण्डित—कहता हूं। 'ग्राम' का वास्तविक अर्थ ही कोई-कोई नहीं समझते। 'ग्राम' शब्द संस्कृत का है। वह तो स्थल वाचक स्पष्ट है ही। तब 'ग्राम' यानी एक स्थान होना चाहिये। तो वह स्थान कहां होगा ? तुम अपने गले पर हाथ फिराते चलो, और मेरे कथन की वास्तविकता का अनुभव करते जाओ। केवल मेरे कथन पर ही विश्वास न करो। "का" इस अक्षर का उच्चारण कहां से होता है ? "की" व "कू" अक्षर कहां से उच्चारित होते हैं ? क्या सब वर्णों में आ, ई, ऊ ये तीन स्वर प्रधान नहीं हैं ? तुम अपने गले पर हाथ लगा कर देखो कि, ये तीन स्वर तीन निर्दिष्ट स्थानों से उत्पन्न होते हैं। ये गले के तीन स्थान ही 'ग्राम' समझने चाहिये।

मैं—यह नियमित स्थान सभी को मिल सकना, एक उलझन ही है।

पण्डित—वह तो है ही ! कहते ही हैं कि जो खोजेगा वह पायेगा। हमारे विद्वानों ने सम्पूर्ण बातें इस शरीर में ही रखदी हैं। दूर जाने की जरूरत ही नहीं। दूसरी बात सुनो, तुमने संस्कृत ग्रंथों में पढ़ा है कि अपने सप्त स्वर, सप्त द्वीपों से उत्पन्न होते हैं। इसका रहस्य तुम क्या समझे ? देखें बताओ ?

मैं—महाराज ! मैं आपकी कल्पनाओं में पहिले से ही गड़बड़ में पड़ गया हूं, इसलिये यह बताने योग्य धैर्य मुझमें नहीं रहा। मुझे कई वर्षों का सङ्गीत-सम्बन्धी

अनुभव है, परन्तु उसका क्या उपयोग ? यह भाग समझा देने वाला भी तो कोई चाहिये मैं शपथपूर्वक कहने को तैयार हूं कि यह अर्थ हमारी ओर के लोगों को अभी भी नहीं सूझा है।

पण्डित—नहीं, शपथ लेने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारी बात सत्य ही मानता हूं। यह विषय ब्राह्मण के सिवाय अन्य व्यक्तियों को आसानी से समझ में नहीं आ सकता। इसीलिये मैंने आरम्भ में ही तुमसे पूछा था कि तुम ब्राह्मण हो ?

मैं—महाराज ! मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि हमारी ओर के ब्राह्मणों द्वारा भी इस विषय की इस प्रकार सुलझी व्याख्या नहीं हो सकती। यह तो निराली ही दिशा है, परन्तु हां, आप सप्त द्वीपों के विषय में बोलने वाले थे ?

पण्डित—गले के निचले बाजू में इर्द-गिर्द सात हड्डियां हैं, उनके ही ये सात नाम हैं। ऐसा नहीं, हाथ लगाकर देखो। केवल मेरे कहने से गर्दन मत हिलाओ।

मैं—यह सब मैं घर जाकर जाँच करके देखूँगा। यह सब स्वस्थ मस्तिष्क से करना पड़ेगा। आपकी कल्पना निश्चय ही विकट है। साधारण स्तर के संस्कृतज्ञ पाठक को यह नहीं सूझ सकती। परन्तु मुझे यह सब सुनकर उस निर्दय ग्रंथकार के लिये हृदय में रोष उत्पन्न हो रहा है। देखिये, संगीत जैसे सार्वजनिक मनोरंजन के विषय में इतना गम्भीर वेदान्त छुपा रखा है। आजकल लोगों द्वारा संस्कृत ग्रंथों की ओर झांक कर देखना भी बन्द हो गया है। यह देखते हुए ऐसा होना बिलकुल योग्य ही है। मैं भी अपनी ओर के लोगों को यह व्याख्या कैसे सुना पाऊंगा ? परन्तु जरा ठहरिये, आपके सारे संगीत ग्रन्थ कोई निराले तो नहीं हैं न ?

पण्डित—नहीं, नहीं, ग्रन्थ वे ही रत्नाकर, दर्पण आदि हैं। केवल अर्थ मेरा स्वतः का ही किया हुआ है।

मैं—इधर आपके मत का कोई दूसरा विद्वान भी है ?

पण्डित—भला मैं अपने मत को उनके मत से मिलाने जाता भी कैसे ? वे सब तो आजकल के संशोधित मत की ओर झुके हुए हैं। मेरा कथन उनकी समझ में क्यों आने लगा ! श्रद्धा बड़ी भारी वस्तु है, बिना इसके ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

मैं—वह तो मुझमें है, पर मेरे जैसे और कहां मिलेंगे ? किन्तु आपके अर्थों में ग्रंथ राग छूट जाते होंगे ?

पंडित—निस्सन्देह छूट जाते हैं। ऐसा तुम क्यों पूछते हो ?

मैं—एकाध उदाहरण देकर यदि आपने यह समझा दिया तो मैं विस्तृत रूप से समझ जाऊँगा।

पंडित—तुम्हारे श्रीराग को लो। "धैवतांश ग्रहन्यास" अथवा धैवतादिकमूर्च्छना" ऐसा उल्लेख है। तो लगने वाले स्वरों में रे ध कोमल व मध्यम तीव्र होवेगा और ये ही स्वर हम प्रयोग में लेंगे।

मैं—श्रीराग की मूर्च्छना उत्तरामन्द्रा कही गई है, परन्तु वहां मूर्च्छना का अभिप्राय प्रयुक्त कर दिखा देंगे क्या ? कौनसा स्वर कैसे गुप्त किया जावेगा ?

पंडित—क्या बताऊँ, यह विषय बहुत लम्बा है। इस विषय पर मैंने स्वयं के लिये कुछ टिप्पणी लिख रखी थीं, परन्तु इस समय उनका मिलना सम्भव नहीं है।"

अस्तु, इस प्रकार हमारा वार्तालाप हुआ। ये सज्जन उत्तम अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए थे और मुझसे उसी भाषा में बातें की थीं। ये ग्रेज्युएट भी थे। कहने का तात्पर्य यही है कि यह ही नहीं मान लेना चाहिये कि चमत्कारिक पागलपन या काल्पनिकता पहिले ही होती थी और इस समय नहीं होती। अतः हमें क्रमशः प्रत्येक प्राचीन ग्रन्थकारों के श्रुति-स्वर सम्बन्धी मत देखने हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि उन प्राचीन ग्रन्थकारों के सम्मुख पहिले २२ श्रुति कायम करके फिर उन पर स्वर स्थापित करने का अवसर कभी नहीं आया। वे लोग भी हमारी तरह परम्परा से मुख्य शुद्ध स्वर व विकृत-स्वर सीखते आये हैं। अमुक-स्वर की अमुक श्रुति होगी, यह भी उन्होंने सुन रखा था, जब ग्रन्थ लिखने का प्रसङ्ग आया, तब जिसे जो कुछ समझ पड़ा वह उसने लिख दिया। किसी-किसी ने तो पांडित्य में लपेटकर मुख्य विषय का ही गोल-माल कर दिया। इन प्राचीन लेखकों के संस्कृत-पांडित्य से प्रभावित होकर ही हमारे विद्वान कहीं-कहीं इन प्राचीन व्याख्याओं से नए-नए अर्थ निकालते हुए पाए जाते हैं। तुम स्वयं अच्छी तरह सोचकर फिर अपना मत निश्चित करना। अब मैं नारदी-शिक्षा का मत सुनाता हूँ:—

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्पग्रन्थप्रभूतार्थं श्राव्यं वेदांगमुत्तमम्॥
तानरागस्वरग्राममूर्छनानां तु लक्षणम्।
पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम्॥

* * *

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम्॥
षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः॥
षड्जमध्यमगांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः।
भूर्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः॥
स्वर्गान्नान्यत्र गांधारो नारदस्य मतं यथा।
स्वररागविषेशेण ग्रामरागा इति स्मृताः॥
विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश।
तानान् पंचदशेच्छन्ति गांधारग्राममाश्रितान्॥

आगे मूर्च्छना के नाम व श्लोक कहे गये हैं। यह भाग हमारे लिये अनुपयोगी है। इसके पश्चात् फिर गायन के गुण दोषों की चर्चा है। वह भी हमारा विषय नहीं है। चतुर्थ-कंडिका में:—

पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिंजरः ।
कनकाभस्तु गांधारो मध्यमः कुंदसप्रभः ॥
पंचमस्तु भवेत् कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः ।
पंचमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥

स्वरों की यह जाति आगे बताई गई है। आगे के श्लोकों का अर्थ अभी तक किसी ने स्पष्ट रूप से समझा-समझाया हो, यह ज्ञात नहीं होता। परन्तु तुम्हें स्वर श्रुति-प्रकरण सम्बन्धी जिस विवेचन की आवश्यकता है, वह इन श्लोकों में नहीं मिलेगा। वे श्लोक इस प्रकार हैं:—

ऋषभोत्थितषड्जहतो धैवतसहितश्च पंचमो यत्र ।
निपतति मध्यमरागे तं निषादं षाडवं विद्यात् ॥
यदि पंचमो विरमते गांधारश्चांतरः स्वरो भवति ।
रिषभो निषादसहितस्तं पंचममीदृशं विद्यात् ॥
गांधारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः ।
धैवतस्य च दौर्बल्यान्मध्यमग्राम उच्यते ॥
ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गांधारश्चाधिको भवेत् ।
धैवतः कंपितो यत्र षड्जग्रामं विनिर्दिशेत् ॥
अंतरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्र दृश्यते ।
तं तु साधारितं विद्यात् पंचमस्थं तु कैशिकम् ॥
कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समंततः ।
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः ॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पंचमस्य तु ।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम् ॥

ऐसा ही कुछ वर्णन ग्राम रागों का है, किन्तु वह अभी तक किसी के द्वारा प्रयुक्त नहीं हुये हैं। अभी तक यह भी निश्चित नहीं हुआ कि उन रागों के थाट कौन-कौन से हैं। पाँचवीं कंडिका में:—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमस्वरः ।
यो द्वितीयः स गांधारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥
चतुर्थः षड्जइत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

इस प्रकार कहा है, परन्तु यह किसी ने सिद्ध नहीं किया कि इस व्याख्या के सप्त-स्वरों की ध्वनि कौनसी है। इस पर साम-गायकों को भी कुछ कहते नहीं बनता

पश्चिमी विद्वानों को ग्रन्थों में मूल शुद्ध स्वर ही ज्ञात नहीं हुये, अतः इस सम्बन्ध के उनके सिद्धांत भी विश्वस्त नहीं हैं। मुझे मिली हुई हस्तलिखित रचनाओं में श्रुति व उसका स्वरों से संबन्ध, इस विषय पर कोई जानकारी नहीं मिली।

"षड्जं वदति मयूरो…। कंठादुत्तिष्ठते षड्जः, नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादंतांश्च संस्थितः। षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः॥" आदि निरुपयोगी बातें हैं। छटी कंडिका में:—

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु।
सामिकी गात्रवीणा तु तस्याः श्रुणुत लक्षणम्॥

इस प्रकार कथन है, परन्तु वीणा का वर्णन आदि कुछ भी नहीं है। साम गायकों को साम गायन करते समय हाथ पैर कैसे रखने चाहिये, यह बताया गया है। श्रुति की कल्पना पाठकों को इस प्रकार कराई गई है:—

यथाप्सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते।
आकाशे वा विहंगानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः॥

यह कल्पना तुम्हारे लिये कभी भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। तुम्हें अपनी २२ श्रुतियों के शोध कार्य में खेद पूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा कि तुम्हें इससे योग्य जानकारी नहीं प्राप्त होगी।

दीप्तायताकरुणानां मृदुमध्यमयोस्तथा।
श्रुतीनांयोऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते॥
दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव तु।
अतिस्वारे तृतीयेच क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः॥

इत्यादि कहा गया है। यह भी कुछ उपयोग में नहीं आवेगा। तुम्हारी परिचित श्रुतियों के नाम नारदीशिक्षा में देखने को नहीं मिलेंगे। अन्त-अन्त में इस प्रकार कहा है:—

त्रिफलां लवणाल्येन भक्षयेच्छिष्यकः सदा।
अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा॥

* * *

पंच विद्यां न गृह्णन्ति चंडाः स्तब्धाश्च ये नराः।
अलसाश्चानरोगाश्च येषां च विस्मृतं मनः॥
शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः॥
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानि परं व्रजेत्।
योजनानां सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता ।
आगमिष्यति जिव्हाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥
न शठाः प्राप्नुवंत्यर्थान्न क्लीबा न च मानिनः ।
न च लोकरवाद्भीता न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः ॥
यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विंदति ।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥

यह कौन कह सकता है कि गुरुजनों का यह अनुभव सम्मान योग्य नहीं है ? फिर यह कहना अनुचित नहीं कि जिस विषय की खोज हम करते हैं, वह भिन्न विषय है और उस सम्बन्ध में हमारा समाधान इन विवरणों से नहीं हो सकता ।

प्रश्न--यह सुनकर हमें बहुत ही आश्चर्य होता है ! एक सङ्गीत पाठशाला का विद्यार्थी हमें बता रहा था कि उसके गुरु बहुत सवेरे से उठकर घन्टों तक नारदीय शिक्षा के राग गाते रहते हैं । तो फिर गुरूजी, वे क्या गाते होंगे ?

उत्तर--यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? मैंने अभी जिन श्लोकों को पढ़कर सुनाया है, उन्हें भी भिन्न-भिन्न रागों में खींच तान कर गाया जा सकता है । जयदेव की अष्टपदी गायन की आजकल जो दशा है, क्या वह दिखाई नहीं दे रही ? प्रभात के समय गाने के लिये नारदी शिक्षा ही क्यों चाहये ? कोई यह भी कह सकता है कि इसके लिये तो भगवद् गीता कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगी । परन्तु इतना ही क्यों ? एकबार तुम उस पाठशाला में स्वतः जाकर और सुनकर विश्वास कर आओ, तभी निर्णय हो जायगा ।

प्रश्न--तब फिर यही कहना पड़ेगा कि नारदी शिक्षा में स्वर श्रुति-प्रकरण पर कोई स्पष्ट व्याख्या प्राप्त नहीं हो सकती ।

उत्तर--स्वरों के नाम, वर्ण, जाति, कुल, वाहन आदि सामग्री है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं । यदि किसी ने व्यर्थ ही पहेलियां बुझाई हों तो बिना उत्तम आधार व प्रमाणों के तुम उसे किस प्रकार स्वीकार कर सकोगे ?

प्रश्न--यह तो ठीक ही है । हम ऐसा भी सुनते हैं कि सामवेदी गायकों के लिये नारदी शिक्षा जीव या प्राण जैसी है । प्रत्येक साम-गायक को नारदी शिक्षा का ज्ञान होना ही चाहिए अन्यथा उसे साम-गायन नहीं आ सकता ।

उत्तर--इस प्रकार की बात सम्भवतः साम-गायकों द्वारा ही कही जाती होगी, परन्तु मुझे तो अभी तक किसी ने यह नहीं बताया कि वह 'प्राण' आखिर है किस जगह पर । यह मैं तुमसे स्पष्ट कह रहा हूँ । सामवेद के लिये किन-किन बातों का स्पष्टीकरण अभी और चाहिए, यह मैं तुम्हें पिछली बार बता ही चुका हूँ ।

प्रश्न--जी हां, वे सब बातें हमें याद हैं । अब मांडूकीशिक्षा में क्या कहा गया है, वह भी बताइये ?

उत्तर—बस, अब मैं वही करने वाला हूँ। इन पौराणिक ग्रन्थों की हमें निन्दा करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इनकी प्रशंसा करना भी कठिन है। जो ग्रंथ हमें अन्धकार से प्रकाश में लाता हो, वह हमें स्वाभाविक ही अच्छा लगेगा। संभवतः इन शिक्षा-ग्रन्थों का गूढ़ार्थ आगे चलकर कोई शोधकर प्रसिद्ध करे, पर केवल इसी आशा से हमें आज आनन्द व सन्तोष कैसे होगा? मांडूकीशिक्षा में किस प्रकार का विषय-वर्णन है, उसे देखोः—

षड्जे वदति मयूरो गावो रंभंति चर्षभे।
अजा वदति गांधारे क्रौंचनादस्तु मध्यमे॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पंचमे स्वरे।
अश्वस्तु धैवते प्राहुः कुञ्जरस्तु निषादवान्॥

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार सप्तक रचना की सामर्थ्य इस कलियुग में बहुत थोड़े कानों में होना संभव है। अब यह भी निश्चित नहीं किया जा सकता कि यह कर्ण-सामर्थ्य मंडूक में स्वतः थी अथवा यह कल्पना उसने परंपरा से ग्रहण कर लिख दी थी। अस्तु, आगे देखोः—

कंठादुत्तिष्ठते षड्ज ऋषभः शिरसस्तथा।
नासिकायास्तु गांधार उरसो मध्यमस्तथा॥
उरःशिरोभ्यां कंठाच्च पंचमः स्वर उच्यते।
धैवतश्च ललाटाग्रे निषादः सर्वरूपवान्॥
पद्मपत्रप्रभः षड्ज रिषभः शुकपिंजरः।
कनकाभस्तु गांधारो मध्यमः कुन्दसप्रभः॥
पचमस्तु भवेत्कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः।
निषादः सर्ववर्णाभ इत्येते स्वरवर्णकाः॥

प्रश्नः—यह विवरण हमारे लिये उपयोगी नहीं है। हमें तो स्वर श्रुति-स्थान की चर्चा चाहिये, या उन स्थानों को निश्चित करने का साधन चाहिये। यह जानवरों की सूची और स्वरों का रूप-रंग लेकर हम उनका क्या उपयोग करेंगे?

उत्तरः—परन्तु ऐसा साधन यदि ग्रंथों में है ही नहीं, तो मैं कहां से लाकर दूँ? इसलिये जो कुछ है, वही मैं बता रहा हूं। यह मैं जानता हूं कि तुम्हें इतना कहने पर संतोष नहीं होगा कि बकरा चिल्लाया और उससे उन विद्वानों ने गांधार खोज निकाला। और यह भी सच है कि ऐसा कहने वाले भी मिलते हैं, जो कहते हैं कि इन बातों में कोई गंभीर रहस्य है। हमारे ग्रन्थकर्ता पागल नहीं थे। परन्तु जब तक यह रहस्य इन कहने वालों द्वारा उद्घाटित नहीं होता, तब तक चाहे ग्रन्थकर्त्ताओं को पागल न कहा जावे, परन्तु ये ऐसा कहने वाले अवश्य सनकी कहे जा सकते हैं। इस समय शिक्षा का यह

तरीका प्रचलित नहीं है कि "वाच्यतां समयातीतः स्पष्टमग्रे भविष्यति"। यदि किसी शिक्षक ने स्पष्टता पूर्वक यह स्वीकार कर लिया कि अमुक बात मेरी समझ में नहीं आई, यद्यपि मैंने उसे समझने के लिये अमुक रीति से प्रयत्न किया था। तो उस गुरु के प्रति उसके शिष्य वर्तमान समय में कभी अनादर या तिरस्कार का भाव मन में न लायेंगे। शिष्यों को वह शिक्षक कभी नहीं रुचेगा जिसे आता तो कुछ नहीं, लेकिन ग्रंथ-रहस्य के नाम पर कोरी शाब्दिक प्रशंसा मात्र करता हो। अनेक बार यह पाया गया है कि ये ग्रंथ रहस्य कहने वाले संस्कृत भाषा ही नहीं जानते। ग्रंथ-कर्त्ता के विषय में मनमानी धारणा बनाये रखने से ही क्या होगा? और उसमें कुछ तथ्य नहीं, ऐसा कहने में लज्जा क्यों आनी चाहिये? मैं कहता हूं कि इस मांडूकीशिक्षा से स्वर-श्रुति के स्थान निश्चित करने का ज्ञान हम प्राप्त कर सकें, ऐसी कोई बात इस ग्रन्थ में बिलकुल नहीं है।

प्रश्नः—तो फिर, अब 'भरत' के ग्रन्थ की ओर बढ़िये। वहां पर कैसी स्थिति है?

उत्तरः—ठीक है, अब मैं भरत की रचना के विषय में चर्चा करता हूँ, परन्तु इसके पूर्व मैं एक बात अभी कह देना चाहता हूं। हमें आरम्भ से ही यह शर्त स्वीकार करके चलना है किः—भरत के श्रुति-स्वर-प्रकरण की स्पष्टता भरत के ग्रंथ से ही होनी चाहिये। हमारे कानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विधान पड़ चुके हैं, उन्हें न जानते हुए हमें पुराने ग्रंथों से विधान प्राप्त करना है। भरत की श्रुति संबंधी कल्पना क्या थी, इसे जानने के लिये उसके पीछे सैकड़ों वर्षों के रचे हुए ग्रन्थ व आजकल के पाश्चात्य लेखकों के मत, उपयोग में नहीं आ सकते। भरत ने संगीत के विषय में नाट्य-शास्त्र के २८ वें अध्याय में विवेचन किया हैः--

> द्वयधिष्ठानाः स्वरा वैणाः शारीराश्च प्रकीर्तिताः।
> उभाभ्यामपि वक्ष्यामि विधानं लक्षणान्वितम्॥
> स्वरा ग्रामौ मूर्छनाश्च नानास्थानानि वृत्तयः।
> स्वरसाधारणे वर्णा ह्यलंकाराः सधातवः॥
> श्रुतयो जातयश्चैव विधिस्वरसमाश्रयाः।
> दारव्यां समवायोऽयं वीणायां समुदाहृतः॥
> स्वरा ग्रामावलंकारा वर्णाः स्थानानि जातयः।
> साधारणे च शारीर्यां वीणायामेष संग्रहः॥

प्रश्नः—इन श्लोकों में शारीरवीणा व दारवीवीणा के विषय में क्या-क्या कहा है, वह वर्णनयोग्य ज्ञात होता है। श्रुति, जाति, आदि दारवीवीणा में दिखाई पड़ती हैं, यह कथन विशेष रूप से कहा हुआ प्रतीत होता है। क्या इससे यह नहीं सोचा जा सकता कि यह कार्य गले द्वारा करना सुसाध्य नहीं है।

उत्तरः—तुम्हारा इस तरफ ध्यान गया, यह बड़ी अच्छी बात है। यह प्रसिद्ध ही है कि भरत व शार्ङ्गदेव अपने रागों को प्राचीन प्रकार से ही वर्णित करते हैं। उनका यही तरीका कुछ पाश्चात्य वादकों जैसा मालूम पड़ता है। भिन्न—भिन्न स्वरों से स्वर—सप्तक बदल कर भिन्न—भिन्न रूपान्तर उत्पन्न करना,

गायकों की अपेक्षा वादकों द्वारा अधिक संभव है। इस समय जैसे सभी राग षड्ज से आरंभ होने वाले सप्तक से बजाये जाते हैं, तथा वीणा के तार एक नियमित रीति से मिलाये जाते हैं, सम्भवतः ऐसी रीति उस समय नहीं थी। परन्तु इस विषय में मुझे आगे चलकर और भी कुछ बोलने की आवश्यकता पड़ेगी। हमारे ग्रंथकार बेचारे भोलेपन से यह स्वीकार कर लेते हैं कि श्रुति उत्पन्न करने की स्थिति कठिन है। यद्यपि ऊपर मैंने उनके लिये 'बेचारे' विशेषण लगाया है, परन्तु उनके प्रति मेरे हृदय में पूर्ण आदर भाव है, यह असत्य नहीं कह रहा हूं। पं० कल्लिनाथ कहते हैं कि—"शरीरे उक्तसंख्याकनाडीसंनिवेशस्य प्रतिस्थानं तत्तच्छ्रुत्या नादस्य परोक्षत्वात्तत्सद्भावे संदेहः स्यादिति तन्निरासार्थं प्रत्यक्षतः संवादयितुं प्रतिज्ञाय निर्दिशति।" सिंहभूपाल का कथन है:—तदुक्तं सङ्गीतसमयसारे ते तु द्वाविंशतिर्नादा न कंठेन परिस्फुटाः। शक्या दर्शयितुं तस्माद्वीणायां तन्निदर्शनम्॥"

मैं समझता हूं कि अभी भी २२ श्रुतियों का एक के पश्चात् एक नियत स्थानों पर आगे पीछे के स्वर उच्चारण न करते हुए, आरोह अवरोह करना साधारणतः लोग कठिन ही समझते हैं। तो भी यह सुना जाता है कि वर्तमान समय के कुछ ख्यातिप्राप्त गायक व वादक यह काम सरलतापूर्वक कर जाते हैं। आगे चलकर भरत क्या कहता है, सुनो—

षड्जश्चतुःश्रुतिर्ज्ञेय ऋषभस्त्रिश्रुतिस्तथा।
द्विश्रुतिश्चैव गांधारो मध्यमश्च चतुःश्रुतिः॥
चतुःश्रुतिः पंचमः स्याद्धैवतस्त्रिश्रुतिस्तथा।
निषादो द्विश्रुतिश्चैव षड्जग्रामे भवन्ति हि॥
चतुःश्रुतिस्तु विज्ञेयो मध्यमः पंचमः पुनः।
त्रिश्रुतिर्धैवतस्तु स्याच्चतुःश्रुतिक एव च॥
निषादषड्जौ विज्ञेयौ द्विचतुःश्रुतिसंभवौ।
ऋषभस्त्रिश्रुतिश्च स्याद्गांधारो द्विश्रुतिस्तथा॥

इस प्रकार से इस विद्वान ने अपने षड्ज व मध्यम ग्राम का स्वरांतर बताया है। भरत के पश्चात् होने वाले प्रत्येक ग्रंथाकार ने यह स्वरान्तर वैसा ही वर्णित किया है। यह भी कहा जा सकता है कि यह कल्पना हमारे सम्पूर्ण देश में थी, यह स्वरान्तर अंकों में इस प्रकार लिखा जावेगा:—

षड्जग्राम—४, ३, २, ४, ४, ३, २ मध्यम ग्राम—४, ३, ४, २, ४, ३, २ इन अंकों पर प्रथम दृष्टि डालने पर एकदम हमें यह ध्यान आ जाता है कि यह अनुक्रम हमारे बिलावल व यमन थाट का है। परन्तु हम यह मानकर नहीं चलेंगे कि यह ग्रंथकर्त्ता का शुद्ध थाट था।

प्रश्न—भला ऐसा क्यों?

उत्तर—वही बताता हूँ। शार्ङ्गदेव व उसके पश्चात् के सभी विद्वानों ने अपने शुद्ध थाट का वर्णन स्पष्ट रूप से कर दिखाया है।

प्रश्न—तब क्या आपका यह कहना है कि हमें उन विद्वानों के वर्णन के अनुसार ही शुद्ध थाट की रचना करनी पड़ेगी ?

उत्तर—वह तो स्पष्ट ही है। तो भी देखो, हम यह समझकर कि प्राचीन लेखकों की श्रुति-कल्पना हमारे जैसी ही थी, बिना समझे-बूझे इसी मान्यता पर थाट तक रचने लगे। ठीक है न ? हमें प्रथम तो भरत से ही यह प्रश्न पूछना चाहिये था कि श्रुति का क्या अर्थ है ? परन्तु अभी इस प्रश्न को रहने दो। हमारे संस्कृत ग्रन्थकर्ताओं ने श्रुति का अर्थ स्वरान्तर माना है या नियमित परदे की आवाज़ मात्र ही माना है, इसका स्पष्टीकरण पूर्णरूप से नहीं मिलता। भरत के चार, तीन, दो श्रुतियों का अन्तर बताकर आगे कहीं-कहीं अन्य ग्रंथकर्त्ताओं जैसा ही किया है। प्रत्येक ग्रंथकार का कथन है कि प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर शुद्ध रूप प्राप्त करता है। इस दृष्टि से मुख्य सप्तक किस प्रकार का होगा, यह तुम्हारे ध्यान में शायद आ जावेगा। जरा ठीक तरह से सोच कर देखो।

प्रश्न—अब हम इसी पर विचार कर रहे हैं। हाथ में सितार लेकर यदि षड्ज, चौथी श्रुति पर, रिषभ का परदा सातवीं श्रुति पर, गांधार नवीं श्रुति पर, मध्यम तेरहवीं श्रुति पर यदि हम मानते गये तो शुद्ध थाट बिलावल रह नहीं पाता। बिलावल थाट का सूक्ष्म स्वरान्तर ग – म तथा नि – सां होता है और यहां पर यह रे – ग तथा ध – नी में हो जाता है। पर क्या कोई यहां यह आक्षेप तो नहीं करेगा कि श्रुतियां समान मान ली गई हैं ?

उत्तर—आक्षेप की बात रहने दो, परन्तु उक्त विचारसारणी के स्थूल मान से कौनसा शुद्ध थाट आता है ?

प्रश्न—वह तो काफी थाट जैसा दिखाई देता है। क्योंकि ग तथा नि ये दोनों स्वर अर्धान्तर दिखाई पड़ते हैं। चार श्रुति के अन्तर की अपेक्षा दो श्रुतियों का अन्तर आधा होवेगा ही। और सितार पर काफी थाट तो वैसा ही दिखाई पड़ता है।

उत्तर—तुमने अच्छा तर्क किया। बिलकुल इसी प्रकार का तर्क अपने कुछ संस्कृत ग्रन्थकारों ने किया व प्राचीन शुद्ध थाट को काफी थाट जैसा मान लिया। काफी थाट जैसा कहने का इतना ही मतलब है कि काफी नाम आधुनिक है। आगे मैं तुम्हें बताने वाला हूँ कि आजकल श्रुति स्वर-चर्चा करने वाले हमारे विद्वान भी इसी मत को मानने वाले पाये जाते हैं। दक्षिण में शुद्ध थाट काफी नहीं है, वहां पर उसे मुखारी या कनकांगी कहते हैं।

प्रश्न—जरा ठहरिये ! मैं बीच में ही एक प्रश्न कर रहा हूँ। भरत ने तो इतना ही कहा है कि प्रत्येक स्वर की अमुक-अमुक श्रुतियां होती हैं। परन्तु यह कहां कहा है कि प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर जाकर शुद्ध अवस्था प्राप्त करता है।

उत्तर—हां, यह प्रश्न तुम्हारे जैसों के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मैं समझता हूं कि इस प्रश्न का उत्तर भरत के विकृत स्वर वर्णन वाले प्रकरण में तुम्हें प्राप्त हो जावेगा। अन्तर गांधार और काकली निषाद, ये दोनों स्वर नाम तो तुम्हारे पहचान के ही हैं न ?

प्रश्न—जी हां, ये स्वर हमारी हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के तीव्र ग तथा तीव्र नी के रूप में हमारे ध्यान में जमे हुए हैं।

उत्तर—हो सकते हैं। भरत व शार्ङ्गदेव के विकृत स्वर कुछ भिन्न नियम पर बने हैं, ऐसा इनके ग्रन्थों से पाठकों को दिखाई देता है। कोई यह भी कह सकता है कि दुर्भाग्यवश उन्होंने अपने ग्रन्थों में स्पष्टतापूर्वक अपना विवरण नहीं रखा, अतः उनके विवरणों का मनचाहा अर्थ अपनी-अपनी सुविधा से आगे के पाठकों ने किया। हमने इस समय ग्रन्थ सङ्गीत की चर्चा अपना विषय नहीं बनाया है, अतः हम अभी इस तर्क पर विचार नहीं करेंगे। हमारे अन्य ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने अन्तर व काकली स्वरों का स्थान क्रमशः शुद्ध ग व शुद्ध म तथा शुद्ध नी व शुद्ध सा इन स्वरों का अन्तर माना है। वे कहते हैं कि शुद्ध गन्धार जब मध्यम स्वर की दो श्रुतियां लेता है, तब उसकी संज्ञा अन्तर ग होती है। इस प्रकार शुद्ध नी जब आगे षड्ज स्वर की दो श्रुतियां ग्रहण करता है, तब यह काकली कहलाता है। अब इस वर्णन से भरत का वर्णन मिला कर देखो। एक स्वर जब दूसरे स्वर से श्रुति ग्रहण करता है तब 'साधरण' कहलाता है, यह एक पारिभाषिक शब्द समझना चाहिये। भरत कहता है कि "द्वे साधारणे स्वरसाधारणं जातिसाधारणं च, स्वरसाधारणं काकल्यंतरौ स्वरौ, तत्र द्विश्रुतिप्रकर्षणान्निषादवान् काकलीसंज्ञो निषादः, न षड्जः। एवं गांधारोऽप्यंतरस्वरसंज्ञो गांधारो न मध्यमः।"

प्रश्न—यह ध्यान में आगया। स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर शुद्ध रूप पाते हैं। यही मत भरत का भी दिखाई पड़ता है। भरत ने और कौनसे विकृत स्वर बताये हैं और उनके स्थान का वर्णन किस प्रकार किया है?

उत्तर—उसने अधिक विकृत स्वर बताये ही नहीं।

प्रश्न—यह क्या बात है गुरूजी? उसका शुद्ध थाट तो काफी है न? इस थाट में अन्तर व काकली स्वर मिलाने से बिलावल व खमाज थाट तो उत्पन्न हो जावेंगे, परन्तु अन्य राग इस रीति से कैसे उत्पन्न होंगे?

उत्तर—तुम भूल गये। भरत के ग्रन्थ में राग नहीं हैं, यह कहा जाता है न? हमारे विद्वान कहते हैं कि उसके समय में 'जाति' संगीत गाया जाता था। तो भी तुम्हारा प्रश्न रह जाता है। तुम कहोगे कि उस जाति में अन्य विकृत स्वर कैसे मिलते हैं? कोई-कोई कहेंगे कि वह वैसे स्वर गाते ही नहीं थे? ऐसा कहने वाले भी मुझे मिल चुके हैं। परन्तु यह सहज ही समझ में आ सकता है कि जिस ध्येय से भरत के ग्रन्थ में मूर्छना आदि प्रपंच हैं, उसका मतलब अन्य विकृत स्वरों का गाया जाना है। मूर्छना के प्रयोग से स्वरांतरों की उलट-पुलट अपने आप ही हो जाती है, और इसके होने पर नये-नये थाट उत्पन्न होते ही हैं। लक्ष्य संगीत में इसी प्रकार सुझाया गया है:—

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्छनेत्युच्यते लक्ष्ये सैव स्याद्रागजन्मभूः॥
प्राक्कालीनेषु ग्रंथेषु मूर्छनाः सप्त वर्णिताः।
प्रतिग्रामसमासक्ता याभी रागाः समुत्थिताः॥
भिन्नस्वरं समारभ्य सप्तस्वरप्रकल्पनात्।
नूनं परिस्फुटा तत्र स्वरान्तरप्रभिन्नता॥

मैं समझता हूं कि यह सिद्धांत समझने में तुम्हें कोई विशेष कठिनाई न होगी। भरत के स्वरांतर जब तुम्हें बताये जायें और उसके भिन्न-भिन्न अङ्कों से मूल क्रम सुरक्षित रखते हुए तुम यदि अपने सप्तक स्थिर करो, तो भिन्न-भिन्न थाट तुम्हारी दृष्टि में आजायेंगे। ठीक है न? कोई सुविधा व सरलता से बनेगा तथा किसी-किसी में थोड़े सुधार की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा करने से मूल स्वरांतर को तोड़ने-मोड़ने की शायद आवश्यकता पड़ जावे और ऐसा करना ही शुद्ध स्वरों का स्थानभ्रष्ट होना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनमें विकृति उत्पन्न होना है। 'ग्राम' की मूल श्रुति व्यवस्था मात्र करदी गई है, जो तुम देख ही चुके हो। मुझे एक विद्वान का कथन स्मरण है कि जहां तक ग्राम के स्वरांतरों की उलट-पुलट होना सम्भव है, वहां तक वे सब ग्राम थाट ही बनेंगे और उनसे उत्पन्न होने वाले राग नियमाश्रित ही कहे जावेंगे।

परन्तु मित्रो! हमें अन्य चर्चा में अब नहीं जाना चाहिये, आगे और भी इसके सम्बन्ध में चर्चा करने का अवसर आयेगा। तुम्हारा मुख्य विषय तो श्रुति-स्वर है न? प्राचीन विद्वानों की श्रुति सम्बन्धी क्या कल्पना है, यही हमें देखना है। मालूम होता है, उसे हम भूल गये।

प्रश्न—जी हां, यह ठीक है, मगर एक प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह पूछना चाहता हूं। वीणा पर या सितार पर षड्ज से लेकर ऊपरी षड्ज तक के अन्तर के यदि हम समान बाईस भाग करलें तथा उतने परदे बांध दें तो ४, ७, ६, १३, १७, २० और २२ इन परदों पर हमारे शुद्ध स्वर बजने लगेंगे क्या?

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न है तो मजेदार! इसका उत्तर हमारे ग्रंथकार तो स्पष्टरूप से नहीं देते, परन्तु अपने विद्वान कहते हैं कि इस रीति से तुम्हें शुद्ध स्वर-सप्तक नहीं मिलेगा। उनका कथन तुम्हें भी कुछ मात्रा में उचित जान पड़ेगा। अपना बिलावल थाट सितार पर देखो। मध्य 'सा' और तार 'सा' इन दोनों के ठीक मध्य भाग में शुद्ध 'म' है। चाहो तो नापकर देखलो। और यह मध्यम, मध्य षड्ज से नौ श्रुति पर व तार षड्ज से तेरह श्रुति पर है। ठीक है न?

प्रश्न—बिल्कुल ठीक है। यह हमारे ध्यान में पहिले ही आना चाहिये था। वैसे ही उत्तरार्द्ध के परदे एक दूसरे के पास-पास आते हैं, यह तो बिल्कुल आंखों से देखी जाने योग्य बात है। यह देखते हुए हम यह तो स्वीकार करेंगे कि तार की लम्बाई की मदद से यदि कोई श्रुति सप्तक कायम करना चाहे तो तार के समान बाईस भाग करने से यह कार्य साध्य नहीं होगा। तार की लंबाई अलग-अलग ही रखनी होगी। परन्तु यदि ऐसा ही किया जावे तो फिर प्रत्येक श्रुति हमें किस आधार से कायम करनी चाहिये, यह जानकारी ग्रंथों में किस प्रकार बताई गई है, यह देखना आवश्यक है। जैसे कि षड्ज की अगली प्रथम श्रुति ही हमें कायम करनी है तो हमें उस श्रुति का परदा कहां बांधना चाहिये?

उत्तर—यहीं तो आकर सभी चुप हो जाते हैं। श्रुति अर्थात् तार की लम्बाई का कोई नियत प्रमाण ग्रन्थकार मानते हैं क्या? इन प्रश्नों पर अब भी हम मतभेद देखते हैं। हमारे विद्वानों से यदि किसी ने पूछा कि प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुति का नाप प्रमाण उनकी भाषा से ही सिद्ध करिये, तो वे बहकने लगते हैं। हमारे

विद्वान यह कहना पसन्द नहीं करते कि प्राचीन लेखकों को इस प्रकार के नाप की जानकारी नहीं थी या श्रुतियां अनियमित हैं, क्योंकि उन्हें तो अपनी श्रुतियां ग्रंथों से ही उत्पन्न करनी हैं। इन विद्वानों ने श्रुति के सम्बन्ध में पाश्चात्य ग्रन्थों व विद्वानों की सहायता से बहुत पहेलियां बुझाई हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा, परन्तु.......

प्रश्न—परन्तु इन श्रुतियों को वे योग्य रीति से ग्रन्थकारों के पल्ले बांधते आये हैं ? ऐसी ही मानना होगा; किन्तु यदि कल्पनाएं ठीक व्यवस्थित हों और शास्त्र में बाधा न आती हो तो उन्हें स्वीकार करने में आपत्ति ही क्या है ?

उत्तर—परन्तु उन्हें ठीक तरह से व्यवस्थित होना चाहिये न ? अभी तो हमारे विद्वानों में ही एक मत दिखाई नहीं देता। कोई लेखक अकस्मात् कहीं से आकर उपस्थित हो जाता है, और वह पिछले लेखकों की सूची व कभी-कभी नाम गांव भी देता है और उनकी समझ को गलत ठहराकर अपने सिद्धांतों को निर्दोष बताते हुए जनता के सम्मुख रखता है। कुछ दिन पश्चात् दूसरा कोई सैद्धान्तिक रंगभूमि पर आकर उसे गलत सिद्ध करते हुए आगे बढ़ता है। इसमें आश्चर्य करने योग्य कोई बात नहीं है। सबसे मजेदार बात यह है कि प्रत्येक का आधार वे ही संस्कृत ग्रन्थ हैं।

अंगुल भर ग्रंथोक्ति और हाथ भर स्वतः की कल्पना, इस प्रकार जहां भी हुई वहां तो बड़ी ही परिहासजनक बात हुई है। पाठकों का विषय पर इतना अधिकार नहीं होता, अतः प्रायः वे ऐसे स्थलों पर चुप होकर बैठ जाते हैं। मेरी भी यही समझ में आता है कि विद्वानों की विचार प्रणाली में पाश्चात्य ग्रन्थों की गंध आती है, फिर भी ऐसी चर्चा से आगे चलकर समाज का हित ही होगा। 'वादे वादे जायते तत्व बोधः' ऐसा कहा ही जाता है।

प्रश्न—परन्तु यह सब तथ्य उन विद्वानों की दृष्टि में आता क्यों नहीं ?

उत्तर—यह मैं कैसे बताऊँ ? यदि तर्क से अनुमान लगाऊँ तो कहूँगा कि किसी ने रागों की तरफ दृष्टि नहीं डाली, तो किसी को ग्रंथ ही समझ में नहीं आये, किसी के द्वारा महत्वपूर्ण दृष्टि भ्रम हो गया है, तो किसी-किसी को यह साहस भी है कि वे अपनी विद्वत्ता व अधिकार से नये गायक-वादकों का निर्माण कर, प्रचलित लोकप्रिय किन्तु गलत राग-रूपों को बदल देंगे। मुझे स्मरण है कि कुछ दिन पहिले मैंने वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रागों में से भिन्न-भिन्न श्रुति लगाने का वर्णन देखा ही था। मैं समझता हूँ कि यदि विद्वान संगीतज्ञ व गायक में "त्वयार्धमयार्ध" का मामला तय हो जावे, तो प्रयत्न कठिन भी नहीं हैं। ऐसे प्रयत्न वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने से दो लाभ होते हैं। यदि वे रूप समाज को पसन्द न आये तो "गाजर का शंख" (यदि गाजर का शंख बजा, तो ठीक ही है नहीं तो खाने में तो आयेगा ही) के न्याय से वापिस भी लिये जा सकते हैं। मेरा तो यह मत है कि प्रत्येक लेखक को चाहिये कि वह प्रथम, प्राचीन ग्रन्थों की उक्तियों का सरल अर्थ, खुले हृदय से समाज के सम्मुख रखदे, व उसमें कहां-कहां पर असंगत ज्ञात होती है, यह भी लिख दे। इसके पश्चात् अपने स्वतंत्र तर्कों को बतावे। अस्तु, श्रुतियों के नाप प्राचीन संगीतज्ञ किस प्रकार निकालते थे, इसी पर से यह सारी चर्चा निकली थी। है न ?

प्रश्न—आपके कथन से हमें थोड़ा सा विस्मय ही हो रहा है। खैर, अब भरत को ही लीजिए। इन्होंने श्रुति का कुछ न कुछ नाप (प्रमाण) निश्चित किया ही होगा ?

उत्तर—हां, हां, वह तो उसने अपने तरीके से किया ही है। वह कहता है कि - "मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमःकार्यः पंचमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदंतरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः" कुछ समझ में आया ?

प्रश्न—हम नहीं समझ पाये। कुछ और स्पष्ट कीजिये तो अच्छा होगा ?

उत्तरः—भरत कहता है कि षड़ज ग्राम में जो पंचम है, उससे एक श्रुति नीचे उतरना ही मध्यम ग्राम होता है।

प्रश्नः—वह तो समझ गये, परन्तु एक श्रुति अर्थात् ?

उत्तरः—एक श्रुति का अर्थ है षड़ज व पंचम ग्राम का अन्तर। तुम्हें यह "Begging the question" जैसा रूप समझ पड़ेगा। अधिक स्पष्टता के लिए उसने दो वीणाओं के उदाहरण भी दिये हैं। जैसे—

"द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्डमूर्छने षड़जग्रामाश्रिते कार्ये। तयोरेकतरस्यां मध्यमग्रामकीं कृत्वा पंचमस्यापकर्षे श्रुतिं तामेव पंचमवशात् षड़जग्रामिकीं कुर्यात् इत्यादि ॥" मैं तुम्हारी उलझन समझ रहा हूं। अब श्रुति प्रथम या स्वर, यह प्रश्न तुम्हें उलझन में डाल रहा है। ठीक है न ? "सोना कहां, जहाँ भोजन किया, और भोजन कहां करना, जहां सोये थे" ऐसा ही कुछ-कुछ यहां समझ में आरहा होगा।

प्रश्नः—जी हां, कुछ ऐसी ही बात है। दो ग्रामों का अन्तर श्रुति कह कर बताना और एक श्रुति का क्या मतलब है, तो उत्तर मिलता है दो ग्रामों का अन्तर। यह कैसा स्पष्टीकरण गुरूजी ?

उत्तरः—यह उलझन है ही। दोनों पंचम पाठकों को ज्ञात हैं। ऐसा मानकर ही संभवतः भरत ने यह विवरण लिखा है। परन्तु सिंह भूपाल ने मतङ्ग का मत किस प्रकार कहा है, उसे भी देखो—"श्रुतेःप्रमाणमुक्तं मतंगेन। ननु श्रुतेः किं मानं ? उच्यते। पंचमस्तावद्ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षणापकर्षणाभ्यां मार्दवादायततत्वाद्वा यदंतरं तत्प्रमाणश्रुतिरिति।" यह प्रश्न भी उपयुक्त है कि आज ग्रामों की उलझन हमारे सङ्गीत में नहीं है, तब दो पंचमों का अन्तर अथवा उसका स्वरूप कैसा होता है, यह कैसे समझा जावे ? परम्परा से गाये जाने वाले स्वर स्वीकार कर उनके बीच-बीच में श्रुति स्थापन का कार्य अलग है, और प्रत्येक नाद को नियमित प्रमाण से स्थापित कर, उन नादों को श्रुति मानकर उन पर ग्राम रचना अलग बात है। इन दोनों पक्षों में से प्राचीन विद्वानों का कौनसा पक्ष रहा है ? अधिक स्वाभाविक कौनसा रूप है ? ये प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हैं। कोई यह भी कह सकता है कि श्रुति माप के मूल में संदिग्धता होने से ही हमारे विद्वान आजकल अपनी-अपनी कल्पना भिड़ा रहे हैं।

प्रश्न—यह तो वर्तमान विद्वानों की बात हुई, किन्तु भरत के पश्चात् के ग्रंथकर्त्ताओं ने भी तो अपनी-अपनी कुछ श्रुति सम्बन्धी कल्पना लिखी होगी ?

उत्तर—वह सब हम धीरे-धीरे देखने ही वाले हैं। हमें प्रथम न्याय दृष्टि से देखना उचित है। शास्त्र चर्चा का दुराग्रह उपयोगी होगा। इस समय हम भरत के ग्रन्थ पर विचार कर रहे हैं। "मेजरटोन, मायनरटोन और सेमिनोट" व इनके आंदोलन

संबंधी अपने ज्ञान को भरत के ग्रन्थ में भरने का प्रयत्न करना, अर्थात् भरत व हमारे स्वरों की एकरूपता सिद्ध करता है। यह एकरूपता स्वीकार करने वाले बहुत थोड़े व्यक्ति मिलेंगे। अभी तो हमें अपना इस सम्बन्ध का ज्ञान एक ओर रख देना चाहिये। तब फिर भरत की किस-किस लम्बाई को ग्रहण करना होगा? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जावेगा कि इसका उत्तर संतोषजनक रूप से नहीं दिया जा सकता।

प्राचीन वीणा-वादकों के दोनों ग्रामों के पंचम की जानकारी आगे के लोगों के लिये कितनी उपयोगी होगी? आगे चलकर ग्रामों का महत्व पिछड़ गया था व ग्राम, मूर्छना, जाति, तथा इनके उपयोग में उत्पन्न षड्ज सप्तक की भिन्न-भिन्न विकृतियों की सहायता से संपूर्ण राग उत्पन्न होने लगे थे। इसी प्रकार आज भी हमारी स्थिति है। अपने गायकों को आज मूर्छना, जाति की जानकारी हम देवें तो क्या यह उसी प्रकार निरुपयोगी नहीं है? पहिले सीढ़ी दर सीढ़ी परम्परा से बाईस नाद कायम किये गये, यही हमारे शास्त्रकारों का सदैव कथन रहा है। इस कथन से पाठकों के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि यह परम्परा किस नाप या प्रमाण से स्थिर की गई थी। यदि ऐसा मानलें कि "मेजरटोन" व "मायनरटोन" की यह पूर्वकालीन स्थिति है, और यह सब ग्रन्थकारों का दंभ मात्र है, वस्तुतः प्रथम स्वर स्थिर किये गये हैं व बाद में सूक्ष्म भागों का विचार हुआ है। तो सूक्ष्म भागों के कायम करने के विषय में प्रामाणिक मतभेद होना स्वाभाविक ही है। एक विद्वान ने मुझे यह भी बताया था कि श्रुति का मान निश्चित न होते देखकर ही भिन्न-भिन्न शुद्धस्वर सप्तक मान लिये गये हैं। यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि दक्षिण की ओर शुद्ध रे ध स्वरों को कोमल समझा जाता है। हम उन विद्वानों पर हँसते हैं और वे हम लोगों पर हँसते हैं।

प्रश्न—यहां एक प्रश्न पूछने की इच्छा उत्पन्न हो रही है। भरत का शास्त्रग्रंथ, दक्षिण के विद्वान का है या उत्तर के पंडित का?

उत्तर—यह प्रश्न वास्तव में जरा कठिन है। इसे मैंने दक्षिण के पंडितों से भी पूछा था।

प्रश्न—उन्होंने क्या उत्तर दिया?

उत्तर—उन्होंने क्या कहा, यह संक्षेप में सुना देता हूं, सुनोः—

"अजी! आजकल हम सुन रहे हैं कि आपके विद्वानों का मत है कि—भरत, शार्ङ्गदेव सिर्फ उत्तर के ग्रन्थकार थे, और हमारे दक्षिण के ग्रन्थकारों ने उनसे जो संबंध जोड़ रखा है, वह बिलकुल निराधार है। इस मत पर हम लोग भी आजकल विचार करने लगे हैं। तुम्हारे विद्वान कहते हैं कि दक्षिण की ओर भरत, शार्ङ्गदेव की पद्धति नहीं है, क्योंकि दक्षिण के गायक ग्राम मूर्च्छना, जाति से अपने राग उत्पन्न नहीं करते। परन्तु वह पद्धति तुम्हारे उत्तर की ओर भी है क्या? तुम्हारे प्रसिद्ध गायक पैसा पैदा करने के लिये इधर आते रहते हैं, उन्हें हम देखते हैं कि वे उनके ग्राम, मूर्च्छना, जाति कैसे कहते हैं, परन्तु वे स्वयं ही यह बात नहीं जानते। गायकों की बात जाने दो, परन्तु क्या तुम्हारे किसी ग्रन्थकर्त्ता ने शार्ङ्गदेव की पद्धति का अनुकरण किया है? तुम्हारी ओर तीव्र

कोमल आदि स्वर-संज्ञा प्रयुक्त होती है, और वह अहोबल आदि के द्वारा उपयोग में लाई गई है। थोड़ी देर के लिये इन्हें ही अपने ग्रंथकार मानना तुम्हें शोभा देगा। परन्तु क्या अहोबल ने भरत, शार्ङ्गदेव की ग्राम, मूर्च्छना पद्धति का वर्णन किया है? उसने यह वर्णन क्यों नहीं किया? उसे रत्नाकर की जानकारी थी क्या? यदि थी, तो उसने हमारे ग्रंथों का आधार क्यों ग्रहण किया है? अच्छा, यदि भरत, शार्ङ्गदेव तुम्हारे थे तो तुम्हारी ओर वे सारी परिभाषाऐं निराली क्यों हैं? साधारण, कैशिक, अन्तर, काकली, आदि नाम हिन्दुस्थानी गायक बिल्कुल नहीं जानते। अब यदि किसी नवीन विद्वान की सहायता से कोई एक-दो गायक स्वर-श्रुतियों की चर्चा करने लगे हों तो आश्चर्य की बात नहीं, परन्तु दिल्ली, लखनऊ, ग्वालियर, जयपुर, आदि स्थानों के प्रसिद्ध गायकों को श्रुतियों के नाम भी ज्ञात नहीं हैं, ऐसा क्यों है? रत्नाकर का अर्थ जैसा तुम्हारी ओर उपयोग में लिया जाता है, वैसे ही यहां भी प्रयुक्त होता है। संस्कृत में हमारे यहां भी बड़े-बड़े पंडित हो गये हैं। हमारे यहां आज भी मूर्छना शब्द, आरोह-अवरोह के अर्थ में प्रचलित है। रत्नाकर में वर्णित प्राचीन गमक, अलंकार, ताल, राग हमारी ओर अभी भी हैं। मूर्छना व जाति से उत्पन्न होने वाले मेल (थाट) हमारे ग्रंथों में भी तुम्हारे यहां जैसे ही मिलते हैं। तुम्हारे अहोबल आदि के अनेक राग हमारे ग्रंथों के रागों से अच्छी प्रकार से मिलते हैं। रत्नाकर की जिस टीका से तुम्हें ज्ञान प्राप्त होता है, उसका लेखक कल्लिनाथ हमारा ही था। रत्नाकर के कुछ ग्राम राग व अनेक रागग, उपांग, हमारे यहां आज भी हैं, जो तुम्हारे गायकों ने सुने भी न होंगे। रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग, ये चार वर्ग आज भी हमारी ओर प्रचलित हैं। हमारे यहां संगीत शास्त्र को भरत शास्त्र ही कहते हैं। रत्नाकर के मूर्छना व जाति को स्पष्ट करने वाले थाट तुमने हमारे ग्रंथों से ही ले लिये हैं क्योंकि खास हिन्दुस्थानी कहा जाने वाला कौनसा शास्त्र ग्रंथ तुम्हारे पास है? नारदीशिक्षा में ग्रामराग, ग्राम, मूर्छना, अन्तर, काकली, आदि नाम दिखाई पड़ते हैं, इस पर भी तुम्हारे सारे देश में संगीत सम्बन्धी मूल पारिभाषिक शब्द एक भी नहीं है, इसका क्या कारण है? भरत, शार्ङ्गदेव आदि विद्वानों ने अपने विकृत स्वरों का उपयोग कैसा किया है, यह तुम्हारे किस ग्रंथ में बताया गया है? रत्नाकर के रागों के थाट तुम्हारे कितने गायकों को ग्रहीत हुए हैं?"

प्रश्न:—उनके इन प्रश्नों का आपने क्या उत्तर दिया?

उत्तर:—मैंने कहा कि मैंने अभी भरत व शार्ङ्गदेव के संगीत का विषय अपने हाथों में नहीं लिया है, अतः आप लोगों के संदेह की निवृत्ति मुझसे कैसी हो सकेगी? उन्होंने मुझसे और भी कुछ मजेदार प्रश्न किए थे, जो आगे बताऊँगा। यह कैसे कहा जा सकता है कि उनका कथन निरर्थक था? मैं उन्हें यह उत्तर भी कैसे दे सकता था कि हमारे उत्तर के सम्पूर्ण ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं? परन्तु मित्रो! हम व्यर्थ ही विषयांतर की ओर जा रहे हैं। मैं तो यही कहूँगा कि भरत नाट्यशास्त्र में श्रुति-नाप के सम्बन्ध में तुम्हें संतोषजनक सामग्री नहीं मिलेगी। यह भी कहना पड़ेगा कि अभी तक उभय-पक्ष के प्रमाणों की खोज तपास कर किसी ने भी भरत व शार्ङ्गदेव के शुद्ध स्वर थाट का निश्चय नहीं किया है। अतः कुछ अन्शों में उनका कथन सारगर्भित भी है।

प्रश्न:—परन्तु हमारे विद्वान तो वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में दावा करते हैं कि उन ग्रन्थों के सम्पूर्ण शुद्ध-विकृत स्वर व श्रुतियां छोड़ दी गई हैं।

उत्तर:—यह विवेचन भी हम आगे चलकर करेंगे। सामान्यत: यह भी मेरी समझ में आता है कि इस प्रकार के ग्रन्थ व लेख पाश्चात्य नादशास्त्र की मान्यता पर अधिक चलते हैं। ऐसा (New wine and old bottle) प्रकार सदैव सफल नहीं हो सकता। ग्रन्थकारों ने बाईस श्रुति व ४, ३, २, आदि की व्यवस्था दे दी, इससे हमारा काम पूरा हुआ, यह कैसे कहा जा सकता है ? हम अभी भी देखते हैं कि यह व्यवस्था सम्पूर्ण ग्रन्थों में होने पर भी मतभेदयुक्त है । हमें प्रत्येक ग्रन्थकार से सङ्गीतोपयोगी ध्वनि का निर्णय लेना है, व उसके अन्वेषण का साधन भी उसी के ग्रंथ से निकालना है।

प्रश्न:—जी हां, यह तो ठीक है ही, और इसीलिए हम इस दृष्टि से एक-एक ग्रंथ जांच-जांच कर देख रहे हैं। अभी तक जिन दो-चार ग्रंथों का विवरण आपने सुनाया है, उनमें तो उत्तम रूप से स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं हुआ । यह तो हम देखते ही हैं कि ४, ३, २ आदि व्यवस्था हमारी आज की ही है। परन्तु हमारा शुद्ध सप्तक रत्नाकर का नहीं है । रत्नाकर के राग हमारे उत्तरीय विद्वानों को कितनी मात्रा में ग्रहण होंगे, यह कौन जानता है। नहीं तो, एक नियम और उसमें दस अपवाद जैसी बात होगी।

उत्तर:—हां, तुम्हारा यह कथन ठीक है। मूर्छना व विकृत की सहायता से अपने प्रचलित राग उत्पन्न कर दिखाने के सिवाय लोगों का विश्वास कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? जबकि आज सम्पूर्ण देश में नामों की भिन्नता होने पर भी मुख्य बारह स्वर एक से प्रचलित हैं, तब श्रुतियों के स्थान के सम्बन्ध में मनचाही धाक-धमक नहीं चल सकेगी। हमारे कथन की पुष्टि में लोग ग्रन्थ-वाक्यों का प्रमाण चाहेंगे, और वह देने की तैयारी हम में उचित मात्रा में होना आवश्यक है । श्रुतियों को तोड़ने-मोड़ने से थाटों के स्वर आगे-पीछे करने पड़ेंगे तथा प्रसिद्ध व बड़े-बड़े गायकों के गाने दोषपूर्ण ठहराने का अवसर आजावेगा। ऐसा होने पर धींगा-धींगी का प्रसंग आ जावेगा कि "या तो मेरा कहना मानो या ग़लत सिद्ध होने को तैयार हो जाओ" । मेरी समझ से ऐसा होना किसी के लिये लाभकारक नहीं हो सकता। हमें इस दशा में बढ़ने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम समाज की रुचि व प्रसिद्ध तथा प्राचीन गायकों के मत को तिरस्कृत करें।

प्रश्न—अब हमें रत्नाकर की विचारधारा बतलाइये ?

उत्तर—हां, अब हम उसी पर विचार करेंगे। यह तो तुम्हारे ध्यान में आ चुका होगा व मेरा भी ऐसा मत नहीं है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने दम्भपूर्वक चाहे जो कुछ ग़लत सलत लिख दिया है। उनके समय में भी बहुत सी बातें समाज में बिलकुल साधारण थीं। मुख्य स्वर तो परम्परा से ही लोक प्रसिद्ध रहे हैं, परन्तु श्रुतियों की स्वतन्त्र कल्पना सही है या नहीं, यह प्रश्न अवश्य पैदा होता है । मैं अब तुम्हें शार्ङ्गदेव की श्रुति-व्यवस्था सुनाता हूँ। यह समझ में नहीं आता कि शार्ङ्गदेव की स्पष्ट व्याख्या का समर्थन हमारे पण्डितों द्वारा क्यों नहीं किया जाता ? हम शार्ङ्गदेव की भाषा में ही यह देखेंगे कि उसने श्रुतियां कैसी मानी हैं व उनसे शुद्ध व विकृत स्वर किस प्रकार उत्पन्न कर

स्थापित किये हैं। नाद व्यवहार के अन्तर्गत मन्द्र, मध्य व तार इन भेदों को कह देने के पश्चात् वह लिखता है:—

व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मन्द्रोभिधीयते।
कंठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः॥
तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणाच्छ्रुतयो मताः।
हृद्यूर्ध्वनाड़ीसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः॥
तिरश्च्यस्तासु तावत्यः श्रुतयो मारुताहताः।
उच्चोच्चतरतायुक्ताः प्रभवंत्युत्तरोत्तरम्॥
एवं कण्ठे तथा शीर्षे श्रुतिद्वाविंशतिर्मता॥

इसमें उसने शुद्ध स्वर स्थान किस तरह स्थिर किया है, अब वह देखो [यहाँ वीणा का चित्र ध्यान में रखना चाहिए]

अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः।
वीणाद्वये स्वराः स्थाप्यास्तत्र षड्जश्चतुःश्रुतिः॥
स्थाप्यस्तंत्र्यां तुरीयायामृषभस्त्रिश्रुतिस्ततः।
पंचमीतस्तृतीयायां गांधारो द्विश्रुतिस्ततः॥
अष्टमीतो द्वितीयायां मध्यमोऽथ चतुःश्रुतिः।
दशमीतश्चतुर्थ्यां स्यात्पंचमोऽथ चतुःश्रुतिः॥
चतुर्दशीतस्तुर्यायां धैवतस्त्रिश्रुतिस्ततः।
अष्टादश्यास्तृतीयायां निषादो द्विश्रुतिस्ततः॥
एकविंश्या द्वितीयायां × × × ॥

प्रश्न—इससे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि शाङ्गदेव ने प्रत्येक सप्तक में बाईस श्रुतियां ही मानी हैं और उसकी श्रुति स्वर-व्यवस्था भी दूसरों जैसी ४, ३, २ आदि के अनुपात से थी।

उत्तर—यहां एक तर्क सम्भवतः तुम्हारे लक्ष्य में नहीं आयेगा। शाङ्गदेव की वीणा पर बाईस श्रुतियों के भिन्न-भिन्न बाईस तार नियत हैं तथा उस पर ४, ७, ६, १३, १७, २०, २२ वें तारों के नाद पर उसने शुद्ध स्वर स्थापित किये हैं। इस पर आगे चलकर कल्लिनाथ ने ठीक ही कहा है—"इत्थमियत्तया निश्चिताभ्यः श्रुतिभ्यश्च स्वराणां निष्पत्तिः"

श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगांधारमध्यमाः।
पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते॥

श्रुति स्वर का नकशा—'रत्नाकर'

श्र० नं०	श्रुति नाम	शुद्ध स्वर	विकृत-स्वर	संख्या
४	छन्दोवती	सा	अच्युत षड्ज	१२
५	दयावती			
६	रंजनी			
७	रक्तिका	री	विकृत अथवा चतुःश्रुतिक रिषभ	१
८	रौद्री			
६	क्रोधा	ग		
१०	वज्रिका		साधारण गांधार	२
११	प्रसारिणी		अन्तर गांधार	३
१२	प्रीति		च्युत मध्यम	४
१३	मार्जनी	म	अच्युत मध्यम	५
१४	क्षिती			
१५	रक्ता			
१६	संदीपनी		कैशिक पंचम, त्रिश्रुतिक पंचम	६,७
१७	आलापिनी	प		
१८	मदन्ती			
१६	रोहिणी			
२०	रम्या	ध	विकृत अथवा चतुःश्रुतिक धैवत	८
२१	उग्रा			
२२	क्षोभिणी	नी		
१	तीव्रा		कैशिक निषाद	६
२	कुमद्वती		काकली निषाद	१०
३	मन्दा		च्युत षड्ज	११
२२		७	१२	

शार्ङ्गदेव का यह श्रुति स्वर-चार्ट मैंने तुम्हारे लिए तैयार किया है। इस चार्ट में 'रत्नाकर' में वर्णित श्रुति-क्रम दिखाते हुए शुद्ध व विकृत स्वर यथा स्थान नियत श्रुति पर बताए गए हैं। यह थोड़ा भिन्न प्रश्न है कि ये विकृत स्वर शार्ङ्गदेव ने कहां व कैसे उपयोग में लिए हैं। दक्षिण की ओर पारिभाषिक नाम तो ये ही हैं, परन्तु जैसा कि मैं बता ही चुका हूँ, उधर ग्राम, मूर्छना व जाति से राग-रूप उत्पन्न नहीं किए जाते। और तुम यह जानते ही हो कि वहां षड़ज से षड़ज तक के स्वर सप्तक के शुद्ध विकृत स्वरों की सहायता से ही सम्पूर्ण राग-रूप उत्पन्न किए जाते हैं। यही रीति हमारे यहां प्रचलित है।

तुम्हें यह दीख पड़ेगा कि हमारे अनेक रागों के थाट दक्षिण के ग्रंथों में मिल जाते हैं। इस पर हमारे विद्वान कहते हैं कि ये थाट हम भरत, शार्ङ्गदेव के अनेक बताए हुए नियमों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। विद्वानों का कथन ठीक ही है, परन्तु उससे एक मजेदार बात अपने आप सिद्ध हो जावेगी कि दक्षिण के ग्रन्थकारों ने शार्ङ्गदेव के सम्पूर्ण विकृत स्वर, मूल पारिभाषिक नामों के साथ या शार्ङ्गदेव द्वारा कथित श्रुतियों पर स्थापित किए हैं। इन्हें ही शुद्ध स्वर सप्तक में प्रयुक्त करते हुए, आवश्यकतानुसार राग मेल (थाट) उत्पन्न किये हैं। इस पर कोई यह भी कह सकता है कि क्या उन पंडितों ने अपना शुद्ध स्वर-सप्तक स्थिर करने में ही सब विशेषता रक्खी है ? परन्तु बात ऐसी ही है।

प्रश्न:—अब आप हमें शार्ङ्गदेव के विकृत स्वर बताने वाले हैं न ?

उत्तर:—हां, वही बताने वाला हूँ। सुनो:—

"त एव विकृतावस्था द्वादश प्रतिपादिताः"

इस विकृति के सम्बन्ध में कल्लिनाथ डंके की चोट इस प्रकार कहता है:—

"षड्जमध्यमग्रामद्वयापेक्षया, विकृतस्वरान् ग्रन्थकारो लक्षयति" यह मूल ग्रन्थ में भी स्पष्ट है। इसे देखकर कोई भी यह कह सकता है कि दक्षिण के पंडितों ने भी भरत, शार्ङ्गदेव की पद्धति के सिद्धांत देखे थे। यद्यपि इससे यह ज्ञात नहीं होता कि एक ही सप्तक के भिन्न-भिन्न रागों में ये विकृत स्वर शार्ङ्गदेव ने प्रयुक्त किये थे, तो भी यह कथन दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने रागों की एक वाक्यता रत्नाकर के जाति रागों से नहीं की, अतः उसका अच्छी प्रकार स्पष्टीकरण नहीं होता। Fox, Strangways आदि लेखकों का मत है कि दक्षिण का सप्तक कुछ संगीत की अपरिणित दशा से हमारे सम्बन्ध का दर्शक है। कोई-कोई कहते हैं कि इससे (Folk Music) का आभास मिलता है। यह सब हमारा विषय है ही नहीं, अतः हम इस विषय के अपने तर्क एक ओर रखदें।

प्रश्न:—Folk Music फोक म्यूजिक किसे कहते हैं ?

उत्तर:—यह बात मैं Parry साहब के शब्दों में ही बताता हूं:—

The basis of all Music and the very first steps in the long story of Musical development are to be found in the Musical utterances of the most undeveloped and unconscious types of humanity, such as unadulterated savages and inhabitants of lonely isolated districts well removed from any of the influences of education and culture. Such savages are in the same position in relation to music as the remote ancestors of the race before the story of the artistic development of music began, and through the study of the ways in which they contrive their primitive fragments of tune and rhythm, and of the principles upon which they string these together, the first steps of musical development may be traced. True Folk-music begins a step higher, when

these fragments of tune as nuclei, are strung together upon any principles which give an appearance of orderliness and completeness; but the power to organise materials in such a manner does not come to human creatures till a long way above the savage stage. In such things a savage lacks the power to think consecutively or to hold the relations of different factors in his mind at once. His phrases are Necessarily very short and the order in which they are given is unsystematic. It would be quite a feat for the original brain to keep enough factors under control at once to get even two phrases to balance in an orderly manner. The standard of completeness in design depends upon the standard of intelligence of the makers of the product; and it cannot therefore be expected to be definite or systematic when it represents the intellectual standard of savages.

अब अधिक नहीं पढ़ूँगा ! तुम्हारे ध्यान में इतने से ही इसकी साधारण रूपरेखा आ गई होगी। हम यह निश्चित करने के लिये अब नहीं रुकेंगे कि दक्षिण का स्वर सप्तक अच्छा है या बुरा, उसे विद्वानों ने खास तौर से ऐसा ही रचा है, अथवा यह कुछ जंगलीपन लिये है। अब मैं आगे चलता हूँ:—

च्युतोऽच्युतो द्विधा षड्जो द्विश्रुतिर्विकृतो भवेत् ।
साधारणे काकलीत्वे निषादस्य च दृश्यते ॥
साधारणे श्रुतिं षाड्जीमृषभः संश्रितो यदा ।
चतुःश्रुतित्वमायाति तदैको विकृतो भवेत् ॥
साधारणे त्रिश्रुतिः स्यादंतरत्वे चतुःश्रुतिः ।
गांधार इति तद्भेदौ द्वौ निःशंकेन कीर्तितौ ॥
मध्यमः षडजवद्द्वेधाऽन्तरसाधारणाश्रयात् ।
पंचमो मध्यमग्रामे त्रिश्रुतिः कैशिके पुनः ॥
मध्यमस्य श्रुतिं प्राप्य चतुःश्रुतिरिति द्विधा ।
धैवतो मध्यमग्रामे विकृतःस्याच्चतुःश्रुतिः ॥
कैशिके काकलीत्वे च निषादस्त्रिचतुःश्रुतिः ।
प्राप्नोति विकृतौ भेदौ द्वाविति द्वादश स्मृताः ॥
तैः शुद्धैः सप्तभिः सार्धं भवंत्येकोनविंशतिः ॥

हाथ में नक्शा लेकर इन श्लोकों को देखने पर इनका अर्थ सरलता से समझ में आजावेगा।

प्रश्न:—इन श्लोकों का शाब्दिक अर्थ हम उत्तम रूप से समझ गये। परन्तु शार्ङ्गदेव की श्रुति का क्या मतलब है? जैसे हमें षड्ज के आगे ऋषभ की तीन श्रुतिया कायम करनी हैं, तो उन्हें कैसे करेंगे? तीसरी श्रुति पर पहुंचने पर हमें शुद्ध रिषभ मिलेगा न? यह स्पष्टीकरण ग्रन्थ-कर्त्ता ने किया होगा?

उत्तर—हां, हां, यह तो उसने यथा शक्ति अपनी समझ के अनुसार किया है। परन्तु उसे वर्तमान पण्डितों की कल्पना सूझी भी न होगी, यह दिखाई पड़ता है। उसके स्पष्टीकरण का विवरण मैं तुम्हें सुनाने वाला हूँ।

प्रश्न:—तो उसे अभी बता दीजिये, क्योंकि बिना उसके हमारी गाड़ी रुक रही है।

उत्तर:—पहले तो शार्ङ्गदेव ने अपने पाठकों को 'श्रुति-वीणा' समझाई है, आगे चलकर फिर वाद्याध्याय में 'स्वर वीणा' का वर्णन किया है।

प्रश्न:—अच्छा, ऐसी बात है! यह आप पहिले ही बता देते तो बड़ा अच्छा होता। तो फिर, क्या यह व्यर्थ ही प्रख्यात पंडित के नाम से प्रसिद्धि पा गया? ऐसी त्रुटि उसने अपने ग्रन्थ में कैसे रखदी? चार श्रुति पर स, तीन श्रुति पर रे आदि। जब तक कि श्रुति क्या हैं, व उन्हें कैसे गिना जावे, आदि न समझ लिया जावे, तब तक पाठक कल्पना ही क्या कर सकेंगे? तुम्हें जो कुछ सुनने को मिले, वही स्वर-ध्वनि व मैं कहूँ उतनी ही व वैसी ही उसकी श्रुतियां, इस प्रकार का विधान संतोष-जनक कैसे कहा जायगा? हमें तो यह अनुमान था कि अपनी प्रत्येक श्रुति-ध्वनि का प्रमाण उसने कहीं न कहीं लिख ही दिया होगा। अब आप यह कह रहे हैं कि श्रुति, स्वरों की प्राथमिक स्थिति का नाम है, और वह उसने श्रुति वीणा से यथा योग्य रूप से समझाई है। अच्छा तो फिर आगे इस सम्बन्ध में वह क्या कहता है, वह भी सुना दीजिये। इतना जान लेने पर हमें अपने इस विद्वान की श्रुति सम्बन्धी योग्यता वास्तविक रूप से दिखाई देगी। ठीक है न?

उत्तर:—बिल्कुल ठीक! तुम्हारा उत्साह देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। किसी भी विषय के शिक्षण के लिये इस प्रकार के शिष्यों का प्राप्त होना, गुरु के लिये बड़े सौभाग्य की बात है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व अभी मैं एक बात और कहे देता हूं। शार्ङ्गदेव के समय के हमें आज जो जो साधन प्राप्त हैं—वे नहीं थे। यह कथन भी असत्य नहीं कहा जा सकता कि उसके समय की सुनी हुई, मानी हुई व सीखी हुई बातें 'रत्नाकर' में उसने लिखदी हैं। कोई कह सकता है कि उसने अपने ग्रंथ में विषयों की व्याख्या जितनी आवश्यक थी, नहीं की तथा मूर्छना, जाति व अपने विकृत स्वरों का विवरण नहीं दिया। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि आज हमारी चर्चा का यह विषय नहीं है। मैं तुम्हें 'श्रुति वीणा' समझा रहा था न? इससे तुम यह न समझ लेना कि शार्ङ्गदेव ने 'श्रुति वीणा' नामक कोई अद्भुत व अपूर्व वाद्य की रचना की थी। वीणा व सितार तो तुम्हारे देखे हुए वाद्य ही हैं। अब मुझे बताओ कि यदि तुम्हारे सितार पर के सारे परदे मैं निकाल डालूं तो फिर उसमें क्या बचेगा?

प्रश्नः—फिर क्या, गुरूजी ! डांडी, घोड़ी, खूँटियां, मेरु, तुम्बा यही बचेंगे। और दूसरी क्या चीज रहेगी ? परन्तु फिर बजायेंगे क्या ?

उत्तरः—जरा ठहरो, और आगे सुनो ! अब तुम्हारे उस सितार पर चार तार की जगह मुझे बाईस तार लगाने हैं, तो ऐसा करना सम्भव है या नहीं ?

प्रश्नः—क्यों नहीं ? इसमें कौनसी अड़चन है ? छोटी-छोटी खूंटियां लगाकर ऐसा सहज में किया जा सकता है; परन्तु यह वाद्य बजायेगा कौन ?

उत्तरः—यह मैंने कब कहा कि इसे बजाना ही चाहिये ? इन बाईस तारों को श्रुतियों के माप से मिलाना है। यह कैसे होगा, सुनोः—

× × × × × × तासु चादिमा।
कार्यामंद्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक् ॥
स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यंतराश्रुतेः।
अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः ॥

सुना श्रुतियों का माप ? शायद शाङ्गदेव को यह आशा रही होगी कि इतनी सी चाभी से लोग धड़ाधड़ श्रुति स्थापित करने लगेंगे। इसमें तुम कितनी समझ सके, जरा बताओ तो ?

प्रश्न—हमें तो कुछ भी समझ में नहीं आया। जहां पहिले थे, वहीं पर अभी तक हैं।

उत्तर—क्यों भाई ? पं० शाङ्गदेव ने एक सप्तक में बाईस श्रुति मानी हैं अर्थात् बाईस तार लगाये हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने श्रुति की सोपान परम्परा भी स्वीकार की है। फिर उन्होंने श्रुतियों पर कितनी स्पष्टता से स्वर स्थापित किये हैं, यह तो देखो। प्रत्येक श्रुति अर्थात् एक-एक तार की स्वतंत्र-ध्वनि, इस न्याय से बाईस नाद तुमने कायम किये कि चौथे तार की आवाज़ षड्ज, सातवें की आवाज ऋषभ होगी। यही क्रम उन्होंने सरल भाषा में परन्तु संक्षिप्त रूप में कह रखा है। यह भी नहीं कहा सकता कि इस कल्पना में उन्होंने अपनी ओर से भी कुछ मिलाया हो, क्योंकि भरत के स्वर भी इन्हीं श्रुतियों पर स्थित हैं। इसमें तुम्हें क्या कठिनाई आती है, वह मुझे बताओ !

प्रश्न—देखिये, केवल कागजी या शाब्दिक वर्णन संगीत जैसे विषय में कैसे युक्ति-युक्ति कहा जावेगा ? सिर्फ बारह स्वरों को पहिचानने में ही हमें कितना प्रयास हुआ है। अमुक श्रुति षड्ज की तुलना में कौनसी ध्वनि है, क्या इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं बताना चाहिए ? यह कैसा श्रुतियों का नाप है कि तुम आज तक जिन रिषभ व गंधार को घिसते चले आ रहे हो या नहीं जानते हो, वे सातवीं व नवीं श्रुति की ध्वनि ही हैं ! सातवीं से जरा सा पीछे हटने पर छठी श्रुति बन गई, उससे थोड़ा पीछे हटने पर पांचवीं श्रुति हो गई, यह क्या श्रुति नाप की व्यवस्थित रीति है ? "द्वितीयाउच्चध्वनिर्मनाक्" केवल इस मंत्र से तो बाईस श्रुतियां मिलने वाली हैं नहीं !

उत्तर—ऐसा क्यों कहते हो? एक तार से दूसरा तार ऊँचा मिलाते जाना क्या असंभव है? इसमें कौनसी बात अशक्य है?

प्रश्न—तार मिलना तो संभव है, परन्तु एक निम्नतम नाप अनेक वादकों को देकर तार मिलाने के लिये अलग-अलग बैठा दिया जावे तो वे न जाने कहां-कहां मिला लायेंगे।

उत्तर—हां, यह कठिनाई तुमने ठीक ही बताई है। परन्तु ठहरो तो, एक बात और भी है। तुम्हारी बताई गई यह कठिनाई गायकों के सामने श्रुति लगाते समय जितनी आवेगी क्या उतनी कठिनाई केवल वीणा के तार मिलाने वालों को भी आवेगी? इन्हें तो केवल एक से दूसरा तार ही खींचना है, और तो कुछ नहीं। स्वर इच्छानुसार वहां कैसे नहीं आयेंगे।

प्रश्न—ऐसा मानलें तो भी सारे वादकों की श्रुतियां एक ही नियत जगह पर नहीं आ सकेंगी। प्रत्येक गायक-वादक, ऊँची-नीची ध्वनि स्वतः के कानों से ही पहिचानता है न? यह नाद सभी का एक सा कैसे मिल सकता है? हां, श्रुति का अर्थ यदि ऐसा कुछ हो कि तार की अमुक लम्बाई, अमुक श्रुति है तो अलग बात है। श्रुति कायम न हुई तो स्वर भी कायम नहीं हो सकते। आपके कथन से ज्ञात होता है कि शार्ङ्गदेव ने अपना शास्त्र इसी क्रम से प्रस्तुत किया है। हमें तो यह विधान थोड़ा लँगड़ा ही मालुम पड़ता है। हमें तो यह क्रम स्वीकार नहीं, यदि अन्य विद्वानों को योग्य दिखाई दे तथा स्वीकार हो तो वे स्वीकार करें।

उत्तर—तो फिर पं० शार्ङ्गदेव इससे अधिक श्रुति वीणा-प्रकरण में स्पष्टीकरण करते भी नहीं हैं। हां, यहां मुझे स्पष्टतापूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा कि यह विधान युक्तिसंगत अथवा समाधानकारक नहीं है। यह नहीं कि यह बात कहने वाला दूसरा और कोई है हो नहीं। एक आलोचक ने तो उसे 'Pedantic' (दंभी) व 'Unnatural' (अस्वाभाविक) कहा है, यह मुझे स्मरण है। इसी आलोचक ने यह भी कहा है कि प्राचीन ग्रन्थकर्ता इन सूक्ष्म नादों की उलझन में पड़ते ही नहीं थे। मूर्च्छना व जाति के प्रचलन के समय भिन्न-भिन्न थाट बदलने में श्रुति का थोड़ा बहुत उपयोग चाहे होता हो, परन्तु प्रत्यक्ष रागों में हमारे गायक जो आज श्रुति का झगड़ा (गड़बड़) अधिक करते हैं वैसी बात नहीं थी। मुख्य बारह या चौदह स्वरों पर ही प्राचीन ग्रन्थों का सम्पूर्ण सङ्गीत रहा है।

प्रश्न—ठीक है, पर क्या आपको यह बात विचित्र नहीं मालूम होती कि इतने बड़े रत्नाकर ग्रन्थ में दो स्वरों के मध्य में श्रुतियां कैसे कायम की जाती हैं, इस बात के स्पष्ट न होने से पाठकों को कितनी कठिनाई होगी, यह तथ्य शार्ङ्गदेव के ध्यान में ही नहीं आया?

उत्तर—ज़रा ठहरना तो, मैं कुछ भूल सा गया था। प्रवास के समय इसी मुद्दे पर बोलते हुए एक विद्वान ने मेरा ध्यान 'रत्नाकर' के वाद्याध्याय के आठवें व नवें श्लोक की ओर आकर्षित किया था। ये श्लोक मुझे भी महत्वपूर्ण ज्ञात हुए।

ततं वीणा द्विधा सा च श्रुतिस्वरविवेचनात् ।
तत्र श्रीशार्ङ्गदेवेन श्रुतिवीणोदिता पुरा ॥
वक्ष्यते स्वरवीणाऽत्र तस्यामपि विचक्षणाः ।
अंकित्वा स्वरदेशानां भागानुद्भिदते श्रुतीः ॥

प्रश्न—क्या इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि प्राचीन सङ्गीत-विद्वान अपनी वीणा पर प्रथम परम्परागत स्वरों के अन्दाज़ पर ही परदे बांधते होंगे, फिर शास्त्रोक्त श्रुति संख्या के अनुमान पर दो-दो स्वरों के बीच में श्रुतियों की कल्पना की होगी? टीकाकार इस विषय में क्या कहते हैं?

उत्तर—सबसे अधिक माननीय टीकाकार पं० कल्लिनाथ का मत तुम्हारे कथन जैसा ही है। यह मत प्रत्येक व्यक्ति के स्वीकार करने योग्य है, क्योंकि वह बिलकुल सरल व सुबोध है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक दो स्वरों के मध्य के फासले पर शास्त्रोक्त संख्या के अनुसार समान भाग कर, श्रुति कायम करने का मत कल्लिनाथ व उसके बाद के सभी संस्कृत ग्रन्थकारों का रहा है। मैं तुम्हें आगे चलकर यह भी बताऊंगा कि अहोबल का 'परिजात' ग्रन्थ भी इस मत का अपवाद नहीं है।

प्रश्न—तो फिर यही कहना पड़ेगा कि शार्ङ्गदेव की श्रुतियों का नाप किसी निश्चित प्रमाण पर स्थित नहीं है। प्रत्येक दो स्वर के मध्यांतर के समान भाग करने की प्रथा भी उसकी ही थी, परन्तु उसके परम्परागत स्वर कौन से थे, यह बात संदिग्ध ही रह जाती है।

उत्तर—यदि अभी ऐसा ही मान कर आगे चला जावे तो मुझे कोई हानि नहीं दिखाई पड़ती। अभी हम क्रमशः अगले ग्रन्थों पर भी विचार करने वाले हैं। चलते-चलते तुम्हें मैं Parry साहब के ग्रन्थ का एक उद्धरण पढ़कर सुनाता हूँ। नये-नये विचार व कल्पना हमारे उपयोग में अवश्य आती हैं, परन्तु उन्हें नवीन कहने में क्या हानि है? ये साहब लिखते हैं:—

"As in the case of the Parsian and Arabic system, the Indian scale does not come within the range of intelligible record till it is tolerably mature and complete from octave to octave. In order to get a variety of major and minor tones, and semitones, the scale was in ancient times divided into twenty-two small intervals called "Shrutis" which were a little larger than quarter tones. A whole tone contained four Shrutis a three quarter tone three and a semitone two. By this system a fair scale was obtained in which the fourth and fifth were very nearly true, and sixth high (Pythagorean). In what order the tones and semitones were arranged seems doubtful, and in modern music the system of twenty-two Shrutis has disappeared,

and a system of the most extraordinary complexity has taken its place. The actual series of notes approximates as nearly as possible to the European arrangement of twelve semitones; and the peculiarity of the system lies in the way in which it has been developed into modes. The vertue of the system of modes has already been pointed out, as has the adoption of a few diverse ones by the Greeks. The Indians went so far as to devise seventy-two by grouping the various degrees of the scale differently in respect of their flats and sharps. The system can be made intelligible by a few examples out of this enormous number. Our familiar major mode forms one of them and goes by the name of Dhir Shankara Bharan. Our harmonic minor scale also appears under the name Kirwani, the Greek modes also make their appearance, and every combination which it is possible to get out of the semitones, but always so that each degree is represented in some way or other....................

But besides these modes the indians have developed a further principal of restriction in the "Ragas" which are a number of formulas regulating the order in which the notes are to succeed each other. The rule appears to be that when a performer sings or plays a particular "Ragas" he must conform to a particular melodic out line both in ascending and descending. He may play fast or slow or stop on any note and repeat it or vary the rhythm at his pleasure. It even appears that he may put in ornamental notes and little scale passages and interpolate here and there notes that do not belong to the system, so long as the essential notes of the tune conform the rules of progression. Just as in modern harmonic music certain discords must be resolved in a particular way, but several subordinate notes may be interpolated between the discord and resolution.

इन साहब के ग्रंथ में "Scales" नाम का अध्याय बहुत मनोरंजक है। इसी प्रकार Blasserna साहब के ग्रंथ Theory of Music का सातवां अध्याय भी पढ़ने योग्य है। प्राचीन काल में श्रुतियां २२ क्यों मानी गईं व इस समय (अथवा मध्याकालीन ग्रंथकारों के समय) में बारह या चौदह ही क्यों कही जाती हैं; यह प्रश्न वास्तव में बड़ा महत्वपूर्ण है। एक विद्वान ने मुझे यह भी बताया था कि प्राचीन बाईस श्रुतियों का उपयोग मूर्च्छनादि में करने से जो-जो बातें प्राप्त होती हैं वे ही बातें एक सप्तक में बारह या चौदह स्वरस्थान मानने पर उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु कौन जाने यह मत वर्तमान विद्वानों, गायकों

को ग्राह्य होता है या नहीं ? खैर अभी हमें इस प्रकार के प्रश्नों के पीछे नहीं जाना है, अन्यथा हमारा मुख्य विषय एक तरफ ही रखा रह जायगा।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। हम भी आपसे इस समय विवादग्रस्त और अनावश्यक विषयों पर विवेचन करने का आग्रह नहीं करेंगे।

उत्तर—बहुत अच्छी बात है। अब हम पंडित रामामात्य के ग्रन्थ "स्वरमेल-कलानिधि" पर विचार करेंगे। हमें उसका केवल स्वर श्रुति-प्रकरण देखना है। यदि एक बार तुम इन संस्कृत ग्रन्थकारों के मत ठीक प्रकार से समझ जाओ तो तत्काल तुम्हारी समझ में आ जावेगा कि हमारे वर्तमान विद्वानों के विचारों में ग्रन्थों का आधार कितनी मात्रा में विद्यमान है। यह निर्विवाद है कि पंडित रामामात्य की पद्धति दक्षिण की है। तुम जिस बात की खोज में लगे हो वह बात इस कर्नाटकी पद्धति में शायद ही मिल सके।

स्वरमेल कलानिधि के श्रुति स्वर-प्रकरण का नक्शा

क्रमांक	श्रुति नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर नाम व स्थान
४	छन्दोवती	सा	
५	दयावती	...	
६	रंजनी	....	
७	रक्तिका	री	
८	रौद्री	...	
९	क्रोधा	ग	पंच श्रुतिक ऋषभ
१०	वज्रिका	...	साधारण गांधार
११	प्रसारिणी	....	अन्तर गांधार
१२	प्रीति	...	च्युत मध्यम गांधार
१३	मार्जनी	म	
१४	क्षिती	...	
१५	रक्ता	....	
१६	संदीपनी	...	च्युतपंचम मध्यम
१७	आलापिनी	प	
१८	मदन्ती	...	
१९	रोहिणी	...	
२०	रम्या	ध	
२१	उग्रा	....	
२२	क्षोभिणी	नी	पंचश्रुतिक धैवत
१	तीव्रा	...	कैशिक निषाद
२	कुमद्वती	...	काकली निषाद
३	मंदा	....	च्युत षड्ज निषाद
४	छंदोवती	सा	

इस नक्शे को देखने पर हमें निम्न-लिखित बातें दिखाई पड़ती हैं। पंडित रामामात्य ने शार्ङ्गदेव के समान ही बाईस श्रुति मानकर उनके प्राचीन नाम देते हुए प्रत्येक शुद्ध स्वर का अपनी अन्तिम श्रुति पर रहना स्वीकार किया है। रामामात्य, सोमनाथ, अहोबल, आदि पंडितों की पद्धति तुम्हें अच्छी तरह ध्यान में जमा लेनी है, क्यों कि हमारे श्रुति व्याख्या-कर्त्ता विद्वानों का मुख्य आधार ये ग्रन्थकार ही दिखाई पड़ते हैं। रामामात्य ने अपनी श्रुतियां रत्नाकर के सहारे तैयार नहीं कीं, यह बात अपने मत के समर्थन में दिये हुए उसके उद्धरण से दिखाई पड़ती है। "श्रुतिउच्चोच्चतर" होती हैं व उनकी रचना सोपान परंपरा जैसी होती है।" इतना कहने मात्र से ही भरत, शार्ङ्गदेव का आधार ग्रहण किया जाना सिद्ध नहीं होता। दक्षिण के ग्रन्थकारों ने शार्ङ्गदेव की परिभाषाओं का कैसा अर्थ किया, अभी यह प्रश्न तुम्हारे सामने नहीं है। मैं तो कहूँगा कि दक्षिण के ग्रन्थों पर अपने विद्वानों ने जिस प्रकार अपनी श्रुतियां लाद दी हैं, उनका यह कार्य योग्य नहीं कहा जा सकता, यह भी मेरा निश्चित मत है। रामामात्य के पांच विकृत तो शार्ङ्गदेव के बताये स्थानों पर ही हैं। केवल 'रत्नाकर' के विकृत रे व ध स्वर चार श्रुतियों वाले हैं व कलानिधि के पंचश्रुतिक हैं, तथा वे शुद्ध ग, नी के समान हैं। ऐसा क्यों ? यह हमारा प्रश्न नहीं। मेरा तो केवल प्रचलित स्वर श्रुति-चर्चा समझ सकने का साधन प्रस्तुत करने का कार्य है। अभी भरत, शार्ङ्गदेव को हम अलग छोड़ देते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि दक्षिण की पारिभाषिक शब्दावली रामामात्य ने ही प्रथम आरम्भ की है। यह बात तो सरलता से सिद्ध हो सकती है कि वह कल्लिनाथ के पूर्व से चली आ रही है। अच्छा तो अब तुम पूछोगे कि रामामात्य 'श्रुति' का अर्थ क्या बताता है !

प्रश्नः—जी हां, यही हम पूछने वाले थे ?

उत्तरः—मुझे खेद है कि इस प्रश्न का उत्तर 'कलानिधि' में प्राप्त नहीं होता। ग्रंथकार ने बाईस श्रुतियां स्वीकार करके आगे कहा है:—

तत्र तुर्यश्रुतौ षड्जः सप्तम्यामृषभो मतः।
ततो नवम्यां गांधारस्त्रयोदश्यां तु मध्यमः॥

प्रश्नः—आगे जाने की जरूरत नहीं। जब कि श्रुति का क्या अर्थ है, यही स्पष्ट नहीं तो श्रुतियों पर स्वर सप्तक कैसे कायम हो सकेगा ?

उत्तरः—तुम्हारा यह कथन यथार्थ है। मालूम होता है कि यह ग्रंथकार कुछ ऐसी मान्यता लेकर ही चला होगा कि सारे प्रचलित स्वर पाठकों के जाने हुए हैं। अब तुम्हारे मस्तिष्क में नवीन कल्पना उत्पन्न होती है, तो तुम प्राचीन ग्रन्थों में वर्तमान मान्यताओं का आधार खोजते हो। यदि यह आधार जैसा चाहिये वैसा नहीं मिलता है तो ग्रन्थकार पर रुष्ट होते हो। परन्तु जब श्रुति की उलझन उन पंडितों के समय में थी ही नहीं तब वे उसकी चर्चा अपनी रचना में कैसे करते ? यह सब दोष प्रचलित स्वरों में अपने राग समझने वाले व्यक्ति का ही होगा। वर्तमान समय में अपने पंडितों को तो श्रुति छोड़कर और अटकने वाली कोई बात नहीं है न ? इतनी शताब्दियों में भी सूक्ष्म

स्वरों की उलझन में हमारे गायक-वादक कहां पड़े ? अहोबल तो अपनी ही पद्धति का पंडित था न ? उसने कितने स्वरों का उपयोग किया व श्रुति का क्या अर्थ किया, यह बात मैं तुम्हें अब आगे बताने वाला हूं। दक्षिण के पण्डितों ने अपने ग्रन्थों का स्पष्ट विवरण नहीं दिया, इसलिए उन पर रुष्ट होना तो पड़ौसी के घर अपनी आवश्यकता का सामान न मिलने पर कुपित होने जैसी बात है । अपनी श्रुति-कल्पना को हमें उन ग्रन्थों पर लादना ही क्यों चाहिये ? अस्तु, पं० रामामात्य ने सात शुद्ध स्वर व सात विकृत, ऐसे चौदह स्वर अपने सप्तक में मानकर आगे इस प्रकार लिखा है :—

ननु रत्नाकरे शार्ङ्गदेवेन विकृताःस्वराः ।
द्वादशोक्ताः कथं ते तु सप्तैव कथितास्त्वया ॥
सत्यं लक्षणतो भेदो द्वादशानामपीष्यते ।
शुद्धेभ्यस्तत्र भेदस्तु सप्तानामेव लक्षितः ॥
आधारश्रुतिसंत्यागाद् ध्वनिभेदः प्रकीर्तितः ।
पंचानां परिशिष्टानां स्वराणां विकृतात्मनाम् ॥
पूर्वस्वरश्रुतिग्राहाद्वा पूर्वश्रुतिवर्जनात् ।
अपि लक्षणतो भेदे पूर्वोक्तस्वरसंहतेः ॥
आधारश्रुतिनिष्ठत्वाल्लक्ष्यभेदो न विद्यते ॥

शार्ङ्गदेव के समय अर्थात् उसके ग्रन्थों में जो पद्धति बताई गई है वह रामामात्य के समय नहीं थी, यह दोनों ग्रन्थों के पाठक जान सकते हैं। इस मत में मध्यम ग्राम प्रचार में भिन्न नहीं माना जाता। सारे राग एक ही सप्तक से उत्पन्न होते हैं। पंचम अपने स्थान से नहीं हटता। षड्ज, मध्यम व पंचम की अवस्था "च्युत" नहीं मानी जाती।

प्रश्न—तो फिर इन तीन स्वरों की तीसरी श्रुति का स्वरत्व भी नहीं माना होगा ?

उत्तर—ऐसा नहीं है। उसने इन्हें पिछले नी, ग तथा म स्वर क विकृति मानी है। तुम्हें मालूम ही है कि निषाद स्वर की कैशिक व काकली, ये दो विकृतियां प्रसिद्ध हैं; इन्हीं में एक और बढ़ जाती है। निषाद ने षड्ज की तीसरी श्रुति ग्रहण की, इसीलिए रामामात्य ने इसे "च्युत षड्ज निषाद" कहा। यह नाम शार्ङ्गदेव की परिभाषा का है, इसे किस प्रकार धीरे से कहां चिपका दिया है, देखा न ? मध्यम की तीसरी श्रुति ग्रहण करने वाला गांधार "च्युत मध्यम गांधार" व पंचम की तीसरी श्रुति ग्रहण करने वाला मध्यम "च्युत पंचम मध्यम" स्वर हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्रम ध्यान में रखने योग्य है। यहां एक और बात तुम्हें विशेष रूप से समझ लेनी चाहिए।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—ग्रंथकार ने तीन श्रुति का शुद्ध रिषभ बताया है। इसका अर्थ इतना ही समझना चाहिये कि गुरू के मुख से जो नाद शुद्ध 'री' के नाम पर सिखाया जावे वह तीन श्रुति का है और यह सभी शिष्यों को मान कर चलना है। इस शुद्ध 'री' के आगे शुद्ध 'ग' दो श्रुति पर शास्त्र में बताया गया है अर्थात् शुद्ध 'ग' के स्थान को ही पंचश्रुतिक रिषभ भी कहना है। श्रुति गिन कर नहीं देखना है। रत्नाकर में रि, ध स्वरों को विकृत कहा गया है; परन्तु ....

प्रश्न—वास्तव में ध्वनि दृष्टि से यह विकृति नहीं कही जा सकती, रामामात्य ने लगभग यही कहा है।

उत्तर—तो यह सब तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ चुका। एक ही स्वर के दो-दो नाम देने का प्रचलन अब भी दक्षिण की ओर है। इस तरह करने से थाट आदि की रचना सुविधापूर्ण हो जाती है। दक्षिण की ओर के ७२ थाटों की रचना में इसी प्रकार के दुहरे नामों से कितनी सुविधा हुई है, यह यदि तुम चाहो तो वहां देख सकते हो। साधारण गांधार व कैशिक निषाद का नाम रामामात्य ने षटश्रुतिक रि, ध बताया है। ये नाम आज भी दक्षिण की ओर इन स्वरों को दिए जाते हैं। यह भी एक महत्वपूर्ण बात समझनी चाहिए। मैं तुम्हें विषयान्तर में खींचना पसन्द नहीं करता। मैं यह नहीं भूला हूं कि हमारे सम्मुख विचारणीय प्रश्न सिर्फ यही है कि रामामात्य के स्वर हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति की कौनसी ध्वनियां हैं। यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि कोरे कागजी वर्णन से तुम्हें समाधान प्राप्त नहीं होगा। ग्रंथों की परिभाषा के धीरे-धीरे बदलते जाने से प्रचलित संगीत पद्धति में उसका क्या रूप हो गया है, यह देखना निरुपयोगी कैसे कहा जा सकता है? रामामात्य के स्वर हमारे कौन से स्वर होंगे? संयोग-वश इस प्रश्न का उत्तर उसके 'वीणा-प्रकरण' में प्राप्त होता है। रामामात्य ने अपने स्वर वीणा पर स्थापित कर बताये हैं, यह कार्य बहुत अच्छा किया है। हमारे यहां 'वीणा' अत्यन्त प्राचीन वाद्य माना जाता है। यह दृढ़ धारणा भी हमारे यहां है कि वीणा पर तार तथा परदे प्राचीन परम्परा के अनुकूल ही लगाए जाते हैं। यह भिन्न प्रश्न है कि जब ग्राम, मूर्च्छना व जाति प्रचार में थे तब वीणा के तार कैसे मिलाये जाते थे? हमारे 'श्रुति-पंडित' वर्तमान विचारों का आधार लेकर अपना श्रुतिचक्र सिद्ध करते हैं। इसलिए वीणा के मेरु पर "साप साम" स्वर होने के पश्चात् कार्य-व्यवहार की ओर ही हमें देखना है।

प्रश्न—हमने अपने खां साहब की वीणा पर अणु मन्द्र गांधार का तार बायें हाथ की ओर अन्त में देखा था, ऐसा ध्यान आता है।

उत्तर—यह तुमने बहुत अच्छी तरह ध्यान में रखा, उस गांधार का इतिहास बहुत लम्बा है। आज की चर्चा में उसे सुना देना आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि उसके आधार पर किसी ने भी श्रुतियां कायम नहीं कीं। अपनी हिन्दुस्तानी वीणा प्रायः रामामात्य की वीणा जैसी होने पर भी उसकी स्वर-ध्वनि कौनसी है, यह तथ्य तुम्हें यहीं पर समझा देना अच्छा है। तुम्हारे लिए मैंने रामामात्य की वीणा का ऊपरी पृष्ठ भाग का चित्र कागज पर लिख रखा है। देखो :—

मन्द्र म तार ४ — मन्द्र सा ३ — अणु मंद्र प २ — अणुमंद्र स तार १

मेरु
१ ला परदा
२ रा ,,
३ रा ,,
४ था ,,
५ वाँ ,,
६ ठा ,,
७ वाँ ,,

अब इन परदों पर पं० रामामात्य ने कौन से स्वर बताये हैं, यह मैं तुम्हें बताऊँगा। किन्तु यह बताने के पूर्व मैं तुमसे पूछता हूं कि इन परदों पर तुम अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के किन-किन स्वरों को स्थापित करोगे ? तुम्हारी वीणा भी वैसी ही है और उसे तुम देख ही चुके हो।

प्रश्न—प्रथम हम अणुमन्द्र 'सा' के तार को छोड़ देंगे, क्योंकि आगे तीसरा तार मन्द्र 'सा' का है ही। दूसरे अणुमन्द्र प के तार पर हम इस प्रकार स्वर मानेंगे। मेरु पर अणुमन्द्र प है ही। आगे के परदों पर क्रमशः इस प्रकार हम स्वर स्थापित करेंगे:— १ कोमल ध, २ तीव्र ध, ३ कोमल नि, ४ तीव्र नि, ५ मन्द्र सा, ६ कोमल रे, ७ तीव्र रे।

उत्तर—यह ठीक है ! अब आगे 'तीसरे' मन्द्र सा के तार को लो। उस पर कौनसे स्वर बोलेंगे ?

प्रश्न—वे इस प्रकार आयेंगे। १ कोमल रे, २ तीव्र रे, ३ कोमल ग, ४ तीव्र ग, ५ शुद्ध म, ६ तीव्र म, ७ शुद्ध प।

उत्तर—शाबास ! अब 'मन्द्र म' के तार पर बोलने वाले स्वर बताओ ? मालूम होता है कि तुम्हें बहुत जानकारी हो गई है।

प्रश्न—१ तीव्र म, २ शुद्ध प, ३ कोमल ध, ४ तीव्र ध, ५ कोमल नि ६ तीव्र नि, ७ शुद्ध सा। मेरु पर के स्वर हमने इसलिये नहीं कहे कि वे तो तार के मुख्य स्वर ही हैं।

उत्तर—यह सब तुमने सही-सही बताया। दक्षिण के स्वर तुम्हें मालूम ही हैं। वहां के वीणा वादक तुम्हारे इन परदों पर उत्पन्न स्वरों को कौन-कौन से नाम देंगे, देखें बताओ ?

प्रश्न--उधर हमारे कोमल रे, ध स्वरों को शुद्ध ग, नि व हमारे कोमल ग, नि, उनके साधारण ग व कैशिक नि स्वर कहलाते हैं। हमारे तीव्र ग, नि उनके अन्तर ग व काकली नी होते हैं। ऐसा होने से पंचम के तार के नीचे के सात परदों पर क्रमशः शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद, कैशिक निषाद, काकलीनिषाद, शुद्ध षड्ज, शुद्ध री, शुद्ध ग, इस प्रकार से दक्षिणी स्वर आयेंगे। मन्द्र सा के तार के नीचे परदे पर क्रमशः शुद्ध री, शुद्ध ग, साधारण ग, अन्तर ग, शुद्ध म, प्रति म, शुद्ध प, शुद्ध ध, शुद्ध नी, कैशिक नी, काकली नी, शुद्ध सा, ये स्वर आयेंगे।

उत्तरः—तुमने यह भी बहुत अच्छी तरह बता दिया, अब यहां यह बात ध्यान में रखने की है कि "प्रति म" नाम प्राचीन ग्रन्थों का नहीं है। इस स्वर के अन्य नाम "वराली म" मृदुल, आदि हैं; यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। रामामात्य इस स्वर को 'च्युतपंचममध्यम' नाम देता है। अब रामामात्य तुम्हारे उन परदों पर के स्वरों को कौन-कौन से नाम देता है, यह देखो। उसकी वीणा, तुम्हारी वीणा जैसी रही होगी। यह मान लेने में कोई हानि नहीं।

अथ सारीसंन्निवेशं वक्ष्ये वैणिकसंमतम्।
आद्यानुमन्द्रषड्जाख्यतन्त्र्यां शुद्धर्षभो यथा ॥
स्यात्तथा सारिका स्थाप्या प्रथमाऽथ द्वितीयिका।
तत्तन्त्र्या शुद्धगांधारसिद्ध्यै स्थाप्या च सारिका ॥
तृतीया सारिका स्थाप्या पूर्वतंत्र्या यथा स्फुटम्।
स्यात्साधारणगांधारः स्थाप्या सारी चतुर्थिका ॥
च्युतमध्यमगांधारः पूर्वतंत्र्यां यथा भवेत्।
शुद्धमध्यमसिद्ध्यर्थं पंचमी सारिका ततः ॥
निवेश्या पूर्वतंत्र्यैव षष्ठी स्थाप्याथ सारिका।
यथा व्यक्तस्तया तंत्र्या च्युतपंचममध्यमः ॥
पंचमेनानुमन्द्रेण युक्तस्तंत्र्या द्वितीयया।
शुद्धःस्याद्धैवतः शुद्धो निषादश्च ततःपरम्।
कैशिक्याख्यनिषादोऽथ च्युतषड्जनिषादकः।
मन्द्रमध्यमतंत्र्या तु चतुर्थ्यां स्युरमो स्वराः ॥
पूर्वासु षट्सु सारीषु च्युतपंचममध्यमः।
शुद्धपंचमनामा च ह्युत्तरं शुद्धधैवतः ॥
ततः शुद्धनिषादाख्यः कैशिक्याख्यनिषादकः।
च्युतषड्जनिषादाख्य एते शुद्धस्वराः कृताः।

प्रश्न--यह विवरण सुनकर हमें अत्यन्त आश्चर्ययुक्त आनन्द हो रहा है।

उत्तर—ऐसा क्यों ?

प्रश्न—अब पं० रामामात्य की स्वर-ध्वनि हमारे समझने योग्य हो गई, इसलिए आनन्द हो रहा है और ये स्वर व नाम हूबहू दक्षिण में इस समय भी प्रचलित हैं, यह देखकर आश्चर्य भी हो रहा है।

उत्तर—हां, ऐसा होना ठीक ही है, परन्तु इस बात से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि यह विद्वान दक्षिण का ही था।

प्रश्न—हमें अब इस बात में जरा भी सन्देह नहीं रहा।

उत्तर—तो ठीक है, अब हम सोमनाथ की ओर चलें, सोमनाथ के लिए हमारे विद्वानों के हृदय में बहुत गर्व और आदर भावना है, अतः इसके मत की ओर तुम्हें अधिक ध्यान से देखना होगा। मुझे भी इसके सम्बन्ध में अनेक बार भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों पर बोलना पड़ेगा। 'रागविबोध' 'ग्रन्थ कलानिधि' की अपेक्षा अधिक बड़ा है। सोमनाथ बहुत विद्वान था, इस बात को कौन अस्वीकार करेगा ? कुछ मार्मिक विद्वानों का मत है कि इसने अपनी जानकारी रामामात्य के ग्रन्थ से प्राप्त की होगी। यदि यह सत्य हो तो हमें इस खोज का श्रेय और रामामात्य के प्रति न्याय करने का श्रेय अपने श्रुति-विवेचक विद्वानों को देना चाहिये। जहां-जहां सोमनाथ ने रामामात्य के मत को छोड़ कर स्वतन्त्रता दिखाने का प्रयत्न किया है, वहीं पर भूलें भी हुई हैं। फिर भी इसके विषय में हमारे हृदय में आदर बुद्धि अवश्य रहेगी। अस्तु, अब इसकी व्यवस्था सुनो :—

हृद्यर्ध्वनाडिकास्थद्वाविंशत्यणुतिरोजनाडीषु ।
तावन्तः श्रुतिसंज्ञाः स्युर्नादाः परपरोच्चाः ॥
एवं गले च शीर्षे ताभ्यः सप्तस्वराः श्रुतिभ्यः स्युः ।
स्वरता तेषु निरुक्ता मनः स्वतो रंजयतीति ॥
षड्जर्षभगांधारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः ।
इत्यभिधास्तेऽमीषां सरिगमपधनीतिसंज्ञाऽन्या॥
तेषा श्रुतयः क्रमतो वेदा रामा दृशौ तथांबुधयः ।
निगमा दहनाः पक्षावेवं द्वाविंशतिः सर्वाः ॥
तुर्यायां सप्तम्यां तासु नवम्यां श्रुतौ त्रयोदश्याम् ।
सप्तदशीविंशीद्वाविंशीषु च ते स्फुटाः क्रमतः ॥

प्रश्न—यहां पर तो सब वही दिखाई पड़ता है जो हम सुन चुके हैं।

उत्तर—तो भी सोमनाथ ने श्रुति-स्वर कायम करने की एक नई योजना निश्चित की है, जिसके लिए इसकी प्रशंसा करनी चाहिए।

प्रश्न—वह कैसी योजना है ?

उत्तर—शार्ङ्गदेव ने वीणा के दंड (डांडी) पर श्रुतिवाचक अलग-अलग बाईस तार लगाए थे। इसने इनके विपरीत सुन्दर युक्ति निकाली। इसने वीणा पर बाईस परदे तारों के नीचे बांध दिए। मेरु पर षड्ज स्वीकार कर आगे परदों पर क्रमशः श्रुतियां दिखाई हैं।

प्रश्न—परन्तु षड्ज तो चौथी श्रुति की आवाज है न? मेरु पर षड्ज मानने से षड्ज की पहिली श्रुतियां कैसे मिलेंगी?

उत्तर—शाबास! इस ओर तुम्हारा ध्यान खूब पहुँचा। इन तीन श्रुतियों के लिए भी इसने एक व्यवस्था की है। इसने अपनी श्रुति वीणा पर चार तार लगाए हैं। इनमें पहिले तीन तारों को षड्ज की तीन पिछली श्रुतियां समझ कर गृहण करने का यह सुझाव देता है।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो सोमनाथ ने श्रुति किसे कहते हैं व श्रुतियों को किस तरह गिनना चाहिए, इन बातों का वर्णन भी किया होगा?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है, परन्तु वह कितना संतोषजनक व युक्तिसंगत है, अब यह स्वयं तुम्हीं देखो :—

पृथुवक्ष्यमाणवीणामेरौ स्थाप्याश्चतस्र इति तंत्र्यः।
मन्द्रतमध्वनिराद्या त्रयं क्रमोच्चस्वनं किंचित् ॥
न्यस्याः सूक्ष्माः सार्योऽथ द्वाविंशतिरधश्चरमतंत्र्याः।
तंत्री यथेयमुच्चोच्चतररवा किमपि तासु स्यात् ॥
द्वयंन्तर्नेष्टोऽन्यरवः श्रुतय इति रवा इहांत्यतंत्र्यां सः।
ऋषभस्तृतीयसार्यां गः पंचम्यां नवम्यां मः ॥
पस्तु त्रयोदशीस्थः षोडश्यष्टादशीस्थितौ च धनी।
द्वाविंशीस्थः षड्जो द्विगुणसमः पूर्वषड्जेन ॥

प्रश्न—नवीं पर म, तेरहवीं पर प, सोलहवीं पर ध तथा अठारहवीं श्रुति पर नि, इस प्रकार बताने का कारण मेरु पर चार श्रुतियों का होना है। यह तो हम समझ गये परन्तु अठारहवीं के आगे और चार परदे कौन से हैं?

उत्तर—षड्ज की सारी श्रुतियां तो मेरु के तार पर बतादी गई थीं। ये चार परदे कुन्जी मिलाने के लिए ग्रंथकार के मत से रखे गए हैं। इनके लिए यह सूचना दी है कि यदि इन परदों के तार मेरु पर के तारों के नाद से मिला लिए तो समझना चाहिए कि सम्पूर्ण श्रुति योग्य स्थान पर लग चुकी हैं।

प्रश्न—यह विधान हमारे कानों को स्वीकार नहीं हो सकेगा, क्योंकि अब प्रथम चार तारों की श्रुतियां किस प्रमाण में लाई जावेंगी, यह पता कैसे लगेगा?

उत्तर—यह तुम ठीक ही पूछ रहे हो! अन्तिम चार परदों के विषय में ग्रंथकार दावे से कहता है :—

ध्वनिशुद्धिनिश्चयार्थं विकृतन्यर्थं च सश्चतुःश्रुतिकः ।
पुनरुक्त इति मतं मे श्रुतिस्वरावगमनाय लघु ॥

प्रश्न—यह सब सत्य है, परन्तु इन तारों या परदों को लगाने का कोई सुनिश्चित नाप भी बताया है ?

उत्तर—इस पर ग्रन्थकार ने अपनी टीका में इस प्रकार खुलासा किया है—"मेरुस्थतुर्यतंत्रीध्वनेः प्रथमसारी किंचिदुच्चध्वनिः, द्वितीया मेरुस्थतुर्यतंत्री ध्वनेरेव उच्चतरध्वनिः, एवं द्वितीयसार्यपेक्षया तृतीयतुर्यसार्यः उच्चोच्चतरत्वे ।

प्रश्न—अर्थात् मनाक् उच्चध्वनिः ही प्रमाण मानें न ? किंतु यह कोई प्रमाणिक माप नहीं है, इसे हम नहीं मानेंगे पण्डित जी ! हमारी समझ से यह प्रकार तो किसी के लिए भी समाधानकारक नहीं होगा ?

उत्तर—यह तो ठीक है, परन्तु ग्रन्थ में और अधिक स्पष्टीकरण नहीं मिलता तो इसके लिए मैं क्या करूं ? आगे विकृत स्वर सुनोगे क्या ?

प्रश्न—अब उन्हें सुन कर क्या करेंगे ? वे भी प्रायः रामामात्य जैसे ही होंगे ?

उत्तर—अधिकतर स्वर-स्थान तो वही हैं, परन्तु यह ग्रंथ आर्या छन्द में है तथा कहीं-कहीं परिभाषायें अलग हैं ।

प्रश्न—सुना दीजिए, परन्तु परिभाषायें भिन्न क्यों हैं ?

उत्तर—वे परिभाषायें कैसी हैं, यह तो बता सकूंगा, परन्तु वे ऐसी क्यों हैं यह कैसे बता सकूंगा ? सोमनाथ ने विकृत स्वरों के पन्द्रह नाम बताए हैं । शार्ङ्गदेव के बारह नामों पर उसने इस प्रकार टीका की है :—

द्वादशविकृतान् पूर्वे वदंति तत्र पृथक् पृथक् ध्वनितः ।
सप्तैव स्युर्भिन्ना न पंच यदिमे समध्वनयः ॥
न पृथक् शुद्धसमाभ्यामच्युतसमकौ चतुःश्रुती च रिधौ ।
शुद्धरिधाभ्यां विकृतस्त्रिश्रुतिपादपि चतुःश्रुतिपः ॥

प्रश्न—रामामात्य की विचारधारा भी इसी प्रकार की थी । ठीक है न ?

उत्तर—हां ऐसा ही उसने कहा है । यह कथन गलत भी नहीं है । एक ही स्वर के दो-दो नाम देना कहीं-कहीं सोमनाथ ने भी पसन्द किया है । वहां पर वह समध्वनि नियम लगाना स्वीकार करता है । आजकल "राग विबोध प्रवेशिका" नामक एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित हो गई है, उसे समय निकाल कर पढ़ लेने पर तुम्हें 'राग विबोध' ग्रंथ समझने में सहायता मिलेगी ।

प्रश्न—क्या आपने "राग विबोध" के स्वर-श्रुति का चार्ट भी तैयार किया है ?

उत्तर—हां, यह देखो—

श्रुति-स्वरों का नक्शा-"राग विबोध"

क्रमांक	श्रुति नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
४	छन्दोवती	सा	
५	दयावती	....	
६	रंजनी	....	
७	रक्तिका	री	
८	रौद्री	...	तीव्र री
९	क्रोधा	ग	तीव्रतर री २
१०	वज्रिका	....	तीव्रतम री; साधारण गांधार ३, ४,
११	प्रसारिणी	....	अन्तर गांधार ५
१२	प्रीति	...	मृदु म ६
१३	मार्जनी	म	तीव्रतम ग ७
१४	क्षिती	....	
१५	रक्ता	....	
१६	संदीपिनी	....	तीव्रतम म ८
१७	आलापिनी	प	मृदु प ९
१८	मदंती	....	
१९	रोहिणी	...	
२०	रम्या	ध	
२१	उग्रा	...	तीव्र ध १०
२२	क्षोभिणी	नी	तीव्रतर ध ११
१	तीव्रा	....	तीव्रतम ध, कैशिक निषाद १२, १३
२	कुमुद्वती	....	काकली निषाद १४
३	मंदा	....	मृदु सा १५
४	छंदोवती	सा	

प्रश्न—सोमनाथ ने अपने ग्रंथ में वीणा प्रकरण कहा है या नहीं ? क्या यह प्रकरण भी रामामात्य लिखित कलानिधि के अनुसार ही है ?

प्रश्न—सोमनाथ ने अपने ग्रंथ में वीणा प्रकरण लिखा है । इस प्रकरण में एक दो जगह उसमें भूलें भी हो गई हैं, यह अब सिद्ध हो गया है, उदाहरणार्थ शुद्ध धैवत का स्थान ही लो । इस विषय पर मुझे आगे चलकर कुछ और भी कहना है। मैंने तुम्हें राग विबोध प्रवेशिका पढ़ने के लिए कहा ही है। इस पुस्तक में भी यह भूल बताई गई है ।

प्रश्न—तो फिर अब किसी अन्य ग्रन्थकर्ता को लीजिये ?

उत्तर—अब हम 'पार्श्वदेव' लिखित 'संगीत समयसार' नामक ग्रन्थ पर विचार करेंगे। यह ग्रन्थकार "महाजनो येन गतः स पंथाः" सिद्धान्त वाला दिखाई देता है।

इसने शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ 'रत्नाकर' के सिद्धान्त व विधान अपनी रचना में धड़ल्ले से उद्‌धृत करके रख दिये हैं, यह कहता है:—

"अत्रोच्यते स्वरादीनामुत्पत्तिहेतुत्वात्। स्थानम्। त्रीणि स्थानानि। हृत्कंठशिरांसि इति समासतः।" इसके पश्चात् मन्द्र, मध्य, तार इन नाम भेदों और श्रुतियों का कंठ से स्पष्ट नहीं होना आदि उल्लेख कर कहता है:—

द्वे वीणे तुलिते कार्येऽखिलावयवतस्तथा ।
एकवीणेव भासेते यथा द्वे ह्यपि श्रृण्वताम् ॥
श्रुतिराद्या मंद्रतमध्वाना कार्या (विचक्षणैः) ।
द्वितीया तु ततस्तीव्रध्वनिस्तंत्री विधीयते ॥
यथा तथा तयोर्मध्ये न तृतीयो ध्वनिर्भवेत् ॥

प्रश्नः—आगे मत जाइये। इसकी विचारधारा हम समझ गये। यह भी 'मनाक् उच्च ध्वनि' का ही भाव दिखाई देता है। किन्तु इन लोगों ने क्या समझ कर इस प्रकार का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया होगा ?

उत्तर—"सिद्धे कार्ये समं फलम्" ऐसा ही कुछ उन्होंने सोचा होगा। पार्श्वदेव ने श्रुतियों के नाम पते भिन्न दे रखे हैं। उनका उपयोग हो तो सुनाऊँ ?

प्रश्नः—खास मुद्दे पर उसने कुछ कहा हो तो सुनाइये। श्रुति क्या है, और उसकी स्थापना व गणना कैसे की जावे ?

उत्तर—ऐसा स्पष्टीकरण 'समयसार' में नहीं दिखाई पड़ेगा। स्वर व श्रुति के अन्तर के सम्बन्ध में इसने मतंग आदि के कथन को ही उद्‌धृत कर दिया है। चाहो तो सुना दूँ ? इस विषय में थोड़ा सा संकेत मैंने आरम्भ में भी कर दिया है।

प्रश्न—ठीक है ! सुनाइये ?

उत्तरः—तो सुनोः—

"अत्र पंच पक्षाः संभवंति । श्रवणैकेंद्रियग्राह्यत्वाद्विशेषस्पर्शशून्ययोः स्वरश्रुत्योर्जातिव्यक्त्योरिव तादात्म्यमिति प्रथमः। दर्पणे मुखविवर्तवच्छ्रुतिषु स्वरा विवर्तंत इति द्वितीयः। यथा घटस्य मृत्पिंडदंडकार्यत्वं तथा स्वराणां श्रुतिकार्यत्वं तृतीयः। क्षीरं दधिरूपेण श्रुतयः स्वररूपेण परिणमंते इति चतुर्थः । प्रदीपांधकारस्थितघटाद्यभिव्यक्तिवच्छ्रुतिभ्य स्वराणामभिव्यक्ति-रिति पंचमः ॥"

ये पांच मत हुए। अब इनका खंडन सुनोः—

"नाद्यः, स्वरश्रुत्योर्भिन्नबुद्धिग्राह्यत्वादाश्रयाश्रयित्वभेदाच्च जातिव्यक्त्योरपि निर्विशेषं न सामान्यमिति न्यायेन भेदस्य सिद्धत्वात् । न द्वितीयः । विवर्तत्वे हि स्वराणां भ्रांतत्वं स्यात् । न च तथा । तृतीयोऽपि न परीक्षाक्षमः । स्वरव्यतिरेकेण श्रुतिसद्भावे प्रमाणाभावात् इति वक्तुं हि न युक्तम् । स्वरस्य हि श्रूयमाणमनुरणनात्मकं रणनमंतरेण नोपपद्यते इत्यर्थापत्त्या वाऽयं स्वरः रणनपूर्वकः । अनुरणनात्मकत्वात् । दंडाहतजयघंटानुरणनशब्दवदित्यनुमानेन वा तत्सिद्धेः । सत्यम् । यद्यपि स्फुटपौर्वापर्येण कार्यकारणभावप्रतीतिरस्ति तथाऽपि उपादानस्य मृत्पिंडादेर्यथाघटादिकार्यनिष्पत्तौ भेदेनानुपलब्धिर्न तथेह स्वरनिष्पत्तौ श्रुतीनामनुपलंभ इति तासामकारणत्वान्न तृतीयः । चतुर्थपंचमावदुष्टत्वे मतंगादिसंमतत्वाद्ग्राह्यौ ।"

धन्य है गुरूजी इन पंडित जी को ! यदि कोई इस शब्द-पांडित्य को देखकर घबरा जावे तो क्या आश्चर्य है ! इस संपूर्ण प्रपंच में से हम कौन-कौन सी उपयोगी बातें सीख सकते हैं ? यदि इस विचार से हम देखें तो उक्त प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं । यह लेखक विद्वान था यह तो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है । परन्तु यह सारे पक्षों के विचार न जाने किसके व किस काल के होंगे ? इतना सत्य है कि यह पहेली है मनोरंजक । हमारे नाद-शास्त्री न जाने इस विषय में क्या कहेंगे ? परन्तु क्यों गुरू जी, इस प्राचीन श्रुति शब्द को सभी ने उकताकर छोड़ दिया है, क्या ऐसा नहीं दिखाई देता ? हमारे वर्तमान विद्वान इस प्रकार चक्कर में डालने का कार्य नहीं करते, यह भी सौभाग्य की बात है ।

उत्तर—हां, यह सत्य है । और भी एक-दो बातें चाहो तो सुनलोः—

श्रवणेंद्रियग्राह्यत्वाद्ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत् ।
सा चैका द्विविधा ज्ञेया स्वरांतरविभागतः ॥
नियतश्रुतिसंस्थानाद्गीयते सप्तगीतिषु ।
तस्मात् स्वरगता ज्ञेयाः श्रुतयः श्रुतिवेदिभिः ॥
अन्तरस्वरवर्तिन्यो ह्यन्तरश्रुतयो मताः ।
एतासामपि वैस्वर्यं क्रियाक्रमविभागतः ॥
द्वाविंशतिं केचिदुदाहरंति श्रुतीः श्रुतिज्ञानविचारदक्षाः ।
षट्षष्टिभिन्ना खलु केचिदासामानंत्यमेव प्रतिपादयन्ति ॥
आनंत्यं हि श्रुतीनां च सूचयंति विपश्चितः ।
यथा ध्वनिविशेषाणाममानं गगनोदरे ॥
उत्तालपवनोद्वेल्लज्जलराशिसमुद्भवाः ।
इयत्त्यः प्रतिपद्यन्ते न तरंगपरंपराः ॥

ऐसी ही कुछ मजेदार कल्पना हमारे प्राचीन विद्वानों की रही है। इन पंच पत्तों का अनुवाद टागोर साहब के ग्रन्थ में इस प्रकार मिलता है:—

"Great difference of opinion exists as to the relation of the Shrutis to the notes. Some think that they both being perceivable by the ear are one and the same in nature. But this opinion does not appear to be a sound one, for the Shruti is the foundation or supporter of the note and consequently ths supported cannot be the supporter. Others hold that the note is reflected on the Shruti just as the human face is reflected on the looking glass. This view too does not seem to be above refutation, for unlike that of the note with reference to the Shruti, the perception of the reflected object is of an illusive nature. It is the conclusion of another class of thinkers that the Shruti is the cause of the note, in the same sense that a lump of clay is the cause of an earthen pot. But this kind of reasoning is faulty too in as much as the clay may be distignuished in the presence of the earthen pot, whereas the Shruti cannot be perceived in the presence of the note. Some others make out that the Shruti is transformed into a note in the manner in which milk is transformed into curd. There seems to be some force in this simile."

भाइयो ! आज हमारे सामने यह विचारणीय प्रश्न नहीं है कि प्राचीन पंडितों ने स्वरों व श्रुतियों में कैसा व कितना भेद माना था। यह हम देख ही चुके हैं कि शार्ङ्गदेव व उसके पश्चात् के विद्वानों ने वीणा पर बाईस श्रुतियों के लिए बाईस तार या परदे लगाने की व्यवस्था की है। इन तारों में से नियमित तारों के नाद को उन्होंने स्वर कहा है। इनके पूर्वकाल के विद्वानों की कल्पना हमें प्राप्त नहीं है। वे लोग श्रुति कैसे कायम करते थे, अब यही हमें देखना है। टागोर साहेब अपने ग्रंथ The twenty two Shrutis में इस प्रकार कहते हैं :—

"The Shrutis are as it were the life and soul of Hindu Music. It is they that form the foundation of the natural and the chromatic intervals and the fountain head af the various Rags and Raginis, which owe their origin to the different permutations of the intervals."

यह सब ठीक है, परन्तु इन्हें प्राचीन ग्रंथकर्ताओं की श्रुतियों और स्वरों का ठीक-ठीक बोध हो गया था, ऐसा इनके ग्रन्थ से भी विदित नहीं होता। संस्कृत ग्रंथकारों

का शुद्ध थाट कौनसा था, यह तथ्य इनकी समझ में आ गया हो, ऐसा भी कोई प्रमाण इनके ग्रंथ में नहीं दीख पड़ता। परन्तु मुझे इनके लेखों पर अपना मत प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—यह ठीक ही है। हम स्वयं इनके सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ने वाले हैं। अब आप किस ग्रंथकर्ता की श्रुति स्वर-रचना बतायेंगे ?

उत्तर—अब हम 'पुण्डरीक विट्ठल' के 'सद्रागचंद्रोदय' ग्रंथ के श्रुति विषय की व्याख्या करने वाले भाग को देखेंगे कि उसमें क्या कहा गया है। यह मैं नहीं कह सकता कि हमारे इस कार्य से कोई यह संदेह करे कि ४, ३, २ श्रुतियों के अन्तर के Major, Minor, Semi-tone मानने के लिए ही हम ग्रन्थों की जांच-पड़ताल कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य तो बिलकुल भिन्न है। हमारे सामने इस प्रकार की श्रुति-व्यवस्था से माने हुए भिन्न-भिन्न सप्तक हैं ही। हमें तो यह देखना है कि हमारे विद्वानों द्वारा खोजी हुई श्रुतियां व उनके स्थान संस्कृत ग्रन्थों के ही हैं या नहीं ? पुण्डरीक ने इस विषय में क्या कहा है सुनोः—

हृत्कंठमूर्धाश्रयगः क्रमेण
त्रैविध्यमृष्येदुव्यवहारतोऽयम् ॥
मंद्रश्च मध्याव्हयकश्च तारः
पूर्वात्परः स्याद्द्विगुणः क्रमेण ॥
उर्ध्वस्थितायां हृदि नाडिकायां
नाड्यस्तिरश्च्यः पवनाहतास्ताः ॥
द्वाविंशतिस्तीव्रतराः क्रमेण
नादं तु तावच्छ्रुतितां नयंति ॥
कंटप्रदेशेऽप्यथ मूर्धदेशे
द्वाविंशतिः स्युः श्रुतयस्तथैव ॥
स्वराः श्रुतिभ्यां प्रभवंति ते तु
षड्जादयः सप्त यथाक्रमेण ॥
वेदाग्निपक्षाऽब्धिपयोधिवन्हि-
पक्षांतिमश्रुत्यधिसंश्रिताः स्युः ॥
षड्जाभिधानस्त्वृषभस्ततः स्या-
द्गांधारको मध्यमपंचमौ च ॥
ततः परं धैवतको निषाद
इति स्वराः सप्त मता मुनींद्रैः ॥

प्रश्न—यह सब तो ठीक है, किंतु श्रुतियां निकलेंगी कैसे ?

उत्तर :— श्रुतेश्च नैरंतरभाविको यः
स्निग्धोऽनुशब्दात्मक ओजसात्मा ॥
श्रोतुर्मनोरंजनकारकत्वात्
स्वतस्तु तज्ज्ञैरुदितः स्वरोऽसौ ॥

× × × ×

प्राग्घातमात्रश्रवणाच्छ्रुतिश्चा-
नुध्वानरूपः स्वर इत्यकिंचित् ॥
यैर्जातयः पंच मताः श्रुतीनां
ते तु प्रमाणं प्रवदंति तत्र ॥

यह सब प्राचीन विद्वानों की कल्पना ही पुण्डरीक ने अपने श्लोकों में अंकित की है। परन्तु उसने किस प्रत्यक्ष ध्वनि का उपयोग किया, यह उसकी वीणा पर ही स्पष्ट समझा जा सकेगा। उसकी वीणा के तार रामामात्य की वीणा के तारों जैसे ही मिलाये गए हैं। इस दृष्टि से अब उसके स्वर थानों को देखो:—

आद्यानुमंद्राव्हयषड्जतंत्र्या
शुद्धो यथा स्याद्दषभस्तथाद्या ॥
सारी निवेश्येत तथा द्वितीया
तंत्र्या तया शुद्धगसिद्धिहेतोः ॥
सारी तृतीयापि तयैव तंत्र्या-
धीयेत साधारणगस्य सिद्ध्यै ॥
सारी चतुर्थी लघुमध्यमस्य
सिद्ध्यै तया तंत्रकया तथैव ॥
तंत्र्या तया पंचमसारिका च
निधीयते शुद्धमसाधनाय ॥
सारी निवेश्या च तथैव षष्ठी
तंत्र्या तयैवं लघुपाव्हयाय ॥

अगले तारों पर कौन-कौन से स्वर आयेंगे, यह बताने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। परन्तु दो स्वरों के बीच में श्रुतियां किस नाप से स्थापित की जावें इस

प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इसका उत्तर 'चन्द्रोदय' में नहीं है। यदि हमारे पंडित इस प्रकार की आलोचना करें कि इस युक्ति से हमने ग्रन्थकार के साथ कठोरता की है तो वह शायद मानने लायक भी है। हम अपनी श्रुतियां ग्रन्थकारों पर निर्भर करते हैं, क्या यह हमारा सौजन्य नहीं है ? एक बात मैं तुमसे कहना भूल गया हूं। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे जिस सर्व प्रथम शास्त्रकार ने श्रुतियों के नाम देकर उनकी जातियों की व्यवस्था की होगी, उसकी मूल विचारधारा क्या रही होगी, यह जान लेने का कोई साधन अभी तक हमारे पास नहीं है, तो भी यह ग़लत नहीं है कि हमारे मध्यकालीन लेखकों ने परंपरा से उनके समय तक चली आई हुई बातों को अपने अपने ग्रन्थों में अवश्य स्थान दिया है । उदाहरण के लिये दक्षिण का शुद्ध सप्तक देखो। यह स्वर सप्तक सबसे पहिले किसने और कैसे स्थापित किया, यह मध्यकालीन ग्रन्थकार भी नहीं जानते थे। पाश्चात्य ग्रन्थकार उन्हें जो चाहे कहें, परन्तु हम जब तक उनका संगीत गाते रहेंगे तब तक उस सप्तक को शर्म के मारे जंगली सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करेंगे। यह तुम धीरे-धीरे आगे चलकर देखोगे कि हमारे ग्रन्थकार जिस तरह कि आजकल के विद्वान श्रुति का उपयोग करने में स्वतंत्र हैं, उसी प्रकार ही स्वतन्त्र उपयोग करते थे या नहीं ? यह मैं स्वीकार करता हूँ कि नारद, भरत, शार्ङ्गदेव आदि के द्वारा अपनी-अपनी वीणा के तारों व परदों की सहायता से अपने स्वर न बताने के कारण कुछ प्रामाणिक मतभेदों की गुंजाइश हो गई है। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि पिछले ग्रन्थकारों की रचनाओं पर हमें तर्क करने के बिलकुल साधन प्राप्त नहीं हैं। विद्वानों के सम्मुख यह एक बड़ी भारी समस्या है कि जिस शार्ङ्गदेव का ग्रन्थ दक्षिण में बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिस पर बड़ी-बड़ी संस्कृत टीकाएँ सौ-दोसौ वर्षों तक होती रहीं और आगे चलकर अनेक विद्वानों ने रत्नाकर की परिभाषायें लेकर अपने-अपने ग्रन्थ लिखे तथा उसके बताये हुए अनेक रागरूप सभी ओर प्रचलित हुए, वह रत्नाकर हमारी ओर केवल नाम मात्र को प्रचार में आया तथा उसके स्वर नाम भी प्रचलित न हुए। पाठकों को दिखाई देगा कि रत्नाकर के वाद्याध्याय में वर्णित विवरण के अनुसार उसने भी वीणा पर चौदह परदे ही बांधे हैं। अस्तु, अब हम अपने मुख्य विषय की ओर लौटें। यह देखो ! मैंने तुम्हारे लिए एक चार्ट तैयार किया है। इसमें तुम्हें दिखाई देगा कि हमारे ग्रन्थकारों ने किस-किस श्रुति पर किस-किस स्वर को स्थान दिया है। यह चार्ट केवल ग्रन्थकारों की परिभाषाओं के अनुमान पर तैयार किया है । इसमें भरत व शार्ङ्गदेव को विशेष रूप से सम्मिलित किया है। अहोबल और लोचन की परिभाषा और विचारधारा भिन्न-भिन्न होने से उनके श्रुति स्वर का चार्ट अलग से तैयार करना पड़ा। यह मैं कह चुका हूँ कि हमारे वर्तमान विद्वानों ने सोमनाथ व अहोबल के आधार पर ही अपने श्रुति-सिद्धांत प्रकाशित किये। यह तुम समझ सकते हो कि इस चार्ट से इन लोगों की मानी हुई ध्वनि की कल्पना नहीं हो सकती, केवल तुम्हें स्वर-स्थान दिखाई देगा । ध्वनि जानने के लिये उन ग्रन्थों के अनुयायिओं के परम्परागत प्रचलन पर निर्भर रहना पड़ेगा । केवल इतनी ही एक संतोषजनक बात दिखाई देती है कि शुद्ध षड्ज, शुद्ध मध्यम, शुद्ध पंचम के स्थान व ध्वनि विवादग्रस्त नहीं माने गये हैं । संपूर्ण गड़बड़ रि, ग, ध, नी व तीव्र (विकृत) म के विषय में ही हमें दिखाई पड़ेगी। लो, अब इस चार्ट की ओर देखो:—

संस्कृत ग्रन्थकारों की श्रुति स्वर-रचना

	श्रुति	भरत		शार्ङ्गदेव		रामामात्य		सोमनाथ		पुण्डरीक		व्यंकटमखी		तुलजाधिप		भावभट्ट	
१	तीव्रा	...	...	...	कैशिक	...	कैशिक		कैशिक	...	कैशिक	...	कैशिक		कैशिक	...	कैशिक
२	कुमुद्वती	...	काकली	...	काकली	...	काकली	...	काकली	...	काकली	...	...	..	काकली		काकली
३	मन्दा	.	...	...	च्युत सा	..	च्युत षड्ज नी	...	मृदुसा	..	लघु सा		काकली	....	वि० ष० नि०		त्रिग० नी
४	छन्दोवती	सा	...	सा	अच्युत सा	सा	....	सा	...	सा	...	सा	...	सा	....	सा	....
५	दयावती	...	...	...	...	...	....	.	....	..	...	.	...	....	....	..	...
६	रंजनी	...	....	.	...		...	.	...	...	....	...	....	....	...		....
७	रक्तिका	रे	...	रे	विकृत रे	रे	....	रे	...	रे	...	रे	....	रे	...	रे	....
८	रौद्री	...	...	...	...	...	....	.	तीव्र रे	.	तीव्र रे	..	...	..	...	....	....
९	क्रोधा	ग	...	ग	....	ग	पंचश्रुति रे	ग	तीव्रतर रे	ग	...	ग	...	ग	पंचश्रुति रे	ग	....
१०	वज्रिका	...	...	...	साधारण	..	साधारण	...	तीव्रतम रे, सा०	...	साधारण	...	साधारण		साधारण	....	साधारण
११	प्रसारिणी	...	अन्तर	...	अन्तर	..	अन्तर	...	अन्तर	...	अन्तर	...	...	..	अन्तर	...	तन्अर
१२	प्रीति	...	...	....	च्युत म	...	च्युत मध्यम ग	..	मृदु म	...	लघु म	...	अन्तर	..	वि० म० ग०	...	त्रिग० ग
१३	मार्जनी	म	....	म	अच्युत म	म	....	म	...	म	....	म	.	म	...	म	....
१४	क्षिति	...	...	...	....	..	...	..	...		पंचश्रुति म	...	...	..	...	...	....
१५	रक्ता	...	...	...	....	..	....	...	तीव्रतम म	...	....		...		...		....
१६	संदीपिनी		...	...	कैशिक प	..	च्युत पंचम म	...	मृदु प	...	लघु प	...	वराली म	...	वि० पं० म	...	विकृत प
१७	आलापिनी	प	...	प	...	प	....	प	....	प	...	प	...	प	...	प	....
१८	मदन्ती		...	.	....	...	....	...	...	..	...	..	...		...	..	...
१९	रोहिणी	.	...	.	....	..	...	...	...		...	...	...	..	....	....	....
२०	रम्या	ध	...	ध	विकृत ध	ध	....	ध	...	ध	...	ध	...	ध	...	ध	....
२१	उग्रा	...	...	...	...	...	...	...	तीव्र ध	...	तीव्र ध	.	...	...	...	.	....
२२	क्षोभिणी	नी	...	नी	...	नी	पंचश्रुति ध	नी	तीव्रतर ध	नी	...	नी	...	नी	पंचश्रुति ध	नी	....

इस चार्ट में तुम्हें आठ ग्रंथकारों की श्रुति स्वर-व्यवस्था दिखाई पड़ेगी । इनमें कितना साम्य है, यह देखो ! यदि इनसे हमारी पद्धति का सम्बन्ध हो जावे तो हमारे गौरव और सौभाग्य का क्या ठिकाना है । नामो के छोटे-मोटे भेदों को रहने दो । तुम तो स्वर स्थानों को ठीक से देखो । यह भी देखो कि व्यंकटमखी ने कुल बारह स्वरों के उपयोग मानकर भी अपने अन्तर व काकली स्वर कैसे रखे हैं । अन्तरङ्ग व च्युत 'म' परस्पर प्रतिनिधि मानने का तो व्यवहार ही रहा है । शुद्ध स्वर स्थानों के नाम सभी के समान ही रहे हैं । सोमनाथ का श्रुति स्वर-वर्णन अन्य जैसा ही है । भावभट्ट के तीन ग्रन्थ अनूप रत्नाकर, अनूप विलास व अनुपांकुश हैं । इस लेखक की श्रुति स्वर-रचना दक्षिण की थी, यह मैं अब अलग से न बताकर आगे बताऊँगा । राग-रागिनी बताते समय मैं भावभट्ट की रचना का विशेष उपयोग करूँगा ।

प्रश्न—तो अब आप किस ग्रंथ को ले रहे हैं ?

उत्तर—अब अहोबल-लोचन आदि उत्तर पद्धति के माने हुए ग्रंथकारों पर विचार करेंगे । इनके श्रुति स्वर-प्रकरण का चार्ट मैंने अलग तैयार किया है । इस नक्शे में कहीं पर मुझ से दृष्टि दोष होना सम्भव है, इसके लिये मुझे क्षमा करना होगा । इस विषय में किसी को सन्देह नहीं कि अहोबल एक विद्वान और बुद्धिमान पण्डित हुआ है, वह उत्तम वीणावादक भी था, उसे हम उचित सम्मान देंगे । परन्तु जहां उसके विधान में हमें सन्देह दिखाई देगा वहां हम निर्भयता से काम लेकर भूल करने का दुराग्रह नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा करने से भूलों की संख्या बढ़ती जावेगी । जब कि अहोबल ने अपने आधार ग्रन्थ या ग्रन्थकार नहीं बताए हैं तो यह सहज ही दिखाई पड़ता है कि वह कुछ ही समय पहिले, निकट वर्तमान का विद्वान हुआ है । यह कौन मानेगा कि उसने हाहा-हूहू, रावण और कुम्भकरण के ग्रंथ देखे थे । यही दिखाई देता है कि उसने थोड़े से ही प्राचीन ग्रंथ देखे थे । यह कहा जाता है कि मूलतः वह दक्षिण का पण्डित था, परन्तु बाद में उत्तर की ओर आगया था । उसके ग्रन्थ में वर्णित राग देखकर यह सत्य ही प्रतीत होता है । उसकी श्रुति स्वर-रचना पर भी पाठकों को ऐसा सन्देह हो सकता है । कोई यह कह सकते हैं कि यदि ऐसा नहीं था तो इस प्रकार क्यों हुआ ? क्या पिछले ग्रन्थकारों की टीका करना उसे पसन्द नहीं था या पिछला सङ्गीत अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आया था अथवा उसका विचार तत्कालीन प्रचलित सङ्गीत व दक्षिण सङ्गीत का उत्तम सम्मिश्रण करने का रहा था । ये सब तर्क सम्भवतः कोई कर सकता है । परन्तु वास्तविक स्थिति क्या थी, यह अब विश्वासपूर्वक कैसे कहा जा सकता है ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि पारिजात में अनेक आक्षेपयुक्त स्थल नहीं हैं । हम अहोबल के श्रुति स्वर-प्रकरण पर विस्तृत विचार करेंगे, क्योंकि हमारे वर्तमान विद्वानों ने प्रथम जो श्रुति-स्थापना की, उसका मुख्य आधार 'पारिजात' ही था । कुल २२ श्रुतियां हैं, उनका स्वरों में विभागीकरण ४, ३, २, ४, ४, ३, २ का है । प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति में शुद्ध अवस्था प्राप्त करता है । इन सब बातों से अहोबल सहमत था ।

अहोबल और लोचन के शुद्ध-विकृत स्वरों का नक्शा

क्रमांक	श्रुति नाम	शुद्ध स्वर	विकृत	स्वर	उपयोग में आने वाले स्वर
४	छन्दोवती	सा	....	...	...
५	दयावती	...	पूर्व री	...	...
६	रंजनी	....	कोमल री	...	कोमल री
७	रक्तिका	री	पूर्व ग	तीव्र री	
८	रौद्री	...	कोमल ग	तीव्रतर री	...
९	क्रोधा	ग	....	...	...
१०	वज्रिका	...	...	तीव्र ग	तीव्र ग
११	प्रसारिणी	....	...	तीव्रतर ग	....
१२	प्रीति	..	....	तीव्रतम ग	...
१३	मार्जनी	म	....	अति तीव्रतम ग	...
१४	क्षिती	...	....	तीव्र म	...
१५	रक्ता	....	...	तीव्रतर म	तीव्रतर म
१६	संदीपनी	...	...	तीव्रतम म	...
१७	आलापिनी	प	....	...	...
१८	मदन्ती	...	पूर्व ध	...	...
१९	रोहिणी	...	कोमल ध	....	कोमल ध
२०	रम्या	ध	पूर्व नी	....	..
२१	उग्रा	....	कोमल नी	तीव्र ध	....
२२	क्षोभिणी	नी	...	तीव्रतर ध	....
१	तीव्रा	...	...	तीव्र नी	तीव्र नी
२	कुमद्वती	...	...	तीव्रतर नी	...
३	मंदा	....	...	तीव्रतम नी	...
४	छंदोवती	...	...		...

प्रश्न—तब तो उसकी पद्धति पिछले ग्रन्थकारों जैसी ही होनी चाहिए ?

उत्तर—परन्तु ऐसी बात नहीं है, यह अभी-अभी तुम देख ही लोगे। सौभाग्य से अहोबल ने अपने स्वर, वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर बताए हैं। यह एक बात ही उसे पिछले सभी ग्रन्थकारों से अधिक प्रशंसा का पात्र बना देती है। स्वरों के नादों की ठीक-ठीक कल्पना पाठकों को कराने के लिए उस समय यही एक निर्दोष मार्ग था।

प्रश्न—परन्तु अहोबल के स्वरस्थान पिछले ग्रन्थकारों जैसे नहीं थे, यह बात निश्चित होनी चाहिए न ?

उत्तर—यह बात मानी जा सकती है। हमारे विद्वानों को भी अब यह बात दिखाई दे चुकी है कि अहोबल के पारिभाषिक नाम दक्षिण के पंडितों के नहीं हैं। दक्षिण

के पारिभाषिक नाम आज तक उस तरफ के ग्रन्थकारों के ही प्रचलित हैं। अतः उन पारिभाषिक नामों से समझे जाने वाले स्वर आज भी स्पष्ट दिखाई दे सकते हैं। मैं समझता हूँ कि भरत, शार्ङ्गदेव के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थकारों के स्वर कौन से रहे होंगे, यह विवाद ही आजकल समाप्त होगया है। यह भी दिखाई पड़ता है कि हमारे विद्वान अब सोमनाथ पर विशेष चर्चा नहीं करते, इससे हमें आश्चर्य न होना चाहिये। यदि कभी कोई बात ग़लत होने पर भी भूल से हमें सही प्रतीत हो जावे और कुछ समय बाद सचाई का पता लगे तो बुद्धिमान लोग अवश्य उस ग़लत बात को मानना छोड़ देंगे। यदि भरत, शार्ङ्गदेव आदि अपनी वीणा के तारों व परदों के स्पष्ट व स्वतन्त्र नाम तथा नाप दे जाते तो उनकी स्वर-ध्वनि कौनसी थी, इस बात का पता तत्काल पाठकों को लग जाना सम्भव था। यह कौन बता सकता है कि भरत ने नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त सङ्गीत पर और भी किसी ग्रंथ की रचना की थी या नहीं। मुझसे अनेक बार लोगों ने इस प्रकार के प्रश्न पूछे हैं कि क्या भरत व शार्ङ्गदेव एक या दो श्रुति के रे, ध का प्रयोग करते थे? यदि करते थे तो इस प्रयोग के पश्चात् भी इन स्वरों को ये ही नाम क्यों दिये? शार्ङ्गदेव ने अति कोमल स्वरों के विषय में क्या व्यवस्था की है, आदि?

प्रश्न—फिर आपने ऐसे प्रश्नकर्त्ताओं को क्या उत्तर दिया?

उत्तर—मैंने उन्हें उत्तर दिया कि भाइयो आप जल्दबाजी न करें। हमारे विद्वान अब इन्हीं ग्रंथकारों के पीछे लगे हुए हैं और वे लोग शीघ्र ही आप लोगों के ऐसे प्रश्नों का निर्णय प्रकाशित करेंगे। अस्तु, मैं अभी अहोबल के ग्रन्थ के विषय में बोल रहा था। हमारे विद्वानों को अहोबल, सोमनाथ के ग्रन्थों से श्रुति ग्रहण कर उनकी सहायता से भरत, शार्ङ्गदेव के ग्रंथों को समझने का छोटा-मोटा कार्य जंचता ही नहीं। अहोबल के पूर्व एक भी ग्रन्थकार अपने स्वर स्थान तार की लम्बाई के माध्यम से बताना नहीं सोच सका, यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जावेगा। यदि वे लोग ऐसा कर जाते तो हमारे विद्वानों को आज कठिनाई नहीं होती। अहोबल व दक्षिण के स्वरों की तुलना करने का प्रधान साधन वीणा ही हो सकता है। अहोबल के नामों में भिन्नता होने पर भी उसने वीणा पर बारह परदे बांधे हैं और वे परदे दक्षिण के पण्डितों जैसे ही बांधे गये हैं, यह सिद्ध किया जा सकता है। इतना ही नहीं, उसके अधिकांश स्वर स्थान अपने प्रचलित ही हैं, यह भी मानना पड़ेगा। मैं विशेष कर उसके कोमल रे, ध स्वरों की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। पारिजात के शुद्ध स्वरों का वर्णन देखोः—

ध्वन्यवच्छिन्नवीणायां मध्ये तारकमः स्थितः।
उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत्॥
त्रिभागात्मकवीणायां पंचमः स्यात्तदग्रिमे।
षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्॥
सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः।
सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत्॥
तत्रांशद्वयसंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत्॥ शुद्धस्वराः॥

आगे विकृत स्वरों को देखोः—

भागत्रयान्विते मध्ये मेरो ऋषभसंज्ञितात् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥
मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।
भागत्रयविशिष्टेऽस्मिन् तीव्रगांधारषड्जयोः ॥
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतममाचरेत् ।
भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः ।
कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे मनीषिभिः ॥
तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥ विकृतस्वराः ॥

इस प्रकार अहोबल ने अपने बारह स्वरस्थान बताये हैं । उसने अपने रागों की रचना में इन्हीं का प्रयोग किया है। उसके समय में सभी राग षड्ज से षड्ज पर्यन्त सप्तक से उत्पन्न किये जाते थे। ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि उपयोग में नहीं थे। वह कहता हैः—

अथग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः ।
षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥
मूर्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः ।
रागा ग्रामद्वयालभ्याः षड्जग्रामोद्भवा इति ॥
यथोक्तश्रुतिकाः प्रोक्ताः षड्जग्रामेऽखिलाः स्वराः ॥

अस्तु, अब जबकि हम अहोबल के स्वरस्थानों पर विचार कर रहे हैं, तुम्हें उसके प्रत्येक श्लोक को सूक्ष्म दृष्टि से देखना पड़ेगा । यह तुम स्वयं अपने आप निश्चित करना कि उसके पारिभाषिक नामों में गड़बड़ है या नहीं । कहीं-कहीं तुम्हें उसकी भाषा भी कुछ शिथिल प्रतीत हो तो इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं । उसने ऐसा क्यों किया, इस सम्बन्ध में तर्क किए जा सकते हैं। परन्तु कभी-कभी तर्क ग़लत भी हो सकते हैं। हमें तो न्याय दृष्टि ही रखनी है । ग्रंथों का अर्थ करते समय ग्रंथकार के काल की परिस्थिति व उसकी व्याख्या के बाहर न जाने का नियम बना लेना चाहिये। आगे और कुछ बताने के पूर्व क्या मैं पाश्चात्य सङ्गीत की कुछ प्रसिद्ध बातें तुम्हें बता दूँ ?

प्रश्न—क्यों ? अहोबल का श्रुति स्वर-प्रकरण समझने के लिये क्या यह बातें अनिवार्य रूप से समझनी ही पड़ती हैं ?

उत्तर—नहीं, नहीं ! यह मैं कैसे कह दूंगा कि अहोबल को पश्चिम के संगीत का ज्ञान था या अहोबल के स्वरों की स्पष्टता पाश्चात्य ग्रन्थों से करनी चाहिये ? क्या तुम भूल गये कि इस विषय को अपनी चर्चा का विषय बनाने का मुख्य कारण हमारे विद्वानों के वर्तमान लेख व उनमें की हुई चर्चा ही है । अतः तुम्हें उनका विधान भी समझना

आवश्यक है। ठीक है न ? ये विद्वान अपनी सहायता के लिये धड़ल्ले से सभी ओर के ग्रन्थ-वाक्यों का उपयोग करते हैं। समाज अब अपना मत कायम करने की स्थिति में है। ऐसी दशा में यह जानना उपयोगी ही होगा कि आखिर ग्रंथों में क्या कहा गया है।

प्रश्न—अब यह हम समझ गये। कहिए, जो कुछ भी आप आवश्यक समझते हों वह अवश्य कहिए ?

उत्तर—यह मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ कि जैसे हमारे यहां "बिलावल" सप्तक हमारे द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत की नींव माना गया है, उसी प्रकार पाश्चिमात्य पद्धति में C, D, E, F, G, A, B का सप्तक बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इन दोनों में बहुत साम्य है। यूरोप के विद्वानों ने अपने स्वर तथा स्वर-सम्बन्ध आन्दोलन के प्रमाण से कायम कर दिये हैं। उन्होंने अपने स्वरों की आन्दोलन (कम्पन) संख्या इस प्रकार आविष्कृत की है। C २४०, D २७०, E ३००, F ३२० G ३६०, A ४००, B ४५०, C ४८०। उन्होंने अपने सप्तक के इस प्रकार तीन वर्ग बनाये हैः—Majortone, Minortone, Semitone. यद्यपि मुझे अंग्रेजी सङ्गीत नहीं आता, तथापि इस विषय को समझने योग्य कुछ जानकारी मैंने प्राप्त करली है। जहां उसमें भूलें हों, वहां उसे सुधार कर ही ग्रहण करना उचित होगा। अपने बिलावल सप्तक व पाश्चिमात्यों के स्वाभाविक सप्तक में इतना भेद माना जाता है कि उनके धैवत की आन्दोलन संख्या ४०० व अपने धैवत की आन्दोलन संख्या ४०५ है। यह भेद हम कैसे अस्वीकार कर सकते हैं ? जबकि हमारे सप्तक व पाश्चिमात्यों के सप्तक में इतना साम्य है, तब उधर के स्वर-सम्बन्ध व नियम अपने सप्तक में लगाने की सूझ हमारे विद्वानों को होना आश्चर्य की बात नहीं है। यह कौन कहेगा कि उनके (पाश्चिमात्यों के) नियम हमारे लिये बिलकुल निरुपयोगी हैं ? इस सम्बन्ध में मेरा तो यह मत है कि जो नियम उत्तमता से ग्रहीत हो सकें, उन्हें प्रसन्नता से ग्रहण करना चाहिये, परन्तु जहाँ असंगत दिखाई दे, वहां उनके नियम वे मानें और हमारे नियम हम मानते जावें। इस सिद्धांत को मानना अधिक सुरक्षित कहा जावेगा। यह सत्य है कि ग्रन्थ-वाक्य का अर्थ प्रचार से मिलता हुआ ग्रहण करना है; परन्तु वह प्रचार भी स्वदेशी ही समझना चाहिये। अहोवल आदि को पाश्चात्य आंदोलन सम्बन्ध का कोई ज्ञान न था, अतः यह चीज उन लोगों पर लादने की आवश्यकता भी नहीं है। हमारा धैवत पाश्चात्य विद्वान द्वारा भी यदि ४०५ आंदोलन का कहा जाता हो तो उसे ४०० आंदोलन का कर दिखाना या हमारे यहां भी इस प्रकार का धैवत पहले ज्ञात हो चुका है, आदि सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयत्न प्रतिष्ठा-वर्द्धक नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नः—परन्तु जैसा कि आप कह चुके हैं कि पं० अहोबल ने अपने स्वर तार की लंबाई बताते हुए स्पष्ट रूप से कहे हैं; फिर इस संदेह के लिये गुंजाइश ही कहां रहेगी ?

उत्तर—यही सब तथ्य हम धीरे-धीरे देखने वाले हैं। हाँ, तो तुमने इस नियम को किस प्रकार समझा ?

प्रश्नः—जहां पर भाषा का सरल अर्थ ग्रहण करते हुए अपने व पाश्चात्यों के विधानों में साम्यता हो, वहां तो ठीक ही है, किन्तु जहां यह संगति नहीं बैठती हो, वहां अपने ग्रंथकारों को लेकर ही हमें आगे बढ़ना है।

उत्तर— बहुत अच्छी बात है। मैं यह भी कहे देता हूँ कि मैं सङ्गीत की प्रगति में बाधा डालने वाले व्यक्तियों में से बिल्कुल नहीं हूँ। ग्रन्थों के टेढ़े-तिरछे अर्थ निकालना भी मुझे पसन्द नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरी समझ में ऐसा अर्थ का अनर्थ करने से आगे चलकर हमें ही कठिनाइयां होने लगेंगी। उदाहरण के लिये 'अहोबल' का ग्रन्थ लो। यदि किसी भी प्रकार से हमने अहोबल के गले से पाश्चात्य आंदोलन सम्बन्ध बांध भी दिए तो उसके रागों को छोड़ते हुए, हमें ही ऐतराज होगा। यदि ग्रहण भी किये तो इस तरह के स्वरों से राग विकृत हो जावेंगे और यह प्रवाद फैलेगा कि वह इसी प्रकार अन्ट-सन्ट राग गाता होगा। ऐसे प्रवाद से हमारे समाज में अहोबल की प्रशंसा तो होगी ही नहीं। पाश्चात्य पंडितों को इस प्रकार का कथन पट जावेगा, क्यों कि उन्हें तो हमारा सम्पूर्ण सङ्गीत ही विक्षिप्ततापूर्ण ज्ञात होता है। परन्तु पाश्चात्यों को केवल गणित के प्रमाण देकर खुश करने की अपेक्षा क्या अपने देशवासियों को उनके सर्व-सम्मत राग रूपों से संतुष्ट करना अधिक अच्छा नहीं है? हमारे सङ्गीत को पाश्चिमात्य देश स्वीकार करेंगे, इस दुराशा को पूर्ण होने में सम्भवतः अभी अनेक युगों का समय लगेगा। ग्रन्थों की श्रुति कायम करते समय हमारे वर्तमान बिद्वानों ने जो बुद्धि खर्च की है, उसे देखकर हमें इन विद्वानों की विद्वता पर गर्व अवश्य होता है, परन्तु बेचारे ग्रन्थकारों पर दया भी आती है।

प्रश्नः—यह सब आप हमें दिखाने वाले हैं न?

उत्तरः—वैसा करना ही पड़ेगा, नहीं तो आजकल चलने वाली चर्चा तुम कैसे समझ सकोगे, परन्तु मैं केवल प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मतों पर ही अपने तर्क बताऊँगा। चाहे हमें वे मत पसन्द नहीं आते हों, परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि वह व्यक्ति जिसने अपना मत प्रकट किया है, हमारे जैसा ही हृदय से सङ्गीत की उन्नति चाहने वाला सुशिक्षित व्यक्ति होगा। यदि किसी-किसी मुद्दे पर उसके और हमारे सैद्धांतिक मतभेद हैं तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। हमें सदैव समझना चाहिये कि वह हमारा सङ्गीत-बन्धु है। अब पहिले अहोबल के शुद्ध स्वरों को देखो। समझ लो कि तुम्हारे सम्मुख एक वीणा है, जिसके बाज का तार (ध्वन्यवच्छिन्न) ३६ इंच लंबा है। यह तुम जानते ही हो कि इस तार को छेड़ने से घोड़ी से मेरु तक की लंबाई का नाद निकलेगा। अब पं० अहोबल कहता है कि ऐसे तार के ठीक मध्य भाग में (यदि कोई परदा स्थापित करे तो उस पर) तार षड्ज निकलेगा।

प्रश्नः—अब अच्छी तरह समझ में आ गया। हमारे सितार पर दूसरा तार षड्ज का है, जिसे जोड़ का तार कहते हैं, इसे मध्यम के परदे पर दबाने से हमें तार षड्ज निश्चय ही प्राप्त होता।

उत्तरः—आगे अहोबल का कथन है "उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत्"। इसका अर्थ इस प्रकार है—"मेरु व तार सां के ठीक बीच का स्थान ही शुद्ध मध्यम का स्थान है।" उसका यह कथन बिल्कुल यथार्थ है। यदि तुम अपनी वीणा पर मध्यम का स्थान जांचकर देखो तो तुम्हें भी यही अनुभव होगा। ये स्थान, तार की लम्बाई से जांच कर देखने का प्रसंग न आने से हमारे गुणीजनों का इस तरफ लक्ष्य भी नहीं रहा था, परन्तु इस तथ्य पर अहोबल का ध्यान पहुंचा, इस विषय में उसकी प्रशंसा की जानी चाहिये। मध्यम का स्थान कायम करने के बाद अहोबल पंचम की ओर बढ़ता है। वह कहता है कि "त्रिभागात्मकवीणायां पंचमःस्यात्तदग्रिमे" पूरे

तार के यदि तीन समान भाग किए जावें तो पहिले भाग के अन्त में शुद्ध पंचम स्वर आवेगा। अहोबल का यह कथन भी बिलकुल ठीक है।

प्रश्नः—तो फिर ऐसा कहना चाहिये कि अहोबल के शुद्ध सा, म, प, स्वरों के विषय में सर्वत्र एक मत है।

उत्तरः—हां, यह कथन ग़लत नहीं है। और भी इसके दो स्वरों के स्थानों के विषय में समाज में मतभेद नहीं है। वे स्वर हैं "शुद्ध ग" व शुद्ध नी" इनके विषय में ग्रन्थकार कहता है कि—"षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्" "षड्ज व पंचम के ठीक बीच में" "शुद्ध गांधार" स्वर आवेगा। यह हिंदुस्तानी पद्धति का कोमल ग है। यह प्रत्यक्ष प्रयोग करके तुम जान सकते हो।

प्रश्नः—तो फिर मेरु से १८ इंच पर तार सां, १२ इंच पर शुद्ध प, ९ इंच पर शुद्ध म, व ६ इंच पर शुद्ध ग, (कोमल ग) का स्थान कहा जावेगा।

उत्तरः—तुम बिलकुल ठीक समझे। अब शुद्ध निषाद को देखो—तत्र (सपयोः) अंशद्वयसंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत्" तार सां व शुद्ध प के बीच के अन्तर के तीन भाग कर, दो भाग पंचम की ओर के छोड़ देने पर "शुद्ध निषाद" का स्थान आता है।

प्रश्नः—शुद्ध प व तार सां का अन्तर ६ इंच है। अर्थात् "शुद्ध निषाद" पंचम से आगे ४ इंच पर आवेगा, ऐसा ही है न ?

उत्तरः—यह भी तुम समझ गये। इसमें इस समय हमें सां, म, प, ग, नी, स्वर-स्थान उत्तम रूप से मिल रहे हैं। अहोबल के इन स्वरों के शुद्ध स्थानों के विषय में कहीं पर भी विवाद नहीं है। यदि तुम प्रत्यक्ष प्रयोग कर देखो, तो तुम्हें ये स्वर प्राप्त होंगे। इनमें शुद्ध ग, नी, स्वर तुम्हारी हिन्दुस्थानी पद्धति के कोमल ग, नी, होंगे। ये ही स्वर दक्षिण के साधारण ग व कैशिक नी ठहरेंगे।

प्रश्नः—अच्छा, अहोबल ने अपने स्वरों का संबन्ध किस नियम से कायम किया होगा ?

उत्तरः—वह स्वतः अपना नियम बताता है

षड्जपंचमभावेन षड्जे ज्ञेयाः स्वरा बुधैः।
गनिभावेन गांधारे मसभावेन मध्यमे॥

यह नियम समझने के पूर्व Blasserna साहब के ग्रन्थ के एक दो उद्धरण तुम्हें पढ़कर सुनाये देता हूँ। इसकी मदद से तुम शीघ्र ही समझ जाओगेः—

The Greek Musical Scale was developed by successive fifths. Raising a note to its fifth signifies multiplying its number of vibrations by $\frac{3}{2}$. This principle was rigorously maintained by the Greeks; rigorously because the fourth of which they made use from the very beginning is only the fifth below the fundamental note raised an octave. To make the tracing out of these

musical ideas clearer, recourse will be had to our modern nomenclature making the supposition that our scale is already known to the reader, calling the fundamental note C, and the successive notes of our scale D, E, F, G, A, B, C, with the terms sharps and flats for the intermediate notes as is done in our modern music. In this scale the first note, the C, represents the fundamental note, the others are successively the second, the third, the fourth, the fifth, the sixth, the seventh, and the octave, according to the position which they occupy in the musical scale.

If the C be taken as a point of departure, its fifth is G, and its fifth below is F. If this last note be raised an octave, so as to bring it nearer to the other notes, and if the octave of C be added also, the following four notes are obtained:—

C, F, G, C with ratios 1, $\frac{4}{3}$, $\frac{3}{2}$, 2.

Progress by fifths up and down can be further continued. The fifth of G is D, and if it be lowered an octave, its musical ratio will be $\frac{9}{8}$. The fifth below F is Bb, whence its musical ratio when raised an octave is $\frac{16}{9}$. We have thus the following scale—C, D, F, G, Bb, C which is nothing more than a succession of fifths. all transposed into the same octave in the following way:—Bb, F, C, G, D.

× × ×

But the scale can be continued further by successive fifths. Omitting, as the Greeks did, the fifth below Bb, and adding instead three successive fifths upwards we shall have A as the fifth of D, and E as the fifth of A; and finally B as the fifth of E. The ratios of these when brought into the same octave will be $\frac{27}{16}$, $\frac{81}{64}$, $\frac{243}{128}$ and thus the scale is C, D, E, F, G, A, B, C with the ratios, 1, $\frac{9}{8}$, $\frac{81}{64}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{3}{2}$, $\frac{243}{128}$, 2. The first and second of the last three fifths, the A and the E, were introduced by Terpandro, the last, the B, by Pythagoras, whence the Greek scale still bears the name of the Pythagorean Scale.

× × ×

The Pythagorean Scale held almost exclusive sway in Greece. However, in the last century before the christian era' that is to say, duriug the peroid of Greek decline in politics and

art, many attempts at modifying it are found. Thus for example, they divided the interval between the notes corresponding to our C and D into two parts, introducing a note in the middle. At last they went so far as to again divide these intervals in two, thus introducing the quarter tone which we look upon as discordant. Others again introduced various intervals founded for the most part rather on theoretical speculations than on artistic sentiment. All these attempts have left no trace behind them and therefore are of no importance. But the Pythagorean scale passed from Greece to Italy, where it held sovereign sway up to the sixteenth century, at which epoch began its slow and successive transformation into our two musical scales.

It ought to be added that the Greeks, in order to increase the musical resources of their scale, also formed from it several different scales, which are distinguished from the first only by the point of departure. The law of formation was very simple; in fact suppose the scale is written thus:—C, D, E, F, G, A, B, C. Any note whatever may be taken as the starting point and the scale may be written, for example, thus:—E, F, G, A, C, D, E; or A, B, C, D, E, F, G, A &c. It is evident that seven scales in all can be formed in this way, which were not all used by the Greeks at different epochs, but which were all possible. A musical piece founded on one or other of them must evidently have had a distinctive character; and it is this respect, in the blending of shades, that Greek melody must be considered as more rich than ours which is subject to far more rigid rules."

प्रश्न—अब हम "षड्ज पंचमभाव" अच्छी तरह समझ गये। यह उद्धरण बहुत मजेदार रहा। हमारे सङ्गीत पर इससे कुछ कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है क्या ?

उत्तर—पड़ता है, इसीलिये मैंने तुम्हें यह पढ़कर सुनाया है। अस्तु, अब अहोबल के अन्य श्लोकों का अर्थ लगाने के पहिले एक महत्वपूर्ण बात पर हम विचार करेंगे। हमारे श्रुति, स्वर स्थापित करने वाले एक विद्वान ने स्वतः अपने विचार लगभग दो वर्ष हुए एक छोटी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये हैं। इस पुस्तक में लेखक ने संस्कृत ग्रंथकारों की प्रसिद्ध श्रुतियों व उनके स्वरों की स्पष्टता पाश्चात्य आंदोलन संख्या से व तार की भिन्न-भिन्न लम्बाई से की हैं। इस प्रकार से स्पष्ट लिखने की शैली अपनी ओर कुछ नवीन ही है। अतः उस पुस्तक की बहुत प्रसिद्धि व मान हुआ, और ऐसा होना उचित भी था।

कुछ उसके मत ग्राह्य नहीं हुए, परन्तु उसके लिखने की पद्धति बहुत पसन्द की गई, यह कोई भी कह सकता है। उस पुस्तक के लिखे जाने से सङ्गीत में रुचि लेने वाले विद्वानों में अपने आप खलबली मच गई। सौभाग्य से उस विद्वान ने अपने संपूर्ण आधार उस पुस्तक में क्रमवार बता दिये हैं। इससे पाठकों को यह जानने का कार्य बहुत सरल हो गया है कि उसने किस ग्रन्थ का कौनसा भाग ग्रहण किया है और वह भाग उसने ठीक-ठीक समझा है या नहीं समझा।

प्रश्न—उसने श्रुति स्वर-रचना के लिये किन ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया है?

उत्तर—उसके मुख्य सिद्धांत राग विबोध व पारिजात इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार पर बने हैं। 'रत्नाकर' की श्रुति-रचना तो तुमने देखी ही है। यह स्पष्ट दिखाई देने योग्य है कि उसकी मदद से स्वर-रचना करना संभव नहीं है। यह कहना कि शार्ङ्गदेव प्रचलित स्वरों में गाता-बजाता था, इसलिये उसका सप्तक 'बिलावल' या 'काफी' अथवा 'मुखारी' का समझना चाहिये, शोभनीय नहीं होगा। इसमें आश्चर्य नहीं कि उस विद्वान ने यही मान रखा होगा कि प्रत्येक सिद्धान्त ग्रन्थ की उक्ति द्वारा सिद्ध होना चाहिये। ऐसा आधार रत्नाकर से प्राप्त न हो सकने के कारण उसने अपना कार्य सोमनाथ व अहोबल की मदद से पूरा किया। किन्तु इसमें तुम्हें कौनसी बात विशेष ध्यान देने के योग्य दिखाई देती है, बता सकते हो?

प्रश्न—हम ऐसा समझे हैं कि इस विद्वान ने श्रुतियां व उन पर स्वरों की स्थापना शार्ङ्गदेव की सहायता से नहीं की है। यह रचना वह सोमनाथ व अहोबल के ग्रन्थों की मदद से कर सका है। परन्तु क्यों गुरूजी! ये दोनों ग्रन्थकार क्या भिन्न-भिन्न पद्धति के नहीं थे? एक दक्षिण का पंडित व दूसरा उत्तर का पंडित कहा जाता है न?

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न बिलकुल ठीक है। अब तुम आगे देखोगे कि इन दो भिन्न-भिन्न पद्धति के ग्रन्थकारों का मेल करने के प्रयत्न में अपने पंडित को बड़ी उलझन उपस्थित हुई है।

प्रश्न—तो फिर इसकी विचार-धारा हमें बताइये?

उत्तर—बताता हूं। परन्तु मैं तो उसके लेख पर संभावित तर्क ही कह सकता हूं। हो सकता है, कहीं-कहीं ये तर्क उचित न हों। जिस तर्क से उसके प्रति अन्याय होता हो, वहां पर उस तर्क को मेरी भूल ही समझना चाहिये। तो अब सुनो:—

मुझे सर्व प्रथम एक संदेह यह होता है कि जिस समय इस विद्वान ने अपनी पुस्तक लिखी उस समय उसकी दृष्टि में यह बात नहीं आ सकी होगी कि सोमनाथ व अहोबल बिलकुल भिन्न पद्धति के ग्रंथकार थे। उन दोनों पंडितों ने तीव्र रि, ध स्वर बताये हैं; यह भी भूल का एक कारण हो सकता है। अपने बिलावट थाट में रि ध तीव्र माने हैं यह तो प्रसिद्ध बात थी तथा इन दोनों स्वरों की आंदोलन संख्या २७०, तथा ४०५ क्रमशः होती है। यह भी उसे मालूम होगा ही कि पाश्चात् सङ्गीत में Major, Minor,

व Semi ये स्वरांतर प्रसिद्ध ही हैं। हमारे यहां भी उसे वृहदन्तर, मध्यान्तर, व क्षुद्रांतर भी दिखायी दिये होंगे। इसलिये उसका यह समझ बैठना स्वाभाविक है कि हमारे तीव्र रि, ध स्वर ही उन दोनों ग्रंथों के तीव्र होंगे। ऐसा ही इस विद्वान ने समझा है। क्यों कि तीव्र रि, ध स्वरों के आंदोलन उसने ठीक २७०, व ४५० ही निश्चित किये हैं। ये स्वर अहोबल के षड्ज पंचमभाव से सहज ही निकाले जा सकते थे, परन्तु इन तीव्र रि ध स्वरों को अहोबल ने विकृत मानकर उनके स्थान शुद्ध स्वरों से एक श्रुति ऊँचे माने हैं, इसीलिये इन शुद्ध स्वरों को तीव्र रि, ध से नीचा मानने की परम्परा है। तीव्र रि, व ध स्वर चार-चार श्रुतियों के माने गये हैं। व उनका (Major) माप $\frac{9}{8}$ के प्रमाण से ठीक ही मालूम होता है। तीन श्रुति का अर्थात् Minor नाप समझने के लिये, बिलावल थाट के रि ग के माप का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। पाश्चात्य पंडितों का यह माप $\frac{10}{9}$ के प्रमाण का है। क्योंकि वह $\frac{300}{1} \times \frac{1}{270} = \frac{10}{9}$ इस प्रकार निकलता है। (दो स्वरों का संबन्ध, उनकी आंदोलन संख्या के भागाकार के रूप में कहने का प्रचार प्रसिद्ध ही है।) $\frac{10}{9}$ माप को प्राप्त कर इसका उपयोग षड्ज के आगे किया तो तीन श्रुति का अर्थात् शुद्ध 'री' निकल आता है। जैसे—$\frac{240}{1} \times \frac{10}{9} = \frac{800}{3} = 266\frac{2}{1}$ इसी प्रकार पंचम के आगे $\frac{360}{1} \times \frac{10}{9} = 400$ का धैवत निकल आता है। इसलिये ऐसे दो स्वर हमारे संस्कृत ग्रन्थों से निकाले जा सके। फिर हमारे प्राचीन पंडितों की प्रशंसा होनी चाहिये, यह समझना भी उसके लिए संभव था।

प्रश्न— परन्तु फिर (Minor) माप वह कैसे लाया ?

उत्तर—बताता हूँ। यह कहना पड़ेगा कि माप वह कठिन प्रयत्न से ही ला सका। वह कहता है कि "तम्बूरे का षड्ज का तार बजने पर कुशल श्रोताओं को सूक्ष्म रूप से तीव्र गांधार सुनाई देता है, तथा इसी प्रकार पंचम के तार पर रिषभ सुनाई देता है।" यह अनुभव सिद्ध बात है। अब इसमें तर्क लगाया कि जब यह अनुभव आज हमें होता है तो अहोबल और सोमनाथ जैसे महान् व्यक्तियों को क्या नहीं हुआ होगा ? प्रमाण एकत्र करने का बोझ इस बात को अस्वीकार करने वालों पर रहेगा। तो भी इस विवाद का अन्तिम निर्णय करने के लिए, मैं कहता हूँ कि वे सूक्ष्म स्वर (जिन्हें योरोपीय पंडित Harmonics कहते हैं) सोमनाथ ने अवश्य सुने होंगे। इन स्वरों को उसने 'स्वयंभू स्वर' कहा है। निःसंदेह यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने अपने ग्रंथ में एक अक्षर भी इस बात पर नहीं लिखा है कि षड्ज से गांधार व पंचम से रिषभ सुनाई देता है। परन्तु जिसे स्वयंभू यानी अपने आप पैदा होने वाले स्वर का कुछ भी बोध होगा, उसे इतने ही संकेत से अपने आप निकलने वाले स्वर Harmonics का भेद सहज में ही समझ में आ जावेगा। Harmonics के विषय में आगे मैं और भी कुछ कहने वाला हूँ।

प्रश्न—इसकी पद्धति ध्यान में नहीं आई।

उत्तर—यह एक दम ध्यान में आवेगी भी नहीं। उस 'स्वयंभू' की प्रार्थना करने की रीति ही भिन्न है।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—षड्ज से जो गांधार सुनाई देता है, वह तीव्र ग होता है और उसकी

आंदोलन संख्या ३०० होती है। यह तथ्य पाश्चिमात्य पण्डितों ने सिद्ध कर दिया है इसलिए यह गांधार, 'स्वयंभू' के मार्फत लाना पड़ेगा।

प्रश्न—परन्तु यह होगा कैसे ? अहोबल का षड्ज पंचम-भाव लगाकर देखना चाहिए।

उत्तर—तुम्हीं लगाकर देखो वह कैसे आता है ?

प्रश्न—तो फिर देखिए ! तीव्र धैवत को सा मानकर षड्ज पंचम-भाव लगाया अर्थात् $\frac{405}{1} \times \frac{3}{2} = \frac{1215}{2} = 607\frac{1}{2}$ का तार ग आवेगा, उसमें से एक सप्तक कम किया तो ये $303\frac{3}{4}$ आंदोलन का ग आवेगा। ठीक है न ? यह तो सचमुच कठिनाई है, फिर 'स्वयंभू' का उपयोग ?

उत्तर—यहां यह कल्पना की जावेगी कि सोमनाथ, अहोबल के स्वयंभू की आवश्यकता हो तो Harmonics अथवा स्वयंभू ग पकड़कर $303\frac{3}{4}$ के ग को दुरुस्त करलो। एक बार वह तीन सौ आंदोलन का ग लोगों को स्वीकृत हुआ कि फिर संपूर्ण स्वर-पंक्ति का मिलान हो जावेगा। मैं तो उसके सम्पूर्ण तर्क बताता जा रहा हूँ। ठीक क्या है, यह भगवान जाने।

प्रश्न—परन्तु क्या यह विचारधारा लोगों को पसन्द आई ?

उत्तर—नहीं ! एक दूसरे लेखक ने मासिक पत्रों में लेख लिखकर सिद्ध किया कि 'स्वयंभू' का अर्थ Harmonics नहीं, सोमनाथ व अहोबल की पद्धति भिन्न हैं, उनके शुद्ध स्वर, उक्त पण्डित के निश्चित स्वर नहीं हैं, आदि। इस लेखक का कथन ठीक भी था।

प्रश्न—अरे रे ! फिर उन श्रुति-पण्डित ने क्या किया ?

उत्तर—वह बुद्धिमान तो था ही। कहावत है कि "विद्वान की परीक्षा कठिनाई में होती है।" अड़चन आते ही उसने अपना मार्ग बदल दिया। सोमनाथ और अहोबल की जो एकता थी, उसे तोड़कर अलग-अलग कर दिया। अहोबल की जिम्मेदारी एक अन्य पण्डित ने लेली तथा उसके स्वर भिन्न रूप से स्थापित कर दिए गए।

प्रश्न—और पहिले जो बहुत कुछ प्रकाशित किया था उसका क्या हुआ ?

उत्तर—वह सब गप्प शार्ङ्गदेव के आधीन करदी गई।

प्रश्न—आप यह क्या कहते हैं ? इस प्रकरण का शार्ङ्गदेव से तो कोई सबन्ध ही नहीं था न ?

उत्तर—विवश होकर ऐसा करना पड़ा। रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमखी पुण्डरीक, आदि पण्डित तो इसके पात्र होते ही नहीं, क्यों कि इन्होंने अपने स्वर वीणा के परदों से बताए हैं, और उनका प्रचार अब भी दक्षिण में है। अब बाकी बचा शार्ङ्गदेव अतः उसके मत्थे इसे मढ़ना ठीक ही था।

प्रश्न—परन्तु उसने तो स्वयंभू स्वरों के विषय में कुछ भी नहीं लिखा ?

उत्तर—किन्तु उसने "अणुरणनात्मक: स्वर:" इस प्रकार स्वरों की व्याख्या तो अङ्गीकार की थी, अत: वह भी थोड़ा बहुत उत्तरदायी होगया। परन्तु भाइयो! इस विषय पर आगे श्रुतियों पर विचार करते समय थोड़ा और भी बोलना पड़ेगा। अत: अब यहीं ठहर कर पारिजात के श्लोकों का विचार ही आगे बढ़ावें, क्या वह ठीक नहीं होगा?

प्रश्न—यह हमने अपने ध्यान में रख लिया है कि अहोबल का स्पष्टीकरण अब स्वतंत्र रूप से किया जा चुका है। ऐसा ही आपने हमें सुझाया था। परन्तु जरा ठहरिये! एक शंका मनमें उत्पन्न हुई है, उसका भी समाधान करलें। इस (पूर्व चर्चा से सम्बन्धित) पण्डित ने शार्ङ्गदेव को जो स्वर सप्तक सोंपा, उस थाट का क्या नाम दिया है?

उत्तर—उसने उसे काफी थाट बताया है।

प्रश्न—काफी! यह कैसे हुआ? काफी थाट में रे, ध, तीव्र होते हैं न?

उत्तर—हमारे मत से व अहोबल, लोचन आदि के मत से तीव्र ही होते हैं। इसी प्रकार उत्तर के बड़े-बड़े गायकों के मत से भी ये स्वर तीव्र ही माने जाते हैं। यह मुझे मालूम है, परन्तु यह "शार्ङ्गदेवी काफी" है। ऐसा मानने में क्या हानि है? तुम्हारी काफी "अहोबली काफी" होगी। तो भी यहां इस पण्डित की एक नवीन खोज मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करूँगा। यह कहता है कि उसके गायक काफी राग में तीन-तीन श्रुतियों के रे, ध का ही प्रयोग करते हैं। उसका यह कथन निस्संदेह आश्चर्यजनक है, परन्तु एकाध गायक ने गाने के लिए उसके ऐसे ही स्वर पसन्द किये, तो वहां हम क्या कर सकेंगे हमारे लिये तो अपने नियम से चलना ही पर्याप्त है।

प्रश्न—अच्छा, उसने शार्ङ्गदेव के शुद्ध थाट का नाम काफी कहां से दिया? क्या रत्नाकर में बताया गया है

उत्तर—मैं समझता हूं कि उसने यह नाम या तो रे–ग तथा ध नि का अर्धांतर देखकर दिया होगा या लक्ष्यसंगीतकार द्वारा एक स्थल पर संदिग्ध रूप से इस नाम को प्रयुक्त देखकर उसने संदेह में पड़कर स्वीकार किया होगा। इसका कारण उसकी समझ है। यह सहज में दिखाई दे सकता है कि लक्ष्यसंगीतकार ने अपने काफी थाट के रागों में तीव्र रे ध स्वर ही बताये हैं। उसने बीच-बीच में इस थाट को "हरप्रिया" नाम से भी संबोधित किया है। हरप्रिया (दक्षिणी थाट) में भी रे ध स्वर तीव्र माने गये हैं तथा उन्हीं की मदद से संपूर्ण रागों की व्यवस्था की गई है। यह सब सहज में दिखाई दे सकता है। यही पद्धति मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ। इस पद्धति में थाटों को मूर्च्छना से उत्पन्न नहीं किया गया।

प्रश्न—चतुर पंडित ने "काफी" नाम का प्रयोग संदिग्ध स्थल पर किस प्रकार किया है?

उत्तर—चतुर पंडित ने अपनी सुविधा के दसों थाट बताकर आगे इस प्रकार कहा है:—

"शक्या नेतुं मेलसंख्या तत्रेषन्न्यूनतामसौ ।
तदूनत्वं तु रचनाकाठिन्याधिक्यमावहेत् ॥
सरिगमपधाख्येषु शुद्धस्वरेषु केवलम् ॥
प्रत्येकं षड्जभावेन कल्पितेषु यथाक्रमम् ॥
बिलावली तथा काफी भैरवी यमनोऽप्यसौ ।
खंमाज असावरी चेत्येते मेलाः स्युरंजसा ॥
शुद्धविकृतभिद्द्वारा ह्येतेषु स्यात् सपाटवम् ।
क्षमं समावेशयितुमस्मत्संगीतमुत्तमम् ॥
कदाचिदेवमेवास्मत्पंडितैः स्युः प्रकल्पिताः ॥
केवलं मुख्यषड्रागा येनकेनापि वर्त्मना ॥"

× × × ×

यह स्पष्ट ही है कि लक्ष्यसंगीतकार की रचना मुख्य छः रागों की नहीं है । बिलावल थाट के स्वरांतर कायम मानकर रिषभ से रिषभ तक जो सप्तक बनेगा उसे छः रागों की कल्पना में 'काफी' नाम देना सुविधापूर्ण होगा; यह उसने काल्पनिक रूप सुझाया है । यही उस बेचारे पंडित ने सत्य मानकर घोषित कर दिया । ३, २, ४, ४, ३, २, ४, यह रिषभ से रिषभ तक का सप्तक कहा गया है, तो इसमें स्वरांतर ग्रंथकार के शुद्ध थाट के समझना ही अधिक संभव है । ऐसे सप्तक को लक्ष्यसङ्गीतकार ने "काफी" नाम दिया तो उस पंडित को पसन्द आना भी संभव है । इसमें मजेदार बात तो हम यह सुनते हैं कि उस पंडित की मदद करने वाले गायक-वादक तीन श्रुति के रि, ध, 'काफी' थाट के रागों में गाने को तैयार हैं । यह अभी तक नहीं समझा जा सका कि वे तीव्र रि, ध तथा कोमल ग, नि वाले रागों के थाटों को क्या नाम देने वाले हैं । आज हमारा विषय 'रत्नाकर' पर विचार करना नहीं है, अतः अभी यह उलझन हमारे लिये नहीं है । हमें तो अभी इतना ही देखना था कि सोमनाथ व अहोबल के आधार पर स्थापित कही जाने वाली रचना इन दोनों में से किसी की नहीं है । अब अहोबल के स्पष्टीकरण को जिन्होंने अङ्गीकार किया है, उनका मत देखना है न ?

प्रश्न--जी हां, अब वही कहिये । "सा, ग, म, प, नी" स्वर निर्विवाद हैं, यह आपने कहा ही था ।

उत्तर--यह तुमने अच्छा ध्यान रखा । अब तुम्हें यह बात और समझनी है कि हम जिन्हें तीव्र रि ध स्वर कहते हैं वे अहोबल के तीव्र रि ध नहीं थे । अहोबल अपना शुद्ध रिषभ इस प्रकार बताता है:—

"सपयोः पूर्वभागेच स्थापनीयोऽथ रिस्वरः ।"

इस श्लोक पंक्ति का क्या अर्थ करोगे ? बताओ तो ?

प्रश्न—इसका सीधा अर्थ तो इस प्रकार होगा । षड्ज व पंचम स्वर के अन्तर के पूर्व भाग में रिषभ स्वर स्थापित होगा ! पूर्व व उत्तर ये दो भाग होंगे ?

उत्तर ठीक है, परन्तु 'पूर्व भाग' का अर्थ 'पूर्व भागे के सिरे पर' यह तो बनेगा ही नहीं, क्योंकि इस रीति से रिषभ स्वर मेरु से ६ इञ्च दूरी पर आवेगा।

प्रश्न—अर्थात् शुद्ध रे व शुद्ध ग एक ही स्थान पर आजाते हैं। ठीक है न? परन्तु यदि "पूर्व भाग" का अर्थ "पूर्व भाग के मध्य स्थान में" ऐसा ग्रहण किया जावे तो?

उत्तर—नहीं, इस प्रकार का अर्थ जँचता भी नहीं है। तुम्हारे कहने जैसा अर्थ पहिले भी कुछ विद्वान ग्रहण कर चुके हैं। सन् १८९३ ई० में श्रीमन्त गायकवाड़ के शिक्षा विभाग ने सर्व प्रथम 'सङ्गीत पारिजात' का गुजराती में अनुवाद प्रकाशित किया था। यह अनुवाद कै० वे० कृष्ण शास्त्री सूरतकर ने किया था। इस विद्वान ने 'पूर्व भाग' का अर्थ 'पूर्व भाग का मध्य भाग' ही किया था। मेरु से तीन इन्च पर रिषभ बहुत असुविधापूर्ण होता है, यह हमारे विद्वान कहते हैं और मुझे भी यह कथन ठीक दिखाई पड़ता है, अतः अहोबल का यह अर्थ नहीं रहा होगा।

प्रश्न—तो फिर हमारे इस विद्वान (पूर्व आलोचित श्रुति स्वर-आंदोलन को शास्त्रीय सिद्धकर्त्ता सज्जन) ने कौन सा अर्थ निकाला?

उसे तो अहोबल की भाषा से ही पाश्चात्य पण्डितों के समस्त स्वर उत्पन्न कर दिखाने की इच्छा थी, यह उसके पहेली बुझाने जैसी व्याख्या के क्रम से ही ज्ञात हो जाता है। उसने एक युक्ति इस प्रकार लगाई। 'पूर्वभागे' इस पद से यह समझना चाहिए कि अहोबल की इच्छा पूर्व भाग, मध्य भाग व उत्तर भाग, इस प्रकार तीन विभाग करने की थी। पाठकों को यह स्वीकार होने पर फिर अपने आप ही 'पूर्वभागे' अर्थात् मेरु से चार इञ्च पर शुद्ध रिषभ निश्चित हो जायगा। वह रिषभ २७० आंदोलन का ही होगा, क्योंकि वह ३२ इञ्च के तार की ध्वनि है। यदि इस विचारधारा का कोई आधार पूछने लगे तो यह कहा जा सकता है कि अहोबल ने आगे चल कर अपने श्लोकों में 'त्रिभागात्मक वीणायां' 'भागत्रयान्विते मध्ये' आदि विशेषण बार-बार प्रयुक्त किए हैं। यहां पर भी उसके हृदय में इसी प्रकार तीन भाग करने की भावना रही थी, परन्तु उसे स्पष्ट रूप से लिखना भूल गया। यहां उसे इस प्रकार कहना चाहिये था:—

"भागत्रयान्विते मध्ये षड्जपंचमयोः पुनः।
पूर्वभागे स्वरः स्थाप्यः शुद्धरिर्मर्मवेदिभिः॥

प्रश्न—हमें तो यह अर्थ सन्तोषजनक नहीं मालूम होता। जिस लेखक ने ५ जगह 'त्रिभागात्मक' आदि विशेषण याद रख कर लगाए हैं, वह लेखक केवल पहिली जगह में ही भूल गया होगा, यह कैसे कहा जा सकता है? यह बात तो उलटे स्वाभाविक कल्पना के विपरीत हो जाती है। पांच स्थानों पर स्पष्ट बता कर यहां जिस पद को उसने छोड़ा है, उसका अभीष्ट पद ही नहीं था; क्या यह कथन उचित नहीं होगा? उसके श्लोक में हमें तो कहीं पर भी त्रुटि नहीं दिखाई देती।

उत्तर—तुम्हारे इस कथन का मुझे तनिक भी खेद नहीं है। पण्डित की जो समझ में आया वह उसने बताया और तुम्हारी जो समझ में आवे, वह तुम बताओ। मैं कोरी

काल्पनिकता का बिलकुल पक्षपाती नहीं हूं। यह मैं कैसे कह सकता हूं कि तुम्हारा कथन न्यायपूर्ण नहीं है? तुम्हारे इस मत के समर्थक और भी एक विद्वान मुझे मिल चुके हैं।

प्रश्न—तो फिर यह और भी अच्छा हुआ तथा हमें यह सुनकर बड़ा संतोष भी प्राप्त हुआ। अच्छा, इस विद्वान ने इस बारे में क्या कहा है?

उत्तर—उसने स्पष्ट लिखकर प्रकाशित करा दिया है कि अहोबल को शुद्ध रे, ध स्वरों का स्थान निश्चित करना ही नहीं आया। चाहे इस विद्वान का मत हमें ग्राह्य न हो, परन्तु उसका यह तर्क तो मुझे भी ठीक मालूम पड़ा। केवल इतना ही प्रश्न रह जाता है कि अहोबल को यह स्वरस्थान क़ायम करना नहीं आया, अथवा उसने यह स्वरस्थान क़ायम करने का कार्य खास तौर से जानबूझ कर टाल दिया। इधर हमारे इस पंडित की स्थिति फिर कुछ विचित्र हो गई। उसे हिन्दुस्थानी सङ्गीत का तीव्र रिषभ लाना तो आवश्यक था ही, परन्तु उसे वह लाता कैसे? उसका आंदोलन आया २७० और मेरु से उसका अन्तर हुआ चार इञ्च।

प्रश्न—उसकी कठिनाई हम ठीक से नहीं समझ पाये? अहोबल तो स्वतः ही कह चुका है कि "षड्ज पंचम-भाव" से मेरे स्वर समझ लिये जावें।

उत्तर—यह ठीक है, परन्तु इस मार्ग में उसे दूरदर्शिता से आगे आने वाली कठिनाई दिखाई दी।

प्रश्न—कठिनाई होगी कैसे गुरु जी! सा से प, प से री और यही एक सप्तक नीचे आने पर सुन्दर रिषभ मिल जाता है। इससे पांचवां तीव्र ध, और इस तीव्र धैवत से पांचवां तीव्र ग, इसे नीचे के सप्तक में लिया कि "...." ..... परन्तु ठहरिये! दर असल यहां कठिनाई आयेगी ही। जो तीव्र ग यहां आता है वह अहोबल का शुद्ध ग कैसे हो सकता है। यह सप्तक तो बिलावल जैसा हो जाता है। अहोबल के शुद्ध गांधार व निषाद स्वर तो कोमल होने चाहिये। ठीक है न?

उत्तर—लो, तुम गांधार की बात कैसे करते हो? अभी तो धैवत ही कठिनाई उपस्थित करेगा।

प्रश्न—वह कैसे?

उत्तर—अरे भाई! तुम्हारी रीति से आने वाला धैवत ४०५ आंदोलन का तीव्र स्वर आवेगा। यह यहां किसे चाहिए? पंडितों को तो श्रेष्ठ आंख-कान वाला पाश्चात्यों को पसन्द, निचला ४०० का धैवत ही चाहिए। फिर?

प्रश्न—यहां तो अहोबल की व्याख्या चल रही है?

उत्तर—अहोबल कहता है—"सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत्।" कृष्णशास्त्री सीधे-सादे विद्वान थे, उन्होंने इस 'मध्यदेशे' का अर्थ फिर 'मध्यस्थान' करके भूल करदी। मध्यस्थान के धैवत की आंदोलन संख्या तीव्र धैवत से भी ऊपर हो जावेगी। निस्संदेह यह अर्थ गलत है।

प्रश्न—आपका यह कथन सत्य प्रतीत होता है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि शायद यह धैवत, षड्ज पंचम-भाव के नियम का उल्लंघन करेगा ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। यह बहुसम्मत बात है कि हमारे कल्याण, बिलावल आदि रागों का तीव्र धैवत ४०५ आंदोलन का है। यह धैवत २१$\frac{1}{3}$ लम्बे तार की ध्वनि है, यह सरलता से सिद्ध किया जा सकता है। अब बताओ कि बुद्धि चकरा देने वाला प्रसंग आया है या नहीं। तुम हमें बड़ी लम्बी सड़क से चलने को कहकर 'षड्जपंचमभावेन षड्जे ज्ञेयः स्वरा बुधैः"—बताकर अपना धैवत कायम करते हो, परन्तु...

प्रश्न—और यह धैवत जिनका नहीं है वे क्या कहेंगे ?

उत्तर—यदि उन लोगों का पक्ष बलवान होगा तो वे शायद यही कहेंगे कि "यदि ग्रन्थकार ने अपना वर्णन संदिग्ध लिख छोड़ा है तो हमारा किया हुआ अर्थ ही बिना बहस के ग्रहण कर लेना चाहिये। हम तो उसकी (ग्रन्थकार) भलाई व उसके लौकिक बचाव के लिये ही यह अर्थ करते हैं। इसमें उसे शंका करने का अधिकार ही नहीं प्राप्त होता। हमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां पार करनी हैं, अतः इसमें उसे विघ्न उपस्थित न करना ही श्रेयस्कर है। हम तो स्पष्ट कहते हैं कि हमें ४०० आंदोलन का धैवत चाहिये। यह हमारी सलाह है कि इसे अहोबल को चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिये। लिखते समय कुछ भी लिख जाना उसके लिये सरल रहा होगा, परन्तु उसकी कठिनाइयां हल करना कितना मुश्किल होगा, यह भी उसे सोच लेना चाहिये था। 'षड्ज पंचमभाव लगाकर मेरे शुद्ध स्वर निकाल लो! 'कहते हैं न "उठाई जबान और तलवे से लगादी" ४०५ आंदोलन के धैवत से तीव्र ग, तीव्र नी, तीव्र म, ये स्वर हमें जैसे चाहिये वैसे कौन ला देगा ? और जब कि ये स्वर हमें उस प्रकार सुविधा से प्राप्त नहीं होते, तब हम अहोबल का कथन मानेंगे ही क्यों ?"

प्रश्न—परन्तु इसका न्याय कैसे होगा ? थोड़ा देर के लिए पूर्व भाग का तीव्र रिषभ स्वीकार भी कर लें, तो उसका संवादी तीव्र ध ही आयेगा। अब यह कहा जा सकता है कि अहोबल के गांधार, निषाद तीव्र नहीं थे, अतः उसने षड्ज पंचम-भाव तोड़कर जान-बूझकर तार की लंबाई पर अपने शुद्ध ग व नि स्वर बताये होंगे। इन दोनों स्वरों में संवादित्व है ही। हमें तो उसका यह कार्य ठीक ही ज्ञात होता है।

उत्तर—यह तो ठीक है, परन्तु इससे भी मिलान नहीं बैठता।

प्रश्न—किस चीज से मिलान करना है ?

उत्तर—अरे भाई, यह देखो कि ४०५ आन्दोलन का शुद्ध ध स्वीकार करने पर बिहाग, कल्याण, बिलावल आदि अहोबल के रागों के लिये पूर्ण सुविधा का स्वर हो जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति कह देगा। परन्तु शुद्ध सप्तक में इस धैवत की स्थिति पाश्चिमात्य विद्वानों को कैसे समझ में आवेगी ? इसका विचार करना पड़ेगा कि इस धैवत के Siren में ऊपर लगाये हुए Beats आयेंगे ?

प्रश्न—यह चिन्ता अहोबल को क्यों होगी ? उसे Siren का क्या पता ? वह अपनी स्वरसंगति बजायगा ही क्यों ? और उसको Beats अड़चन देंगे कैसे ?

हम तो यह कहेंगे कि हमें Beats आदि न देखकर उसके कथन का सरल अर्थ ही ग्रहण करना उत्तम होगा। अच्छा तो फिर "मध्यदेशे" इस पद का क्या अर्थ लगाया गया ?

उत्तर—बताता हूं। वह भी एक मजेदार बात है। "मध्यदेशे" अर्थात् पंचम व तार षड्ज मध्य के फासले में जहां अपनी सुविधा की जगह हो वहां, परन्तु वह जगह हो मध्य के आस-पास ही, इस प्रकार अर्थ पसन्द किया गया।

प्रश्न—यह सुनकर तो हमें हँसी आती है, मध्य भाग के आस-पास तो उलटा ५०५ आंदोलन का ही धैवत आता है।

उत्तर—ऐसी बात है ? तो फिर इस भाग को छोड़ दो। हमारे पंडित शायद कहेंगे कि हमारा इस विषय में कोई आग्रह नहीं है, चाहो तो मानो, परन्तु हमें तो हमारा ४०० आंदोलन का धैवत लाकर दो। इसी बात पर हमारी कितनी ही महत्वपूर्ण बातें अवलम्बित हैं। यदि यह निर्णय अकेले तुम नहीं कर सकते तब हमें भी अपनी बुद्धि का उपयोग करना उचित है। एक बार ४०० आंदोलन का धैवत हमारे हाथ पड़ जावे फिर हम पाश्चात्य पण्डितों को तत्काल ही चकित कर देंगे। यह सब मैं उस विद्वान के लेख पढ़कर उसके तर्क के रूप में बता रहा हूँ।

प्रश्न—परन्तु यह ४०० आंदोलन का शुद्ध धैवत कानों को न मालूम कैसा लगे, कौन जाने ?

उत्तर—लगेगा, साधारणत: त्रिशंकु जैसा—यह न तो तीव्र ही है न कोमल ही। इसमें भी यह सामान्य श्रोताओं को तो जरा तीव्र की ओर झुका हुआ ही दीख पड़ेगा। इतने पर चाहें तो गायक-वादक अपने कल्याण, बिलावल, छायानट, बिहाग में इसे चला सकते हैं। एक श्रुति का फर्क वहां कौन जांचने बैठेगा, और वह क्या उसे मिलेगा भी ?

प्रश्न—परन्तु गुरु जी ! फिर यह कैसा शास्त्र हुआ ? यह तरीका लोग कैसे पसन्द करेंगे ?

उत्तर—तो इसे रहने दो। यदि कोई युक्ति हो तो तुम्हीं सुझाओ ?

प्रश्न—हमें तो अहोबल का वर्णन ही योग्य दिखाई देता है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हम मुक्त हृदय से अपना सुझाव आपके सामने रखें ?

उत्तर—अवश्य बताओ। यह आज्ञा तो मैं तुम्हें पहिले ही दे चुका हूँ।

प्रश्न—हमारे मत से अहोबल का शुद्ध थाट, हम जिसे मानते हैं, वही काफी थाट है, अर्थात् इसमें रि, ध तीव्र तथा ग, नी स्वर कोमल होंगे।

उत्तर—किस प्रकार ? निराधार कल्पना कोई मानने वाला नहीं है, बताओ देखें ?

प्रश्न—आपने जो अहोबल का नियम षड्ज, पंचमभाव बताया है, उसी आधार से यह सिद्ध होता है।

उत्तर—परन्तु "पूर्व भागे" और "मध्यदेशे" इन पदों का अर्थ तो तर्कपूर्ण होना चाहिए ?

प्रश्न—यह अर्थ इस प्रकार से ठीक हो जाता है, देखिये:—षड्ज व पंचम के बीच के फासले में ही पूर्व भाग व उत्तर भाग करने का अहोबल का कथन है। अर्थात् प्रत्येक ६ इन्च का होगा। आगे "पूर्व भागे" अर्थात् प्रथम ६ इन्च के भाग में षड्ज-पंचम भाव से लाने पर शुद्ध री आवेगा, यह उसने कहा ही है। उसका कथन ठीक ही है। सा, का प, व प का पुनः प। जो तार ऋषभ है, वह मध्य सप्तक में चार इन्च पर आवेगा और यह स्थान पूर्व भाग ही होगा न ? इस 'री' का संवादी तीव्र 'ध' वह भी "प तथा सा" के मध्य देश में ही है।

उत्तर—अर्थात् तुमने इन श्लोकों से इस प्रकार समझा है—

"सपयोः पूर्वभागे षड्जपंचमभावमनुल्लंघ्य यथास्यात्तथा रिस्वरो देयः। सपयोर्मध्यदेशेऽपि षड्जपंचमभावमनुल्लंघ्य यथास्यात्तथा धैवतः स्थाप्यः॥"

इस रीति से बिना किसी अन्य कल्पना के तीव्र रि, ध स्वर प्राप्त हो जाते हैं, एवं "पूर्व भागे" और "मध्य देशे" ये पद भी उत्तम रूप से मिल जाते हैं। यह विचारधारा बड़ी अच्छी दिखाई देती है, परन्तु हमारे विद्वानों को यह कैसे पसन्द आवेगी ? उन्हें सुन्दर तीव्र गांधार चाहिए, वह तुम्हारे ४०५ आंदोलन के धैवत से थोड़ा सा विकृत हो जाता है।

प्रश्न—वह गांधार कैसा और कितना विकृत होगा ?

उत्तर—थोड़ा सा। अहोबल कहता है "मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत्।" ४०५ का धैवत ग्रहण करने पर मेरु से उसका फासला १४$\frac{2}{3}$ इन्च का होता है। इस अन्तर का अर्द्ध भाग ७$\frac{1}{3}$ इंच का होगा तथा इस स्थान पर उत्पन्न होने वाला तीव्र ग १$\frac{1}{4}\frac{9}{3}$ आंदोलन का आवेगा। पाश्चिमात्यों को तो ठीक ३०० आंदोलन का "ग" चाहिए।

प्रश्न—कैसी अद्‌भुत बात है। ४०० आंदोलन का धैवत ग्रहण करते हुए हम ५ आंदोलन छोड़नेको तैयार हैं, और यहां गांधार में एक आंदोलन हमें अड़चन में डाल देगा ? एक आंदोलन से वीणा का स्वर कितना बदलेगा ? केवल एक आंदोलन के लिए ग्रन्थ के सरल अर्थ में परिवर्तन करना कैसे शोभा देगा ? ग्रन्थकार के षड्ज-पंचम भाव का नियम एक तरफ क्यों हटाया जावे ? और अहोबल को इन आंदोलनों की क्या जानकारी रही होगी ?

उत्तर—परन्तु फिर पाश्चात्यों को, आंदोलन या तार की लम्बाई जैसा अपने स्वरों का सुन्दर Prograssions हम किस प्रकार दिखा सकेंगे ?

प्रश्न—थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि हमारा उत्तरदायित्व बिलकुल नहीं है, कि पाश्चात्यों के मत से अपना विधान व्यवस्थित किया जावे। तो फिर हमारी की हुई व्याख्या तर्क सङ्गत होगी या नहीं ?

उत्तर—हां यदि ऐसा मान लें, तब तो तुम्हारी व्याख्या ही सुविधापूर्ण होगी। यह मैं स्वीकार करने को तैयार हूं, कि तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ काफी थाट अहोबल के रागों में कोई रुकावट नहीं डालेगा। परन्तु यह भी सत्य है कि इस ४०५ आंदोलन के धैवत, व तीव्र ग के एक आंदोलन से 'अहोबल' पाश्चात्य दृष्टि से उत्तम गणितज्ञ नहीं माना जा सकेगा।

प्रश्न—तो क्या उसे गणितज्ञ होना ही चाहिए ? क्या पश्चिम में हमारे सङ्गीतज्ञों की ऐसी ख्याति है कि वे सभी गणितज्ञ थे ?

उत्तर—यह तो मैंने कहीं पर नहीं पढ़ा। एक साहेब तो इसके विपरीत इस प्रकार लिखते हैं:—

In strong contrast to the persians, the inhabitants of the Great peninsula appear to have sedulously avoided applying Mathematics to their scales; and though the Indian scales are even more complicated and numerous than the Persian they have been handed down from generation to generation for ages purely by aural tradition. Unfortunately this avoidance of Mathematics has caused the subject of Indian scales to be extremly obscure, and the extraordinary highflown imagery which is used in Indian Treatises on Music renders the unravelling of their system the more difficult. The method for arriving at the actual scales used by musicians is to ascertain the exact length of the subdivisions of the strings which are indicated by the positions of the frets upon the lute-like instrument called the Vina, which has been in universal use for many hundreds of years and to test and compare the notes which are produced by sounding the strings when stopped at such points. The frets are supposed to mark the points at which the strings should be stopped with the finger to get the different notes of the scale; but in practice a native player can always modify the pitch by making his finger overlap the fret more or less and thereby regulate the fret to get the interval which tradition taught him to be the right one. In fact the frets on different instruments vary a considerable degree; even the octave is sometimes too low and sometimes too high; but through examining a number of specimens a rude average has been obtained which seems to indicate a system curiously like the modern European system of twelve notes. But it is clear that this can be only a rough approximate scheme upon which more delicate variations of relative pitch are to be grafted, for the actual system of Indian scales is too complicated to be provided for by a more arrangement of twelve equal semitones.

As in the case of the Persian and Arabic systems the Indian scale does not come within the range of intelligible

record till it is tolerably mature and complete from octave to octave. In order to get a variety of major and minor tones and semitones the scales were in ancient times divided into twenty-two small intervals called "Shrutis" which were a little larger than quartertones. A whole tone contained for shrutis, a three quartertone, three, and a semitone two. By this system a very fair scale has been obtained in which the fourth and fifth were very nearly true and the sixth high;the Pythagorean. In what order the tones and semitones were arranged seems to be doubtful, and in modern music the system of twenty-two shrutis has disappeared and a system of the most extraordinary complexity has taken its place.

इसके आगे इस लेखक ने दक्षिण पद्धति के विषय में लिखा है। वह अप्रासंगिक समझ कर नहीं सुना रहा हूँ।

प्रश्न—एक प्रश्न का उत्तर जानने की उत्कण्ठा हुई है। हमारे इस विद्वान ने अहोबल का शुद्ध धैवत इतने प्रयास से ४०० आन्दोलन का निश्चित किया। तो क्या उसने ४०५ आंदोलन के धैवत को बिलकुल निरुपयोगी समझा है ?

उत्तर—यह तुमने बड़ी अच्छी बात पूछ ली, अन्यथा बड़ा अन्याय हो जाता। उसने ४०५ आन्दोलन के धैवत को अवश्य संग्रह में रखा है, परन्तु उसकी गणना तीव्र धैवत की श्रुतियों में की है।

प्रश्न—कहीं पर इसका उपयोग भी किया ?

उत्तर—यह मैं नहीं कह सकूँगा। क्योंकि इस विद्वान के राग सम्बन्धी विचारों की अभी प्रतीक्षा है। मुझे आशा है कि सम्भवतः इस तीव्र धैवत का उपयोग वह कल्याण, बिहाग, बिलावल आदि रागों में करेगा। परन्तु अहोबल ने अपने ग्रन्थ में आगे चलकर लिखा है कि मेरे रागों में तीव्र रे, ध कभी प्रयुक्त नहीं होते, मैंने कल्याण आदि रागों में केवल शुद्ध रे, ध का ही प्रयोग किया है।*

प्रश्न—तब, फिर कठिनाई उपस्थित होगी ?

उत्तर—४०५ आंदोलन का शुद्ध धैवत मान लेने पर सब बातें ठीक हो जाती हैं, परन्तु वहां भी Siren की रुकावट है। सारांश यह है कि जहां-जहां अहोबल शुद्ध धैवत की आवश्यकता बतावेगा, वहां पर यह विद्वान ४०० आंदोलन के धैवत की व्यवस्था देता रहेगा। फिर चाहे उसके रागों का कुछ भी क्यों न हो ?

प्रश्न—मालूम होता है कि उसके शुद्ध धैवत के कई राग होंगे ?

उत्तर—हैं न ? इनमें कोई-कोई तो बहुत सामान्य व लोकप्रिय भी हैं। परन्तु शास्त्र तो शास्त्र ही है। वह किसी की मुरव्वत करने वाला नहीं। यह विद्वान कहेगा कि यदि शास्त्रसिद्ध कोई बात चाहते हो तो मैं बताऊँ, उस स्वर को अङ्गीकार करना पड़ेगा

* मूल मराठी प्रति में लिखा है कि श्लोक संख्या ४६२–४६६ में अहोबल ने यह बात लिखी है, किंतु "पारिजाति" देखने पर इन श्लोकों में वह अर्थ दिखाई नहीं दिया, अतः मैंने श्लोक संख्या देना उचित नहीं समझा। —अनुवादक

और यदि चाहे जैसे कर्कश चीखने की इच्छा हो तो अपने मतसे चलते जाओ। अहोबल के ग्रंथ में कल्याण, बिलावल, विहाग, छायानट, सोरठ, धनाश्री, देवगिरि, काम्बोदी, शंकराभरण आदि रागों में शुद्ध धैवत का प्रयोग बताया गया है। इन स्थानों पर मैं खुशी से अपना तीव्र ध स्वर ही समझता हूं। मैं स्पष्ट रूप से कहूंगा कि ४०० आंदोलन का धैवत अहोबल के सिर थोपने की मेरी कतई इच्छा नहीं है। मैं तो उसका शुद्ध धैवत (जो ४०५ आन्दोलन का होता है) ही उपयोग में लेता हूं। मैं यह भी कह चुका हूं कि उसके राग उपयोग में लाना मुझे अधिक पसन्द है। अहोबल कहता है कि मेरा तीव्र ग, मेरु व शुद्ध ध के मध्य भाग में स्थित है। यहां उसकी गलती केवल १$\frac{१}{४}$$\frac{७}{८}$ आंदोलन की होती है। मैं समझता हूँ कि अहोबल का यह गांधार मेरु और शुद्ध धैवत के मध्य में ही वीणा पर दिखाई देगा। मैं यह नहीं मानता कि एक आन्दोलन के फर्क से ही परदे के स्थान में दिखाई देनेयोग्य अन्तर हो जावेगा, मैं तो यहभी कहूंगा कि हमारे श्रुतिपंडित भी इतनी गलती कर सकते हैं। परम्परा से प्रचलित गांधार से सभी परिचित हैं और इसी ज्ञान की सहायता से हम तार तथा परदे स्थापित करते हैं। हमारे गायक-वादकों ने किसी जन्म में आंदोलन का नाम भी सुना है? ३०० आंदोलन का गांधार उत्पन्न करने के लिए ४०० आंदोलन का धैवत आग्रह पूर्वक उलटा सीधा उत्पन्न करने की प्रवृति अच्छी नहीं कही जा सकती। इस धैवत से अहोबल के कुछ राग व्यर्थ ही विकृत हो जांयगे और उनका जो कुछ उपयोग आज हम कर रहे हैं, वह भी भविष्य में न हो पायेगा। यह मेरा स्पष्ट अभिमत है, जो मैं तुम्हें पुनः बता रहा हूं।

प्रश्न—परन्तु क्यों गुरू जी! अहोबल एक बड़ा भारी पण्डित हुआ है, इस प्रकार उसकी ख्याति है, फिर भला उसने अपने रिषभ, धैवत स्वरों में ऐसी संदिग्ध अवस्था क्यों रहने दी? यह उसकी सरलता कैसे कही जावेगी, जब कि उसने सहस्रों श्लोक लिखे और केवल इन्हीं दो स्वरों को ऐसा डांवाडोल रहने दिया? संदिग्ध अवस्था का तो एक यही प्रमाण पर्याप्त है कि अब उसके उन श्लोकों का अर्थ भिन्न-भिन्न रूप में होता है।

उत्तर—इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी शंका मार्मिक है। मैं तुमसे पहिले भी कह चुका हूँ कि कहीं-कहीं अहोबल ने अपनी भाषा कुछ शिथिल लिखी है। इतना ही क्यों, उत्तर की ओर प्रवास करते समय मेरी भेंट एक विद्वान सज्जन से हुई थी, उसने तो अपना स्पष्ट मत मुझे यह बताया कि "अहोबल ने अपने शुद्ध रिषभ, धैवत स्वर विशेष रूप से संदिग्ध ही लिख छोड़े हैं।"

प्रश्न—आपने इसका कारण उस सज्जन से नहीं पूछा?

उत्तर—वह मैंने अवश्य पूछा था, उसने क्या कहा, वह तुम्हें सुनाए देता हूं:—उसने कहा—'अहोबल को दक्षिण सङ्गीत का साधारण ज्ञान था, यह दिखाई पड़ता है। और उसके लेखों से यही माना जायगा कि केवल उत्तर का सङ्गीत ही उसने सुना था।'

प्रश्न—क्या आपको उस विद्वान का यह कथन साहस पूर्ण नहीं जान पड़ता? कहां अहोबल और कहां वह? ऐसा कौनसा सूत्र उसे अहोबल की रचना में प्राप्त हुआ, जिसके आधार से उसने यह कहा कि अहोबल को दक्षिण के सङ्गीत ग्रन्थों का अच्छा बोध नहीं था? यदि आप उससे स्पष्ट प्रश्न पूछते तो अच्छा होता।

उत्तर—मैंने यह भी पूछा था। इसके उत्तर में उसने अहोबल लिखित पारिजात के श्लोक ७४ से ७७ मेरे सामने रख दिये, और कहा कि देखिए इस विद्वान का दक्षिणी स्वरों का ज्ञान।

प्रश्न—उन श्लोकों में क्या कहा गया है?

उत्तर—मैं तुम्हें वे श्लोक ही सुनाए देता हूँ:—

साधारणोरिस्तीव्रः स्यादिति सूरिविनिश्चयः।
साधारणांतरौ गौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति॥
तथा तीव्रतमो गोऽपि मृदुर्म इति कीर्तितः।
मश्च तीव्रतमोऽप्युक्तो मृदुप इति पंडितैः॥
साधारणो धस्तीव्रः स्यादिति प्रोक्तं मुनीश्वरैः।
साधारणः काकलीति तथा कैशिक इत्यपि॥
तीव्रस्तीव्रतरस्तीव्रतमोऽप्युक्तो मनीषिभिः।
सकल्पत्वान्मृदुर्निः स इति तीव्रतमो भवेत्॥

इन श्लोकों को देखकर संभवतः तुम भी यह कहोगे कि इन में अहोबल ने अपने पारिभाषिक नामों की एक सूत्रता दक्षिण के पारिभाषिक नामों से करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वह सफल नहीं हो सका?

प्रश्न—हमें भी यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि दक्षिण के साधारण ग, व कैशिक नी स्वर अहोबल के तीव्र ग व तीव्र नी कैसे हो गए?

उत्तर—कहने का तात्पर्य यह है कि यदि उस विद्वान ने अहोबल के विषय में अपना प्रमाणिक मत विरुद्ध व्यक्त किया है, तो हमें उस पर क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं है। हम यह भी सुनते हैं कि शार्ङ्गदेव की मूर्छनाओं से योग्य व प्रचलित थाट उत्पन्न करने में भिन्न-भिन्न विकृत स्वरों का उपयोग किया जाता है, परन्तु दक्षिण के एक भी ग्रन्थकार ने अपने रागों की शार्ङ्गदेव के रागों से एकवाक्यता करने का प्रयत्न नहीं किया। इसलिए, हमारे विद्वान क्या यह नहीं कहते हैं कि दक्षिण के ग्रंथकर्त्ताओं से ग्राम, मूर्छना आदि का स्पष्टीकरण नहीं हुआ? परन्तु वह तो होगा ही। इस विद्वान् ने अहोबल के सम्बन्ध में आगे और क्या-क्या कहा, वह भी सुनो:—

अहोबल के 'स्वर प्रकरण' से पाठकों को यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उसने सोमनाथ का ग्रंथ "राग-विबोध" अवश्य देखा होगा। एक बार यदि यह निश्चय हो जाता है कि उसने राग-विबोध देखा था, तो फिर अहोबल के शुद्ध रि, ध, स्वरों की संदिग्ध अवस्था का कारण थोड़ा बहुत हमारे ध्यान में आ सकता है। सोमनाथ ने अपने स्वर, वीणा पर परदे कायम करके बताए हैं। उसमें क्या मजेदार बात हो गई है, वह भी देखो। पहले परदे का नाम उसने दक्षिण पद्धति के अनुसार "शुद्ध री" ठीक ही दिया। उस परदे को हमारे यहां 'कोमल री' का परदा कहेंगे। इससे दक्षिण का 'शुद्ध री' उत्तर का 'कोमल री' यह

साम्य अहोबल को सहज ही दिखाई देने योग्य था। उत्तर की ओर 'तीव्र री' को ही शुद्ध 'री' कहने का प्रचार था, यह भी उसे दिखाई दिया होगा। उत्तर की पद्धति का उसे कोई ग्रन्थ मिला हो, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। यह सत्य है कि उसने कुछ उत्तर के रागों को पारिजात में स्थान दिया है, परन्तु यह कोई भी कह देगा कि वे सुने हुए ही हो सकते हैं। संभवत: सोमनाथ को भी ऐसे ही प्राप्त हुए हों। शुद्ध रिषभ के स्थान के सम्बन्ध में दोनों पद्धतियों को भिन्न-भिन्न मान्यता देखकर अहोबल दुविधा में पड़ गया। स्वराध्याय उसने उत्तर के पारिभाषिक नामों से लिखा, परन्तु इसके पश्चात् ग्रंथाधार दक्षिण का था। इसमें शुद्ध 'री' कैसे लिखा जावे? यदि उत्तर के मत से चिपका रहे, तो ग्रन्थाधार नहीं मिलता, और यदि दक्षिण के प्रचार तथा ग्रन्थों को आधार मानकर वर्णन करे तो विसंगति हो जाने का भय उपस्थित होता है। इसी प्रकार राग विबोध के 'शुद्ध धैवत' ने भी अहोबल को उलझन में डाल दिया होगा; क्योंकि सोमनाथ ने शुद्ध धैवत चौथे परदे को माना है, अर्थात् जहां तीव्र धैवत की ध्वनि हो। तीसरा परदा सोमनाथ ने बिलकुल फालतू रखा है। यह स्पष्ट ही प्रचार के विरुद्ध था, क्योंकि यह परदा कोमल धैवत का था। सोमनाथ की व्यवस्था में कोमल धैवत को स्थान ही नहीं है। इस उलझन को अब कैसे सुलझाया जावे? अहोबल विद्वान् तो था ही, काल्पनिक जोड़-तोड़ मिलाने में हमारे आज के पंडित ही क्या कम हैं। उसने सुन्दर युक्ति निकाल ली 'सपयोः पूर्वभागे रिः तथा 'सपयोर्मध्य देशे धः' ठीक हुआ कि नहीं? जिसे तीव्र रि, ध, की आवश्यकता होगी वह "षड्ज पंचम-भाव" युक्ति पूर्वक लगाकर अपना मतलब निकाल लेगा। जिसे ये स्वर नहीं चाहिये, उसे भी यह भाव—कुछ उपयोगी तो होगा ही। दूसरे शब्दों में यही कहा जावेगा कि जिसको जैसी सहूलियत होगी वैसा श्लोक का अर्थ—निकाल लेगा और फिर श्रेय अहोबल को ही मिलता रहेगा।" उस विद्वान् ने और भी आगे कहा—"अहोबल अपने विकृत स्वरों में "तीव्रमध्यम" नाम का उपयोग करता है। यह क्यों? इसका कारण भी सोमनाथ ही है। सोमनाथ ने मध्यम की दो विकृतियां, तीव्रतम म और मृदु प के नाम से बताई हैं। अहोबल की व्यवस्था में ये दोनों एक ही श्रुति के नाम हुए, क्योंकि यह पंचम की तीसरी श्रुति थी। उसे मृदु प के ठीक पीछे की श्रुति उपयोग में लानी थी। परन्तु आधार ग्रन्थ में 'तीव्रतर म' नाम प्राप्त नहीं हुआ। सोमनाथ भूल गया ऐसा तो वह कह नहीं सकता था। यहां उसने फिर युक्ति निकाली। स्वर स्थान बताते हुए उसने "तीव्रतम म" नाम का उपयोग किया, परन्तु राग वर्णन में चुपचाप उसे छोड़कर "तीव्रतर" म" अङ्गीकार कर लिया।" इस विद्वान के ये विचार मनोरंजक हैं न?

प्रश्न—ये विचार वास्तव में हँसी में टाल देने योग्य तो नहीं हैं। हमें भी थोड़ा-थोड़ा ऐसा ही मालूम होने लगा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युक्ति से अहोबल ने सर्वत्र आदर प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

उत्तर—उसके हृदय की वह स्वत: जाने। हम तो केवल तर्क मात्र कर सकते हैं। उनमें गलत तर्क भी हो सकते हैं। यह अवश्य दिखाई देता है कि उसके श्लोकों का सरल अर्थ ग्रहण करने पर किसी को भी संतोष नहीं होता। कारण मैंने बताया ही है।

प्रश्न—ठीक है, परन्तु आप यह कह चुके हैं कि एक पंडित ने यह स्पष्ट रूप से प्रकट किया है कि अहोबल को शुद्ध रि, ध, स्वर कायम करना नहीं आया। उस पंडित ने अपना मत भी कुछ बताया है?

उत्तर—हां, वह कहता है, कि शुद्ध रि, ध, स्वरों के आन्दोलन क्रमशः २६६⅔ व ४०० मानने चाहिये।

प्रश्न—अर्थात् उसने इन दोनों स्वरों को गड़बड़ कर डाला। कल्याण, बिहाग, बिलावल आदि रागों में अहोबल को ये ही शुद्ध स्वर दिये जायेंगे?

उत्तर—यह मैं विश्वास पूर्वक नहीं बता सकूँगा। अभी तक उस विद्वान् ने रागों पर कुछ नहीं लिखा है। शायद वह तीव्र रि, ध स्वरों को मींड में ग्रहण करने को बतायेगा, या एक प्रकार का Temperament मानकर ग्रहण करने के लिये कहेगा।

प्रश्न—Temperament किसे कहते हैं?

उत्तर—यह एक उद्धरण देखोः—

The object of Temperament literally tuning is to render possible the expression of an indefinite number of intervals by means of a limited number of tones without distressing the ear too much by the imperfections of the consonance. The general practice has been from the earliest invention of the key-board of the organ to the present day to make twelve notes in the octave suffice. This nunber has been in a very few instances increased to 14, 16, 19 and even to 31 and 53 but such instruments have never come into general use.

यूरोप की Temperament की कल्पना अपने ग्रन्थकारों के वर्णनों में प्रयुक्त करने में बड़ी दिक्कत होगी। क्योंकि तुमने देखा ही है कि हमारे ग्रन्थकारों ने एक ही स्वर के भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। परन्तु इनके स्वर सप्तक को यूरोप के (Tempered) कृत्रिम सप्तक कहना एक विवादग्रस्त विषय होगा। तुम्हें इस उलझन में नहीं पड़ना है। अहोबल ने तीव्र ग, तीव्र नी व तीव्र म स्वरस्थान धैवत पर अवलम्बित होकर निश्चित किये हैं। यदि कोई सुविधा के लिये तीव्र गांधार ३०० आन्दोलन का मानना पसंद करे, तो हमारे पास ऐतराज करने के पर्याप्त कारण नहीं हैं। परन्तु ग्रंथ के वर्णन से ही यदि कोई उक्त प्रकार का स्वर निकालने का प्रयत्न करे, तो हमें वह स्वीकार नहीं होगा। हाँ, हम उसकी चतुराई की तारीफ़ चाहें तो कर सकते हैं।

अस्तु, अब कह सकते हैं कि 'पारिजात' के मुख्य बारह स्वरों का निर्णय होगया है। हमारे विद्वान तीव्र ग, व तीव्र नी के आन्दोलन क्रमशः ३०० व ४५० स्वीकार करते हैं। ये ही यदि तुम भी स्वीकार करलो तो कोई विशेष आपत्तिजनक बात नहीं। ये सब

आंदोलन मुख्य स्वरों के हुए । इन स्वरों के मध्यांतर में श्रुतियाँ कायम करने में हमारे विद्वानों ने कमाल ही किया है।

प्रश्न—परन्तु स्वरों पर श्रुतियाँ कैसे स्थापित की जाती हैं, यह तो ग्रंथकार बता ही गये हैं न ? फिर कमाल की क्या बात रह जाती है ? अहोबल ने विकृत स्वरों का वर्णन करते समय स्पष्ट कहा है कि मेरु व शुद्ध रिषभ के मध्यस्थल के तीन समान भाग कर, दूसरे भाग में कोमल रिषभ स्थापित किया जावे। उसका कथन यथार्थ है। सा तथा री के बीच में दो भाग या परदे खाली हुए, इनमें दूसरे पर कोमल री व पहिले पर पूर्व री स्वर निश्चित करने के लिए वह कहता है। शुद्ध री, तीसरी श्रुति और दो श्रुतियाँ पिछली, यह स्पष्ट समझ में आ जाता है।

उत्तर—मैं भी ऐसा ही सरल अर्थ उन श्लोकों का लगाता हूं और मुझे तो यह भी समझ पड़ता है कि शार्ङ्गदेव व कल्लिनाथ भी श्रुतिस्थान इसी रीति से निश्चित करते होंगे। व्यंकटमखी ने तो मेरा अनुमान और दृढ़ कर दिया, क्योंकि वह कहता है:—

मेरूपकंठगं शुद्धर्षभक्षेत्रांतरं त्रिधा ।
विभज्यर्षभपर्व तद् दृश्यमानं विनान्तरे ॥
पर्वद्वयनिवेशे स्युस्तिस्रोऽपि श्रुतयः स्फुटाः ।
शुद्धर्षभाव्हयशुद्धगांधारक्षेत्रकं द्विधा ॥
विभज्याथ यथावस्थं पर्वं गांधारभासकम् ।
व्यपेक्ष्य मध्ये पर्वैकं यदा परिनिवेश्यते ॥
गांधारस्य तदानीं स्यात् श्रुतिद्वयमतिस्फुटम् ।
मध्यमस्य स्वरस्योक्ताश्चतस्रः श्रुतयः स्फुटाः ।
तत्र साधारणे स्पष्टा गांधारे श्रुतिरेकिका ।
अन्तराख्यातगांधारक्षेत्रं द्वेधा विभज्य तु ॥
एकस्य पर्वणो मध्ये तयोर्यदि निवेशनम् ।
जायतेऽतरगांधारे श्रुतिद्वयमतिस्फुटम् ॥
मध्यमे श्रुतिरेकेति स्पष्टं श्रुतिचतुष्टयम् ॥

अब आगे के श्लोक नहीं पढ़ रहा हूं। मैंने इनका सरल अर्थ ही किया है, परन्तु अब नई-नई पहेलियां देखकर मैं भी भ्रम में पड़ गया हूं।

प्रश्न—नई पहेलियाँ किस-किस प्रकार की रची गई हैं ?

उत्तर—अब वही बताने वाला हूं। परन्तु यहां एक बात कह देना अच्छा होगा। जिस विद्वान ने इस समय 'पारिजात' को हाथ में लिया है, उसने अपनी श्रुतियां व पारिजात के रागों पर अभी तक कुछ भी प्रकाशित नहीं कराया है। हम केवल अहोबल व सोमनाथ के आधार पर स्थापित श्रुतियों के सम्बन्ध में ही कुछ कह सकते हैं। श्रुतियों

की ओर बढ़ने के पूर्व एक छोटी सी बात और बता दूँ, एक विद्वान ने ऐसा भी सुझाया है कि Ganot जैसे प्रसिद्ध विद्वान ने इक्कीस श्रुतियाँ तो तुम्हारे द्वार पर लाकर रख दी हैं, तो उनको हम दबायें ही क्यों ? पाश्चात्य विद्वानों का मुँह तो बन्द हो जायगा। अब एक श्रुति तुम्हें बाईसवीं और चाहिये, वह किसी प्रकार पंचम के खाने में धकेल दी जाय।

प्रश्न—परन्तु इस मत का आधार ?

उत्तर—प्रमाण का भार शायद तुम्हीं पर छोड़ दिया जायगा। वह कहेगा कि हमारी श्रुति को तुम अयोग्य ठहराओ। ग्रंथ विवरण कहां पर अड़चन उपस्थित करेगा, यह भी तुम्हीं दिखाओ।

प्रश्न—यह सिद्धांत आपको कैसा मालूम होता है ?

उत्तर—मुझे तो यह पसन्द नहीं है, क्योंकि वे श्रुतियां ग्रंथकारों की ही सिद्ध होंगी, ऐसा मुझे ज्ञात नहीं होता। इस मत में तीव्र गांधार वही ३०० आन्दोलन का तीव्र गांधार जीवभूत है। यह सभी स्वीकार करेंगे कि 'तीव्र गांधार ३०० आंदोलन का स्वर है' यह ज्ञान हमें पाश्चात्य पण्डितों के कायदे से ही हुआ है। यदि यह हमें प्राप्त न होता तो तीव्र धैवत से निकलने वाला गांधार हमारे कानों को इतना कष्टदायक नहीं होता। अभी भी हमारे सहस्रों प्रसिद्ध गायक अज्ञान के अन्धकार में भटकते होंगे। अस्तु, अब हमारे पण्डितों द्वारा सभी को लाभ देने के हेतु शोध की हुई श्रुतियों का वर्णन सुनोगे न ?

प्रश्न—यह विवरण किस ग्रंथ का मान कर समझना होगा ? आपने कहा था कि प्रथम अहोबल व सोमनाथ की सहायता से श्रुति स्थापन कार्य किया गया था, फिर आगे बढ़ने पर कुछ कठिनाइयां उपस्थित हुईं, अतः उसका सम्बन्ध शार्ङ्गदेव से जोड़ दिया गया। इसलिए हम पूछ रहे हैं ?

उत्तर—मैं समझता हूं कि इस समय हम इस बात को विचाराधीन रहने दें। मेरा ख्याल तो यह है कि यह व्याख्या उचित सुधार के साथ अब शार्ङ्गदेव की मान ली गई है, फिर भी इस पर हम आगे विचार करेंगे।

प्रश्न—ठीक है, अब हमें यह श्रुति स्थापना अच्छी तरह समझा दीजिये ?

उत्तर—अब मैं वही कहता हूँ। मैं जो व्याख्या सुना रहा हूँ, उसे तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ समझना होगा। इसके नवीन संशोधन और साधारण नियम यदि एक बार तुम्हारे ध्यान में जम गए तो फिर तुम स्वयं सपाटे से आगे बढ़ने लगोगे, परन्तु आरम्भ में तनिक धीमी गति से चलना होगा। अब इन महत्वपूर्ण सिद्धांतों की ओर अच्छी तरह ध्यान दो।

(१) 'श्रुति' को एक सूक्ष्म स्वरान्तर समझना चाहिए। इसके भाग नहीं होते तथा इसका कोई नियमित माप नहीं होता।

प्रश्न—यह व्याख्या तो कुछ विचित्र सी है ?

उत्तर—सो तो है ही, परन्तु इसके सिवाय दूसरा इलाज ही नहीं है। अरे भाई ! श्रुति का सम्बन्ध कान से है न ? यह ईश्वर प्रदत्त यन्त्र है, अतः इसके नियम तो वही जान

सकता है। कहीं पर यदि कान एक आन्दोलन अथवा उसके खंड भाग को पकड़ सकते हैं तो कहीं पर दस-बारह आन्दोलन की ओर भी ध्यान नहीं जाता। ऐसा कैसे? थोड़ा सा ऊपर हो चुका है न? अहोबल की व्यवस्था से आने वाले गांधार के $१\frac{१७}{४३}$ आन्दोलन कानों को कितने असह्य हुए, ठीक है न? कानों के उस कष्ट को मिटाने के हेतु ही धैवत के पांच आन्दोलन कम कर, कर्णमधुर शुद्धधैवत उत्पन्न किया गया। नहीं तो उक्त $१\frac{१७}{४३}$ आन्दोलन, गायन में भयङ्कर अनर्थ कर देता; परन्तु वह छोड़ दिया गया। श्रुतियों का यह क्रम कुछ नवीन है, इसे समझते समय आरम्भ में यह बोझिल मालुम हो तो आश्चर्य नहीं, परन्तु तुम्हें सामयिक पत्रों में चलने वाली चर्चा को समझना है। अतः कैसे भी इसको समझ लेना चाहिये। श्रुतियों की खोज का कार्य कुछ सरल नहीं है। परन्तु यह जितना कठिन है, उतनी ही अधिक शोध करने वाले की कीर्ति है। आगे बढ़ने के पूर्व मैं एक बात बता देना चाहता हूँ कि यहां पर अभी मैं अपना स्वतः का श्रुति-सिद्धान्त नहीं कह रहा हूँ। हमारे विद्वानों ने इस विषय पर जो-जो बातें प्रकाशित की हैं, वे बातें, और उन पर होने वाले अपने स्पष्ट तर्क ही तुम्हें सुना रहा हूं। मुझे तो अपने प्राचीन ग्रन्थकार भी अपने जैसे ही बिलकुल सीधे व भोले व्यक्ति जान पड़े हैं। आजकल हमारे समाज में श्रुतियों का बड़ा तमाशा होरहा है। श्रुतियों की इतनी चीर-फाड़ संस्कृत ग्रन्थकार करते ही नहीं थे। उन्हें तो रागों का महत्व अधिक जान पड़ता था। वे यही जानते थे कि उत्तम राग-व्यवस्था के लिए बारह स्वर ही बहुत महत्वपूर्ण व सहूलियत की दृष्टि से पर्याप्त होते हैं। प्रत्येक श्रुति से राग बदलना उन्हें सूझा ही नहीं। अब तो युग ही दूसरा है। सभी स्वर बिलावल के, परन्तु रिषभ शुद्ध हुआ कि राग दूसरा। तीव्रतर ग ग्रहण किया कि राग दूसरा। एकबार शुद्ध ध तथा दूसरी बार तीव्र ध लिया तो रागमेल ही दूसरा होगया। इन सबको व्यवस्थित करना तो बहुत बोझिल हो जाता। हमारे पंडितों की इस समय जो समझ है वह तो अजीब है ही, परन्तु गायकों की भी ऐसी दीख पड़ेगी। यदि यह कहें कि मूर्छना से थाट बदलने के हेतु श्रुतियां अपेक्षित हैं तो सोमनाथ व अहोबल ने तो थाट बदलने में श्रुतियों की कोई सहायता नहीं ली और इन्हीं की युक्तियों से श्रुति व्यवस्था की जा रही है। अब तो जो भी प्रचलित है, उसे समझ लेना व अपनी धारणा तटस्थ रखना ही उचित है। जो भी हो, मैं यह नहीं मानता कि श्रुति पण्डित यह कहेंगे कि राग-पण्डितों की कठिनाइयों की चिन्ता हम क्यों करें। उनके द्वारा स्थापित श्रुतियों पर वे रागों को भी व्यवस्थित कर देंगे, ऐसे चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। हम यह आशा रखते हैं कि वे इस सिद्धान्त को सदैव स्मरण रखेंगे कि—"श्रुतियां रागों के लिये हैं, राग श्रुतियों के लिये नहीं।" अच्छा, अब दूसरा महत्वपूर्ण नियम देखो:—

(२) मुख्य १२ स्वरस्थान हमारे सङ्गीत के "द्वादश-प्राण" बनकर बैठे हैं। इन्हें अस्वीकृत करने पर हमारे यहां और पश्चिम की ओर हमारी स्थिति हास्यास्पद हो जावेगी, अतः इन्हें सुरक्षित रखना है। इन स्थानों को आधार स्तम्भ मानकर इन्हीं के आगे-पीछे श्रुतियां स्थापित करनी हैं। तीसरी बात नाजुक है, परन्तु उसे भी ध्यान में रखलो।

(३) पाश्चिमात्य ग्रन्थकारों की खोज व उनके सिद्धांत जैसे—Majortone minortone आदि के प्रमाण जहां-जहां पर जितने लग सकें, उतने अपनी पद्धति के लिये शोभनीय होंगे।

(४) ग्रन्थकर्त्ताओं के स्वरों की बतायी हुई श्रुति संख्या को संभालकर निश्चित करना पड़ेगा। आंदोलन का तो उन्हें बोध नहीं था, अतः उसमें हमें यथेष्ट स्वतन्त्रता रहेगी।

(५) एक श्रुति, दो श्रुति, तीन श्रुति व चार श्रुति का सांचा या अन्तर हमारे पास तैयार रहना चाहिये। इनका योग्य स्थलों पर उचित रूप में उपयोग करना पड़ेगा।

प्रश्न—यह नहीं समझ सके।

उत्तर—यह कुछ कठिन ही है। देखो बताता हूं "ग–म"—यह सूक्ष्मान्तर है। इसका परिमाण पश्चिम की ओर $\frac{320}{1} \times \frac{1}{300} = \frac{16}{15}$ माना जाता है, इसलिए यह दो श्रुतियों का अन्तर अथवा "कोमल" स्वरान्तर समझा जाता है। "रि–ग" इस फासले का परिणाम $\frac{300}{270} = \frac{10}{9}$ है, इस लिए यह तीन श्रुति का अन्तरदर्शक सूत्र हुआ। चार श्रुति का मापक $\frac{270}{240} = \frac{9}{8}$ प्रसिद्ध ही है। एक श्रुति का अन्तर दर्शक सूत्र $\frac{300}{288} = \frac{25}{24}$ होगा, यह एक श्रुति का अन्तर कुछ विचित्र है। प्रसङ्गानुसार इसका मूल्य $\frac{405}{400} = \frac{81}{80}$ या और भी भिन्न प्रकार का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किस सूत्र को कहां स्थान मिलेगा, इसके न्यायकर्त्ता कान ही कहे जांयगे। संक्षेप में यही कहें कि एक श्रुति के मध्यांतर का निश्चित प्रमाण नहीं है। अब इस व्याख्या के अनुसार षड्ज से आरम्भ कर श्रुतियां स्थापित कर लो। षड्ज का आंदोलन सुविधा के लिये २४० मान लेना उचित है।

प्रश्न—तो फिर षड्ज के आगे पहिली श्रुति $\frac{240}{1} \times \frac{25}{24} =$ २५० आंदोलन की होगी यही न?

उत्तर—ऐसा ही प्रथम व्यवस्था में पंडितों ने भी कहा था, परन्तु दूसरी आवृत्ति में आंदोलन संख्या २५२ प्रसिद्ध हो गई है! तो भी वहां पर एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि पहिली व्यवस्था अहोबल व सोमनाथ के आधार पर रचित थी और अब दूसरी बार एक मात्र शार्ङ्गदेव का आधिपत्य है! सम्भवतः इस कारण ही यह अन्तर आ गया हो!

प्रश्न—परन्तु इस से क्या यह माना जावे कि अब कान भिन्न प्रकार की ध्वनि पहिचानने लगे हैं अथवा यह नई ध्वनि पहिले से अधिक मधुर है? इस श्रुति का प्रमाण $\frac{२५२}{२४०} = \frac{२१}{२०}$ होगा। किसी श्लोक के प्रयोग में पहिले गलती हो गई होगी?

उत्तर—यह मैं कैसे बता सकता हूँ। इसका कारण प्रकाशित नहीं हुआ। इससे तुम्हारा क्या विगड़ गया? आगे बढ़ो —

आगे $\frac{२५२}{१} \times \frac{२५}{२४}$

उत्तर—अरे, अरे, यह क्या करते हो? दो श्रुतियों के अन्तर का सूत्र किस लिये निश्चित किया गया है? ऐसा करने से तुम्हारा आधार स्तम्भ ही बिगड़ जायगा न? तुम तो "मनाक् उच्चध्वनिः" के प्रमाण से शार्ङ्गदेव जैसी श्रुति स्थापना करने लगे।

प्रश्न—ठीक है, यह तो हम भूल ही गये थे। तो फिर दूसरी श्रुति $\frac{२४०}{१} \times \frac{१६}{१५} =$ २५६ होगी। यह 'कोमल री' हुई न ?

उत्तर—निस्संदेह ! आगे चलो।

प्रश्न—परन्तु अहोवल रिषभ क्षेत्र के तीन भाग कर के दूसरे पर 'कोमल री' स्थापित करता है, वह ?

उत्तर—वह यदि उस प्रकार का भ्रष्ट ऋषभ चाहता हो तो उसे लेने दो। परन्तु फिर वह तो शार्ङ्गदेव को भी छोड़ देगा।

प्रश्न—क्या अहोवल ने कहीं पर अपनी समस्त बाईस श्रुतियों का स्वतन्त्र स्पष्टीकरण नहीं किया ?

उत्तर—यह तुम खूब पूछते हो ! अरे भाई, जिसने अपने शुद्ध री, ध स्वरों में ही लुका छिपी कर डाली, वह तुम्हारे लिये श्रुतियां रचकर देगा ?

प्रश्न—तो फिर, यदि हमसे किसी ने यह स्पष्ट प्रश्न किया कि तुम अपनी श्रुतियां किस ग्रंथकार के आधार पर स्थापित कर रहे हो, तो हम क्या उत्तर देंगे ?

उत्तर—उत्तम बात तो यह है कि तुम खुद उत्तर देने की उलझन में मत पड़ो, क्योंकि अहोवल का विकृत विधान तो मैं तुम्हें सुना ही चुका हूं। इसी प्रकार की कल्पना व्यंकटमखी की थी। दक्षिण के अन्य पण्डितों ने तो इस विषय पर मौन धारण कर लिया है। किसी-किसी ने शार्ङ्गदेव की "मनाक् उच्चध्वनिः" की कल्पना उद्धृत कर डाली है, परन्तु यह सन्तोषजनक नहीं, यह कोई भी कह सकता है। कल्लिनाथ ने भी मेरी समझ से स्वरांतरों के शास्त्रोक्त संख्यानुसार समान भाग कर श्रुतियां मान ली हैं। वाद्याध्याय के श्लोक ७—८ की टीका देखने पर पाठकों को यह तथ्य अवश्य दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न—एक प्रश्न और स्पष्ट पूछना चाहते हैं। अहोबल ने अपने स्वर, तार की लम्बाई से बताये हैं, अतः उनका स्थान यथेष्ट रूप से निर्विवाद हो गया है। शार्ङ्गदेव ने इस प्रकार कुछ भी नहीं किया, इसलिए उसका शुद्ध स्वर सप्तक अमुक ही है, यह उसके किस श्लोक के आधार पर निश्चित किया जा सकता है ?

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव" इत्यादि रचना तो सभी ग्रन्थों की है और ऐसा होने पर भी सभी के स्वर सप्तक एक से नहीं हैं।

उत्तर—तुम्हारे प्रश्न का मतलब मैं समझ गया। प्रचार को देखते हुए शार्ङ्गदेव का सप्तक समझा जावे, इतना कह देने से तुम्हारा समाधान नहीं होगा। मैं समझता हूँ कि अभी तक किसी ने शार्ङ्गदेव के स्वर-वर्णन को ग्रहण कर स्वर सप्तक निश्चित करके नहीं दिखाया है। यह मैं इसके पूर्व तुम्हें बता चुका हूँ कि इस समय उसके सप्तक को "काफी" कहने व मानने की रूढ़ि क्यों व कैसी हो गई है ? फिर भी यह सत्य है कि अब रत्नाकर के 'सारणाचतुष्टय' का उपयोग होने लगा है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—यह भी एक मजेदार बात है। शार्ङ्गदेव ने बड़ी शान से "मना-गुच्च ध्वनि" के माप से स्वतः को समाधानकारक बाईस श्रुतियाँ सर्व प्रथम कायम कीं। आगे उसने शरीर की तीन खड़ी नाड़ियां व नाद उत्पन्न करने योग्य बाईस आड़ी नाड़ियों का वर्णन किया। उनसे इन बाईस नादों का होना बताया। इन पर फिर ४, ३, २ आदि रीति से स्वरों की स्थापना की। यह सब करने के उपरांत पाठकों को दो समान वीणा लेकर आगे के इस प्रयोग को कर देखने का वह आग्रह करता है:—

स्वोपांत्यतंत्रीमानेयास्तस्यां सप्तस्वरा बुधैः ।
ध्रुववीणास्वरेभ्योऽस्यां चलायां ते स्वरास्तदा ॥
एकश्रुत्यपकृष्टाः स्युरेवमन्यापि सारणा ।
श्रुतिद्वयलयादस्यां चलवीणागतौ गनी ॥
ध्रुववीणोपगतयो रिधयोर्विशतः क्रमात् ।
तृतीयस्यां सारणायां विशतः सपयो रिधौ ॥
निगमेषु चतुर्थ्यां तु विशंति समपाः क्रमात् ।
श्रुतिद्वाविंशतावेवं सारणानां चतुष्टयम् ॥
ध्रुवाश्रुतिषु लीनायामियत्ता ज्ञायते स्फुटम् ।
अतःपरं तु रक्तिघ्नं कार्यमपकर्षणम् ॥

शार्ङ्गदेव के स्वर श्रुति का चार्ट हाथ में लेकर इन श्लोकों को समझा जा सकता है। अचलवीणा व चलवीणा इस प्रकार की दोनों वीणा प्रथम श्रुति स्वर तैयार करने व बाद में सारणा करने में प्रयुक्त होती हैं।

प्रश्न—परन्तु मूल प्रश्न तो अभी वैसा ही रह गया। इन श्लोकों की सहायता से श्रुति या स्वर कैसे स्थापित किये जायेंगे? यदि किसी ने कहा कि षड्ज से अगला स्वर ऋषभ इन श्लोकों से सिद्ध करो तो उसे क्या उत्तर देंगे? बाईस नाड़ियां, बाईस श्रुति, उनके स्थान, स्वर स्थान, सभी अङ्गीकृत समझ कर चलने पर फिर इन श्लोकों की किसे आवश्यकता है? यह भी नहीं दिखाई देता कि ग्रन्थकार ने इन श्लोकों में सर्वप्रथम श्रुति स्वर-स्थान निश्चित किये हैं। केवल यही दिखाने के लिये कि श्रुतियों की परिमित संख्या बाईस है, यह प्रयत्न किया है। "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" इत्यादि रचना जिन-जिन ग्रन्थकर्त्ताओं की रही है, उन सभी की पद्धति के लिये ये श्लोक लागू होंगे, ठीक है न? क्या दक्षिण के ग्रन्थकार ४, ३, २, ४, ४, ३, २ का क्रम स्वीकार नहीं करते? यह 'सारणा' उनके ही काम आयेगी। क्या अपने पास की श्रुतियां लगाकर शार्ङ्गदेव की 'सारणा' प्रयुक्त करके हमारा इच्छित थाट निकाल कर दिखाया जा सकता है? यह कैसा पांडित्य है, गुरुजी?

उत्तर—तुम्हारा यह कथन उचित है। 'सारणा का उपयोग वास्तव में तुम्हारे कथनानुसार ही होने लगा है। इसके प्रयोग से आजकल काफी थाट से बिलावल थाट व

बिलावल से काफी थाट निकलने लगे हैं। यह अनेकों का मत है कि सारणा का उद्देश्य सर्व प्रथम थाट–स्थापन बिलकुल प्रतीत नहीं होता। 'पांचवीं सारणा क्यों नहीं' इसके उत्तर में कल्लिनाथ ने क्या कहा है उसे भी तुम देखो। वहां उसने "स्वर–स्तावच्छ्र त्यनु-रणनात्मकः" यह स्वरों की व्याख्या की है। स्वरस्थानों की अचूक और अव्यर्थ सिद्धि किस प्रकार स्पष्ट कर दी है, यह भी देखो–"ते च षड्जादयो लोके शास्त्रेच चतुर्थ्यादिश्रुतिपु मयूरादिसंवादित्वेनाभिव्यक्ताः सिद्धा" उस काल के लोग यदि लिखने में कुशल थे, तो उनके ग्रंथ पढ़कर ठीक–ठीक समझने वाले भी उतने ही प्रवीण रहे होंगे, यह अनुमान सहज में किया जा सकता है। हमारे विद्वानों ने आरम्भ में अहोबल व सोमनाथ को हाथ में लेकर अपना कार्य चलाया था। परन्तु अधिक अनुभव होने पर जब इनकी मदद असंतोषप्रद सिद्ध हुई, तब इन्हें धीरे से एक ओर का रास्ता बताकर अनुरणन,सारणा जैसे–निर्जीव साधनों को अङ्गीकार करने को विवश होना पड़ा। इस प्रकार का तर्क भी कोई कर सकता है। वास्तविक स्थिति क्या है यह ईश्वर जाने। हमें न तो स्वतः के मत प्रकाशन का गर्व है और न हमने संस्कृत ग्रन्थों से कोई नवीन खोज कर दिखाने का दावा किया है। यह हमारे लिये सौभाग्य की बात कहनी चाहिये, अन्यथा हमारी भी खिल्ली उड़ाई जाती। अच्छा, अब तुम अपनी श्रुतियां आगे चलाओ।

प्रश्न—हां, $\frac{२४०}{१} \times \frac{१६}{१५} = २५६$ यह अब शार्ङ्गदेव की दूसरी श्रुति हुई। इसमें $\frac{२५}{२४}$ का गुणन किया तो $२६६\frac{२}{३}$—यह तीसरी श्रुति हो जावेगी। अथवा षड्ज से एकदम तीन श्रुति का मापक लगाने पर $\frac{२४०}{१} \times \frac{१०}{९} = \frac{८००}{३} = २६६\frac{२}{३}$ लावें ? "End justifies the means" ऐसी ही रीति से मान लें तब तो ये दोनों तरीके चल सकते हैं ?

उत्तर—जो तुम्हें पसंद आवे वैसा करो। शुद्ध री $२६६\frac{२}{३}$ की होनी आवश्यक है क्योंकि तीव्र री २७० की निश्चित ही है। तीव्र री निकालने के लिये, तीसरी श्रुति में $\frac{२५}{२४}$ का गुणन लगेगा, क्योंकि यह बड़ा फासला है।

प्रश्न–समझ गये, $\frac{२४०}{१} \times \frac{९}{८} = २७०$ ऐसा ही न ? परन्तु ठहरिये ! शार्ङ्गदेव के पारिभाषिक नामों में व चार्ट में चार श्रुति का तीव्र ऋषभ कहीं नहीं दिखाई पड़ता ? फिर यह क्या होगा ? अहोबल की तीसरी श्रुति २७० आन्दोलन की ही हुई। सोमनाथ की तीसरी श्रुति तो २५६ आन्दोलन का कोमल 'री' ही हुआ।

उत्तर—यदि तुम कदम–कदम पर इस प्रकार इधर–उधर देखने लगोगे तो व्यर्थ की उलझनों में पड़ जाओगे। तुम्हें तो शार्ङ्गदेव के मत की ओर ही ध्यान देना है। वहां भी यदि सभी संदिग्ध हों तो प्रमाण का बोझ "नेति नेति" कहने वालों पर रहेगा।

प्रश्न—अच्छी बात है, $\frac{२७०}{१} \times \frac{२५}{२४} = २८१\frac{१}{४}$ यह पांचवीं श्रुति होगी, यही न ?

उत्तर—चल जायेगी। परन्तु यहां एक बात और सुना देता हूं। शुद्ध ग व शुद्ध म, इनकी चार श्रुति हैं—अतः मापक $\frac{९}{८}$ है। इसलिये मध्यम से उलटी तरफ गुणा कर शुद्ध ग निकालो तो $\frac{३२०}{१} \times \frac{८}{९} = २८४\frac{४}{९}$ होगा। इसे शुद्ध गांधार मानकर रखलो। यदि किसी ने इसे ही मांग लिया तो ?

प्रश्न—ठीक है, परन्तु इनमें शार्ङ्गदेव का कौनसा रहा ?

उत्तर—यह अब कौन बता सकेगा ? अभी तो तुम $२८४\frac{४}{९}$ आन्दोलन को प्रमुख मानकर आगे चलो।

प्रश्न—और $२८१\frac{१}{४}$ आन्दोलन के गांधार का कहां पर व कैसे उपयोग होगा ?

उत्तर—मैं इसके उत्तर में ऐसा कहदूँ कि इसे बड़े गुणी लोग कभी-कभी प्रयोग में लाते हैं, तो विवाद मिट गया। परन्तु मैं ऐसे प्रश्नों के उत्तर नहीं देने वाला हूं कि यह तेइसवीं श्रुति है क्या, इसकी नाड़ी कहाँ है, इसे शार्ङ्गदेव मानेगा क्या, आदि। कान पहचान लें व गायक-वादक हां करदें, तो श्रुति समझ लेनी है।

प्रश्न—ठीक है, गुरुजी ! छठी श्रुति अर्थात् साधारण गांधार यानी कोमल ग अतः Land mark आगया। यह $\frac{२७०}{१} \times \frac{१६}{१५} = २८८$ है न ? परन्तु षड्ज पंचम-भाव से तीव्र री २७० का लाकर, उसे $\frac{१६}{१५}$ से गुणन करने पर भी २८८ का माप मिलता है।

उत्तर—यहां तुम अहोबल का नियम, शार्ङ्गदेव से लगा रहे हो। शार्ङ्गदेव को तीव्र री की क्या आवश्यकता है ? उसका श्रुति स्वर-चार्ट देखो। शुद्ध री व शुद्ध ग के बीच में कोई स्वर ही नहीं है। उसे पंडितों ने $२६६\frac{२}{३}$ का शुद्ध रिषभ दे ही रखा है न ?

प्रश्न—समझ गये, समझ गये। आगे चलें ! २८८ को $\frac{२५}{२४}$ से गुणन किया कि ३०० का ग—

उत्तर—यह क्या ? ३०० का ग कैसा उत्पन्न कर रहे हो ? यह तो "स्वयम्भू स्वर" है न ? और यदि यह नहीं मानते, तो $\frac{२५}{२४}$ का प्रमाण ही तुम कैसे ला सके ? इसके न मानने पर क्या इतनी सारी इमारत नहीं धँसक जायेगी ? "मध्यदेश पुराण" मालूम होता है सभी भूल गये।

प्रश्न—ठीक है ! यह ३०० का ग, स्वतः सिद्ध मानकर स्वीकार करना पड़ेगा। अब मध्यम की दूसरी श्रुति, तो फिर आगे $३०० \times \frac{२५}{२४} = ३१२\frac{१}{२}$ ऐसा करें या $२८८ \times \frac{१६}{१५} = ३०७\frac{१}{५}$ इस तरह करना होगा ?

उत्तर—पण्डितों को इसमें कोई बाधा नहीं, वे कहेंगे वैसे ही स्वर कोई गायेगा। कौन गाता है, कब गाता है, कौन पहिचान करता है आदि उलझनों में तो पंडित पड़ते ही नहीं। "भिन्नरुचिर्हि लोकः" के सिद्धान्त से वे सहमत हैं। हां, यदि तुम्हें चाहिये तो वे ३०३$\frac{३}{४}$ आन्दोलन के गांधार की सिफारिश कर देंगे।

प्रश्न—क्यों भला ?

उत्तर—इससे ४०५ आन्दोलन के धैवत पर आने वाला षड्ज पंचम-भाव सुरक्षित होने जैसी स्थिति में रहता है तथा पाश्चात्यों के पास का Pythagorian Third ग्रहण करने जैसी स्थिति हो जाती है। "एक पंथ दो काज" की कहावत प्रसिद्ध ही है। अच्छा अब तुम मध्यम तक पहुंच चुके। मध्यम की शुद्ध की हुई श्रुतियां अब २८८, ३००, ३०३$\frac{३}{४}$, ३२० हुईं। कोई यदि मध्य में ३०७$\frac{१}{५}$, ३१५ भी ले आवे तो तुम्हें उदार हृदय रखते हुए उससे झगड़ना न चाहिये।

प्रश्न—और इस जोड़-तोड़ को गायक-वादकों का अनुमोदन प्राप्त है ?

उत्तर—इसे प्रकाशित कराने का साहस भला कैसे होगा ? प्रसङ्ग आया तो पण्डित कह देंगे कि तुम अपना Monochord व गायक ले आओ और श्रुति स्थापित करो। एक बड़े गणितज्ञ को न्यायकर्त्ता बनालो. न्यायकर्त्ता जिसके अंकों को Progressions मध्य का बतादे उसकी श्रुतियां सच्ची हैं और वे ही फिर शार्ङ्गदेव की ही ठहरेंगी।

प्रश्न—यह न्यायशास्त्र कुछ जबरदस्त तो है ही, पर समझने में भी कठिन ही है।

उत्तर--होगा ! तुम तो पंचम की श्रुतियों की ओर बढ़ो। इस फासले की भी थोड़ी सी दुरुस्ती हो गई है। मैं समझता हूँ कि पंचम की श्रुतियों के विषय में स्वतः कह जाऊँ यही अच्छा होगा। कुछ दिनों पूर्व पंचम की श्रुति ३२०, ३३७$\frac{१}{२}$, ३४५$\frac{३}{५}$, ३६० के आन्दोलन की प्रसिद्ध थीं। यह बात तब की है जब कि अहोबल व सोमनाथ की सहायता से श्रुतियां निश्चित की गई थीं। आगे चलकर इन ग्रन्थकारों की सहायता निरुपयोगी सिद्ध हुई व श्रुतियां का पुनः संशोधन करना आवश्यक हुआ। अब ये श्रुतियां ३२४, ३३७$\frac{१}{२}$, ३४१$\frac{१}{३}$, ३६० आंदोलन की निश्चित की गई हैं। अब हम आशा कर सकते हैं कि इनमें अब और कोई संशोधन नहीं होगा।

प्रश्न—हमें तो इतनी ही मजेदार बात दिखाई देती है कि गायक-वादकों ने पुराना क्रम भी पसन्द कर लिया और नवीन क्रम भी पसन्द कर लिया है।

उत्तर—इसमें मैं क्या कर सकता हूं ? 'भूल-चूक लेनी देनी' की व्यवहारिकता तो हमारे यहां प्रचीन ही है। परन्तु इस प्रकार समझो कि क्या श्रुतिस्थापना का कार्य एक व्यक्ति का है ? यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है कि इस कार्य में अनेकों व्यक्तियों का हाथ होना चाहिये। गायकों की भूलों का सुधार गणितज्ञ करेंगे व गणितज्ञ की भूलों को गायक सुधारेंगे और इन दोनों की भूलों का सुधार श्लोक लगाने वाले करेंगे। जितना तुम समझते हो, उतना सरल यह कार्य नहीं है। अस्तु, पंचम के आगे श्रुति स्थापित करने का

कार्य वास्तव में सरल है। यहां पर पूर्वार्द्ध में स्थापित श्रुतियों में षड्ज पंचम-भाव लगा कर श्रुति स्थान निश्चित कर लिया जाता है।

प्रश्न—अर्थात् पिछली प्रत्येक श्रुति को ३/२ से गुणन किया जावे ?

उत्तर—हां ! तो होगई न अब तुम्हारी जगत प्रसिद्ध बाईस श्रुतियां ?

प्रश्न—हो गईं, हो गईं, गुरुजी ! मजा यह है कि इन्हें रत्नाकर की श्रुतियां कह कर मानना है ?

उत्तर—दूसरा कोई इलाज नहीं। दक्षिण के उस चालाक ग्रन्थकार ने वीणा पर परदे बांधकर स्वर कह बताये, उसका प्रचार आज उसी की साक्षी देगा। वहां के ग्रंथकारों को यह श्रुतिमण्डल कैसे पट सकेगा ? सुना जाता है कि वहां भी अब श्रुतिपंडित श्रम कर रहे हैं। यदि वे भी इसी रचना को ग्रहण करलें तो उनका बहुत ही श्रम बच जायेगा। यदि शार्ङ्गदेव ने 'अनुरणात्मकः स्वरः' 'सारणाचतुष्टय' आदि प्रसङ्ग अधिक न कहे होते तो वह इन श्रुतियों का स्वामी नहीं बन पाता। उसने 'अनुरणन' शब्द का प्रयोग किया इसलिये Harmonics रत्नाकर में प्रवेश कर गया। अब इसका क्या इलाज है ? मैं तो अभी भी अनुरणन का अर्थ Harmonics मानने को तैयार नहीं हूँ, यह स्पष्ट रूप से कहे देता हूँ।

प्रश्न—हम आपसे विशेष रूप से यह प्रार्थना करेंगे कि एक बार Harmonics व अनुरणन, इन दोनों शब्दों की स्पष्ट व्याख्या कर दीजिये ? यह दिखाई देता है कि अब ये शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो गये हैं।

उत्तर—यह स्पष्टता तो मैं सामर्थ्यानुसार करने ही वाला था। खैर, अभी उसे देख लो। तुम लोगों में से जिसने Physics पढ़ा है, उन्हें Harmonics किसे कहते हैं, इसका ज्ञान होगा ही Helmholtz कहता है (Ellis):—

"The ear when its attention has been properly directed to the effect of the vibrations which strike it, dose not hear merely that one musical tone whose pitch is determined by the period of the vibrations in the manner already explained, but in addition to this it becomes aware of a whole series of higher musical tones, which we will call the harmonic upper partials of the whole musical tone or note, in contradistinction to the fundamental or prime partial tone or simply the prime, which is the lowest and generally the loudest of all the partial tones and by the pitch of which we judge of the pitch of the whole compound musical tone itself. The series of these upper partials is precisely the same for all compound musical tones which correspond to a uniformly periodical motion of the air. It is as follows:—

The first upper partial tone (or second partial tone) is the upper octave of the prime tone, and makes double the number of vibrations in the same time. If we call the prime C this upper partial will be c. The second upper partial (or third partial tone) is the fifth of this octave or "g", making three times as many vibrations in the same time as the prime.

The third upper partial tone (or fourth partial tone) is the second higher octave or "C," making four times as many vibrations as the prime in the same time.

The fourth upper partial tone (or fifth partial tone) is the major third of this second higher octave or "e" with five times as many vibrations as the prime in the same time.

And thus they go on, becoming fainter to tones making 7, 8, 9, &c. times as many vibrations in the same time as the prime tone.

दूसरा यह भी उद्धरण देखो:—

Now, it is not possible to sound the string as a whole without at the same time causing, to a greater of less extent, its subdivision; that is to say, superposed upon the vibrations of the whole string, we have always in a greater or less degree, the vibrations of its aliquot parts. The higher notes produced by these later vibrations are called the "Harmonics" of the string,

यह एक उद्धरण भी सुनो:—

Strings in vibrating do not only swing as a whole but have also several secondary motions, each of which produces a sound proper to itself. A string when struck vibrates first in its entire length, secondly in two segments; thirdly in three, fourthly in four and so on. All of these motions are simultaneous and the sounds proceeding from them are blended into one note. The lowest note is the loudest and is called the fundamental or prime tone and the others are called overtones, upper partials or harmonics.

प्रश्न—अब Harmonics शब्द का अर्थ अच्छी प्रकार से हमारी समझ में आ चुका। अब इस स्वर का महत्व पंडितों के लिये कौन सा है, यह समझा दीजिये ?

उत्तर—मैं यह प्रथम ही कह दूं कि मैं बड़ा भारी गणितज्ञ या भौतिक विज्ञान-शास्त्री नहीं हूं, परन्तु एक साधारण व सरल विचार करने वाले व्यक्तियों में से हूँ। हमारे श्रुति पंडित "अनुरणन" का अर्थ Harmonics करते हैं। "अनु" अर्थात् "पिछला" और "रणन" अर्थात् "नाद", यानी "पीछे उत्पन्न होने वाला नाद" इस शब्द का यह अर्थ हुआ।

प्रश्न—क्या आपको यह नहीं मालूम होता कि पंडितों के इस कथन में कुछ अभिप्राय है?

उत्तर—वही अब हम देखने वाले हैं। "अनुरणनात्मको नादः स्वर" ऐसा ग्रन्थ कहते हैं। यह मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है कि स्वरों की यह व्याख्या शार्ङ्गदेव ने ही सर्व प्रथम की है। उसने तो वीणा पर बाईस श्रुतियों के लिये "मनाक् उच्च" के नियम से बाईस तार बांधकर इस प्रकार स्वरों की व्याख्या की है:—

श्रुत्यनंतरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते॥

इस श्लोक में "अनुरणात्मक" शब्द ही हमारे पंडितों के इस बड़े व्यापार की पूँजी है। स्वयं शार्ङ्गदेव ने तो इस पद का अर्थ कुछ भी नहीं बताया है। मैं तो यह भी कह सकता हूं कि षड्ज से गांधार व पंचम से रिषभ दिखाई पड़ने का विधान मुझे किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं दिखाई पड़ा। हमारे पंडितों ने इस कठिनाई को 'अनुरणन' शब्द से उत्पन्न किया है, यह कथन मुझे कुछ मात्रा में ठीक भी ज्ञात होता है। निस्संदेह, यदि कोई चाहे तो यह अवश्य कह सकता है कि यह प्रयत्न प्रशंसा के योग्य है, परन्तु मुझे यह नहीं मालूम होता है कि इसे आधार भी प्राप्त हैं। असल में यही दिखाई पड़ता है कि अपने श्रुति-स्वर-सिद्धान्त के धनुष को आरंभ में "अनुरणन" व "स्वयंभू" की दो डोरियां बांधी गई थीं। इनमें से 'स्वयंभू' की डोर अन्य लेखकों ने तोड़कर अलग फेंक दी, अतः अब संपूर्ण तनाव केवल 'अनुरणन' शब्द की डोर पर आ पड़ा है। यद्यपि "सारणाचतुष्टय" का संबन्ध भी अब इससे लगाया जा रहा है, परन्तु इसका विशेष अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। मैं यह कह चुका हूं कि शार्ङ्गदेव अपने अनुरणन शब्द की व्याख्या नहीं करता तो भी उसके टीकाकार ने अपना पांडित्य इस शब्द की व्याख्या में अवश्य लगाया है। यह देखना भी मनोरंजक होगा कि "स्वर" शब्द किस मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यदि आवश्यक हो तो यह भी देखो कि स्वर व व्यंजन में प्राचीन काल में क्या भेद माना गया था, उस समय 'अनुरणन' शब्द था या नहीं? यदि था तो किस प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त होता था, आदि। सम्भवतः वे सीधे-सादे प्राचीन व्यक्ति "अनुरणनात्मक" का सरल अर्थ, 'देर तक टिकने वाला' ही ग्रहण करते होंगे। कोई-कोई टीकाकार अणुरणन का अर्थ "प्रतिध्वनि" भी करते हैं। किसी लकड़ी या पत्थर पर आघात करने पर आवाज़ होगी, परन्तु घण्टी पर या धातु के बर्तन पर वैसा ही आघात देर तक टिकने वाली ध्वनि उत्पन्न करेगा। यह खोजना भी उपयोगी होगा कि क्या आघात के उपरांत नाद का देर तक बना रहना ही अनुरणन कहा जाता है। मैं

तुम्हारे सामने संस्कृत टीकाकारों के एक दो मत रखने वाला हूं। इसलिये तुम्हारा ध्यान भिन्न-भिन्न तर्कों की ओर खींच रहा हूं। एक बात मैं अवश्य विश्वासपूर्वक कहूंगा कि एक स्वर से नियमित प्रमाण की प्रतिध्वनि पंक्ति अर्थात् (Harmonics) निकलती है, यह कल्पना "अनुरणन" शब्द पर नहीं लादी जा सकती। यह ध्वनि पंक्ति ग्रंथकर्त्ताओं को दिखाई दी थी, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। मैं समझता हूं कि यदि उन्हें यह सृष्टि चमत्कार दिखाई दे जाता, तो उसका उल्लेख वे अवश्य कर जाते !

उन्होंने तो अपने परंपरागत् स्वरों की व्याख्या ही "अनुरणात्मकः स्वर" कहकर अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत की होगी। मैं यह नहीं कहता कि उस समय के गायकों को अपने तम्बूरे के षड्ज में, गांधार नहीं दीख पड़ा होगा। वह दिखाई दिया होगा, परंतु यह नहीं माना जा सकता कि इसी चमत्कार का वर्णन इन्होंने "अनुरणन" शब्द में किया है। अब यह सोचो कि पण्डित शार्ङ्गदेव ने अपनी वीणा पर भिन्न-भिन्न बाईस तार श्रुति-वाचक लगाकर चौथी, सातवीं, नवीं, तेरहवीं आदि को "स्वर" माना है, ठीक है न ? हमारे पंडितों के मत से प्रत्येक तार पर आघात होने पर उसके मध्य में पंक्ति के नियमानुसार Harmonics उत्पन्न होगी ही। शार्ङ्गदेव कहता है कि प्रथम तीन तार श्रुति व केवल चौथा तार स्वर, क्योंकि उनकी आवाज का अनुरणन है। यहां "अनुरणन" को "श्रुति व स्वर का भेद बताया है। यह मत भी पण्डितों द्वारा स्वीकृत है या नहीं, यह भी विचारणीय है। इन पण्डितों के सम्मुख तम्बूरे पर षड्ज बनाकर प्रश्न करना चाहिये कि इस ध्वनि में ग्रंथ की व्याख्या लगाकर "श्रुति" व "स्वर" का भेद बताइये। ग्रंथ व्याख्या इतनी ही है कि "प्रथम आघात से जो सूक्ष्म ध्वनि आकाश में उत्पन्न हो वह श्रुति, और वही नाद जब पूर्ण दशा प्राप्त होकर स्थिर हो जावे तब स्वर हो जाता है।" सिंह भूपाल कहता है:—

"प्रथमतंत्र्यामाहतायां यो ध्वनिः रणनं शून्ये उत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु ततोऽनंतर-मनुरणनरूपः श्रूयते स स्वरः।" मतङ्ग कहता है:—"परिणामे यथा क्षीरं दधिरूपेण सर्वदा। षड्जादयः स्वराः सप्त व्यज्यंते श्रुतिभिः सदा।" यह जानना भी मनोरंजक होगा कि ये मत हमारे "Harmonics" वादी (हारमोनिक्स वादी) पण्डितों को स्वीकृत हैं या नहीं। सङ्गीत-दर्पण की टीका में इस प्रकार कहा गया है:—

"यश्च अनुरणनात्मकः। प्रथमतन्त्र्यामाहतायां तद्देशावच्छेदेन यः प्रथमनादः ध्वनि-रुत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु प्रथमध्वनिव्यापको ध्वनिप्रवाहस्तदनंतरं श्रूयते तदनुरणनं, तदेव आत्मा स्वरूपं यस्य स तथोक्तः। अनुरणनमेव स्वर इति भावः। स्वरूपमात्रश्रवणात् अनुरणनं विना नादःश्रुतिः। प्रथमं हि शब्दः ह्रस्वमात्रस्वरूप एव श्रूयते सैव श्रुतिः।" "इतना ही नहीं और अधिक स्पष्टीकरण सुनोः—

"स्वरारंभकावयवशब्दविशेषः श्रुतिरिति भावः। तदुक्तं-प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः। सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा॥ अनुरणनं विना इति स्वरस्य व्यवच्छेदः। शब्दोत्पत्तिर्वीचितरंग न्यायेनेति केचित्। तेषां मते भेरीदंडाद्यभिघातात् तद्देशावच्छेदेन प्रथमशब्दस्योत्पत्तिः, अनंतरं तद्बहिर्दशदिशा-

वच्छेदेन प्रथमशब्दात्तद्व्यापको द्वितीयः शब्दः, ततस्तद्‌बहिर्देशादिगवच्छिन्नस्तृतीयः शब्दो द्वितीयशब्दाद्‌भवति इत्येवं क्रमेण चतुर्थ्यादिशब्दानामप्युत्पत्तिर्बोध्या। प्रकृते प्रथमशब्दस्य श्रुतित्वं, तद्व्यापकद्वितीयादिशब्दानामनुरणनत्वं ज्ञेयं, अनुरणनस्य च स्वरत्वं ज्ञेयं। इ० इ०"

अब कल्लिनाथ क्या कहता है, सुनोः—

"श्रुत्यनंतरभावी श्रुतेश्चतुर्थ्यादिर्मारुताद्याहत्युत्पन्नप्रथमध्वनेरनंतरं भावी आविर्भवनशीलः। स्निग्ध अरूक्षः संदूरश्राव्यः। अनुरणनात्मकः अनुस्वरारूपः"

अब यह एक मनोरंजक प्रश्न है कि इन मतों में से Harmonics का समर्थक कौनसा मत विद्वानों को जान पड़ेगा। मैंने तो एक Harmonics वादी पण्डित से यह पूछा भी था।

प्रश्न—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—प्रथम तो उसे मेरे प्रश्न से ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा "अजी षड्ज से गांधार के निकलने की बात तो हमारे अनाड़ी कारीगर लोग भी जानते हैं। इतना ही नहीं, वे तो उस हार्मोनिक्स (Harmonics) को अपने वाद्यों में भी लगाकर देखते हैं और यह तुम्हारी समझ में नहीं आया, यह आश्चर्य की बात है। चाहो तो हमारे खां साहेब के पास ले जाकर तुम्हें यह चमत्कार दिखा दिया जावे।"

प्रश्न—मालूम होता है कि उसे स्वतः यह करना नहीं आता था ?

उत्तर—नहीं, उसे इतना सूक्ष्म स्वर-ज्ञान कहां से होगा ?

अस्तु, मैंने उससे कहा कि महाराज ! Harmonics सरीखी अर्वाचीन पाश्चात्य शोध में अस्वीकार तो कैसे कर सकता हूँ, परन्तु मुझे संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा उसे समझा दीजिये। मैंने उसके सम्मुख अनुरणन सम्बन्धी ग्रन्थ-वाक्य रख दिये और सोचकर उत्तर देने की अवधि भी दे दी।

प्रश्न—क्या वह संस्कृत जानता था ?

उत्तर—भला यह क्या पूछते हो ? बिना संस्कृत ज्ञान के वह संगीत ग्रन्थ कैसे समझता होगा ? तथापि उसने कुछ महत्वपूर्ण भाग देख रक्खे थे, एवं किसी के पास से थोड़े बहुत समझ भी लिये थे। इतना भी कुछ कम नहीं है। जब मैंने बहुत आग्रह किया कि Harmonics की व्याख्या संस्कृत ग्रन्थों से करके 'दिखाइये, तब उसने मेरा ध्यान रत्नाकर के ३६ वें पृष्ठ पर कल्लिनाथ लिखित टीका की ओर आकर्षित किया और कहा कि इसी में सब स्पष्ट रूप से व्याख्या की हुई है।

प्रश्न—वह सुनाइये। हमें भी सुनने की बहुत उत्कंठा है।

उत्तर—कहता हूं। यहां प्रथम एक प्रश्न इस प्रकार उत्पन्न होता है कि मंद्र, मध्य, तार इन तीनों स्थानों की श्रुतियों को भिन्न-भिन्न मानकर उन्हें स्वतन्त्र नाम दिये जावें, अथवा आवृत्ति पक्ष स्वीकार करते हुए यही मान लिया जावे कि निचले सप्तक की श्रुतियां

ही ऊपर के सप्तक में पुनरावृत्ति होती हैं। दूसरे शब्दों में प्रश्न यह है, कि क्या तीनों सप्तक में मिलाकर ६६ श्रुतियां मान लेनी चाहिये ?

सिद्धान्ततः इस प्रकार ६६ नहीं मानी जावें, बाईस ही मानना ठीक है।

"द्वाविंशतिश्रुतिपक्षे षट्षष्टिश्रुतिपक्षे च, यद्यपि श्रुतिस्वरयोर्भेदांगीकारः समानः एव, तथापि द्वाविंशतिश्रुतिपक्षे द्वाविंशतिः श्रुतयः एव मंद्रस्थाः स्थानांतरयोरपि द्विगुणद्विगुणत्वेन आवर्त्यंते। षट्षष्टिश्रुतिपक्षे तु तात्रत्य एव श्रुतयः स्थानत्रेयऽपि अनावृत्ताः परस्परं भिन्ना, इति च वैषम्यम्। तत्रानावृत्तिपक्षस्वीकारे षड्जा दीनामपि स्वराणामावृत्त्यभावान्मध्यतारस्थाश्चतुर्दशस्वराः पृथग्व्यपदेशभाजो भवेयुः। नैव तथा व्यवहारः।

यहां तक तो सब कुछ ठीक ही हुआ है। इसका मूल अभिप्राय तो उस पंडित के ध्यान में भी नहीं आया होगा। उसने मुझे ध्यान देने के लिये जिसे आवश्यक कहा था वह विवरण देखोः—

"अत एव मतंगादिदर्शितेषु नवसु पक्षेषु द्वाविंशतिश्रुतिपक्षमेव रणनानुरणनात्मना साक्षादनुभूयमानश्रुतिस्वरभेदानपन्हवेन आवृत्त्या सप्तानामेव स्वराणां गुणभिन्नानां व्यवहारोपयोगित्वसिद्धेश्च सारतमं निश्चित्य निःशंको वीणयोर्निदर्शितानां तासां द्वाविंशतिश्रुतीनां मध्ये चतुर्थीप्रभृतिषु शास्त्रानुसारेण पूर्वोत्तरावधिप्रदर्शनपूर्वकं षड्जादिसप्तस्वरस्थापनं विदधाति।"

प्रश्न—मगर गुरुजी ! इसमें Harmonics का सम्बन्ध कहां है ? यहां तो बाईस श्रुतियों में ही "रणन" व "अनुरणन" का स्पष्ट दिखाई देने वाला श्रुतिस्वर-भेद मानने व आवृत्ति पक्ष स्वीकार कर पसन्द करने का विवरण दिखाई पड़ता है। वास्तव में हम नहीं समझ पाये कि यहां Harmonics का क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—यह समझने योग्य बात ही नहीं है। उस पंडित ने मुझे बार-बार "साक्षादनुभूयमान" पद पढ़कर दिखाया और कहा—सुन रहे हो, प्रथम स्वर 'रणन' प्राप्त करता है व उसमें से 'अनुरणन' निकलता है। सुना हुआ नहीं, वरन् उस ग्रन्थकार को साक्षात् अनुभव होगया था। अब भी क्या यह कहा जा सकता है कि हमारे ग्रन्थकारों को Harmonics का ज्ञान न था

प्रश्न—यह सुनकर तो सचमुच हमें हँसी आ रही है, धन्य हैं वे पंडित !

उत्तर—उस बेचारे पर मत हँसो। मुझ से उसने जो कहा वही मैंने तुम्हें सुना दिया।

प्रश्न—हमारे ग्रन्थकारों ने "अनुरणन" शब्द की क्या दुर्दशा की है, यह देख रहे हैं न ?

उत्तर—यह पांडित्य है! बेचारों को वास्तविक कल्पना भी न हुई और ऐसा भी किसी ने स्वीकार नहीं किया कि हमें प्राचीन वाक्य या पद समझ में नहीं आये। भिन्न-भिन्न तारों पर श्रुति के परदे बांध लिए, व उनमें से कुछ स्वर उपयोग कर लिए अर्थात् अधिकांश विचारधारा अहोबल आदि जैसी ही, परन्तु "रणन" और "अनुरणन" के विषय में चिन्दियाँ फाड़ने लगे। उन्होंने यह किया है, तभी तो आज Harmonics पाणिनि तक पीछे जाने की तैयारी कर रहा है न?

प्रश्न—परन्तु ठहरिये! पहिले आपने बोलते हुए कहा था कि तम्बूरे के षड्ज तार से गांधार निकलता है। यहां Harmonics वादी पंडित यही कहेंगे कि षड्ज सम्पूर्ण तार की प्रथम ध्वनि है व गांधार, सूक्ष्म Harmonics स्वर, तार के एक टुकड़े की ध्वनि है। वहां वे रणनानुरण का नियम कैसे लगायेंगे? प्रथम रणन, व बाद में अनुरणन यह क्रम है। यथा सम्पूर्ण तार की ध्वनि रणन और टुकड़े की ध्वनि अनुरणन? अर्थात् षड्ज हुई श्रुति, तथा गांधार स्वर हुआ? यह कहना तो शोभनीय नहीं होगा कि एक तार पर रणन व दूसरे तार पर अनुरणन होता है। ये दोनों तो एकत्र चाहिए ही। तो फिर षड्ज व उससे उत्पन्न गांधार इस संयुक्त स्वर स्वरूप में श्रुतित्व, व स्वरत्व का कैसे विभाजन किया जावेगा? शार्ङ्गदेव के कुछ तार केवल श्रुति थे, स्वर नहीं, इससे क्या समझना चाहिए?

उत्तर—असुविधापूर्ण प्रश्नों के उत्तर न देने की स्वीकृति मैंने पहिले ही ले रखी है। यहां तुम खुद क्या उत्तर दोगे?

प्रश्न—हम तो कहेंगे कि यह भ्रष्ट और गलत विधान है।

उत्तर—मैं इसे ऐसा कहूंगा कि अभी तक विद्वानों ने इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। सम्भव है, यह भाग उन्होंने दैनिक अनुभव का "पैर तले का मार्ग" जैसा-बिलकुल सरल समझकर छोड़ दिया हो।

प्रश्न—पहिले आपने कहा था कि अशिक्षित वादक Harmonics से अपने वाद्य मिलाते हैं, यह भी हमें कुछ विचित्र ही दिखाई पड़ता है। यह समझना कठिन है कि जिनकी तैयारी Harmonics स्वर पहिचानने लायक है, उन्हें बिना सुने वाद्य मिलाना ही नहीं आयेगा। जिसे आरम्भ में ही उत्तम कोटि का स्वरज्ञान है उन्हें Harmonics की आवश्यकता नहीं और जिन्हें स्वरज्ञान नहीं है उनके लिए Harmonics सुनना या न सुनना बराबर है। यह कैसा चक्कर है? आपकी समझ में आया कि अपने पंडितों का यह कैसा तर्क शास्त्र है?

उत्तर—मैं तो उनके तर्कों से ही बताने वाला हूँ। अच्छा देखो, यह विधान कानों को कैसा लगता है:—

अनुरणन अर्थात् बाद में (पीछे) उत्पन्न होने वाला नाद। Harmonics भी पीछे उत्पन्न होने वाला नाद है, इसलिए Harmonics याने "अनुरणन" और अनुरणन अर्थात् Harmonics। शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ में अनुरणन शब्द आया है, इसलिए उसे Harmonics का बोध था। इस बात को तो वाद्य निर्माता व सितारिए भी जानते हैं, फिर वह तो

पंडित था ! तो फिर उसे Harmonics 'ग' भी दिखाई पड़ना चाहिए। Siren बताते हैं कि यह स्वर ३०० आन्दोलन का है। इसमें षड्ज पंचम-भाव से आने वाला गांधार ३०३$\frac{3}{4}$ का होता है उसे Harmonics 'ग' से देखभाल कर उत्तम रूप से दुरुस्त किया। वह स्वर प्राप्त होते ही $\frac{2}{3}\frac{2}{4}$ का प्रमाण भी प्राप्त होगया, और प्रमाण मिला कि श्रुतियों की गाड़ी सरलता से आगे बढ़ने लगी, सभी ओर प्रकाश हो गया और—धन्य है वह विद्वान्, यह कहना भी सार्थक होगया। यह देखकर पाश्चात्य पंडित दांतों में अँगुली दबा लेंगे, वह बात तो अलग ही है।

प्रथम दृष्टि में तो यह विधान "डूबते हुए को तिनका" जैसा लगे तो आश्चर्य नहीं, परन्तु बिना उस पण्डित का स्पष्टीकरण सुने, निर्णय पर कैसे आ सकेंगे ?

प्रश्न—परन्तु कोई यह भी कह सकता है कि इतनी उठा-पटक करने के लिये किसने कहा था ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह परिणाम हमारे वर्तमान हिन्दुस्तानी सङ्गीत की जाग्रति का हुआ है। कोई कहता है कि मुझे अति कोमल रि, ध चाहिये, कोई कहता है कि मुझे अति कोमल ग, नी चाहिये, और कोई कहता है कि मुझे तीव्रतर म, नी चाहिये, ऐसी स्थिति आजकल प्रायः दिखाई पड़ती है। ग्रन्थकारों को इस झंझट की आवश्यकता ही नहीं थी, अतः उनके लिखे हुए ग्रन्थों से हमें योग्य सहायता नहीं मिल पाती। इसमें बाईस श्रुतियों के उद्धार करने का प्रसङ्ग अपने आप आ जाता है, या नहीं ?

प्रश्न—पर ऐसे झंझट से शिक्षार्थी कठिनाई में नहीं पड़ जायेंगे ?

उत्तर—कठिनाई ? कोई-कोई तो कहते हैं कि इससे उनका कल्याण ही होगा। कठिनाई कैसे होगी ?

प्रश्न—कठिनाई बताता हूँ। देखिये ! समझ लीजिये कि कोई पुराना व प्रसिद्ध गायक जयपुर जैसे प्रसिद्ध शहर से हमारे यहां आया और उसने कुछ उत्तम राग गाये।

यह स्पष्ट ही है कि वह अपनी परम्परा का गायन ही गाने वाला है। उसके स्वर हमारे पण्डितों की व्यवस्था से नहीं मिले तो फिर अधिक योग्यतापूर्ण मत कौनसा है, गायक किस घराने का है, पण्डित का व गायक-वादक का गुरू कौन, उसे किसने व कितनी तालीम दी, तालीम किस आधार से दी, उसने किस गुरु (मत) के सूक्ष्म स्वर लगाये, उनका आधार कौनसा, उस वादक की प्रसिद्धि उत्तर भारत में है या नहीं, किस प्रकार हुई, आदि कलहोत्पादक प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। इस विवाद को फिर कोरे नाद-प्रेमी परन्तु स्वरज्ञान-विहीन श्रोता कैसे मिटा सकेंगे ? इसका न्यायकर्त्ता कौन बनेगा। यदि यह कहें कि जिसने जो चाहा वही उसने गाया, तो कोई यह कहेगा कि फिर यह "अव्यापारेषुव्यापार" होना ही क्यों चाहिए ? कोई यह भी कह देगा कि बारह स्वर ही क्या थोड़े थे ?

उत्तर—मैं ऐसा नहीं मानता। हालांकि तुम्हारी बताई हुई कठिनाई सत्य है, परन्तु मैं यही कहूँगा कि हमारे पण्डितों का उद्देश्य उत्तम है तथा परिश्रम भी सराहनीय है। मैं यह अवश्य कहता हूँ कि यदि हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध व सच्चे गायकों की सम्मति से वे

रागों के सूक्ष्म स्वर निश्चित करें, तो उनकी अधिक प्रशंसा होगी। इस प्रकार करने पर उनके प्रयत्न के प्रति समाज की थोड़ी बहुत सहानुभूति अवश्य रहेगी। ग्रन्थों से खोजकर श्रुतियां निश्चित करने का उनका कष्टसाध्य प्रयत्न मुझे पसंद नहीं। इसका यही कारण है कि मुझे पाश्चात्यों के मत का इतना भय नहीं है। ग्रन्थकारों को संकट में डालने की अपेक्षा हमारे सङ्गीत का गौरव यदि पाश्चात्य लोगों की ओर थोड़ा कम भी हो तो भी मुझे ग्राह्य होगा।

प्रश्न—यह हम समझ गये। यहां हमें एक कल्पना सूझी है, वह आपके सम्मुख रखते हैं। हमारे यहां शार्ङ्गदेव द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक नाम ही पुरातन काल में प्रचलित थे, यह मानकर शार्ङ्गदेव से सम्बन्धित सभी ग्रन्थकारों व वर्तमान पण्डितों का मत व्यवस्थित रूप से एक ढांचे के रूप में नहीं बन पाएगा? यदि यह हो जावे तो क्या इसका कोई उपयोग नहीं होगा? हम तो समझते हैं कि ऐसे आनन्ददायक व लोक-प्रिय विषय पर जितने कम मत-मतान्तर उत्पन्न हों उतना ही अच्छा है।

उत्तर—तुम कैसा ढांचा तैयार करोगे, बताओ तो?

प्रश्न—हम तो एक कल्पना मात्र आपके सामने रखते हैं। शायद यह हमारे पण्डितों को पसन्द न आवे, फिर भी आप देखिए:—

(१) शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ के पारिभाषिक नाम या—उनके अधिकांश भाग उस समय समस्त देश में प्रचलित थे, ऐसा मानते हैं। नारदीय-शिक्षा में भी कुछ ऐसे नाम दिखाई देंगे।

(२) भरत की अपेक्षा शार्ङ्गदेव के द्वारा अधिक स्वर-नामों का उपयोग हुआ है। इसका कारण यह समझना चाहिए कि सङ्गीत में भिन्न-भिन्न राग सम्मिलित होने के कारण भाषा में परिवर्तन करना आवश्यक हुआ होगा। तो भी अन्तर व काकली आदि नाम शार्ङ्गदेव ने यथावत् रख छोड़े हैं।

(३) शार्ङ्गदेव के पश्चात् ग्राम, मूर्छना, जाति का महत्व पिछड़ गया व समस्त राग षड्ज से षड्ज तक के सप्तक से उत्पन्न करने की प्रथा प्रचलित हो गई। इसका आरम्भ कल्लिनाथ से हुआ होगा।

(४) फिर दो पक्ष हो गए होंगे, एक उत्तर का और दूसरा दक्षिण का। दोनों पक्षों को शार्ङ्गदेव पर अभिमान रहा होगा। एक सप्तक से ही समस्त राग निकालना दोनों को पसन्द आया होगा।

(५) दक्षिण के पण्डितों ने प्राचीन पारिभाषिक नाम सुरक्षित रखना पसन्द किया, परन्तु उत्तर के पंडितों ने तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञायें पसन्द की होंगी।

(६) अब समझे कि यदि हमारे विद्वानों द्वारा संशोधित श्रुतियां ही शार्ङ्गदेव की मान कर ग्रहण की जांय तो उत्तर व दक्षिण पद्धति की समानता करने का प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होगा। मुख्य उलझन रे ग ध नि स्वरों की ही दिखाई देती है, क्योंकि सा, म, प शुद्ध स्वरों के विषय में मतभेद सुनने में नहीं आया।

(७) दक्षिण व उत्तर की पद्धति में यही अन्तर दिखाई देता है कि दक्षिण की ओर स्वर की प्रथम अवस्था ही शुद्ध स्वर है, सभी विकृत अवस्थाऐं शुद्ध स्वर के पश्चात् होती हैं। उत्तर की ओर स्वरों की शुद्ध अवस्था मध्य की स्थिति दिखाई पड़ती है, क्योंकि स्वर तीव्र व कोमल हो सकता है।

(८) यहां एक सुविधाजनक कल्पना यह हो सकती है कि दक्षिण के विद्वानों ने अपने शुद्ध स्वर रे, ग, ध, नि एक-एक श्रुति जान-बूझ कर उतार दिये तथा उत्तर के विद्वानों ने उन्हीं स्वरों को एक-एक श्रुति चढ़ा दिया और इसी रीति से प्राचीन रागों का वर्णन किया।

(९) इस रीति से दक्षिण का शुद्ध स्वर सप्तक २४०, २५६, २७०, ३२०, ३६०, ३८४, ४०५, ४८० आन्दोलन का हुआ व उत्तर का शुद्ध स्वर सप्तक २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५, ४३२, ४८० आन्दोलन का हुआ।

(१०) प्रथम सप्तक (दक्षिण का) 'मुखारी' नाम से प्रसिद्ध है एवं दूसरे को हम 'काफी' कहेंगे। शार्ङ्गदेव के राग अभी तक आपने नहीं बताये, इसलिये यह नहीं कह सकते कि उनका स्वरूप दोनों पद्धतियों के रूप से मिलता है या नहीं। यदि वह मिल गया तो दक्षिणी पंडितों की एक श्रुति कम की जाकर प्राचीन व्याख्या से ही शार्ङ्गदेव की मूर्च्छना आदि की उलझन युक्तिपूर्वक टाली जा सकती है, ऐसा कहा जा सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था से अपनी संगीत-परम्परा भी उत्कृष्ट दशा में रहेगी।

उत्तर—वाह भई वाह! तुम तो अब बड़ी मनोरंजनक कल्पना करने लगे हो। किन्तु मैं समझता हूं कि तुम्हारी यह कल्पना हमारे विद्वानों को पसन्द नहीं आवेगी। वे इतना ही कहेंगे कि "अजी महाशय! हम बड़े कष्ट उठा कर तुम्हारे सप्तक में से गणित प्रमाण के सुन्दर बाईस टुकड़े अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चित कर रहे हैं। इनका उपयोग तुम्हारी तकदीर में हो तो करो, नहीं तो छोड़दो। भिन्न-भिन्न रागों में ग्रन्थ प्रमाण लगाकर सिद्ध करने की हमें कोई गरज नहीं। हमने तो एक अच्छा काम करके रास्ते पर डाल दिया है, अब किसी को उपभोग करना हो तो करो।"

प्रश्न—परन्तु ये टुकड़े यदि हमारे टुकड़ों से नहीं मिले तो?

उत्तर—तो तुम्हारा तुम्हारे पास और हमारा हमारे पास। मैं समझता हूँ कि विद्वानों का कथन भी ग़लत नहीं है। हमारे टुकड़े ही मारे देश में ग्रहण होने चाहिये, इस बात को वे भला कैसे कह सकते हैं? वे अपने सम्बन्ध में ही कुछ कह सकेंगे। मेरी राय में उन्हें यह कह कर दोष नहीं दिया जा सकता कि हमारे गायक-वादक अमुक सिद्धान्त पसन्द करते हैं और हम उनकी सलाह मशविरे से अमुक बात मानते हैं। हमारे लिये तो श्रुति-स्थानों की उलझन है ही नहीं, क्योंकि हमारी पद्धति मुख्य बारह स्वरों की है और वह अत्यन्त सुविधाजनक भी है। आगे कभी तुम्हारी इच्छा होने पर प्रत्येक रागों में मैं अपने स्वर, कितनी लंबाई के तार अथवा आंदोलन के प्रयोग करता हूं यह 'Monochord' पर सावधानी से देखभाल कर कोष्ठक के रूप में तुम्हें दे दूंगा। मैं समझता हूं, मेरे अनेक स्वरस्थान अपने पंडितों के स्वरस्थानों से मिल जायेंगे। परन्तु कहीं-कहीं पर वे नहीं मिलें तो भी मैं कौन-कौन से स्वर उपयोग में लाता हूं, यह तथ्य तो अच्छी तरह

तुम्हारी समझ में आ जावेगा, किन्तु उस कोष्ठक के बिना अभी तुम्हें कोई दिक्कत होगी, ऐसा भी न समझना।

प्रश्न—इस प्रकार का कोष्ठक हमारे लिये बहुत उपयोगी होगा। जिस ध्येय से हम अपनी पद्धति से ही चलना चाहते हैं, उस उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस प्रकार की स्पष्ट व्याख्या हमारे पास होना अच्छा है।

उत्तर—ठीक है, अब इस श्रुति स्वर-प्रकरण की आवश्यक जानकारी तुम्हें प्राप्त हो गई है, ऐसा प्रतीत होता है, अतः इस विषय के विद्वानों द्वारा लिखित लेख अब तुम समझ सकोगे। हमारी की हुई वर्तमान चर्चा में से कोई-कोई बात तुम्हें याद रखनी आवश्यक है, उसकी ओर यदि तुम चाहो तो एक बार संक्षिप्त रूप से तुहारा ध्यान पुनः आकर्षित करा दूँ। इनमें से अधिकांश बातें तो तुम्हें ज्ञात ही हैं।

प्रश्न—यह बहुत उपयोगी होगा, ऐसा अवश्य कीजिये ?

उत्तर—तो फिर सुनो !

(१) 'श्रुति' का क्या अर्थ है ? श्रुति का अर्थ एक सूक्ष्म स्वरान्तर समझना चाहिए ? तुम्हें यह ज्ञात है कि हमारे स्वर सप्तक के बाईस सूक्ष्म भाग करने की प्रथा रही है, यह निश्चित प्रमाण में नहीं प्राप्त होता कि एक श्रुति तार की अमुक लम्बाई की ध्वनि या अमुक आन्दोलन का नाद होता है। यह भी नहीं है कि एक मध्यान्तर (फ़ासले) की श्रुतियों का माप दूसरे मध्यान्तर से मिलेगा ही। सारांश यह है कि श्रुतियां एकसी नहीं मानी जा सकतीं। इसीलिये उनके विषय में मतभेदों की उलझन उत्पन्न हो जाती है। यह नियम समझा जाता है कि श्रुतियों में सदैव 'सङ्गीतोपयोगित्व' व 'अभिगेयत्व' का तत्व रहता है। अपने प्राचीन संस्कृत पण्डित श्रुतियों के झगड़े में ही नहीं पड़े। उन्होंने प्रत्येक दो स्वरों के मध्यान्तर के शास्त्रोक्त संख्या के प्रमाण से समान भाग किये और उन्हीं को श्रुति समझा। प्रत्यक्ष व्यवहार में परम्परा से चले आरहे बारह (अथवा चौदह) स्वरों को ही उपयोग में लिया। पहिले श्रुतियों की गणना करके फिर उन पर स्वर-स्थापना कभी नहीं हुई होगी। श्रुतियां बाईस ही क्यों हैं ? यह विवाद उत्पन्न करने की भी हमें कोई आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती।

(२) श्रुति व स्वर में कौनसा भेद है ? इस प्रश्न के उत्तर में पण्डित अहोबल की व्याख्या उचित जान पड़ती है। वह कहता है कि श्रुति व स्वर में वास्तव में बिलकुल भेद नहीं है। हमारे पास एक सप्तक के सङ्गीतोपयोगी बाईस नाद हैं, इनमें से ही कुछ नियत संख्या के नादों का उपयोग हम एक समय में एक राग में करते हैं, जितने नाद प्रयोग में आते हैं वे उस राग के स्वर हो जायेंगे तथा शेष नाद श्रुति माने जाकर रह जायेंगे।

अहोबल कहता है:—

सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाहेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव संमता॥

यह बात सरलता से समझ में आ जावेगी कि एक राग में श्रुति मानकर छोड़े हुए नाद दूसरे राग में स्वर हो सकेंगे।

(३) अति कोमल, तीव्रतर आदि स्वरों को हम अलंकारिक स्वर कहेंगे। हम इनकी सहायता से थाटों की रचना भी नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा करना सदैव के लिये असुविधा-पूर्ण हो जायेगा। हमारी पद्धति "लक्ष्य-सङ्गीत" ग्रन्थ के अनुसार है और लक्ष्यसङ्गीत, संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार है। भरत, शाङ्गदेव की पद्धति ग्राम, मूर्छना की होने के कारण हम उसे स्वतन्त्र पद्धति मानेंगे। यह पद्धति इस समय हमारे देश में कहीं पर भी प्रचलित नहीं है। इस समय सभी ओर का सङ्गीत एक सप्तक में ही शुद्ध-विकृत स्वर स्थापित करके माना जा रहा है। यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि यदि शाङ्गदेव के कुछ रागों को यत्नपूर्वक हम प्रचलित रूप में प्रस्तुत कर पाते, तो हम आज उसी की पद्धति स्वीकार करके चलते। उसके राग-रूप हमें अन्य ग्रन्थों में भी मिल सकते हैं। हमारे गायक-वादकों को ग्राम, मूर्छना, जाति का बिलकुल बोध नहीं है। जहां तक हम अपने रागों के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का नियम व वादी स्वर का नियम सँभाल रखेंगे, तब तक हमारे रागों की शुद्धता भी कायम रहेगी। उदाहरणार्थ 'श्रीराग' को लो। इस राग को हम पूर्वी थाट का औड़व सम्पूर्ण स्वरूप मानते हैं। इसके आरोह में ग, ध, स्वर वर्जित मानते हैं। जब तक इन नियमों को संभाले रखेंगे, तब तक हमारा राग 'श्री' राग ही रहेगा। यदि कोई कहे कि हम कोमल रे, ध स्वरों के स्थान पर अति कोमल रे ध का प्रयोग करते हैं तो ऐसा कहने पर भी हमारे श्रीराग को दूसरा नाम नहीं दिया जा सकता। इतना ही होगा कि हमें इन अति कोमल स्वरों को अलंकारिक मान लेना होगा। परन्तु हमारी थाट पद्धति इस प्रकार के अलंकारों के अवलम्ब पर स्थापित नहीं हो सकती।

(४) अति कोमल रे, ध अर्थात् ५ व १८ वीं श्रुति दक्षिण के किसी भी ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त नहीं हैं। पण्डित अहोबल भी कहता है कि मैं किसी भी राग में पूर्व री, तथा पूर्व ध का प्रयोग नहीं करने वाला हूँ। यह अभी तक स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सका कि भरत, शाङ्गदेव इन श्रुतियों का क्या उपयोग करते थे। अर्थात् उनकी पद्धति में एक श्रुति के रे, ध स्वरों को क्या नाम उन्होंने दिए थे तथा किस राग में इनका प्रयोग किया था। यदि यह स्पष्टीकरण किसी ने नहीं किया तो अति कोमल रे, ध का प्रयोग शास्त्रसम्मत नहीं, यह कोई भी कह देगा। दक्षिण के पण्डित रामामात्य, सोमनाथ, पुण्डरीक, व्यंकटमखी आदि दो श्रुति के रे, ध भी प्रयोग में नहीं लाते थे। इसका थोड़ा सा कारण मैं पहिले ही तुम्हें बता चुका हूँ। वे खासतौर से तीन श्रुति के रे, ध स्वरों को कोमल मानकर ग्रहण करते हैं, अथवा कोमल रे, ध स्वरों को वे त्रिश्रुतिक मानते हैं। पुण्डरीक कहता है:—

> पंचम्यष्टादशी षष्ठी तथा चैकोनविंशतिः।
> चतस्रः श्रुतयश्चैता रागाद्यैरप्रयोजकाः॥
> शेषा अष्टादशैव स्युः श्रुतयः स्वरबोधकाः।

यही बात "आइने अकबरी" में भी कही गई है, जैसा कि Francis Gladwin कहता है:—

"The air does pass through the fifth, sixth, eighteenth and nineteenth nerves consequenty they are mute &c."

इस कथन का अभिप्राय यही है कि पण्डितों ने इन श्रुतियों का स्वरत्व नहीं माना है। यदि हम यह मान लें कि दक्षिण के पण्डितों का स्वर सप्तक कृत्रिम है, तो यह कहना पड़ेगा कि उन्होंने जान-बूझकर इन श्रुतियों पर स्वरत्व स्थापित नहीं किया। दक्षिण के स्वर सप्तक का मज़ाक उड़ाना ठीक नहीं है, सम्भव है उस सप्तक को इस प्रकार बनाने वाले की इसमें कुछ कुशलता ही हो।

(५) दक्षिण व उत्तर पद्धति का एक प्रधान भेद सहज में ही दिखाई पड़ जाता है, दक्षिण की ओर शुद्ध स्वरों का स्थान बिलकुल निम्नतम (प्रथम श्रुति पर) माना जाता है तथा उत्तर की ओर मध्य में स्वर की स्थिति मानी जाती है। इस सिद्धान्त पर आगे चलकर भी मैं कारण उपस्थित होने पर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करूँगा।

(६) विकृत स्वर का क्या अर्थ है ? इस प्रश्न का उत्तर तुम सहज में दे सकोगे। प्रत्येक स्वर अपने शुद्ध स्थान से हट जाने पर विकृत हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहें कि स्वर तीव्र या कोमल नाम की स्थिति पाते ही विकृत हो जाता है। स्वर विकृत हुआ यानी उसका अगले पिछले स्वरों से जो मूल सम्बन्ध था, वह बदल गया। अर्थात् यह स्थूल नियम मान लिया जावेगा कि स्वरों की विकृति से स्वरांतर अर्थात् फासला बदल जाता है।

(७) भिन्न-भिन्न ग्रंथों के शुद्ध थाट कौन-कौन से हैं ? मैं भरत व शार्ङ्गदेव के थाटों के विषय में इस चर्चा में कुछ भी नहीं कहने वाला हूँ। रागतरंगिणी व पारिजात, इन दोनों ग्रन्थों का शुद्ध थाट हम "काफी" मानेंगे। इन थाटों के शुद्ध स्वरों के आंदोलन २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५, ४३२, ४८०, मानकर तुम चलो, तो चल सकते हो। सोमनाथ, रामामात्य, आदि विद्वानों का थाट "मुखारी" या "कनकांगी" है।

इन थाटों के स्वरान्दोलन, उधर के विद्वानों से ही प्राप्त किये जावें। वे लोग अभी अपनी श्रुतियों की शोध कर रहे हैं, अतः हमें अभी प्रतीक्षा करनी चाहिये। हिन्दुस्तानी पद्धति का शुद्ध स्वर सप्तक हम बिलावल का मानते हैं। इसमें रि, ग, ध, नी स्वरों को हमारे गायक तीव्र संज्ञा देते हैं। इसे ही इस समय अपना षड्ज ग्राम समझ कर ग्रहण करना है। यद्यपि आजकल मूर्छना का झंझट न होने से 'ग्राम' का महत्व हमारे संगीत के लिये नहीं रहा, किन्तु मूल शुद्ध स्वर सप्तक को ग्राम कहने व मानने की प्रथा चल पड़े तो बिलावल थाट का नाम 'षड्ज-ग्राम' उपयुक्त होगा। दक्षिण में यह नाम "कनकांगी" थाट को दिया जावेगा। अहोबल अपने 'काफी थाट को यही नाम देगा। हम एक सप्तक में सभी स्वर मान लेते हैं, अतः हमारे लिये दूसरा ग्राम आवश्यक नहीं है। वास्तव में यह कहना गलत नहीं होगा कि प्राचीन पद्धति नष्ट होगई है, अतः ग्रामों का रहस्य भी लुप्त हो चुका है। अपने शुद्ध स्वर सप्तक के आंदोलन यदि तुम, २४०, २७०, ३००, ३२०, ३६०, ४०५, ४५०, ४८० स्वीकार करलो तो मुझे कोई ऐतराज नहीं होगा। प्रत्यक्ष परंपरा से प्राप्त तीव्र ग, नी सभी के जाने हुए हैं और इनके आंदोलन यदि अब पश्चिम के ग्रंथों में निश्चित कर दिये हों, तो उन्हें ग्रहण कर लेने में मुझे कोई हानि नहीं

जान पड़ती। मेरा कथन केवल इतना ही है कि ग्रन्थों में से खींचतान कर उन्हें निकालने व सिद्ध करने का हम पर उत्तरदायित्व नहीं है।

(८) मैं यह मानने को तैयार नहीं कि 'अनुरणन' और 'स्वयंभू' शब्दों से योरोप के Harmonics का बोध होता है। इसके साथ इस कथन की जिम्मेदारी भी हम अपने सिर पर नहीं लेंगे कि हमारे प्राचीन वीणावादकों को षड्ज से गांधार दिखाई नहीं पड़ा होगा। हम तो इतना ही कहेंगे कि 'अनुरणन' व 'स्वयंभू' शब्दों से यह ज्ञात होना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में संस्कृत टीकाकार पंडित का तो इतना ही आशय दिखाई पड़ता है कि श्रुति की अपेक्षा अधिक देर तक स्थिर रहने वाला नाद 'अनुरणन' कहलाता है। मैंने तुम्हें भिन्न-भिन्न संस्कृत के मत सुनाये ही हैं। "स्वयंभू स्वर" के लिये अन्य विद्वानों ने भी मासिक पत्रों में सिद्ध किया है कि यह Harmonics नहीं है, मैं भी इसी मत का हूँ। "राग-विबोध-प्रवेशिका" नामक छोटी सी पुस्तक भी इस विषय के लिए तुम्हें उपयोगी सिद्ध होगी। मैं यह नहीं कह सकता कि हमारे विद्वानों द्वारा परिश्रम-पूर्वक खोजी हुई श्रुतियां बुरी हैं या बिलकुल निरुपयोगी हैं। हमें तो उनका यह दावा मान्य नहीं है कि ये सभी श्रुतियां ग्रंथों से ही उत्पन्न होती हैं।

प्रिय मित्रो! हमारा यह श्रुति स्वर-प्रकरण बहुत लम्बा हो गया और हमारा मुख्य कार्य अभी वैसा ही रह गया। मेरे कथन का अभिप्राय तुम्हारे ध्यान में आजावे तो उद्देश्य पूरा हो जाता है। यह न समझना कि मैं किसी विशेष लेख को लक्ष बनाकर अभी तक बोलता रहा हूं। इस विषय पर विचार करते हुए, इस विषय के अनेक लेखों के सम्बन्ध में बोलना स्वाभाविक ही है, तो भी जो कुछ भी मैं तुम्हें बता चुका हूं उसके लिये निस्संदेह यह कहूँगा कि जो बातें बिलकुल प्रामाणिक रूप से मैं समझाता हूँ, वे बातें ही बताई हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि इस समय प्रचार में हम कौन-कौन से स्वरों का उपयोग करते हैं एवं उनमें कौन-कौनसा आन्दोलन सम्बन्ध है। मैं स्वयं कहता हूँ और किसी के इस कथन पर मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि पिछली तीन-चार शताब्दियों में इन्हीं स्वरों का प्रचार रहा होगा। मेरे कथन का तात्पर्य तुम्हारे ध्यान में आ ही गया होगा। मेरा ध्येय सदैव यह रहा है और रहता है कि जो भी सिद्धान्त समाज के सम्मुख कोई निश्चित करना चाहे, उसे ग्रन्थोक्तियों का सरल अर्थ करके व्यवस्थित रीति से लोगों के सम्मुख रखना चाहिये। ऐसा करने पर हमारे कथन पर श्रोताओं की अधिक श्रद्धा होना संभव है। जब कि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि हमारे संस्कृत ग्रन्थकारों को स्वरों के आन्दोलन का ज्ञान नहीं था, फिर द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक, स्वरान्तरों का मापक $\frac{10}{9}$, $\frac{16}{15}$ आदि बिना प्रमाण के समाज कैसे स्वीकार करेगा? कोई उत्तर देगा कि Minor-tone and Semitone के प्रमाण से सरलता से समझ में आजावेगा। परन्तु यह उचित नहीं माना जा सकेगा, क्योंकि लोग प्रश्न करेंगे कि ऐसा किसी संस्कृत पंडित को दिखाई पड़ा? क्या सोमनाथ व अहोबल को यह मालूम था? अहोबल का त्रिश्रुतिक रिषभ $\frac{9}{8}$ प्रमाण का है व सोमनाथ ने "शुद्ध री" हिन्दुस्थानी पद्धति के कोमल री जैसा माना है। हमारे पंडितों के ये दोनों ही प्रधान आधार हैं। इसका यही उत्तर होगा कि इन मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने प्राचीन स्वरस्थान बिलकुल नहीं समझे। परन्तु फिर ये हमारे पंडितों के आधार कैसे हुये? तो भी इन ग्रंथकारों को गलत ठहराने पर जब तक कि "स्वयंभू, सारणा व अनुरणन" की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध न होंगे,

तब तक मैं समझता हूं कि समाज को यही संदेह रहेगा कि हमारे वर्तमान पण्डितों को पाश्चात्य ग्रंथों ने भ्रम में डाल दिया है। अपने ग्रंथकारों की प्रशंसा जितनी अधिक हो सके उतनी करना मुझे स्वीकार है, परन्तु इस प्रशंसा में अन्याय न होना चाहिये। शार्ङ्गदेव ने श्रुतिओं की क्या कल्पना दे रखी है, यह तुम देख ही चुके। उसके उस माप से क्या बाईस श्रुति स्थापित हो सकेंगी ? पश्चिम की ओर तीन प्रकार के स्वरान्तर हैं तथा हमारे यहां भी इतने ही हैं। केवल इतने साम्य से ही पाश्चात्यों के आंदोलन प्रमाण हमारे ग्रंथकारों के पल्ले बांधना कैसे संभव है ? मैं समझता हूं कि शायद हमारे विद्वान अब अपनी नवीन संशोधित श्रुतियों के आधार पर थाटरचना व जन्य राग-व्यवस्था करना भी पसन्द करेंगे। यदि उन्होंने ऐसा किया तो भी हम उन्हें दोष नहीं देंगे। उनसे केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनके द्वारा की जाने वाली व्यवस्था ग्रन्थोक्त नहीं होगी। यदि किसी ने नवीन पद्धति में अति कोमल, अति-अति कोमल, तीव्रतर, तीव्रतम, आदि स्वरों की योजना की तो उससे हमें विरोध नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि प्रचार में सूक्ष्म स्वर आते ही नहीं। इन स्वरों को अलंकारिक स्वर की दृष्टि से किन्हीं रागों में यदि तुमने स्वीकार कर लिया तो मेरी ओर से कोई बड़ा भारी विरोध नहीं होगा। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान हिन्दुस्थानी संगीत में अनेक राग-स्वरूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गये हैं। इन्हीं में यह भी एक प्रकार का स्वरूप मान लिया जावेगा। परन्तु यदि अलंकारिक श्रुतियों के फेर में पड़कर तुम नवीन थाट व्यवस्था करने का कार्य अपने सिर ले लो, तो मैं तुम्हारे कृत्य को 'अव्यापारेषुव्यापार' कहूंगा, क्योंकि तुम्हारे ऐसे प्रयत्न से संभवतः अनेक लोकप्रिय रागस्वरूपों में व्यर्थ ही भ्रष्टता होना संभव है। यह तुम देख ही चुके हो कि हमारे विद्वानों द्वारा संशोधित श्रुतियों की नींव कितनी मजबूत है ? फिर यह स्पष्ट ही है कि उनकी शोध की सहायता से प्राचीन शास्त्रसम्मत श्रुति-व्यवस्था नहीं हो सकेगी। हमारे विद्वानों में यह साहस भी नहीं होगा कि वे यह कह सकें कि हम यह नवीन व्यवस्था कर रहे हैं। एक पंडित ने मुझे बताया था कि अति कोमल स्वरों के उपयोग करने की प्रथा मुसलमान गायक-वादकों द्वारा चली है।

यदि यही सत्य हो तो फिर प्राचीन ग्रन्थों की खींच-तान व्यर्थ क्यों की जावे ? मैं तो भाई, अपनी द्वादश स्वर पद्धति से ही संतुष्ट हूं। शायद शार्ङ्गदेव से पुण्डरीक तक चौदह स्वरों का प्रचार रहा हो, परन्तु यह निर्विवाद मत है कि व्यंकटमखी व उसके अनुयायी 'सारामृतकार' ने अपनी पद्धति स्पष्ट रूप से बारह स्वरों पर स्थापित की है। हमारे लोचन, अहोबल के लिखने का क्रम भी ऐसा ही दिखाई पड़ता है। बारह स्वर निश्चित करने पर व्यंकटमखी ने जनकमेल (थाट) ठीक निश्चित किये हैं। उसके वे थाट संपूर्ण देशों की पद्धतियों के उपयोग में आने योग्य थे। हिन्दुस्थानी पद्धति में उन्हीं बारह स्वरों का प्रचार कर लक्ष्यसङ्गीतकार ने व्यंकटमखी की पद्धति स्वीकार की; और इस प्रकार उत्तम रूप से शास्त्रपरंपरा सुरक्षित रखी है। सम्पूर्ण ७२ थाट स्वीकार करते हुए उसने अपने संगीत के उपयोग में आने वाले व सुविधाजनक दस जनक-मेल (थाट) मान लिये और इनकी मदद से जन्य राग व्यवस्थित किये। दक्षिण की ओर के भिन्न थाट यदि लोकप्रिय हुए तो उनका समावेश उन ७२ थाटों में ही होगा। हमारे यहां सूक्ष्म-स्वरों की थोड़ी बहुत चर्चा हुई है, यह लक्ष्यसंगीतकार के भी ध्यान में होगी, क्यों कि वह कहता है:—

सूक्ष्मस्वरप्रयोगाणां विधानं श्रूयते क्वचित् ।
ग्रंथोक्तनियमाभावात् तच्चर्चा वादमूलका ॥
भिन्नश्रुतिसमायोगे परिणामो भवेत् पृथक् ।
विज्ञानं तु तथाप्येतच्छ्रोतृगणेऽतिदुर्लभम् ॥

अस्तु, अब हम इस विषय को एक ओर रखकर "भैरव" राग पर विचार करेंगे। ठीक है न?

प्रश्न—ठीक है, जैसी आपकी इच्छा हो कीजिए। हमें तो बिलकुल उकताहट नहीं हुई, बल्कि हमें इस चर्चा से आनन्द व ज्ञान ही प्राप्त हुआ। हमारे हित की दृष्टि से इसी प्रकार आपको जो भी उचित जान पड़े, उसे अवश्य ही प्रसन्नतापूर्वक सुनाइयेगा।

भैरव थाट के स्वर तो आप हमें पहिले ही बता चुके हैं, अब आगे चलिये?

उत्तर—भैरव थाट को "संधिप्रकाश" थाट माना गया है। पिछली बार मैं तुम्हें संक्षेप में बता चुका हूं कि संधिप्रकाश किसे कहते हैं। तुम चाहो तो एक बार पुनः उसका स्मरण करादूं। व्यवहार में प्रभात व संध्याकाल सन्धिप्रकाश समझे जाते हैं; यह मान्यता एक स्थूल रूप से चल रही है। हम रोज देखते हैं कि सन्धिप्रकाश सूर्योदय व सूर्यास्त के कुछ देर पहिले से आरम्भ होता है तथा कुछ देर बाद तक रहता है। इस समय का विशेष महत्व हमारे सङ्गीत-ज्ञाता भी मानते हैं। यह मैं कह चुका हूं कि हमारी इस प्रकार की कल्पनाओं को पाश्चात्य विद्वान बिलकुल भ्रांति-मूलक व निराधार समझते हैं, तथापि हम इन कल्पनाओं का अकारण निरादर नहीं करेंगे। यदि किसी ने यह प्रश्न किया कि सन्धिप्रकाश थाटों के स्वरों में ऐसी क्या विलक्षणता है जो कि वे अन्य समय में मधुर नहीं लगेंगे? तो इसका उत्तर शायद तुम पदार्थ-विज्ञान या नाद-शास्त्र की दृष्टि से नहीं दे सकोगे। परन्तु इस समय गाये जाने वाले थाटों में अमुक प्रकार के स्वर ही नियमपूर्वक पसन्द किये जाते हैं, यह बात अवश्य विचारणीय है! हमें शास्त्रीय विवाद की गहराई में नहीं जाना है। मैं सुनता हूँ कि नाद का परिणाम मनुष्य पर किस समय कैसा होता है, इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान भी एक मत नहीं हुए हैं। कोई कहेगा कि आगे चलकर हमारी प्राचीन मान्यता निराधार व भ्रष्ट सिद्ध होगी! परन्तु यह चिंता हमें क्यों होनी चाहिये? हमें तो तात्कालिक स्थिति का वर्णन करना है। इतना करने पर ही हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। हम तो कहेंगे कि आगे चलकर यदि पाश्चात्य विद्वानों की कृपा से हमारा सङ्गीत कुछ भिन्न स्वरूप धारण कर ले, तो भी भविष्य के सङ्गीत-विद्यार्थी को यह इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी कि हम पहिले क्या और कैसे गाते थे। यह तर्क हम अपने स्वतः के अनुभव के आधार पर करते हैं। प्राचीन ग्रन्थ-सङ्गीत आज उस समय के नियमों से गाया हुआ दिखाई नहीं पड़ता, इससे हमें यह जानने की कितनी तीव्र उत्कण्ठा होती है कि वह कैसा रहा होगा? ऐसी ही स्थिति

भविष्य के शिक्षार्थियों की होगी। साथ ही आज का अपना संगीत हम किन-किन नियमों से गाते-बजाते हैं, यह भी तो प्रत्येक विद्यार्थी को जानना चाहिये न ? "सन्धि प्रकाश थाट" कहने मात्र से ही अब पद्धति सीखना-सिखाना सुविधापूर्ण हो जाता है।

उत्तर—हां, यह मैं कहने ही वाला था। भैरव, पूर्वी व मारवा इन तीन सन्धि-प्रकाश थाटों में तुम्हारे सङ्गीत का लगभग तिहाई हिस्सा आ जावेगा, यह मामूली बात नहीं है।

प्रश्न—भैरव थाट में हमें कितने राग सिखाये जायेंगे ?

उत्तर—संभवतः मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे चौदह-पन्द्रह राग बताऊँगा। उनके नाम यथा स्मरण कहे देता हूं। सुनोः—

(१) भैरव (२) रामकली (३) गुणक्री (४) जोगिया (५) सावेरी (६) प्रभात (७) कालिङ्गड़ा (८) मेघरंजनी (९) बंगाल-भैरव (१०) सौराष्ट्रटंक (११) विभास (१२) शिवमत-भैरव (१३) अहीर-भैरव (१४) आनन्द-भैरव (१५) ललित-पञ्चम। किन्तु यह न समझना कि मैं इसी क्रम से ये राग बताने वाला हूं।

भैरव थाट में प्रयुक्त मध्यम को हम 'कोमल' या 'शुद्ध' कहेंगे। हमारे गायक-वादक ये दोनों नाम एक ही नाद के समझते हैं। इस मध्यम के प्रयोग से भैरव थाट के रागों में प्रातर्गेयत्व माना जाता है। भैरव राग उत्तर रागों में से एक माना गया है। प्रभात काल के सम्पूर्ण राग इसी वर्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर एक वर्ग 'पूर्व राग' नामक भी होगा ? दोनों में भेद क्या होता है ?

उत्तर—ऐसा सुना जाता है कि जिस समय प्राचीन काल में कभी मध्याह्न से मध्याह्न तक पूरा दिन मानने की परिपाटी प्रचलित थी, उस काल से इस वर्गीकरण का सम्बन्ध है। यद्यपि इस बात का कोई लिखित प्रमाण चाहे न मिले, परन्तु बहुत सी बातें ऐसी हैं जो इस वर्गीकरण का समर्थन करेंगी।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—समझाता हूं, सुनो—दोपहर बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के भाग को यदि हम पूर्व भाग मान लें तो मध्य रात्रि से फिर मध्याह्न तक के भाग को उत्तर भाग कह सकेंगे। अब ये विभाग हम भिन्न दृष्टि से करते हैं। रात्रि व दिवस के विभाग तो प्रसिद्ध ही हैं।

प्रश्न—अच्छा, अच्छा समझ गये। पूर्व भाग में गाये जाने वाला राग 'पूर्वराग' व उत्तर भाग में गाये जाने वाले 'उत्तरराग' कहे जाते होंगे ?

उत्तर—तुम्हारे ध्यान में ठीक आ गया। ऐसी ही योजना अपने प्राचीन सङ्गीतज्ञ विद्वानों की दिखाई देती है। यह प्रारम्भ कब हुई होगी, यह मैं कैसे बता

सकता हूँ ? किन्तु यह जानना तुम्हारे लिये आवश्यक भी नहीं है । मर्मज्ञों को भी यह चमत्कार अनुभव हुआ है कि पूर्व रागों में वादी स्वर किस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ता है और वही फिर किस खूबी से तार-षड्ज की ओर वापिस जा पहुँचता है । मार्मिक व्यक्तियों को इसमें बड़ा कौतुक दिखाई देता है। भैरव राग में मध्यम की ओर अपना ध्यान तत्काल जाता है। उत्तर रागों में उस स्वर की प्रबलता तीव्र मध्यम से अधिक होती है। एक मजे की बात देखो कि जिस राग में तीव्र मध्यम अधिक प्रयुक्त हो तथा वह राग की रंजकता अधिक बढ़ाता हो तो ऐसे राग अधिकतर सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय के ही पाये जायेंगे। पिछले समय थाटों के सम्बन्ध में बोलते हुए मैंने यह कहा भी था, ठीक है न ? इसीसे हमारे गायक कहते हैं कि तीव्र मध्यम स्वर रागों का रात्रिगेयत्व सूचक है। हमारी पद्धति के प्रमुख नियमों में से यह भी एक नियम समझना चाहिये। जैसे-जैसे तुम्हारा अनुभव बढ़ेगा वैसे-वैसे तुम इस रहस्य को अच्छी तरह समझ सकोगे।

प्रश्न—भैरव थाट का आश्रय राग भैरव ही समझा जायगा न ?

उत्तर—मेरी राय में ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं है। शायद कोई सुझाये कि भैरव की अपेक्षा "कालिंगड़ा" राग अधिक सरल समझा जाता है तथा उसमें नियमों की भी विशेष उलझन नहीं, इसलिये उसे 'आश्रय राग' मान लेना अधिक सुविधाजनक होगा, परन्तु हम ऐसा नहीं करेंगे। भैरव हमारी पद्धति का अत्यन्त प्रसिद्ध व प्राचीन राग माना जाता है, अतः इसी मान्यता के अनुसार हम चलेंगे और भैरव राग को ही आश्रय राग का सम्मान देंगे। प्राचीन संस्कृत के सभी ग्रन्थों में भैरव राग की गणना प्रमुख रागों में हुई दिखाई देती है। उत्तम रीति से राग कालिंगड़ा का गायन भी उतना सरल नहीं है, जितना समझा जाता है। इसमें भी कुछ भागों को सँभालना बड़ी कुशलता का कार्य है।

प्रश्न—थोड़ी देर के लिये यह समता झिंझोटी व खमाज जैसी ही कही जा सकती है। झिंझोटी राग सरल व सुगम होने से खमाज थाट का आश्रय राग कहा गया था। हमने तो इसके सम्बन्ध में यह स्थूल नियम ध्यान में जमा लिया कि स्थाई व अन्तरा नियमित रूप से संभाल कर जिस राग की तानबाजी गायक अपने गाने में धकेल देते हैं, उस राग को थोड़ा बहुत आश्रय रागत्व प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक थाट के जन्य रागों का 'शरीर' अथवा 'धड़' आश्रय राग कहा जा सकेगा।

उत्तर—यह बड़ी सुविधापूर्ण मान्यता है। अस्तु, भैरव राग के गाने का समय प्रातःकाल माना गया है। इसमें भी किसी का मत सूर्योदय के थोड़े पहिले गाने का है तथा दूसरे मत से इसे सूर्योदय के बाद गाना चाहिये। 'लोचन' कहता है:—

ब्राह्मे मुहूर्ते गातव्यो भैरवो रागसत्तमः ।
अरुणोदयवेलायां गेया रामकली पुनः ॥

हम राग के गायन समय सम्बन्धी बहुत सूक्ष्म भेद नहीं करेंगे। प्रचार में यह राग तुम्हें कहीं सूर्योदय के पूर्व व कहीं सूर्योदय के बाद में सदैव गाया हुआ मिलेगा और वह समझ में आ जावेगा। जब कि हमें प्रातःकाल के अच्छे-अच्छे दस-बीस रागों की व्यवस्था करनी है, तब सभी के लिये पूर्ण समाधानकारक व सुविधाजनक समय

की व्यवस्था निश्चित करना सरल कार्य नहीं है परन्तु इतने गहरे हम जावें ही क्यों ? हमारे संस्कृत ग्रन्थकार भी इस झंझट को पसन्द नहीं करते थे। अधिकांश ग्रंथकारों ने केवल "प्रभाते, प्रातःकाले, उषसि सङ्गवे" यही कहा है। मैं समझता हूँ कि हमें भी उनकी जैसी व्यवस्था कर लेनी पर्याप्त होगी।

प्रश्न—परन्तु रागों के भिन्न-भिन्न वादी स्वरों व अन्य लक्षणों की ओर सूक्ष्म ध्यान देते हुए यदि किसी ने गायन समय की दृष्टि से रागों का कोई क्रम निर्धारित करने का प्रयत्न किया तो ?

उत्तर—तो हम उसे 'अधिकस्य अधिकम् फलम्' कहेंगे। इसके अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं ? खैर, रात्रि के अन्तिम प्रहर में तुम्हें धीरे-धीरे आगे चलकर आभास होगा कि तारषड्ज स्वर सारे गायन का जीवभूत स्थान हो जाता है। इस स्वर पर गायक की आवाज उत्तम रूप से चमकने लगती है और षड्ज, मध्यम व पंचम को कुछ अद्भुत महत्व प्राप्त हो जाता है। तार षड्ज की ओर श्रोताओं के कान स्वतः लगे रहते हैं। आते-जाते गायक इसी स्वर पर विश्रान्ति लेता रहता है। जैसे-जैसे प्रभातकाल निकट आने लगता है वैसे-वैसे उत्तराङ्ग के अन्य स्वर भी अपना-अपना वैचित्र्य प्रकट करने लगते हैं, फिर विश्रांति-स्थल पञ्चम स्वर हो जाता है। हमारे गायक निषाद व तीव्र म को स्वतन्त्र स्वर नहीं मानते, इन्हें कुछ परावलम्बी स्वर माना गया है। हमें भी यह दीख पड़ेगा कि केवल निषाद या तीव्र मध्यम पर कुछ ही गीत निर्भर किए जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये स्वर गायक को सदैव आगे या पीछे धकेलने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा क्यों होता है, यह खोज निकालने की हमें आवश्यकता नहीं है। उत्तर रागों में उत्तराङ्ग की प्रधानता होती है तथा सा, नि, ध, प, म स्वरों की ओर श्रोताओं का लक्ष्य अपने आप जा पहुँचता है। पिछले समय मैं यह तुम्हें बताही चुका हूँ कि इन रागों की सारी खूबी अवरोह में होती है। उत्कृष्ट कोटि का स्वर-ज्ञान होने पर यह बात तत्काल ध्यान में आने लगती है। उत्तर राग में उत्तरांग का ही कोई एक स्वर वादी होता है। यह फिर से बताने की आवश्यकता नहीं है कि हम वादी, विवादी, संवादी आदि शब्दों का प्रचलित अर्थ ही स्वीकार करते हैं। एक बार मैं तुम से यह कह भी चुका हूँ कि इन शब्दों का वास्तविक मर्म शाङ्ग देव ने क्या समझा था, यह अभी तक किसी ने स्पष्ट नहीं किया।

प्रश्न—भैरव राग में कौनसा स्वर वादी माना जाता है ?

उत्तर—इस राग में वादी धैवत व संवादी रिषभ माना जाता है। प्रभात के रागों में सा, म, प, ध में से कोई एक स्वर वादी होता ही है। प्रचार में भैरव को आजकल सम्पूर्ण राग माना जाता है।

प्रश्न—अब सम्पूर्ण राग माना जाता है, यानी इसका प्राचीन काल में भिन्न रूप से प्रचार रहा होगा ? यही बात है न ?

उत्तर—हां, किसी-किसी संस्कृत ग्रन्थ में भैरव की जाति औडुव भी दिखाई पड़ती है ?

प्रश्न—वहां किन-किन स्वरों को वर्ज्य बताया गया है ?

उत्तर—वहां रिषभ और पंचम को वर्ज्य बताया गया है। यह बात मैं आगे चलकर बताने ही वाला हूँ। हमारा प्रचार इस प्रकार का नहीं है, हम भैरव को सम्पूर्ण ही मानेंगे?

प्रश्न—तो क्या फिर भैरव थाट में रे, प वर्ज्य कर एक नवीन राग उत्पन्न नहीं किया जा सकता?

उत्तर—हां, ऐसा हो सकता है। पंचम वर्ज्य करने वाला ऐसा दूसरा राग तुम्हारी दृष्टि में क्वचित ही पड़ेगा। प्रातःकाल के समय पंचम एक महत्वपूर्ण स्थान होता है, यह मैं पहले भी थोड़ा सा सुझा चुका हूँ। पूर्वाङ्ग में जैसे षड्ज महत्वपूर्ण विश्रांति-स्थान है, उसी प्रकार उत्तराङ्ग में पंचम को मानना चाहिए। यह केवल शब्दों में वर्णन कर बताने योग्य नहीं है कि प्रातःकालीन रागों में पञ्चम-उपयोग का प्रभाव श्रोताओं पर कैसा होता है। तुम इस स्वर को अच्छी तरह अभ्यास कर साध लो। यह कार्य कठिन नहीं है, अवरोह में इस स्वर पर भिन्न-भिन्न प्रकार की छोटी-छोटी तानें लगाने में ही सारी खूबी है। अपने अशिक्षित गायक भी इस स्वर के चमत्कार का वर्णन अपने-अपने तरीकों से करते रहते हैं। एक मुसलमान गायक ने मुझे बताया कि "कभी-कभी पंचम पर कायम होते समय मेरे शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं।" यह बात नहीं है कि इस गायक का कथन बिलकुल अर्थहीन हो, पंचम स्वर का इस प्रकार महत्व होने से प्रभात के रागों में विशेषकर भैरव थाट के रागों में यह स्वर क्वचित ही वर्ज्य किया जाता है। यह न समझना चाहिए कि इस स्वर को छोड़ने पर राग गाते ही नहीं बनेगा, मैं ने तो एक साधारण प्रचार की बात बताई है। अस्तु, मैं यह कह चुका हूं कि भैरव एक सम्पूर्ण राग माना जाता है। यह भी मैंने कहा है कि कुछ ग्रन्थकार भैरव में रे,प वर्ज्य करते हैं, भैरव को सम्पूर्ण मानने के लिए ग्रंथाधार भी प्राप्त होते हैं। इससे कोई भी कह सकता है कि देशकाल के अनुसार सङ्गीत में परिवर्तन होकर आरम्भ का औडुव स्वरूप पिछड़ गया होगा।

प्रश्न—क्या भैरव राग "रत्नाकर" में भी बताया गया है?

उत्तर—हां, यह राग उस ग्रन्थ में आया अवश्य है, परन्तु उस ग्रन्थ के राग वर्णन के सम्बन्ध में अभी तक एकमत न होने से हमारे विद्वान रत्नाकर के सङ्गीत को कुछ विवादग्रस्त ही मानते हैं। इस ग्रंथ में रागों का वर्णन मूर्च्छना आदि के सहारे किया गया है, यह मैं तुम्हें पहले बता ही चुका हूं। तथापि यह सुना जाता है कि उन रागों का निर्णय अब शीघ्र ही होने वाला है।

प्रश्न—हमारी इच्छा यह समझने की है कि रत्नाकर के राग-वर्णन कहां व कैसे दुर्बोध हो जाते हैं। इस कठिनाई की कल्पना क्या हमें करा देंगे? अधिक विवाद में उतरने की हम आप से प्रार्थना नहीं करेंगे?

उत्तर—तुम चाहते हो तो थोड़ी सी कल्पना कराये देता हूं। मैं समझता हूं कि यदि मैं यह भाग किसी उदाहरण से तुम्हें बताऊँ तो तुम शीघ्र समझ जाओगे। तुम्हारे इस भैरव को ही लो। शार्ङ्गदेव पण्डित कहता है कि भैरव राग 'भिन्न षड्ज' ग्राम राग से उत्पन्न होता है। इससे अब यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि भैरव का थाट कौनसा होगा?

उत्तर—थाट भिन्न षड्ज का ही होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकेगा?

उत्तर—यह अनुमान से नहीं ठहराया जा सकता । शार्ङ्गदेव स्वतः कहता है जैसे "भैरवस्तत्समुद्भवः" अर्थात् "भिन्नषड्जसमुद्भवः" । रत्नाकर के ग्राम रागों में जनकत्व (थाट रूप) माना गया है व जन्यराग उसके विशेष लक्षण से वर्णित किए गये हैं । 'ग्रामराग' नाम के सम्बन्ध में कल्लिनाथ अपनी टीका में कहता है:—

"ग्रामयोर्जातिव्यवधानेनोपपन्नानामपि भाषारागाद्यपेक्षया व्यवधानाल्प-त्वादेतेषां ग्रामरागत्वव्यपदेशः । यथाऽऽह मतंगः, नन्वेते रागा ग्रामविशेषसंबंधा-त्कुतोऽयं विशेषलाभः । उच्यते भरतवचनादेव । तथा चाऽऽह भरतः, जातिसंभूतत्वाद्रागाणामिति । यत्किंचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम् ।"

प्रश्न—"ग्रामराग" का क्या अर्थ है, इतनी सी बात सरलता से न बताकर भरत व मतंग के हवाले देने का क्या मतलब है ? कोई निर्भीक आलोचक तो यही कहेगा कि कल्लिनाथ प्राचीन रागों की व्याख्या ठीक से समझा ही नहीं था । खैर, आगे चलिये ।

उत्तर—"ग्रामराग" आदि सब प्रपंच "जाति" से उत्पन्न किये हैं, यह शार्ङ्गदेव स्वयं बताता है:—

"दृश्यन्ते जन्यरागांशास्तज्ज्ञैर्जनकजातिषु ।

× × ×

ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा ।
तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसंमताः ॥

× × ×

यह एक भिन्न प्रश्न है कि रत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने कुछ बातें सुनी-सुनाई भी सम्मिलित करली हैं ? हम आज इसका निर्णय नहीं करने वाले हैं । उक्त श्लोकों पर कल्लिनाथ इस प्रकार टीका करता है:—

"जन्यरागांशा ग्रामरागादयो दशविधा अपि जातीनां साक्षात् परंपरया वा जन्यरागा एव तेषामंशा अवयवाः । रागैकदेशा इत्यर्थः तज्जनकजातिषु साक्षात् परंपरया स्वेषां जनकासु जातिषु रागभेदविद्भिर्दृश्यंत उद्भाव्यंते इत्यर्थः । यथाऽऽह मतंगः, ग्रामरागाणामेवालापनप्रकारा भाषा वाच्याः । भाषाशब्दोऽत्र प्रकारवाची । एवं विभाषांतरभाषाशब्दावपि तत्तदनंतरोत्पन्नालापप्रकारवाचका-वित्यवगंतव्यम् ।"

तुम्हें अभी इतना ही ध्यान में रखना है कि 'ग्रामराग' जाति से उत्पन्न माने जाते थे और वे ही फिर अन्य रागों के उत्पादक मान लिये जाते थे । अनेकों का मत है कि शार्ङ्गदेव के समय जाति-गायन का प्रचार नहीं रहा था । कभी-कभी कोई यह भी पूछते हैं कि शार्ङ्गदेव के बताये हुए राग 'मार्ग संगीत' हैं या 'देशी सङ्गीत' ? प्रश्नकर्ता शायद

इसी कारण यह भी पूछ लेता है कि शार्ङ्गदेव ने अपने राग ग्राम, मूर्छना, जाति की सहायता से वर्णित किए हैं ? विद्वानों की यह धारणा है कि शार्ङ्गदेव के समय सारा 'देशी सङ्गीत' ही प्रचलित था, उनका यह ख्याल दुरुस्त भी है। प्रबंधाध्याय में उसने 'गांधर्व' व 'गान' नामक जो भेद कहे हैं, वे मैं तुम्हें बता ही चुका हूं। इस पर कल्लिनाथ टीका करते हुए कहता है :—

"गांधर्वं मार्गः, गानं तु देशीत्यवगंतव्यम्। अनादिसम्प्रदायमित्येनन गांधर्वस्य वेदवदपौरुषेयत्वमिति सूचितं भवति। गानं तु वाग्गेयकारादिपरतंत्रत्वा-त्पौरुषेयमेव। स्वरगतरागविवेकयोर्जात्याद्यंतरभाषांत यदुक्तं तद्गांधर्वमित्यर्थः।"

'हनुमत्मत' की यह बात प्रसिद्ध है कि देशी सङ्गीत में श्रुति, स्वर, ग्राम आदि के नियम टूट जाते हैं, जैसे :—

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो न हि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तु ते मताः॥

× × ×

इस पर कल्लिनाथ कहता है—

"देशीत्वादेतेषामनियमो न दोषायेति। देशीत्वं च तत्तद्देशजनमनोरंजनैक-फलत्वेन कामचारप्रवर्तित्वम्। नियमे तु सति तेषां गीतानां मार्गत्वमेव।

इस अन्तिम वाक्य पर एक बार मुझ से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि यदि हम अपने आज के प्रचलित गीतों में से कोई एक "रत्नाकर" में बताये हुए प्रमाण से गाने लगें तो क्या वह "मार्गसङ्गीत" हो जावेगा ?

प्रश्न—हमारी राय में तो ऐसा नहीं हो सकता। यदि 'मार्गसङ्गीत' ब्रह्मा आदि ने सर्व प्रथम ईश्वरोपासना के लिए ही वेदों से उत्पन्न किया हो तो वह शब्दप्रधान भी माना जावेगा। ठीक है न ?

उत्तर—तुम्हारे कथन में भी कुछ अर्थ है। इसमें संदेह नहीं कि शार्ङ्गदेव के ग्रंथ का सङ्गीत देशी ही था। "जाति" गायन के विषय में वह विद्वान कहता है :—

"ब्रह्मप्रोक्तपदैः सम्यक् प्रयुक्ताः शंकरस्तुतौ।
अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुनंत्यमूः॥

इसी बात पर व्यंकटमखी इस प्रकार कहता है :—

"रागास्तावद्दशविधा भरताद्यैरुदीरिताः।
ग्रामरागाश्चोपरागा रागा भाषाविभाषिकाः॥
तथैवांतरभाषाख्या रागांगाख्यास्ततः परम्।
भाषांगाणि क्रियांगाणि चोपांगानि पुनः क्रमात्॥

दशस्वेतेषु रागेषु ग्रामरागादयः पुनः ।
रागास्त्वंतरभाषांता मार्गरागा भवंति षट् ॥
ततो गंधर्वलोकेन प्रयोज्यास्ते व्यवस्थिताः ।
तस्माद्रागांगभाषांगक्रियांगोपांगसंज्ञिकाः ॥
रागाश्चत्वार एवैते देशीरागाः प्रकीर्तिताः ॥

दक्षिण में सभी ओर इसी प्रकार की धारणा है, इसीलिए अर्वाचीन लेखक इस प्रकार कहता है:—

रत्नाकरः शास्त्रग्रन्थेष्वाद्येष्वनुपमो मतः ।
तत्राप्यंगीकृतं नूनं प्राधान्यं देशिकस्य तत् ॥
लक्ष्यमार्गेऽधुना यावत्स्वरूपं परिदृश्यते ।
तत्सर्वं देशिकं भूयादित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः ॥

इसे अब सभी स्वीकार करते हैं कि शार्ङ्गदेव के समय मार्ग सङ्गीत का प्रचार नहीं था। उसने 'अधुना प्रसिद्ध' शीर्षक से जिन रागों का वर्णन किया है, यदि उन रागों के स्वरूप उसके वर्णन के अनुसार कैसे थे, यह एक बार हमारे विद्वान उचित प्रमाणों से सिद्ध करदें तो यह कहा जावेगा कि एक बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य पूरा हुआ। उसमें भी यदि उस सङ्गीत का सम्बन्ध हमारे हिन्दुस्थानी सङ्गीत से मिलाना सम्भव हो सके तो सोने में सुगन्ध हो जावे, परन्तु यह काम बड़ा ही कठिन है।

प्रश्न—ये राग दक्षिण के ग्रंथों में भी प्राप्त होते होंगे ?

उत्तर—हाँ,हाँ, इनमें से अनेक राग वहां भी मिलते हैं। परन्तु उस तरफ के ग्रंथकारों ने रत्नाकर के रागाध्याय से अपना मत ठीक रूप से मिलाकर निश्चित नहीं किया, अतः इतिहासप्रिय जिज्ञासुओं को कुछ निराश होना पड़ता है, नहीं तो वे ग्रंथ भी उपयोगी हैं।

प्रश्न— मध्यकालीन हिंदी व उर्दू के ग्रंथों का न जाने कितना उपयोग होगा ?

उत्तर—मैंने इस प्रकार के दस-पांच ग्रंथ देखे हैं, परन्तु उन्हें देखकर मुझे यह नहीं सूझ पड़ा कि 'रत्नाकर' छोड़ देने वाले के लिए उनका अधिक उपयोग हो सकेगा। वे ग्रंथ तुम आगे पढ़ने वाले ही हो। प्राचीन ग्रन्थों का विवादग्रस्त भाग तो श्रुति-मूर्छना-ग्राम व जाति ही है न ? इनका खुलासा इन देशी भाषा के ग्रन्थों में क्या किया गया है, यह देखना ही पर्याप्त है। शार्ङ्गदेव के राग किसने व कैसे छोड़ दिये हैं, यह मनन करके देख लेने से ही तुम यह भी देख सकोगे कि उस ग्रन्थकार ने प्राचीन सङ्गीत कितना समझ रखा था। यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि द्वार के बाहर-बाहर,बिना अन्दर प्रवेश किये भरत, शार्ङ्गदेव का कोरा गुणगान करना उपयोग में आने योग्य नहीं हो सकता।

प्रश्न—आपका यह कथन ठीक ही जान पड़ता है। हमें तो वास्तविक प्रकाश चाहिये। परन्तु हम आपको अन्य चर्चा में डालना पसन्द नहीं करेंगे। उन

देशी भाषा के ग्रन्थों के सम्बन्ध में आपको जहां योग्य मालूम हो एवं जितना उचित जान पड़े उतना आप हमें बतायेंगे ही ?

उत्तर—तो फिर ठीक है। हाँ तो, मैं क्या कह रहा था ?

प्रश्न—आपने कहा था कि "ग्राम-राग" जाति से उत्पन्न होकर जन्यरागों का उत्पादक हो जाता है।

उत्तर—हां ठीक है। अब जबकि "भैरव" को "भिन्न षड्ज समुद्भवः" कहा गया है तब इन दोनों का एक ही थाट माना जावेगा। "मध्यम ग्राम" नामक ग्रामराग का जन्यराग 'मध्यमादि' बताते हुए पण्डित कल्लिनाथ ने किस प्रकार स्पष्ट व्याख्या की है, जरा उसे देखो:—

"तत्र रागांगस्य मध्यमादेर्जनकस्य मध्यमग्रामाभिधस्य ग्रामलक्षणमुक्त्वा तस्यालापकरणाक्षिप्तिकाश्च प्रस्तार्य 'तदुद्भवा मध्यमादिर्मग्रहांशा' इत्येतावदेव मध्यमादेर्लक्षणमुक्तम्। तस्य तावत एवापर्याप्तत्वादनुक्तमन्यतो ग्राह्यमिति प्रकृति-विकृतिन्यायेन स्वहेतुभूतान्मध्यमग्रामरागात्काकलीयुतमन्यासः सौवीरमूर्छनः प्रसन्नाद्यवरोहिभ्यां युतः संधौ विनियोज्यः हास्यश्रृंगारकारको ग्रीष्मेऽन्हः प्रथमे यामे ध्रुवप्रीत्येति सर्वमपि लिंगविपरिणामेन ग्राह्यम्।"

यह सब सरलता से समझ में आने योग्य है न ? यह प्राचीन रीति प्रसिद्ध ही है। 'अहोबल' ने अपने रागों के स्वर बताते हुए कहा है:—

"असाधारणधर्मा ये लक्षणत्वेन कीर्तिताः।
तैरेव रागभेदाः स्युः इ.।"

आगे चलकर संक्षेप में इस प्रकार नियम बताया है:—

"विशेषलक्षणादेव जन्यस्य जनकाद्भेदोऽवगंतव्यः।
एवमन्येषु रागेष्वपि द्रष्टव्यम्।"

प्रश्न—तो अब आप हमें 'रत्नाकर' में वर्णित "भिन्न षड्ज" व 'भैरव' के लक्षण सुना दीजिये ?

उत्तर—वे इस प्रकार हैं—

"षड्जोदीच्यवतीजातो भिन्नषड्जो रिपोज्झितः।
धांशग्रहो मध्यमांत उत्तरायतया युतः॥
संचारिवर्णरुचिरः प्रसन्नान्तविभूषितः।
काकल्यंतरसंयुक्तश्चतुराननदैवतः॥
हेमन्ते प्रथमे यामे बीभत्से सभयानके।
सार्वभौमोत्सवे गेयो भैरवस्तत्समुद्भवः॥
धांशो मान्तो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः॥

इस लक्षण में 'षड्जोदीच्यवती' जाति कही गई है, इसके लक्षण अभी तक मैंने तुम्हें नहीं बताये, वे इस प्रकार हैं :—

"अंशाः समनिधाः षड्जोदीच्यवायां प्रकीर्तिताः ।
मिथश्च संगतास्तेस्युर्मंद्रगांधारभूरिता ॥
षड्जर्षभौ भूरितारौ रिलोपात्षाडवं मतम् ।
औडुवं रिपलोपेन धैवतेंऽशे न षाडवम् ॥"

इसमें तुम्हें यही मुख्य बात देखने की है कि जाति में सा, म, नी और ध स्वर 'अंश' हो सकते हैं, औडुव रूप में रि, प वर्ज्य होगा, षाड्व रूप में रिषभ वर्ज्य होगा, मूर्छना धैवत की होगी, आदि ।

प्रश्न—ये सब समझ में आगए। 'भिन्न षड्ज' में धैवत को अंशस्वर कहा ही है। रि, प वर्ज्य बताना भी ठीक ही है; क्योंकि यह राग औडुव है। परन्तु थाट कौनसा है ? ओहो ! वह उत्तरायता मूर्छना से समझ लेना पड़ेगा, है न ? इस मूर्छना का आरम्भ धैवत से होता है जैसे —"धा, नि, सा, रे, ग, म, प, ध" यह तो हमारी समझ में आगया ।

उत्तर—इस रीति से स्वरांतर कैसे हो जायेंगे, बताओ तो ?

प्रश्न—वे इस प्रकार होंगे, २, ४, ३, २, ४, ४, ३, परन्तु यह कैसे चल सकेगा गुरू जी ? धैवत पर हमने षड्ज मान लिया तो आरम्भ के "ध, नि, सा, रे" स्वर सा, रे, ग, म, हो जायेंगे, परन्तु इस में गांधार षड्ज से छटवीं श्रुति पर आयेगा और वह साधारण ग (हिन्दुस्तानी पद्धति का कोमल ग) होगा। आगे नवीं श्रुति पर आया हुआ 'म' चल जायेगा, परन्तु पंचम बिगड़ जायेगा। क्योंकि दो श्रुति का पंचम कैसे ग्रहण किया जा सकेगा ? धैवत पन्द्रहवीं श्रुति पर आयेगा अर्थात् वह कोमल धैवत ठीक होगा, निषाद १६ वीं श्रुति पर आवेगा जो कैशिक 'नी' होगा । अन्त में तार 'सां' ठीक ही है।

उत्तर—तो फिर इस मूर्छना से तुम्हारे कौन-कौन स्वर बिगड़ जाते हैं, देखें, बताओ तो ?

प्रश्न—पंचम बिलकुल बिगड़ा हुआ आया है और गांधार व निषाद स्वर कोमल आये, ये तीव्र होते तो 'भैरव' थाट अच्छी तरह मिल जाता ।

उत्तर—और क्या कोई यह नहीं कह सकता कि रागलक्षण में "काकल्यंतरसंयुक्त" ठीक ही कहा है ? यह भी कहा जा सकता है कि पंचम भ्रष्ट आता है इसीलिये उसे बिलकुल वर्ज्य किया है। रिषभ वर्ज्य कर देने से तुम्हारा थाट सम्बन्धी हिताहित क्या होगा ?

प्रश्न—इस तरीके से ये लक्षण कुछ व्यवस्थित अवश्य हो जायेंगे; किन्तु हम तो एक दूसरा ही तर्क कर रहे हैं।

उत्तर—वह कौनसा ?

प्रश्न—हम यह देख रहे थे कि दक्षिणी थाट की दृष्टि से क्या परिणाम होता है ?

उत्तर—फिर क्या दिखाई दिया ?

प्रश्न—उनका थाट लेकर उसमें केवल शुद्ध 'ग, नी, के स्थान पर काकली व अन्तर स्वर लगा देने का काम हो जाता है। ग्राम, जाति, मूर्छना का झंझट ही मिट जाता है। "धांशो, मान्तो रिपत्यक्त:" लक्षण स्वीकार करना पड़ेगा। आपने यह कहा ही था कि दक्षिण में जाति की उलझन बिलकुल नहीं है। यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हम एक व्यर्थ ही पहेली बुझा रहे हैं। शायद हमारे तर्क बिलकुल गलत भी ठहरा दिए जायें। परन्तु ठहरिये, उधर के ग्रन्थकार भैरव में रि, प वर्ज्य करने के लिए कहते हैं क्या ?

उत्तर—यह बात नहीं है कि वहां ऐसा कहने वाले ग्रन्थकार ही न हों। अच्छा, परन्तु दक्षिण पद्धति की दृष्टि से फिर मूर्छना व जाति के लिए कौनसा मार्ग रहेगा ?

प्रश्न—मूर्छना समझ जाने से ग्रह, अंश, न्यास, समझ सकेंगे। जाति से वर्ज्य स्वर निकल आयेंगे। यह ठीक है कि जाति वर्णन में अनेक अंश बताये हैं, परंतु एक ही जाति से अनेक राग निकल सकते हैं।

उत्तर—परन्तु अभी भी 'षड्जोदीच्यवती' जाति का वर्णन पूर्ण नहीं हुआ। यह भाग रह गया है। देखो :—

'षाड्जीवद्गीतितालादि गांधारादिश्च मूर्छना।
द्वितीयप्रेक्षणे गाने ध्रुवायां विनियोजनम् ॥'

प्रश्न—क्या जाति की मूर्छना स्वतन्त्र रूप से बताई गई है ? तो फिर 'विशेषलक्षण' मानकर दी गई रागव्याख्या की मूर्छना ही ग्रहण करनी होगी, ठीक है न ?

उत्तर—तुम्हारी इस विचारधारा पर अभी मत प्रकट करना मैं पसंद नहीं करूंगा। दक्षिण-प्रवास के समय इसी प्रकार के तर्क एक बार मैं सुन चुका हूं। हम शार्ङ्गदेव के रागों से मुक्त होने का कार्य आज अपने सिर नहीं ले रहे हैं, अतः इस बात का निर्णय करने के लिये रुकना आवश्यक नहीं है। परन्तु मैं यह कहे देता हूं कि यह भाग जितना सरल तुम्हें मालूम पड़ता है, उतना नहीं है। शार्ङ्गदेव के लक्षणों की यथावत् व संतोषप्रद स्पष्ट व्याख्या करना, सर्वत्र कठिन ही समझा जाता है। अब तुममें नवीन व विचारपूर्ण तर्क करने की स्फूर्ति पैदा हो गई है, यह देखकर मुझे संतोष होता है। अनेक भूल करने के बाद मनुष्य सयाना होता है, यह उक्ति प्रसिद्ध ही है। धीरे-धीरे तुम्हारे तर्क यथार्थ होने लगेंगे। जो बात तुम्हें सिद्ध करनी है, उसे उत्तम आधारों व प्रत्यक्ष उदाहरणों के साथ लोगों के सामने रखने की आदत बनालो। यह बात ऐसी होगी या वैसी होगी या इन दोनों प्रकार की न होकर किसी अन्य प्रकार की होगी, इस प्रकार की व्याख्या आज के समाज को अधिक उपयोगी ज्ञात नहीं होती, वह प्रायः विवाद बढ़ायेगी एवं वह किसी को भी इष्ट नहीं होगी।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। रत्नाकर का भाषांतर किसी प्राचीन पण्डित द्वारा किया जाता तो ऐसी गहन बातों पर प्रकाश पड़ता। यह बात हमने इसलिए कही कि प्राय: अनेक ग्रन्थों के भाषांतर होते आये हैं!

उत्तर—ऐसे एक-दो भाषांतर हिन्दी में हुए हैं। इनमें से पण्डित विश्वनाथ द्वारा किया हुआ भाषांतर मैंने एक बार तंजौर के प्रसिद्ध संग्रहालय में देखा था।

प्रश्न—क्या उस भाषांतर से हमें कोई सहायता नहीं मिल सकेगी?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि तुम्हारे जैसे सुशिक्षित विद्यार्थियों को उससे कुछ मदद नहीं मिल सकती। बिना ग्रंथ का तात्पर्य समझे भाषांतर कैसे किया होगा, यह आश्चर्य तुम्हें अवश्य होता होगा। परन्तु इस प्रकार के भाषांतर तुम्हें आज भी अनेक दिखाई पड़ेंगे। अधिक दूर क्यों? पं० विश्वनाथ के अनुवाद की नकल मैंने प्राप्त करली है, उसमें तुम्हारे इस भैरव का स्पष्टीकरण किस प्रकार किया गया है, वह प्रत्यक्ष ही देखो:—

"भिन्नषड्ज जो राग तातें भलिभांति हैं, समुद्भव कहिये उत्पत्ति जाकी ऐसो भैरवराग भिन्नषड्ज को अङ्ग है। ताको लक्षण कहे है, धैवत है अंशस्वर जामें, मध्यम स्वर है अन्त कहिये न्यास जामें, ऋषभ पंचम स्वर तिनकरके रहित है। सम स्वर हैं जामें, सम पद को लक्षण पूर्वसूचित है, और आगे प्रबन्धाध्याय में कहेंगे, ऐसो भैरव प्रार्थना समय में गाइवे योग्य है।"

अब इस भाषांतर से तुम्हें किस बात का बोध हुआ? बाकी भाषांतर ठीक ही है।

प्रश्न—ठीक है गुरुजी! ऐसे भाषांतरों का प्रत्यक्ष उपभोग संस्कृत जानने वालों के लिए तो नहीं हो सकेगा। पं० विश्वनाथ ने संस्कृत शब्दों की जगह हिंदी शब्द रख दिये हैं, यही कहा जा सकता है?

उत्तर—हर एक व्यक्ति को इसी प्रकार का अनुभव उसका भाषांतर देखकर होगा, परन्तु हमें अभी उसके भाषांतर से क्या काम है? उसने कैसा आडम्बर कर रखा है, देखा न? अब जिसे संस्कृत न आती हो, वह इस भाषांतर से इतना ही जान सकेगा कि 'रत्नाकर' में किन-किन विषयों की चर्चा है?

'भिन्न षड्ज' की व्याख्या में 'समस्वर' कहा गया है, इस शब्द का क्या अर्थ होगा?

उत्तर—इस शब्द का स्पष्टीकरण यदि मैं कल्लिनाथ के शब्दों में ही करूँ तो अच्छा होगा। 'श्रीराग' की व्याख्या शार्ङ्गदेव ने इस प्रकार की है, देखो:—

षड्जे षाड्जीसमुद्भूतं श्रीरागं स्वल्पपंचमम्।
सन्यासांशग्रहं मन्द्रगांधारं तारमध्यमम्॥
समशेषस्वरं वीरे शास्ति श्रीकरणाग्रणीः॥

इस श्लोक में 'सम शेषस्वरं' कहा गया है, इसका कल्लिनाथ इस प्रकार स्पष्टीकरण करता है:—"समा: शेषा: स्वरा यस्मिन् स: तथोक्त: ।"

"अत्र स्वल्पपंचममिति पंचमस्याल्पत्वविधानात्तदितरेषां स्वराणां बहुत्वेन साम्यं विधीयते । यत्रैकस्याल्पत्वं विधायेतरेषां समत्वविधानं तत्र तदपेक्षया महत्वं साम्यमेव । यत्र बहुत्वविधानादितरेषां समत्वविधानं तत्राल्पत्वं साम्यमेव ।"

चाहे इस व्याख्या का उपयोग हमारे वर्तमान सङ्गीत में न हो सके, परन्तु इस टीका से तुम्हें यह दिखाई देगा कि संस्कृत ग्रंथकार 'समस्वर' से क्या अर्थ ग्रहण करते थे । इस श्रीराग की व्याख्या में 'अल्पपञ्चमम्' कहा गया है । इसलिए कोई-कोई आज के श्रीराग में से पंचम स्वर कम करने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु यह तुम सहज में समझ सकते हो कि प्राचीन श्रीराग का थाट बिलकुल भिन्न रहा है, अत: इस प्रकार करना ठीक नहीं हो सकता । आगे चलकर मैं तुम्हें यह बताने वाला हूं कि हमारे श्रीराग का थाट'पूर्वी'माना गया है और उसमें पंचम बड़ा रक्तिदायक स्वर होता है। अस्तु, मैंने तुम्हें यह बता दिया है कि भैरव में वादी स्वर धैवत मानने का प्रचार है । यह कहा जाना भी उचित ही है कि भैरव का सम्पूर्ण आनन्द धैवत व रिषभ स्वरों पर ही निर्भर है । ये स्वर एक विशिष्ट प्रकार का आन्दोलन प्राप्त करते हैं तथा उस आंदोलन से भैरव उत्तम रीति से व्यक्त हो जाता है । यह आंदोलन अब श्रोताओं के लिये निकट परिचय की वस्तु हो गया है। 'ध़,प, मगरे़, सा' ये स्वर बड़ी मधुर आवाज में राग के गांभीर्य को संभालते हुए किसी ने गाये कि श्रोताओं के नेत्रों के सम्मुख तत्काल भैरव खड़ा हो जायगा। ये स्वर विलम्बित रूप से गाकर आगे 'सा ध़, सा, रे़ रे़, सा, म ग़ रे़, सा' इस प्रकार गाये कि सुनने वालों के हृदय पर भैरव का चित्र अंकित हो जावेगा। भैरव प्रचार में तुम्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया हुआ दृष्टिगोचर होगा, परन्तु रिषभ व धैवत स्वर के वे विशेषतापूर्ण आंदोलन सभी प्रकारों में मान्य हुए हैं, इसलिए इस स्वरभाग को भैरव का प्रसिद्ध अङ्ग माना जाता है। एक बार एक गायक ने 'म ग रे़, सा' केवल इन्हीं चार स्वरों से इस प्रकार अवरोह किया कि राग के सम्बन्ध में किसी को शंका ही उत्पन्न नहीं हुई। यह तथ्य तुम्हें प्रत्यक्ष सीखकर ग्रहण करना अच्छा होगा। भैरव का एक बिलकुल साधारण उठाव "सा म ग, म प, ध़, प" प्रसिद्ध है, परन्तु मैंने जो स्वरूप बताया है, वह अधिक कौशलपूर्ण है । अवरोह में मध्यम खूब अच्छा रखकर वहां से विलम्बित मींड़ से नीचे रिषभ पर आना चाहिये। मींड़ लेते हुए तीव्र गांधार काफी दिखाई देता हुआ रखना होगा। यह बात ठीक है कि जलद तान लेने पर मींड़ की जगह नहीं रहती, परन्तु मैं अभी यही समझा रहा हूं कि भैरव राग की रचना आरम्भ में कैसी करनी चाहिये। मेरे इस शाब्दिक वर्णन से चकराने की आवश्यकता नहीं, यह काम प्रत्यक्ष करना अत्यन्त सरल है। प्रत्यक्ष की जाने वाली बात का शाब्दिक वर्णन प्रथम दृष्टि में जरा कठिन ही जान पड़ता है, परन्तु थोड़े से प्रत्यक्ष अनुभव से वह सरल मालूम होने लगता है। मेरे साथ दस-बीस बार 'म ग रे़, सा' स्वर बोलो तो इससे मेरे कहने का सम्पूर्ण तात्पर्य तुम्हारे ध्यान में आ जावेगा। हम पहिले मध्यम पर ठहरते हैं, फिर वहां से गाँधार पर 'म ग, म ग' ऐसे सूक्ष्म आन्दोलन लेते हुए रिषभ पर

रागवाचक माने हुए आन्दोलन लेते हैं । हमारे गायक-वादक कभी-कभी यह भी कहते पाये गये हैं कि भैरव के रिषभ व धैवत स्वर अति कोमल हैं ।

प्रश्न—क्या हमारे विद्वान इन दोनों स्वरों के आन्दोलन क्रमशः २५२ व ३७८ मानते हैं ?

उत्तर—ऐसा ही मानना होगा । 'मॉनोकॉर्ड' पर यदि हम भिन्न-भिन्न गायकों से भैरव के रे ध लगाने को कहें तो यह नहीं कहा जा सकता कि सभी के स्वर एक ही जगह आयेंगे । अति कोमल रे, ध अर्थात् सा व प की अगली श्रुति हैं इनका उपयोग संस्कृत ग्रन्थकारों ने अपने रागों में किया हो, यह तुम्हें नहीं दिखाई देगा । भरत, शार्ङ्गदेव की बात अब हम छोड़दें । कोई यह भी कह देगा कि अति कोमल आदि स्वरों का ग्रन्थकारों द्वारा स्वीकार न किया जाना उनका दुर्भाग्य ही है, परन्तु हमें तो वास्तविक स्थिति देखनी पर्याप्त है । शायद प्राचीन समय में सूक्ष्म-स्वर कायम करने के उचित साधन नहीं थे या उस समय के पद्धति-प्रिय पंडितों को विवादग्रस्त सूक्ष्म स्वरों के आधार से रचना करना पसन्द नहीं होगा, अथवा उनका ऐसा मत रहा होगा कि संगीत पद्धति सदैव सरल व समझने योग्य होनी चाहिए । प्रत्यक्ष गायकों द्वारा भिन्न प्रकार से सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग करते रहने पर भी ग्रन्थों में यह उलझन नहीं होनी चाहिए । यह हम नहीं कहेंगे कि हमारे गायकों को ऐसे स्वरों का प्रयोग करना नहीं आता, सिर्फ इतना ही है कि उनके ये प्रयोग ग्रन्थों पर नहीं लादे जा सकते । अलंकारिक स्वरों के प्रयोग करने की सभी को छुट्टी है । समाज का मनोरंजन किस प्रकार से अच्छी तरह हो सकेगा, इतना ध्यान में रखना पर्याप्त है । नवीन योजना को 'नवीन' कह देने मात्र से ही विवाद उत्पन्न नहीं हो जाता ।

प्रश्न—परन्तु प्राचीन काल में वीणा जैसा वाद्य था, जिस पर सूक्ष्म स्वर दिखाए जा सकते हैं । 'वीणा' पर इच्छित मींड निकाली जा सकती थी ।

उत्तर—तो भी ग्रन्थकार ऐसी खट-पट में नहीं पड़े, यह बात भी ध्यान देने योग्य है । मींड सदैव नियमित स्थान से आनी चाहिये, श्रोताओं को सूक्ष्म स्वर-ज्ञान होना चाहिये, श्रुतियों का स्थान शास्त्रसम्मत व आधारयुक्त होना चाहिए, आदि कठिनाइयां उन्हें बहुत कम ज्ञात हुई होंगी । एक सप्तक में बाईस परदे बांधने पर बजाने में कठिनाई उपस्थित होगी अथवा इस प्रकार के स्वरों का उपयोग करने की प्रथा ही नहीं होगी । बाईस परदे बांधने के लिए उनके पास कोई अच्छा माप भी होगा, यह भी नहीं दिखाई देता ! मैं समझता हूँ कि इस विषय पर अब हमें तर्क करने की आवश्यकता ही क्या है ? उस समय सारी बातें गुरु मुख से सुनकर शिष्य सीखते थे, अतः स्वरों के उचित स्थान अपने आप उपयोग में आते रहते होंगे, यह बात कोई भी कह सकता है । आज हमारा समय दूसरा है तथा हमारे पास भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन भी हैं एवं हमारी विचार-धारा व सिद्धान्त भी भिन्न हो गये हैं, अतः यह विषय बारीकी से समझा जा सकता है । अति-कोमल आदि स्वरों को अलंकार मानने के लिए मैं पहिले ही कह चुका हूं । इनका भी हम निरादर नहीं करेंगे । हम अपने गायन में किन-किन अलंकारों का उपयोग करते हैं यह आगे-पीछे हमें देखते ही चलना है । इतना ही है कि इन अलंकारिक स्वरों के आधार पर हम नई पद्धति स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करेंगे । रागों की परस्पर भिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए हमारे पास वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम आदि उत्तम-उत्तम

लक्षण हैं ही। अस्तु "ध़, प म ग रे़, सा" केवल इतने स्वर तुमने कहे, तथा इनमें कोमल रि, ध का उपयोग किया कि तुम्हारा राग भैरव ही होगा। इसमें वह गंभीरता व रि, ध स्वरों के आन्दोलन बराबर सध गये तो काम बन गया। अब यदि कोई यह कहे कि इन आन्दोलनों में इच्छित सूक्ष्म-स्वर अपने आप आजाते हैं तो हम कहेंगे कि ईश्वर की लीला है। सारांश यह है कि हम अपने बारह स्वरों पर ही अपनी पद्धति स्थापित करते हैं, यही युक्तिसङ्गत है। इस समय किसी-किसी राग के अति कोमल आदि स्वर घोषित कर दिये हैं तथा सुना जाता है कि कुछ रागों पर और भी प्रयोग चल रहे हैं। यह कल्पना बिलकुल नवीन नहीं है। देशी भाषा के ग्रन्थों में ऐसे विधान हमें हर जगह दिखाई देते हैं। हमें तो धैर्यपूर्वक प्रत्येक प्रकाशित होने वाली बात पर आगे विचार करते जाना है।

प्रश्न—जबकि ग्रन्थाधार का अभाव है, तब रागों के अति कोमल, तीव्रतर आदि स्वरों का वर्गीकरण हमारे विद्वान देशप्रसिद्ध, अच्छे खानदानी कलावंतों की सहायता से ही करते होंगे ?

उत्तर—यह बात मैं नहीं कह सकूँगा। यह अवश्य सत्य है कि ऐसे प्रयत्नों में बड़े-बड़े गायक, वादकों की सहायता व सहानुभूति प्राप्त किये बिना समाज द्वारा आदरणीय होने योग्य व्यवस्था करना सरल नहीं है। प्राय: ऐसे गायक-वादक लोग ऐसी उलझनों को देखकर उलटे घबरा जाते हैं, ऐसा मुझे भी अनुभव हुआ है। एक प्राचीन गायक ने मुझे बताया कि—"पंडित जी ! हमें तो रागों के 'वर्जावर्ज्य' स्वर जानने की ही मुसीबत है, फिर ये 'तरतीवर' और 'अतकोमल' हम क्या समझ सकते हैं ? यह आपका 'बखेड़ा आप ही देखो ओर समझो ! हमारे बुजुर्ग लोग तो बिलकुल सीधे-सादे थे।" अस्तु, गायकों की यह उदासीनता, आगे उन्हीं को कष्टप्रद सिद्ध होगी। यदि ये प्रसिद्ध घरानेदार-गायक, हमारे विद्वानों की सहायता करने के लिए प्रस्तुत नहीं होंगे तो शायद हमारे विद्वान इनसे सामान्य कोटि के गुणी लोगों (जो कि मदद करने को खुशी से तैयार होंगे) की सहायता व योग लेकर ही अपना कार्य निपटा देंगे। अरे भाई ! श्रुति निश्चित कर देने के बाद उनका उपयोग तो बताना पड़ेगा। यह सभी जानते हैं कि अब बड़े-बड़े कुशल लोगों की खुशामद करने व उन्हें ढूँढ़ते फिरने का समय जाता रहा।

प्रश्न—आपका यह कथन कुछ विचित्र ही दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से क्या यह सम्भव नहीं है कि सामान्य कोटि के गायक-वादक बड़े-बड़े घरानेदार गायकों के परीक्षक बन बैठें ? और फिर यदि किसी ने हमारे आजकल के श्रुति-व्यवस्थापकों से यह पूछा कि महानुभावो ! आपके कथन का आधार कौनसा है, तब ?

उत्तर—उत्तर सरल है। उन्हें यह उत्तर दिया जा सकेगा कि आधार, हमारी विद्वता, नादशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ, हमारी परिष्कृत कल्पना, हमारे उदार हृदय के गायक-वादक, इनके अतिरिक्त, यदि चाहो तो हमारा थोड़ा बहुत संगीत का अनुभव समझलो, परन्तु मैं तो अनुमान से केवल अपने तर्क बता रहा हूं। यह मैं स्पष्टतापूर्वक स्वीकार करूँगा कि उनके सारे आधारों की प्रत्यक्ष जानकारी मुझे नहीं है। अस्तु, अब हम अपने विषय की ओर लौटें। भैरव राग गाते हुए अच्छे मंजे हुए गायक छोटे-मोटे अलंकारों का उपयोग

आरम्भ में कभी नहीं करते। क्योंकि ऐसा करने से राग के गांभीर्य में कमी होने का भय रहता है। यह एक उत्तर राग है, अतः इसकी सम्पूर्ण विचित्रता अवरोही-वर्णों की तान में होना स्वाभाविक है। "रे रे सा, ध़, नि़ सा, रे रे सा, म ग रे, सा, प म ग रे, सा, ध प, म ग रे, ग प म ग रे, सा" यह स्वरसमुदाय जोरदार परन्तु मधुर आवाज से उत्तम मिले हुए तम्बूरे के साथ यदि तुम गाओगे तो मैं समझता हूँ कि तुम्हारे गायन का परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण होगा। प्रातःकाल का समय भी इसके अनुकूल होता है। धैवत पर देर तक ठहरकर पंचम पर कायम होना बहुत सुन्दर दिखाई देगा। इसमें फिर मध्यम स्पष्ट दिखाकर अवरोह के स्वर मींड से "म ग रे सा" गाये गये कि श्रोताओं के हृदय पर इसका पृथक् प्रभाव अवश्य होगा। एक बार यह प्रभाव जमा कि फिर तुम्हारी जलद तानें श्रोताओं को असंगत ज्ञात नहीं होंगी। इस प्रथम प्रभाव के लिये रचना अच्छी तरह तैयार कर लेनी चाहिये। कुछ व्यक्ति विद्यार्थियों को यह राग सिखाने के पूर्व रि, ध स्वरों के आन्दोलन विशेष रूप से सिखाते हैं, उसका भी यही कारण है। कोई-कोई गायक यह राग धैवत से आरम्भ करते हैं, परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि यह एक अटल नियम है।

प्रश्न—नहीं, नहीं, हम ऐसा क्यों समझेंगे? देशी सङ्गीत में "येषां श्रुतिस्वर ग्रामजात्यादिनियमो न हि" आदि हनुमान मत आप पहिले ही बता चुके हैं। इस सङ्गीत में "कामचारप्रवर्तित्वम्" दिखाई देना सदैव संभव है!

उत्तर—ठीक है! कोई-कोई गायक अपने ध्रुपद "रे रे सा, ध़ सा, ग म ग रे सा" इस प्रकार भी शुरू करते हैं। भैरव में गायक प्रायः मन्द्र धैवत तक जाते ही हैं। वास्तव में ऐसा करने से यह राग अधिक चमक जाता है। मन्द्र स्थान का उपयोग तुम भी अवश्य करते जाना। "सा रे, सा, ध़, ध़, प़, म़, प़, ध़, रे रे सा, म ग रे, सा यह स्वरप्रयोग सचमुच ही विलम्बित लय में आनन्द देगा। इन स्थानों के स्वर तुम्हें अच्छी तरह अभ्यास कर साध लेने पड़ेंगे। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि इस राग में मन्द्र स्थान के महत्व का अनुभव हमारे शिक्षित गायकों को भी है। यद्यपि हम इस कथन को स्वीकार नहीं करते कि भैरव के अतिरिक्त अन्य प्रभातकालीन रागों में मन्द्र स्थान के स्वर गाने से रंजकता नष्ट हो जावेगी, या शास्त्रीय दृष्टि से बड़ी गलती हो जावेगी, परन्तु मेरे गुरु का मत यह था कि भैरव में इस स्थान के स्वर नहीं लगायें तो कुछ रूखापन रह जायेगा। प्रसिद्ध गायकों के ध्रुपदों में मन्द्र स्थान के स्वरों का उपयोग किया हुआ हम सदैव देखते ही हैं। अब मैं दूसरे नियम की ओर तुम्हारा ध्यान खींचता हूँ। हमारे गायक प्रातःकाल के रागों में अनेक समय आरोह करते हुए ऋषभ स्वर छोड़ देते हैं। यद्यपि सभी रागों में वे ऐसा नहीं करते, परन्तु कोमल ऋषभ वाले रागों में ऐसे नियम का पालन करते हुए अनेक बार हमें दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि उस राग के आरोह में यह स्वर वर्ज्य नहीं होता।

प्रश्न—वे लोग ऐसा क्यों करते होंगे?

उत्तर—मैं समझता हूं कि उन्हें शायद ऐसा करना ही पड़ेगा। समझो कि "नि़ सा रे ग म" यह तान द्रुत लय में गाने के लिये तुमसे किसी ने कहा, तो इसे गाते हुए तुम्हें

भी थोड़ी बहुत कठिनाई अवश्य होगी। एक के बाद एक, ऐसे दो अर्धान्तरों का उच्चारण करने में जीभ अटक जाया करती है। इसी कारण आरोह में कोमल रिषभ के प्रयोग को गायक टालते रहते हैं। यह ठीक है कि वादकों को वैसी कठिनाई नहीं होगी, परन्तु यह बात भी प्रसिद्ध है कि वादक अपने राग नियम प्राय: गायकों द्वारा ही ग्रहण करते हैं। जो भी हो, हमारे पास इस मान्यता के लिये प्रमाण नहीं है कि हमारे संपूर्ण वर्ज्या-वर्ज्य स्वरों के नियम उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से कायम किये गए हैं। यह स्वीकार करने पर भी हम कहेंगे कि कुछ नियम वैसे भी हो सकते हैं। ये नियम कौन-कौन से हैं, यही हमें देखना है। यह मैंने बताया ही है कि गायक लोग भैरव का आरम्भ भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। तो भी दो-तीन तरीके जो प्राय: दिखाई पड़ते हैं वे इस प्रकार हैं:—

"सा ध ध, प, म प, म ग, म ग रे, ग म ग रे, सा, सा, म ग, म प, ध, प, म ग रे, ग म प म ग रे, रे, सा; सा, रे, रे, सा, ध, सां, रे, रे, सा, ग म ग रे, सा।"

ये तीन टुकड़े मेरे साथ-साथ तुम लोगों ने दस-बीस बार गाये कि इनकी बारीकियां तुम्हारे ध्यान में आजावेंगी और एक बार उन्हें ठीक से समझ लिया तो यह राग तुम्हें बहुत कुछ सध जायेगा। हमारे गायकों की अनेक ध्रुपद इसी प्रकार शुरू होती हुई तुम्हें प्राप्त होंगी। "सा, म ग, म ग, म प, ध, प" यह टुकड़ा अब अपने यहां समान्य होगया है। इसमें "मग मग" ये पुनरावृत्त स्वर अच्छी तरह ध्यान में जमालो। पहिले "म, ग" की अपेक्षा दूसरे "म, ग" की जोड़ी जरा द्रुत में उच्चारित होती है।

प्रश्न—यह ध्यान में आगया। हम समझते हैं कि धैवत पर जो एक विशेष प्रकार का आघात किया जाता है वह इस "म, ग" स्वरों की पुनरावृत्ति से अच्छी तरह किया जा सकता है। ठीक है न? परन्तु इस राग में धैवत व रिषभ पर जो आन्दोलन हम देते हैं, उसमें क्या ऊपर के स्वरों के कण लगाये जाते हैं?

उत्तर—शाबास! क्या वे तुम्हारे लक्ष्य में आ गए? हां, वे ही "कण" लगाये जाते हैं। यह उत्तर राग है अत: वे बहुत शोभनीय हो जाते हैं। 'ध, प' स्वर देर तक उच्चारित करने से प्रात: काल का संकेत तत्काल होजाना चाहिये। आगे "म, ग, रे, सा" स्वर आये कि भैरव का अङ्ग तैयार हुआ। यह जनक राग है, अत: तुम्हें यह राग अच्छी तरह साध लेना चाहिये। एक बार सध जाने पर तुम इस थाट के जिस राग में चाहोगे वहां यह अङ्ग मिलाकर निकालना आजावेगा। ग्रंथों में अनेक आरोह-अवरोह दिये हैं, यह तुम जानते ही हो।

प्रश्न—क्या यह समझ लेना चाहिए कि प्राचीन समय में भी एक राग में दूसरे राग का भाग युक्तिपूर्वक मिला देने की प्रथा थी?

उत्तर—तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर हां, कहकर ही देना पड़ेगा, क्योंकि रत्नाकर के प्रकीर्णकाध्याय में जो अंश प्रकार बताये हैं वे इसी प्रकार दिखाई पड़ते हैं।

प्रश्न—वहां क्या कहा गया है ? अंश यानी वादी स्वर ?

उत्तर—वहां इस प्रकार कहा है, देखो :—

"रागान्तरस्यावयवो रागेंऽशः स च सप्तधा ।
कारणांशश्च कार्यांशः सजातीयस्य चांशकः ॥
सदृशांशो विसदृशो मध्यमस्यांशकोऽपरः ।
अंशांशश्चेति यो रागे कार्येंऽशः कारणोद्भवः ॥

इसमें कही हुई सभी बारीक बातों पर हम विचार नहीं करेंगे । इस श्लोक पर पण्डित कल्लिनाथ ने इस प्रकार टीका की है:—

"बहुलीकोलाहलादिकार्यकारणादिरागे रागांतरस्य कोलबहुल्यादिकारण-कार्यादिभूतान्यरागस्यावयवः स्वरसमुदायरूप एकदेशो रक्त्यर्थमुपादीयमानोंऽशः इति परिभाष्यते । न तु प्रसिद्धः स्वरविशेष उच्यते । ननु अन्यरागे काकोरंश-स्य च को भेदः उच्यते । प्रकृतरागे समवायवृत्त्या वर्तमानैव च्छायात्यंतसादृ-श्याद्रागांतराश्रया सती या प्रतीयते साऽन्यरागकाकुः । अंशस्तु प्रकृतरागे ह्यविद्य-माने एव शोभातिशयाय याचितकमंडनन्यायेन रागांतरादुपादाय संयोगवृत्त्याऽत्र संबध्यते इति भेदो द्रष्टव्यः ।

प्रश्न—यह तो बड़ी मजेदार बात दिखाई पड़ती है । इसमें 'काकु' व 'अंश' का भेद बड़ी खूबी से बताया गया है । "राग काकु" समझने के लिए अभी हमें अधिक अनुभव की आवश्यकता होगी । ठीक है न ?

उत्तर—ठीक है ! मैं कहता था कि भैरव का अङ्ग अच्छी तरह रट डालो, क्योंकि अन्य रागों में भी तुम्हें वह दिखाई देगा ।

प्रश्न—यदि वह अङ्ग अन्य रागों में भी दिखाई दे, तो भी उन रागों के अन्य स्वतन्त्र लक्षण तो होंगे न ?

उत्तर—हाँ, हाँ, वे राग भैरव से बिलकुल स्पष्ट रूप से भिन्न हो जाते हैं । यह मत भूलो कि भैरव को हमने आश्रयराग माना है ।

प्रश्न—तब हमें इसका आरोह–अवरोह सरल व सम्पूर्ण समझना चाहिए न ?

उत्तर—ऐसा कहने में भी कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इस नियम में अपवाद भी हो सकता है ।

प्रश्न—ऐसा क्यों कहते हैं ? हमारे थाटवाचक राग मो सम्पूर्ण ही होते हैं न ?

उत्तर—तुम्हारे 'मारवा' थाट पर ऐतराज कोई भी कर देगा ? प्रचार में हम जिसे मारवा राग कहते हैं, वह षाडव है और उसमें पंचम वर्ज्य है । यहां तुम प्रश्न करोगे कि

फिर से ऐसे राग का नाम उस थाट को क्यों दिया गया ? उत्तर सरल है। थाटों का नाम उससे उत्पन्न होने वाले रागों के नाम पर रखने का पुराना रिवाज है । ऐसे नाम देने में प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी कुछ षाड़व व औड़ुव रागों का उपयोग किया है। इसमें कोई बड़ी भारी हानि नहीं होती। हिन्दुस्थानी सङ्गीत के मारवा थाट के अन्तर्गत कौनसा प्रसिद्ध राग सम्पूर्ण है, इस प्रश्न पर ही पहिले विवाद उत्पन्न होगा । लक्ष्यसङ्गीतकार ने मारवा थाट कहते हुए दक्षिणी ग्रंथों में प्रसिद्ध "गमनश्रम" नाम बाधा न पड़ने की दृष्टि से बता दिया है। मारवा थाट हमारे यहां गायक वादकों में प्रसिद्ध भी है। जैत, पूर्या, बसंत, आदि नाम इस थाट को देना कुछ विवादग्रस्त भी था।

प्रश्न—कोई बात नहीं। कोरे नाम से हमें क्या करना है ? थाट के स्वर ज्ञात होना ही प्रधान बात है। आप भैरव का वर्णन आगे बढ़ाइये !

उत्तर—ठीक है। "सा रे रे, सा" इतने ही स्वर गाकर रुक जाने पर निकटवर्ती श्रीराग का अङ्ग आंखों के सम्मुख आ जावेगा, इस सम्बन्ध में मैं आगे बताऊँगा । इस प्रकार हो जाना ठीक ही है। भैरव राग में यह पूर्वाङ्ग प्रधानता कैसे शोभा देगी ? यह बात नहीं कि ये स्वर महत्वपूर्ण नहीं हैं, परन्तु यह भैरव के मुख्य अङ्ग नहीं हो सकते। रिषभ स्वर संवादी है, अत: यह समुदाय केवल रंजकता निर्वाहक हो सकेगा। श्रेष्ठ गायक 'सा धृ, सा' इन तीन स्वरों में से ही भैरव का संकेत कर देंगे। इसमें यदि 'म, ग रे, सा' स्वर और लगा दिये तो फिर शंका ही नहीं रह सकती। इसे अच्छी तरह सुनकर हृदय में बैठा लेना चाहिये। आगे "ग, मप, ध, प" तो सार्वजनिक तान है। कोई-कोई गायक भैरव में मींड़ से कोमल नी स्वर भी ग्रहण करते हैं।

प्रश्न—वह कैसे ग्रहण करते हैं ? सां नि ध, प ऐसा अवरोह करते हैं ? परन्तु क्या ये स्वर भैरवी या आसावरी थाट के नहीं हो जायेंगे ?

उत्तर—तुमने ठीक ही शंका की है। "सां, नि ध प" ऐसे खुले स्वर गाते-गाते 'आसावरी' अवश्य उत्पन्न हो जावेगी, परन्तु यहां इस प्रकार कोमल निषाद नहीं लेते। वह तो बड़े कलात्मक रूप से लिया जाता है। तार षड्ज पर सुन्दर विश्रांति कर फिर गायक कोमल धैवत पर आता है और धीरे से 'ध नि प' ऐसी मींड़ या ध नि ध प, ऐसी मींड़ लेता है। इसमें संदेह नहीं कि यह काम बहुत ही आनन्ददायक हो जाता है। भैरव के अवरोह में प्रथम जो निषाद लिया जाता है, वह कानों को कुछ उतरा हुआ ज्ञात होता है, यह अनुभव मर्मज्ञ लोग बताते हैं व आगे चलकर तुम्हें भी होगा। अब मैं तुम्हारे आगे यह स्वरसमुदाय गाता हूं । इसे सुनो व देखो कि इसमें तुम्हें किंचित वैसा ही प्रकार दिखाई देता है या नहीं—म, प प, ध, नि सां, सां, ध, नी सां, रें रें सां नि ध, सां ध नि प। यह न समझना कि भैरव का अवरोह बिना मींड़ के होता ही नहीं। यह तो तीव्र 'नी' लेकर भी किया जा सकता है। परन्तु मैं यही दिखा रहा था कि गायक लोग कोमल नी दिखाकर राग में कैसी रंजकता उत्पन्न करते हैं।

प्रश्न—यदि हम यही ध्यान में रखें कि यह स्वर विवादी के रूप में ही ग्रहण किया जाता है तो ?

उत्तर—यह भी चल जायेगा। कुछ ग्रंथकारों ने भैरव में 'कैशिक' नी भी बताई है। उदाहरणार्थ सोमनाथ का 'राग विबोध' देखो। तो भी यदि उसकी शुद्ध धैवत सम्बन्धी भूल हमारी दृष्टि में आगई और उसका 'कैशिक नी' हम 'काकली नी' को समझ जावें तो कोई विशेष दोष नहीं होगा। भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों का मत हम देखने वाले ही हैं। भैरव में "म ग म रे॒ रे॒ सा" यह भाग राग की गंभीरता को उत्तम रूप से सँभालता है। यह भाग मैं कैसे गाता हूँ, इसे सावधानी से समझ लिया कि काम बन गया। इसमें मैं मध्यम स्वर से मंदगति से मीड़ द्वारा अवरोह करते हुए रिषभ पर कैसा आन्दोलन लेता हूँ, यह देखते हो न? विभिन्न रागों में ऐसे महत्वपूर्ण स्थल ध्यान में रखने योग्य होते हैं। गायक लोग ऐसे कृत्य को "उच्चार" कहते हैं। यह कृत्य शब्दों में कहने या कागज पर लिखने में सरल नहीं होता, यह बात कुछ ठीक है, परन्तु इसका वर्णन जितना संभव हो, उतना करने में कोई हानि नहीं है। कुछ दिन पहिले महाराष्ट्र में ख्यातिप्राप्त एक प्रसिद्ध गायक मेरे पास आये थे। बोलते-बोलते वे कहने लगे—"पंडितजी आजकल तो जो उठता है वह संगीत पर "गिरंथ" लिख डालता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है। अपने रागों का क्या कागज पर लिखा जाना संभव है? प्रत्येक राग में भिन्न-भिन्न खूबियां होती हैं। यह कोई "अंग्रेजी" खड़े स्वरों का गाना तो है नहीं? अपने यहां कुछ स्वर 'सीधे' व कुछ 'झूलते' (आन्दोलित) सदैव लगते हैं। इनके लिए मनुष्य कितने चिन्ह बनायेगा व उन्हें पढ़कर कौन-कौन व्यक्ति गायक बन सकेगा? मैंने तो इस तरह से तैयार होने वाले लोग अभी तक नहीं देखे।" उनके इस कथन का कोई अर्थ नहीं, यह हम नहीं कहेंगे, परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है कि लेखन पद्धति बिलकुल निरुपयोगी है। फिर उन गायक से मेरी बहुत बातें हुईं। अन्त में उन्होंने इतना स्वीकार किया कि—रागों के स्वर वादी-विवादी मुख्य लक्षण, आरोह-अवरोह के नियम, मुख्य अङ्ग, राग पहिचानने की खूबियां आदि बातें लिखी जा सकती हैं और वे उपयोगी भी होंगी। अस्तु, अब हम आगे बढ़ें। भैरव की ये मीड़ें, इस थाट के अन्य किसी भी राग में तुमने लगाईं कि तत्काल वहां भैरव का भाग उत्पन्न हो जावेगा। ऐसे महत्वपूर्ण व ध्यान में रखने योग्य भाग, गुरु के निकट अच्छी तरह सीखने पड़ते हैं। तोता रटन्त जैसा गाना कभी मीठा ही नहीं लगता यह बात तो नहीं है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रागों के नियम जानकर व उनका उपयोग करते हुए रागरचना करना अधिक योग्यता की वस्तु है। संगीत की उन्नति उच्च स्वर के स्वरज्ञान व रागज्ञान हुए बिना नहीं हो सकती। भैरव के अवरोह में निषाद स्वर थोड़ी गौणता प्राप्त करता है क्योंकि वह धैवत के तेज से अपने आप आच्छादित हो जाता है। भैरव को प्रचार में कोई-कोई आदि राग भी कहते हैं, परन्तु इस कथन में कोई विशेष अर्थ इस समय नहीं दिखाई पड़ता। मैं, रागों का सम्बन्ध देवताओं से जोड़ना अथवा पौराणिक कथाएँ सुनना पसन्द नहीं करता।

प्रश्न—हमें भी ऐसा ही अच्छा लगता है। इस समय तो जो बात प्रत्यक्ष उपयोगी होगी, उसका विवेचन करना सभी को पसन्द आयेगा। आदि राग अर्थात् प्रथम उत्पन्न होने वाला राग, यह सिद्ध करना कठिन हो जावेगा। ठीक है न?

उत्तर—हां ठीक है। केवल इतना कह देने से कैसे काम चलेगा कि महादेव जी के मुख से जो प्रथम राग उत्पन्न हुआ वह भैरव है। परन्तु ऐसा भी चलता ही है। भैरव के मार्मिक स्वरसमुदाय जो मैंने तुम्हें बताये हैं, वे तुमने ध्यान में जमा ही लिये

होंगे। अब यह भाग और देखो—"प, प ध॒, नि सां, सां रें॒ सां, सां ध॒, नि सां, रें॒ रें॒ सां, ध॒, नि ध॒ प, म म प ध॒, रें॒ सां नि ध॒ प, म ग रे॒, प म ग रे॒ सा" इस स्वरसमुदाय के उचित स्थलों पर ठहरते हुए मेरे साथ-साथ गाओ। अब यह कहा जा सकेगा कि भैरव का सब स्वरूप तुम्हारी समझ में आ चुका है। इस राग के लिए प्रातःकाल का समय बहुत ही योग्य है, यह तथ्य स्वतः ही तुम्हारी समझ में आजावेगा। उस पवित्र समय में इस राग का परिणाम श्रोताओं पर कुछ अवर्णनीय होता है। इस गंभीर राग को गाने के लिए आवाज अवश्य ही बड़ी मधुर व कसी हुई होनी चाहिये तथा गायक को विलम्बित लय में गाने की आदत होनी चाहिये।

प्रश्न—ऐसी आदत खास तौर पर बनानी पड़ती है ?

उत्तर—हाँ, विलम्बित लय में गाना सरल नहीं होता। कुछ रागों की प्रकृति द्रुतलय में गाने के अनुकूल होती है, उनमें द्रुतलय अधिक शोभा देगी। परन्तु गांभीर्य परिप्लुत रागों को यदि भाग-दौड़ में गाया जावे यो इच्छित प्रभाव नहीं हो पाता। यह बात हमारे अशिक्षित गायक भी बहुत कुछ समझते हैं। मुझे याद है कि मैं एक बार एक जलसे में गया था। गायक मुसलमान जाति के व्यक्ति थे। इसमें सन्देह नहीं कि गायक का गला बहुत तैयार था। प्रायः मेरा अनुभव यह है कि तैयार गले के गायकों को तानबाजी में लग जाने का प्रबल मोह होता है। इन खाँ साहब को तो अपनी स्थाई भी दो चार बार कहने का धैर्य नहीं रहा। इन्होंने एक गंभीर राग का 'ख्याल' शुरू किया। सौभाग्य से श्रोताओं में एक हिन्दुस्तान प्रसिद्ध बीनकार भी थे। ख्याल बहुत प्राचीन व प्रसिद्ध था, परन्तु अनावश्यक तानबाजी से उसकी ऐसी दशा हो गई तथा इतना रूपांतर होगया कि गाने का प्रभाव जैसा चाहिये वैसा न हो पाया। गायक को यह देखकर रोष उत्पन्न हुआ कि वे बीनकार मेरी तैयारी की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। उसने बार-बार बीनकार से कहना शुरू किया।

"खां साहब, ये आपके देखने की बातें हैं। आप नामी लोग कहलाते हो, मगर इसके तरफ भी जरा देखो। ये बातें मुश्किल हैं। कैसे-कैसे पेंच और बल रहे हैं, सोभी गौर करके देखना चाहिये। ये काम ऐसे वैसे से हो नहीं सकता। इसके समझने वाले भी अब बहुत कम हैंगे।"

यह सुनकर बीनकार को भी क्रोध आगया, उसने कहा:--

"भाई, ये अस्ताई तुमको किन्ने बतलाई ? अपनी तालीम तो गाओ। आपका घराना तो जरा मैं देखूं। राग के वक्त को देखो, उसके दिमाग को देखो, और तुम क्या कर रहे हो वो भी देखो। तुम अपना मूं चारों ओर फिराओ मगर अपने चीज को तो सीधा रखो। तान के जगे तान रक्खो। ये ख्याल किस लय का है, सो भी तो सोचो।'

उसका यह कथन अनेक श्रोताओं को बहुत मार्मिक ज्ञात हुआ। अस्तु, हम आगे चलें।

संस्कृत ग्रन्थकार भैरव राग का वर्णन सदैव महादेव के वर्णन जैसा करते हैं। इसका कारण कोई यह बताते हैं कि यह राग महादेव जी को बहुत पसन्द है और यह प्रथम उत्पन्न किया हुआ है। दूसरे यह भी कहते हैं कि 'महादेव' नाम सूर्य का है व भैरव सूर्योदय के समय गाया जाने वाला राग होने से यह वर्णन साम्य होगया होगा। रागों के चित्रों का गुण गान करने वाले लोग भी अनेक बार हमें मिल जाते हैं। यह नहीं कि वे सभी बड़े-बड़े विद्वान होते हैं। कोरी देवकथाओं पर चर्चा करने वालों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। कुछ अर्धशिक्षित विद्वान भी इस प्रकार के मिल जायेंगे। मुझे याद है कि एक बार हमारे 'गायन समाज' में एक विद्वान व्याख्यान देने आये थे। उन्होंने कहा कि बसंत राग से स्वर लगाकर मैं केशरिया रंग उत्पन्न कर देता हूं। उस बेचारे को यह भी ज्ञात नहीं था कि बसंत राग किन स्वरों में गाया जाता है। परन्तु यह सुना गया था कि उसने रसायन शास्त्र अवश्य देखा था।

प्रश्न—केशरिया रंग ही क्यों उत्पन्न किया जाने वाला था? यह भी कैसे?

उत्तर—ऐसे यह बात एकदम समझ में नहीं आवेगी। ग्रन्थों में प्रत्येक स्वरों के रंग बताये गये हैं न? ये रंग लेकर फिर राग के स्वर वर्णन की रीति-नीति के अनुसार मिश्रण करना पड़ेगा। केशरिया रंग उत्पन्न करने का कारण इतना ही है कि वसंत ऋतु में केशर, कस्तूरी, अबीर, गुलाल आदि वस्तुऐं अपने देश में बहुत चलती हैं। यहां बताना यह है कि केशरिया रंग का मिश्रण हुआ कि बसंत राग के स्वर निश्चित हुए।

प्रश्न—भई वाह! कल्पना अवश्य ही विचित्र है। उस बेचारे को इस बात का पता नहीं होगा कि अब हम निरे स्वरों से संतुष्ट न होकर बाईस श्रुतियों के पीछे पड़े हुए हैं। अब ग्रन्थों की बाईस श्रुतियों के रंग भी ठहराने पड़ेंगे। परन्तु पहले यह विवाद तो मिटाना चाहिये कि ग्रन्थों के स्वर कौन से हैं? नहीं तो अपने रागों के इन रँगरेजों की मेहनत व्यर्थ ही चली जावेगी। षड्ज का रंग कमल जैसा कहा गया है। परन्तु कमल भिन्न-भिन्न रंगों के कहे गये हैं। जान पड़ता है कि यह रंग-शास्त्र शिक्षार्थियों के लिए नादशास्त्र की अपेक्षा कठिन साबित होगा।

उत्तर—तुम्हारा यह कथन अनुचित नहीं है। यह विषय सरल तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। हम यह कभी नहीं कहेंगे कि स्वरों के रंग बताने में प्राचीन पंडितों ने अपना पागलपन व्यक्त किया है। हम तो यही कहेंगे कि उन ग्रन्थोक्त रंगों का यथायोग्य स्पष्टीकरण अभी तक किसी ने नहीं किया। यह भी कहा जा सकता है कि हमारे मध्य-कालीन ग्रन्थकारों को भी इस विषय में कुछ नहीं जान पड़ा था। उन्होंने अपनी सदैव की प्रथा के अनुसार जो कुछ भी हाथ लगा उसे संग्रहीत करके रख दिया था। पंडित अहोबल की समझ में नारदी शिक्षा का सङ्गीत बिलकुल नहीं आया होगा, परन्तु वहां के स्वर के वर्ण (रंग) तो उसे नकल करके रखने ही चाहिये! अस्तु, हमारे उन पण्डितों ने इस प्रकार प्राचीन दुर्बोध बातों का संग्रह नहीं किया होता तो हमें प्राचीन काल की मान्यताओं की आज कैसे कल्पना हो सकती थी? यह हम जानते ही हैं कि इस समय पाश्चात्य विद्वान नाद व रंग के सम्बन्ध में प्रयोग कर रहे हैं। पाश्चात्य कल्पना हमारे यहां बहुत शीघ्रता से स्वीकार करली जाती है। परसों एक विद्वान ने अपना इस प्रकार

का मत व्यक्त किया था कि कोमल ग, नी, लगाने वाले राग प्रायः दुःख-प्रदर्शक होते हैं। मैंने उनसे उनका आधार नहीं पूछा। कौन जाने उनकी कल्पना यूरोप के Minor mode से सम्बन्धित हो। मैं यह स्वीकार करूँगा कि रङ्गों के सम्बन्ध में मुझे कहने का कुछ भी अधिकार नहीं है।

प्रश्न—कोई बात नहीं! यदि यह जानकारी आज हमें नहीं भी मिले तो भी आज हमारा कार्य रुकने वाला नहीं है। जो बातें आप हमें इस समय बताते जा रहे हैं, इतने से ही हमारा काम फिलहाल चलता रहेगा, अब आगे चलिये?

उत्तर—अच्छा यही करता हूं। भैरव राग प्रसिद्ध होने से यह अधिकांश गायकों को अपने-अपने तरीकों से आता है। इस राग का स्वरूप कुछ ऐसा स्वतन्त्र है कि गायकों व श्रोताओं के ध्यान में तत्काल जम जाता है। बड़े-बड़े जल्सों में प्रातःकाल के समय भैरव या रामकली में से कोई एक राग गायक गाते हैं। भैरव का जो बिलकुल साधारण रूप हमें दिखाई पड़ता है, वह इस प्रकार है :—

'सा, म ग, म प, ध॒, ध॒, प, म ग रे॒, ग म प म ग, रे॒ सा; सा रे॒, सा ध॒, सा, ग म ग रे॒, प म ग रे॒, सा।"

चाहे यह रूप साधारण हो, परन्तु अशुद्ध नहीं है। इसे भी तुम्हें अवश्य ध्यान में रखना है। भैरव में गांधार व निषाद स्वर रिषभ व धैवत की समीपता से आच्छादित हो जाते हैं। गांधार की अपेक्षा निषाद अधिक गौणता प्राप्त करता है। ये ही दोनों स्वर सांयकाल के समय कितने अधिक रंजक हो जाते हैं। प्रभात के रागों में "नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग मं प" ऐसे स्वरसमुदाय प्रायः गायक टालते रहते हैं, क्योंकि ये सांयकाल का संकेत करते हैं। यह सम्पूर्ण चर्चा पद्धति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। "ध॒ प" इस प्रकार लम्बाई लेकर स्वरों का उच्चारण करते ही प्रातःकाल के कुछ नियमित रागों का चित्र आंखों के आगे खड़ा हो जाता है, परन्तु सांयकाल के राग स्वरूप इस प्रकार मन में नहीं आ पाते, यह मर्म अब तुम स्वयं समझने लगे हो। भैरव में मन्द्र सप्तक में बहुत अधिक नीचे नहीं उतरा जाता। हर एक गायक "सा ध़ प़, म़ प़, ध़, सा, रे॒ रे॒ सा" इतने ही नीचे जाते हैं तथा राग की अच्छी छाप जमा देते हैं। कई प्रातःकालीन रागों में "अवरोही वर्ण वैचित्र्य" होने से कुछ स्वरों में ऊपर के स्वरों के कण अपने आप लग जाया करते हैं, यह तथ्य तुम्हारे लक्ष्य में आ ही चुका है। यह कणों का भाग बहुत सूक्ष्म है और स्वरलिपिकारों को बहुत उलझन में डाल देता है। इसे ठीक से समझने में तुम्हें अभी कुछ समय लगेगा।

प्रश्न—भैरव का अन्तरा प्रायः कैसे शुरू होता है?

उत्तर—अधिकतर वह इस प्रकार उठाया जाता है :—

"म, प ध॒, नि सां, अथवा म प प, ध॒, नि सां, सां, ध॒, नि सां, रें॒ रें॒ सां ध॒, प" यह टुकड़ा ध्यान में रखना पर्याप्त होगा। धैवत पर होने वाले आंदोलन में 'ध॒ प, ध॒ प, ध॒ प,' स्वर बहुत मनोहर रूप से कंपित होते हैं, इसी प्रकार रिषभ के आंदोलन में 'रे॒ सा, रे॒ सा, रे॒ सा' ये स्वर आवश्यक रूप से हिलते हैं। ये दोनों आंदोलन साधलेना एक प्रकार से भैरव राग साध लेना ही समझना चाहिये, इसलिये कहा जाता है—

भैरवस्य रिधौ यस्माद्विशेषेणातिरक्तिदौ ।
प्रसाधून्वंति तावेव प्रथमं मर्मवेदिनः ॥

"ध॒, प" स्वर आंदोलन रहित उच्चारित करने पर हृदय पर तत्काल विभास राग की छाया उत्पन्न हो जावेगी। यह राग आगे आयेगा ही। मध्यम पर से मैं रिषभ पर मींड़ लेता हूँ तब इसमें गांधार स्वर किस प्रकार "मसल" (मिश्रित) दिया जाता है। यहाँ मैं तुम्हें भैरव के रागवाचक अङ्ग स्पष्ट दिखा रहा हूँ । यह राग सम्पूर्ण है, अतः इसके सारे स्वर अलग-अलग लगाना अशुद्ध नहीं होता। तार सप्तक में तुम्हें अधिक ऊँचा जाने की आवश्यकता नहीं। वहां पर रिषभ अवश्य ही लेना पड़ता है। "प ध॒, नि सां, सां, रें॒, सां ध॒" ये स्वर एक बार श्रोताओं को सुनाई दिये कि फिर उन्हें वे कभी नहीं भूल सकेंगे। इस राग में गायक अधिक तानबाजी नहीं करते । यह सत्य है कि जब तक श्रोताओं पर इस राग का प्रभाव अच्छी तरह न छा जावे, इसमें तानें नहीं ली जातीं। इस राग में ठुमरी जैसे क्षुद्र गीत अच्छे घरानेदार गायक नहीं गाते । यदि किसी ने कभी उनसे इस प्रकार गाने की फरमाइश की तो, कभी-कभी तो वे लोग क्रोधित भी हो जाते हैं। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वे भी आजकल बहुत समान्य स्तर पर आगए हैं। परसों श्रोताओं में बात चल रही थी, उसमें मेरे मित्र एक प्रसिद्ध व वृद्ध गायक ने कहा "पण्डित जी! अब वे कदरदान सुनने वाले भी कहां हैं ? कदरदान हमारे गुलाम और बेकद्र के हम गुलाम" आजकल गायक अपने संग्रह में आंख, नाक के डाक्टर के समान सब कुछ रख छोड़ते हैं। अस्तु! अब यह देखें कि हमारे ग्रन्थकारों ने भैरव का वर्णन किस-किस प्रकार किया है।

प्रश्न—जी हां, यह सुनाइए ?

उत्तर—पण्डित रामामात्य ने अपने "स्वरमेल कलानिधि" में यह राग बताया ही नहीं । "भिन्न षड्ज" राग उसने अपने बिलावल थाट के स्वरों में बताया है । ऐसा ही रामामात्य के अनुयायी सङ्गीतलक्षणकार ने भी कहा है । अब पण्डित सोमनाथ क्या कहता है, वह सुनोः—

राग विबोधेः—

भैरवमेले शुद्धाः सरिमपधा अंतरश्च कैशिकनिः ।
भैरवपौरविकाद्या रागा मेलादतस्तु स्युः ॥
धांशग्रहसन्यासः संपूर्णो भैरवः प्रातः ॥

यहां तुम्हें सर्वप्रथम एक बात यह दिखाई देगी कि इस ग्रंथकार के समय अर्थात् शाके १५३१ के लगभग भैरव राग संपूर्ण माना जाने लगा था। सोमनाथ ने भी इस राग में धैवत को अन्श व ग्रहस्वर माना है। यहां निषाद की उलझन शायद पड़ेगी, परन्तु इसके सम्बन्ध में मैं पहिले भी कुछ कह चुका हूं। यह अफसोस की बात है कि सोमनाथ ने शुद्ध धैवत वीणा के चौथे परदे पर स्थापित कर, स्वयं को तथा पाठकों को व्यर्थ की धांधली में पटक दिया है । 'मालव गौड़' एक अति प्रसिद्ध व लोक-प्रिय थाट रहा है । इसमें

तीव्र ध शामिल करने से इसके विषय में किसी को भी सम्मान का अनुभव न होगा। उसके तीव्र धैवत की दृष्टि से कैशिक नी, तीव्र नी ही हो सकेगी। यहां एक बात अवश्य स्पष्ट रूप से स्वीकार करनी पड़ेगी कि सोमनाथ ने भैरव मेल मालवगौड़ से भिन्न माना है तथा दक्षिण के कुछ ग्रन्थकार भैरव में तीव्र धैवत भी बताते हैं, परन्तु गलती तो गलती ही है। शुद्ध ध को तीव्र ध मानने का विधान ही गलत है। खास मालवगौड़ थाट के लिये तो सोमनाथ का धैवत वही बताया जावेगा। हमारे पण्डित उसकी भूल को आगे नहीं चलाते हैं, यह बात मुझे भी पसन्द है।

सद्रागचन्द्रोदये:—

> शुद्धौ सरी मध्यमपंचमौ च विशुद्धधो मो लघुशब्दपूर्वः।
> निः कैशिकी चाऽपि यदा भवेत्तु हिजेजरागस्य हि मेलकः स्यात्॥
> धांशग्रहन्यासयुतश्च पूर्णः प्रातः प्रयुज्येत स भैरवाख्यः॥

देख रहे हो न कि ये लक्षण सोमनाथ के लक्षणों से कितने मिलते-जुलते हैं? यह ग्रन्थकार भैरव में कैशिक निषाद ग्रहण करने को स्पष्ट रूप से कहता है। सोमनाथ ने भी ऐसा ही कहा था। "हिजेज" के विषय में आगे चलकर बताऊँगा।

प्रश्न—क्या इस पुण्डरीक का काल निर्णय होगया है?

उत्तर—अभी तक नहीं हुआ। परन्तु यह पंडित अपने ग्रन्थ के आरम्भ में कहता है कि मैं "फरकी" खानदान के बुरहानखान नामक राजा के पास रहता हूँ। विद्वान कहते हैं कि यह घराना खानदेश में प्रसिद्ध हुआ था। बुरहानखान की राजधानी पुण्डरीक ने आनन्दवल्ली बताई है, परन्तु मैं अभी तक यह नहीं समझ पाया कि वह हमारा कौनसा शहर हो सकता है। वह राजधानी "दक्षिणदिङ् मुखस्य तिलके" इस प्रकार बताई गई है। यह खोज आगे तुम खुद करना। इस पुण्डरीक ने दूसरे तीन ग्रन्थ और लिखे हैं। उनमें 'रागमाला" बहुत सुन्दर रचना है। रागमाला में पुण्डरीक ने इस प्रकार कहा है:—

> शुद्धभैरवहिन्दोलदेशिकारास्ततःपरम्।
> श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणश्च षट्॥

प्रश्न—यह क्या? यहां तो मुख्य छः राग आदि की प्रपंचपूर्ण व्यवस्था दिखाई देती है। चन्द्रोदय में तो ऐसा स्वरूप नहीं मिलता। वह भी तो इसी पंडित का ग्रंथ है न?

उत्तर—हां यह अवश्य आश्चर्य की बात है कि एक ही ग्रन्थकार ने इस प्रकार दो रूप क्यों प्रस्तुत किये? हम सदैव सुनते हैं कि राग व रागिनी की रचना उत्तर भारत की देन है। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार की रचना करना बहुत विद्वता का कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति यह कह सकेगा कि भिन्न-भिन्न मतों के प्रमाण से भिन्न-भिन्न वर्गीकरण किये गये होंगे, परन्तु ऐसे वर्गीकरण संगीत की बहुत ऊँची सीढ़ी रही होगी। हमारे देश में आज जो शांति है यदि ऐसी शांति बादशाही शासन काल में रही होती, तो भारतीय संगीत की ऐसी शोचनीय स्थिति न होती। यदि ईश्वर की

कृपा से इस प्रकार की शांति दीर्घकालीन बनी रहे तो शायद हमारे विद्वान भी आज के सम्पूर्ण हिन्दुस्थानी सङ्गीत को यथा सम्बन्ध नियमबद्ध रीति से "राग-रागिनी-पुत्र-पौत्रादि" के तरीके से भी लिख छोड़ेंगे ; केवल समाज की सहानुभूति प्राप्त होनी चाहिये। अस्तु ! चाहो तो कह सकते हो कि 'रागमाला' ग्रंथ यह सिद्ध करता है कि पुण्डरीक उत्तर की ओर आया था। यह मैं कह चुका हूं कि रागों की कुटुम्ब व्यवस्था उत्तर की ओर रही है। पंडित पुण्डरीक ने शुद्ध भैरव राग अपने छः पुरुष रागों में प्रथम माना है। मजा यह है कि शुद्ध भैरव का रूप चन्द्रोदय के भैरव के रूप से भिन्न है।

प्रश्न—यह भला कैसे हो सकेगा ? एक ही ग्रंथकार ऐसा असङ्गत मत कैसे दे सकता है ? शायद 'शुद्ध' उपपद लगने से तो यह भेद उत्पन्न नहीं होगया ?

उत्तर—तुम्हारा तर्क बिलकुल दुरुस्त है। इस शब्द के प्रयोग-भेद हमें अनेक स्थलों पर दिखाई पड़ते हैं। जैसे शुद्धमल्हार, शुद्धकल्याण, शुद्धसारङ्ग, शुद्ध-धनाश्री इत्यादि।

प्रश्न—शुद्धभैरव का स्वरूप, पुण्डरीक ने रागमाला में किस प्रकार बताया है ?

उत्तर—वह इस प्रकार है:—

> सद्योजातोद्भवोऽयं प्रथमगतिगनिः सत्रिकोऽरिः कपर्दी।
> रक्तः श्यामस्त्रिशूली सिततरवसनो भस्मदेहस्त्रिनेत्रः ॥
> कण्ठे शृंगं दधानः श्रवणयुगलतो मुद्रिके चंद्रजूटो ।
> हेमंतेऽपि प्रभाते विलसति वृषपो भैरवः शुद्धपूर्वः ॥

प्रश्न—यह तो महादेव जी का वर्णन हुआ। परन्तु इससे हमारे जैसों को क्या बोध होगा ?

उत्तर—ठहरो ! पुण्डरीक इतर ग्रंथकारों जैसा पागल नहीं था। उसने अपने वर्णन में महादेव का चित्र अवश्य मिला दिया है, परन्तु ऐसा करने के साथ-साथ उसने स्वरों का इशारा भी कर दिया है। मालूम होता है इस तथ्य पर अभी तुम्हारा ध्यान नहीं पहुँचा।

प्रश्न—नहीं, वह कैसा किया है ? क्या श्लोक में श्लेष प्रयोग है ?

उत्तर—कोई बड़ा भारी श्लेष-वेष तो नहीं है, परन्तु स्वरबोधक विशेषण अवश्य उसने खींचतान कर वर्णन में सम्मिलित किये हैं। ऐसा करने में कोई बड़ी हानि भी नहीं है। सङ्गीत के ग्रंथ सदैव अर्थप्रधान होने से पाठकों को इनमें उच्चस्तर का बिलकुल निर्दोष काव्य अपेक्षित भी नहीं होता। उनके लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि यथायोग्य जानकारी संक्षिप्त किंतु व्यवस्थित मिल सके। यह तुम जानते हो कि इस प्रकार की जानकारी संस्कृत श्लोकों की मदद से अच्छी तरह दी जा सकती है।

प्रश्न—यह तो ध्यान में आ गया। परन्तु श्लोक का महत्वपूर्ण भाग हमें अच्छी तरह समझा दीजिये। हम अपने स्वतः के तर्क एक ओर रख देते हैं। हमें ठीक से समझा दिया जावेगा तो बार-बार शंकाएं उत्पन्न न होंगी।

उत्तर—ठीक है, देखो "प्रथमगतिगनिः, समिको, अरिः हैमन्ते, प्रभाते", इन विशेषणों में तुम्हारी इच्छित, अधिकांश जानकारी मिल जावेगी।

प्रश्न—इसमें से अंतिम चार विशेषण तो स्पष्ट ही हैं, परन्तु पहिले का स्पष्टीकरण अच्छी तरह होना आवश्यक है। पिछली बार भी आपने इस प्रकार के विशेषणों के संबंध में कुछ कहा था, परन्तु हमारे मन में इस सम्बन्ध में बड़ी शंका रह गई। इस सम्बन्ध में यदि अब स्पष्ट व्याख्या करदें तो अच्छा होगा।

उत्तर—यह मैं करने ही वाला हूँ। प्रथम हम उन दो-तीन श्लोकों को देख जावें, जिनमें पुण्डरीक ने अपने शुद्ध व विकृत स्वर बताये हैं—

हेतवो नादभेदस्य तिर्यक्सच्छिद्रनाडिकाः।
द्वाविंशतिः प्रतिस्थानं सोपानाकारवत्क्रमात् ॥
वायुपूरणतस्तारस्तचारस्तूत्तरोत्तरम् ।
प्रभवंत्युच्चोच्चतराः श्रुतयः आन्यमात्रतः ॥
रागादिव्यवहाराय तासु सप्तस्वराः स्थिताः।
षड्जश्च रिषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा ॥
पंचमो धैवतश्चाऽथ निषादश्चेत्यनुक्रमात् ।
तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरा मताः ॥
वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ ततः ।
सप्तादश्यां च विंश्यांच द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥

इतना भाग तो तुम्हारा पहिचाना हुआ ही है। अब पुण्डरीक के विकृत स्वर भी हम देखलें:—

षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता प्रथमा भरतादिभिः।
असपाः पूर्वपूर्वातः संचरंत्युत्तरोत्तरम् ॥
त्रिस्त्रिर्गतीस्ते प्रत्येकं यांति गश्च चतुर्गतीः।
यद्यद्रागोपयोगः स्यात्तत्तदिच्छागतिर्भवेत् ॥
गन्योर्गती द्वितीये चांतरकाकलिनौ स्मृतौ ।
पंचम्यष्टादशी षष्ठी तथा चौकोनविंशतिः ॥
चतस्रः श्रुतयश्चैता रागाद्यैरप्रयोजकाः ॥
शेषा अष्टादशैव स्युः श्रुतयः स्वरबोधकाः ॥

प्रश्न—यह भाग कोरे संस्कृत भाषा ज्ञान से अच्छी तरह समझ में आने योग्य नहीं दिखाई पड़ता। अब हमें इसका भावार्थ समझा दें तो बहुत अच्छा होगा। थोड़े बहुत तर्क तो हम आपकी पहिले दी हुई जानकारी से कर सकते हैं, परन्तु यथोचित समाधान नहीं हो सकेगा।

उत्तर—कहता हूँ सुनो। पुण्डरीक ने अपने शुद्ध स्वर "वेद, अचल, अंक, त्रयोदशी, सप्तदशी, विंशी व द्वाविंशी" इन श्रुतियों पर स्थापित किये हैं। यह तो स्पष्ट ही है न?

प्रश्न—जी हाँ, यह तो सम्पूर्ण प्राचीन व्यवस्था ही है। इसमें हमें आश्चर्य करने योग्य कुछ भी नहीं दिखाई देता।

उत्तर—ठीक! अब आगे पुण्डरीक कहता है कि इस प्राचीन व्यवस्था के अनुसार जब अपने-अपने नियत स्थानों पर स्वर होते हैं तब वे 'प्रथम' या 'मूल' अवस्था में होते हैं, यह समझना चाहिये। वहां से उनके हट जाने पर उनमें विकृति उत्पन्न होती है। उसका यह कथन भी योग्य दिखाई पड़ता है। अब कौन से स्वर विकृत हो सकते हैं, यह उसमें "असपाः" पद में बताया है। "असपाः" अर्थात् स और प को छोड़कर पांच स्वर यानी रि, ग म, ध, नी, विकृत हो सकते हैं। हम भी आजकल स व प को अचल मानते हैं। ठीक है न?

प्रश्न—यह तो ठीक है, आगे?

उत्तर—आगे रि, ग, म, ध, नी की विकृति की एक महत्वपूर्ण शर्त बताई है। "संचरंत्युत्तरोत्तरम्"। मैं समझता हूं कि यह भाग भी तुम्हारे लिये बिलकुल नवीन नहीं है। मैं इस विषय पर भी पहले कुछ बोल चुका हूँ। परन्तु जिस उद्देश्य से हम 'रागमाला' की परिभाषा व व्यवस्था देख रहे हैं, उसे देखते हुए फिर से इस भाग को दुहराना हानिप्रद नहीं है। ऊपर बताई हुई इस शर्त में यह निश्चित किया गया है कि स्वर अपने प्रथम व नियत स्थान से विकृत होने पर नीचे नहीं उतरता वह केवल ऊपर ही चढ़ेगा। तुम्हें इस बात से चकराना नहीं चाहिये। पुण्डरीक को तो तुम दक्षिण का ही पंडित मानते हो न? उसके शुद्ध रि, ध ठीक ही होते हैं। पारिजात व दक्षिण ग्रन्थों का यह अन्तर तुम्हारे ध्यान में पहिले ही आ चुका है। दक्षिण में स्वरों की शुद्ध अवस्था सबसे निम्न ध्वनि मानते हैं। वे स्वरों को विकृत करने का अर्थ चढ़ाना मानते हैं। यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त कभी मत भूलना। इसी सिद्धान्त के सहारे हम यह निश्चित कर सकते हैं कि अमुक पद्धति उत्तर की है या दक्षिण की।

प्रश्न—यह सब हमें ध्यान है। इस विचारधारा से हमने रत्नाकर की पद्धति कहां की है, यह तथ्य निश्चित करने का प्रयत्न किया था। शार्ङ्गदेव पंडित की परिभाषाओं में 'कोमल' शब्द नहीं पाया जाता तथा उसकी व्यवस्था में भी स्वरों को ऊपर चढ़ाकर विकृत करने की योजना है। यह सब हमने अच्छी तरह देखा था। इतना ही क्यों हमें तो आपका यह कथन भी स्मरण है कि शार्ङ्गदेव को दक्षिण के ग्रन्थकार अपने जैसा ही एक दक्षिणी पंडित मानते हैं। हमने आपके कथन से यह भी निश्चित कर लिया है कि यदि कोई रत्नाकर की पद्धति को दक्षिण की ठहराने का विधान निश्चित करे तो हमें एक दम उसका मजाक नहीं उड़ाना है। अस्तु, आप जो रागमाला की भाषा का स्पष्टीकरण कर कर रहे थे, उसे ही आगे चलने दीजिये?

उत्तर—ठीक है। स्वरों की प्राथमिक स्थिति तो तुम देख ही चुके हो। पंडित पुण्डरीक कहता है कि भरत की कल्पना भी ऐसी ही थी। उसका यह कथन भी सत्य है।

"रि, ग, म, ध, नी, स्वर विकृत होने पर तीन-तीन गति चढ़ सकते हैं। 'गति' शब्द तो तुम समझ ही जाओगे ?

प्रश्न—हमें अपनी कल्पनाओं पर विश्वास करना पसंद नहीं। आप तो स्पष्ट बता दीजिये ?

उत्तर—ऐसा ! अच्छा तो कहता हूं। शुद्ध गांधार स्वर षड्ज से आगे पांचवीं श्रुति पर होता है, तब इसकी स्थिति प्रथम होगी। इसे एक-एक 'गति' चढ़ाकर विकृति दी जा सकेगी। भिन्न-भिन्न रागों में भिन्न-भिन्न विकृतियों का उपयोग होता है, यह तुम सहज में समझ सकते हो। शुद्ध गांधार एक श्रुति चढ़ने पर 'साधारण ग', दो श्रुति चढ़ने पर 'अन्तर ग', तीन श्रुति चढ़ने पर 'मृदु म' या 'लघु म' तथा चार श्रुति चढ़ने पर "अति तीव्रतम ग" इस प्रकार के भिन्न-भिन्न नाम प्राप्त करता है। यह सब तुम जानते ही हो।

प्रश्न—इसी विचारधारा से निषाद की विकृतियां, 'कैशिक नी' 'काकली नी' व 'लघु सा', 'मृदु सा' होंगी। यह तो हम ठीक-ठीक समझ गये। परन्तु "गति" शब्द का अर्थ श्रुति कैसे ? यदि यह किसी ने पूछा तो ?

उत्तर—ऐसा अर्थ करने का आधार स्वयं पुण्डरीक ने आगे चलकर प्रस्तुत किया है। वह कहता है:—'गन्योर्गती द्वितीये चांतरकाकलिनौ स्मृतौ'। शुद्ध गांधार व शुद्ध नी दो श्रुति ऊपर चढ़े कि क्रमशः अन्तर ग व काकली नी हो जावेंगे।

प्रश्न—तो फिर ठीक है। 'गति' याने पुण्डरीक की श्रुति। अब फिर आगे चलिये ?

उत्तर—मैं शुद्ध भैरव की व्याख्या कर रहा था। यह राग प्रथमगतिक गांधार व निषाद, ग्रहणकर्ता होने से, इसमें गांधार व निषाद कोमल होते हैं। दक्षिण के ये साधारण ग व कैशिक नी होंगे। यह स्वरूप देखकर हमें थोड़ा आश्चर्य होगा, परन्तु शुद्ध भैरव व भैरव राग अलग-अलग हैं तो आश्चर्य क्यों होना चाहिये ?

प्रश्न—परन्तु "प्रथम गति गनिः" इस विशेषण में 'प्रथम' शब्द आता है, इससे कोई शुद्ध स्थिति तो नहीं समझ लेंगे ?

उत्तर—ऐसा नहीं हो सकता। 'प्रथम गति' व 'प्रथम स्थिति' में क्या कोई भेद नहीं है ? गति कहने पर स्वर का चलित होना ध्वनित होगा। 'गति' स्थिति का अन्तर व्यक्त करने वाला शब्द है। स्वर को हटाना याने ऊपर चढ़ाना, ग्रंथकार ने पहिले ही कह रखा है। निषाद कोमल है, यह भी हमारे लिए आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि चन्द्रोदय में खास भैरव में यही स्वर बताया गया था।

प्रश्न—आपका कथन उचित है। हमें भी यही ज्ञात होता है कि 'प्रथम गति' का अर्थ शुद्ध अवस्था नहीं हो सकता, क्योंकि यह मान लेने पर शुद्ध भैरव का थाट दक्षिण का शुद्ध थाट ही हो जावेगा तथा उसमें दोनों प्रकार के रि, ध, आजावेंगे। ऐसा रूप सचमुच समाधानकारक नहीं हो सकेगा।

उत्तर—ठीक है। अच्छा, अब अपनी व्याख्या के अनुसार शुद्ध भैरव के स्वर कैसे हुए ?

प्रश्न—वे इस प्रकार होंगे। सा, कोमल री (वर्ज्य स्वर) कोमल ग, म, प, कोमल ध, व कोमल नी। इस थाट को दक्षिण में क्या कहा जावेगा?

उत्तर—कोई भूपाल, कोई भिन्नषड्ज तथा कोई तोड़ी कहेंगे। परन्तु अभी हम उनके नामों पर ध्यान नहीं देंगे।

प्रश्न—क्या पुण्डरीक ने रागमाला में केवल 'भैरव' ऐसा राग अलग से और बताया है?

उत्तर—यह तुमने ठीक पूछ लिया। इस प्रकार एक स्वरूप और बताया है। इसमें भी 'शुद्ध' पद की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देगी। इस भैरव का भी वर्णन सुनाता हूँ, सुनोः—

भस्मांगः कंठभृङ्गी श्रवणयुगलतः शंखमुद्रे दधानः।
पादत्राणे प्रवाले फणिपतिसुजटाबद्धमौलिः प्रमत्तः॥
उज्झालस्यानुयायी पटुतरवचनः किन्नरीवाद्यमानः।
पूर्णो धाद्यंतमध्यस्त्वनलविधुगनिर्भैरवः पूर्वयामे॥

यह वर्णन समझने में अधिक कठिन नहीं है। इसकी अन्तिम पंक्ति में राग लक्षण संक्षेप में परंतु स्पष्ट बताये हैं। यहां यह बताया है कि भैरव राग सम्पूर्ण है तथा उसमें धैवत स्वर ग्रह अन्श व न्यास हैं तथा वह प्रथम प्रहर में गाया जाता है। "अनल-विधु गनिः" इस पद का अर्थ इस प्रकार किया जावेः—'अनल' याने तीसरी सीढ़ी पर चढ़ा हुआ गांधार, व 'विधु' याने एक 'गति' का निषाद।

प्रश्न—तो फिर इसे चन्द्रोदय में कहा हुआ रूप ही कहिये न? सोमनाथ का धैवत योग्य स्थान पर माना गया तो उसके लक्षण भी इन लक्षणों से मिल जावेंगे, परन्तु ठहरिये! सोमनाथ "अन्तर ग" कहता है तो यह जगह "अनल ग" से एक श्रुति नीची हो जावेगी?

उत्तर—तुम्हारी शंका ठीक है, परन्तु मैं तुम्हें यह बता चुका हूं कि 'अनिल गतिक' ग व अन्तर ग परस्पर प्रतिनिधि माने गये हैं। इस दृष्टि से देखने पर सोमनाथ व पुण्डरीक में कुछ हद तक समानता हो सकेगी। इतना ही क्यों, पुण्डरीक ने 'रागमंजरी' नामक ग्रन्थ में स्पष्ट कहा हैः—

काकल्यंतरयोः स्थाने तृतीयगतिकौ निगौ।
प्रयोगे च प्रतिनिधी क्रियेते सांप्रदायिकैः॥
स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चांतरस्वरः॥"

हमारे अधिकांश मध्यकालीन ग्रन्थकार ऐसा ही मानते हैं। रत्नाकर के 'स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र' इत्यादि वाक्यों का वे ऐसा ही अर्थ करते हैं, कोई-कोई विद्वान कहते हैं कि शार्ङ्गदेव का आशय यह नहीं था। परन्तु वह कौनसा आशय था, जब तक यह प्रसिद्ध नहीं किया जाता तब तक उनके मतभेद से तुम्हें बड़ा भारी लाभ होना सम्भव नहीं दिखाई

देता। यह कहना ग़लत नहीं है कि शार्ङ्गदेव के साधारण प्रकरण का मर्म अभी तक समाधानकारक रीति से कोई नहीं समझा पाया है। इस भाग पर हाल में ही कुछ तर्क आरम्भ हुए हैं।

प्रश्न—इसमें किस बात का स्पष्टीकरण होना चाहिए ?

उत्तर—शार्ङ्गदेव इस प्रकरण में कहता है:—

साधारणं भवेद्द्वेधा स्वरजातिविशेषणात् ।
स्वरसाधारणं तत्र चतुर्धा परिकीर्तितम् ॥
काकल्यन्तरषड्जैश्च मध्यमेन विशेषणात् ॥

इस श्लोक का वाच्यार्थ तो दिखाई देता ही है, भाषा भी बिलकुल सरल है। 'साधारण जाति' का विचार तो अब हमें चाहिये ही नहीं। साधारण स्वर चार प्रकार के बताकर यह पंडित कहता है:—

"निषादो यदि षड्जस्य श्रुतिमाद्यां समाश्रयेत् ।
ऋषभस्त्वंतिमां प्रोक्तं षड्जसाधारणं तदा ।
मध्यमस्याऽपि गपयोरेवं साधारणं मतम् ।
साधारणं मध्यमस्य मध्यमग्रामगं ध्रुवम् ॥

प्रश्न—यह वर्णन कैशिक निषाद व साधारण गांधार में लगाने योग्य है। परन्तु साधारण का उपयोग कहां व किस प्रकार कितनी मात्रा में किया जावे, यह भी शार्ङ्गदेव को स्पष्ट कहना चाहिये था न ? इस श्लोक पर टीकाकार ने भी कुछ स्पष्ट व्याख्या की होगी न ?

उत्तर—यह नहीं कहा जा सकता कि शार्ङ्गदेव ने यथायोग्य स्पष्टीकरण किया है। इसीलिये हमारे पंडित डरते-डरते भी यह होगा या वह होगा कहने के परे जा सकेंगे, यह नहीं दिखाई पड़ता। कल्लिनाथ अपनी टीका में इस प्रकार कहता है:—

"स्वरसाधारणचतुष्टयस्यापि ग्रामद्वये प्रसक्तौ विकृतत्वेऽपि स्वराणां पंचश्रुतित्वमनिष्टमिति मत्वा मध्यमसाधारणं मध्यमग्राम एव नियमयति"

इस टिप्पणी को पढ़कर पाठकों की कठिनाई दूर होगई हो, अब यह नहीं दिखाई पड़ता। यह कहना ही ठीक है कि अभी तक इस भाग का सम्पूर्ण समझदारी पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं हो पाया। जिस उद्देश्य से रत्नाकर के राग आज हम नहीं छोड़ना चाहते, उस हेतु के लिये हमें इस 'साधारण' प्रकरण पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। शार्ङ्गदेव इस प्रकार कहता है—"स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चांतरस्वरः" साथ ही वह स्वयं के अनेक रागों में इन स्वरों का प्रयोग भी करता है। परन्तु यथार्थ रहस्य इनका अभी तक कहीं पर प्रगट नहीं हो पाया। पिछले ग्रंथकारों ने इस वाक्य का कैसा अर्थ ग्रहण किया, यह तुम्हें ज्ञात ही है। शार्ङ्गदेव ने मृदु सा, मृदु म, च्युत सा, च्युत म आदि नामों का प्रयोग रागाध्याय में स्पष्ट रूप से नहीं किया, इसका कारण पाठकों को

ठीक रूप से जानना चाहिये। मैं समझता हूं कि कुछ दिन और प्रतीक्षा करने से इस विषय पर हमारे विद्वानों से थोड़ी बहुत जानकारी और मिल सकेगी, धैर्य रखो !

प्रश्न—बहुत अच्छी बात है, ऐसा ही करेंगे। अच्छा तो अब आगे चलिए ?

उत्तर—रागमाला में भैरव का वर्णन कैसा किया गया है, यह अभी तुम देख ही चुके हो। पुण्डरीक ने केवल रिषभ वर्ज्य करने को कहा है, उसे पंचम स्वर छोड़ना पसंद नहीं आया। प्रभातकाल में हिंदोल के सिवाय अन्य रागों में पंचम वर्ज्य नहीं किया जाता। प्रातःकाल के समय पंचम का महत्व कितना होता है, यह तुम्हें अनुभव से अधिक ज्ञात हो सकेगा। मैं तुम्हें यह सुझा चुका हूँ कि आते-जाते जब गायक इस स्वर पर विश्रांति लेते हैं तब कितना मजा आता है, यह देखने-सुनने की चीज है।

सङ्गीतदर्पणे:—

धैवतांशग्रहन्यासो रिपहीनत्वमागतः।
भैरवः स तु विज्ञेयो धैवतादिकमूर्छनः ॥
विकृतो धैवतो यत्र औडवः परिकीर्तितः ॥

इस पंडित दामोदर के सम्बन्ध में मैं पहिले ही बोल चुका हूँ। इसने अपने स्वराध्याय की सारी सामग्री रत्नाकर से ग्रहण की है, यह बात भी मैं तुम्हें बता चुका हूं। यह तुम्हारे लक्ष्य में आ ही गया होगा कि इस व्याख्या में इसने रे प वर्ज्य करने का निर्देश किया है। धैवत स्वर, अंश, ग्रह व न्यास बताया है और मूर्च्छना भी धैवत की बताई है। यह पाठकों को पूर्ण संतोषजनक ज्ञात नहीं होती।

प्रश्न—यहां गांधार, निषाद शुद्ध ग्रहण करने पड़ेंगे, क्योंकि इस विषय पर ग्रंथकार कुछ नहीं कहता। परन्तु इसके शुद्ध ग, नी हिंदुस्तानी सङ्गीत के कौन से स्वर होंगे, यह प्रश्न उपस्थित होगा। इतना ही नहीं, यह भी समझना पड़ेगा कि धैवत विकृत को कौनसा नाद माना जावे ?

उत्तर—तुम्हारा कथन ठीक है ! ये प्रश्न वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। मैंने प्रवास करते कमय अनेक व्यक्तियों से पूछा था कि दर्पण का शुद्ध थाट कौनसा है, परन्तु संतोषजनक उत्तर कहीं पर प्राप्त नहीं हुआ। दक्षिण के पंडितों ने कहा कि इसके स्वराध्याय की स्वर-रचना अक्षरशः हमारी है, अतः शुद्ध थाट भी हमारा होगा। उत्तर के विद्वानों ने कहा कि सारे राग हमारे हैं, अतः शुद्ध स्वर भी हमारे होंगे। क्या यह एक मनोरञ्जक स्थिति नहीं है ?

प्रश्न—परन्तु उत्तर के स्वर कौन से, काफी थाट के या बिलावल थाट के ?

उत्तर—यह प्रश्न भी ठीक ही है। दर्पण का जो थाट निश्चित होगा वही शार्ङ्गदेव का होना चाहिये, क्योंकि दामोदर पंडित ने स्वराध्याय रत्नाकर का ही स्वीकार किया है। अनेक विद्वान भिन्न-भिन्न तर्क लड़ाते रहते हैं। ग्वालियर के एक पंडित ने मुझे बताया कि उसके गुरु ने उसे एक ध्रुपद भैरव का बताया जो बिलकुल मालकोष जैसा था। शायद उसके गुरु ने रे, प वर्ज्य करने का विधान पढ़कर ऐसी एकाध रचना करली होगी।

प्रश्न—शायद यह शुद्ध भैरव ही होगा। परन्तु क्या रागमाला में शुद्ध भैरव का स्वरूप इस प्रकार नहीं बताया है?

उत्तर—सत्य है! तुमने सही तर्क किया। पंडित दामोदर ने इस 'शुद्ध भैरव' नाम का उपयोग नहीं किया। उसने अपना ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी में लिखा है, फिर भी रागों में ग्राम-मूर्छना का झंझट है ही। उसके राग उसी के स्वरों से हल करने चाहिये। अब उसका विकृत धैवत कौनसा है? यह भी देख लो। स्वराध्याय में वह कहता है—"धैवतो मध्यमग्रामे विकृतः स्यात् चतुःश्रुतिः" यह वाक्य उसने रत्नाकर का ही ले लिया है। यदि धैवत केवल मध्यम ग्राम में विकृत होता है तो क्या भैरव मध्यम-ग्राम का राग होगा? प्रत्येक यह प्रश्न कर सकेगा। रत्नाकर में यद्यपि रि, प, स्वरों का वर्ज्य होना बताया है, परन्तु मूर्छना उत्तरायता बताई है, जो षड्ज ग्राम की है। सारांश यह है कि यह व्याख्या देखकर पाठक अवश्य उलझन में पड़ जावेगा। देशी भाषा के ग्रंथकार तो ऐसे विषयों पर प्रकाश डालते ही नहीं। मैं समझता हूं कि उन्हें ऐसी बातों पर लिखना संभव भी नहीं है। भैरव की व्याख्या हनुमत मत्त की है, ऐसा ग्रन्थकार कहता है। परन्तु इससे क्या स्पष्टता हो सकेगी? दक्षिण का शुद्ध थाट लेकर यदि राग-रचना करें तो भी तुम्हारा इच्छित रूप प्राप्त नहीं होता और उत्तर की ओर का थाट भी अच्छा सा नहीं लग पाता। सारांश में यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि अभी तक किसी ने दर्पण में वर्णित भैरव के लक्षणों की उत्तम रूप से स्पष्टता नहीं की। 'राजा टागोर' द्वारा प्रकाशित दर्पण की प्रति में भैरव पर इस प्रकार टीका प्राप्त होती है। देखो:—

"रिपहीनोऽथ मांतगः। औडवः पंचभिः स्वरैः गीतः। सम्पूर्णोऽयं राग इति सङ्गीतनारायणसोमेश्वरयोर्मतम्। ऋषभमात्रवर्जितोऽयमिति सङ्गीत-निर्णयकारः, यदुक्तं 'भिन्नषड्जसमुत्पन्नो भैरवोऽपि रिवर्जितः' इति।"

प्रश्न—परन्तु बिना यह समझे कि शुद्ध स्वर कौन से हैं, यह जानकारी किस उपयोग की है?

उत्तर--तुम ठीक समझ गये। यह तो मुख्य दोष है। अस्तु, दामोदर ने आगे भैरव का वर्णन इस प्रकार किया है:—

गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः।
सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः॥
भास्वत्त्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी।
शुभ्रांबरो जयति भैरव आदिरागः॥

यहां भैरव को 'आदि राग' कहा गया है। सारांश में मैं समझता हूँ कि यदि तुमने किसी से भैरव का स्वरूप दर्पण के लक्षणों से सिद्ध करने को कहा तो संतोषजनक स्पष्टी-करण मिलना कठिन होगा। मजा यह है कि जहां देखो वहां दर्पण यानी एक प्रधान आधार ग्रंथ! 'रागमाला' में भैरव को शुद्ध भैरव का पुत्र माना है। इस पिता-पुत्र के सम्बन्ध में हमें आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यह दिखाई देता है कि धीरे-धीरे पुण्डरीक आदि को यह बोध होने लगा होगा कि जन्य-जनक का सम्बन्ध कुछ अधिक व्यवस्थित आधार रखता है।

प्रश्न—यह कैसे ? शुद्ध भैरव का थाट तो उसने हिंदुस्थानी भैरवी जैसा माना है। उसका पुत्र तीव्र गांधार कैसे ग्रहण कर लेगा ?

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न ठीक है, परन्तु सुनो, मैं बताता हूँ। शुद्ध भैरव की पांच भार्याऐं पुण्डरीक ने बताई हैं। वे इस प्रकार हैं—१-धनाश्री २-सैंधवी ३-मारवी ४-भैरवी ५-आसावरी। आगे पांच पुत्र माने हैं :—१-भैरव २-शुद्ध ललित ३-पंचम ४-परज ५-बङ्गाल। इस नवीन रचना की ओर देखने से यह ज्ञात होने लगता है कि हम अँधेरे से कुछ प्रकाश की ओर आ गये हैं। इन पुत्रों के स्वर अधिकांश में मिलते हुए हैं, यह तुम्हें आगे दिखाई पड़ेगा। भैरव की जो पांच रागनियां कही गई हैं, इनमें आसावरी व मारवी, इन दोनों में तीव्र गांधार प्रयुक्त हुआ है व रि, ध कोमल माने हैं। तब यदि पुत्र रागों में तीव्र गांधार दिखाई दिया तो मान लिया जावेगा। किंतु इतने मात्र से ही मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं कि जब इस प्रकार का सम्बन्ध प्रत्यक्ष है तब ग्रन्थों में वर्णित राग-रागनी-परिवार का विधान यथा योग्य है। इस विधान का औचित्य अभी उत्तम रूप से सिद्ध होना बाकी है। आगे-आगे ग्रन्थकार किन-किन बातों की ओर ध्यान देने लगे थे, वे निरर्थक बातें तुम्हें बतादी गई हैं।

प्रश्न—शायद प्राचीन राग-वर्गीकरण भी पुण्डरीक जैसी विचारधारा पर रचे गये होंगे ?

उत्तर—शायद होंगे ! परन्तु उन्हें संतोषजनक रीति से किसी को सिद्ध तो करना चाहिये न ? अब दर्पण के भैरव को ही लो। यह जनक राग है, जब इसका स्वरूप ही निश्चित नहीं तब इसकी भार्या व पुत्रों के रूप कैसे व्यवस्थित हो सकेंगे ? परन्तु यह विषय हम स्थगित ही रखें। शायद भविष्य में हमें और किसी प्राचीन ग्रंथ का पता लग जावे तथा विवादग्रस्त बातों की स्पष्टता भी हो जावे।

प्रश्न—यहां पर एक प्रश्न और भी उपस्थित होता है। पहिले आपने यह कहा ही है कि 'रत्नाकर' में भैरव राग भिन्नषड्ज से उत्पन्न माना गया है। हम सोचते हैं कि यदि रत्नाकर के उपरांत लिखे हुए ग्रन्थों में भिन्नषड्ज का स्वर-स्वरूप लिखा हुआ हो तो कुछ साधार स्पष्टीकरण मिल सकता है। क्या नहीं मिलेगा ?

उत्तर—ऐसी बात नहीं है कि शार्ङ्गदेव के पश्चात होने वाले सभी ग्रन्थकर्ताओं ने उस राग को बताया हो। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में भिन्नषड्ज के स्वर इस प्रकार कहे गये हैं। सा, कोमल री, कोमल ग, शुद्ध म, शुद्ध प, शुद्ध ध (कोमल ध) व तीव्र नि। उसके नियत ७२ थाटों में इस थाट का स्थान नवां है। इसमें निषाद (तीव्र) छोड़कर शेष अपने भैरवी थाट के स्वर ही समझलो। 'सङ्गीतसारामृत' में भिन्नषड्ज को अपने भैरवी थाट के ही सभी स्वर दिये गये हैं और उसका थाट 'भूपाल' कहा गया है। 'पुण्डरीक' तो भिन्नषड्ज का वर्णन ही नहीं करता। यह तुम्हें ज्ञात ही है कि शार्ङ्गदेव ने 'अन्तर ग' व 'काकली नी' बताये हैं। अब भावभट्ट क्या कहता है, वह भी सुना देता हूं। यह मैं प्रथम ही कह चुका हूं कि इसका शुद्धस्वर-थाट दक्षिण का ही था। यह पण्डित भी हमारे जैसा एक संग्रहकर्त्ता था। उसने अपने ग्रंथों में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों

के मत संग्रहीत कर दिये हैं। यह भी 'रत्नाकर' को समझ चुका था, यह नहीं दिखाई पड़ता' परन्तु इसके जैसे दूसरे कई निकलेंगे। भावभट्ट के तीन ग्रंथ कौन-कौन से हैं, यह तुम जानते ही हो। उसने अपने "अनूपांकुश" में कहा है:—

शुद्धभैरवहिंदोलौ देशकारस्ततः परम् ।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणेतिषट् ॥ १ ॥
हिंदोलो दीपकश्चैव भैरवो मालकौशिकः ।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाः स्मृताः ॥ २ ॥

प्रश्न—इसमें यह प्रथम श्लोक तो इसने पुण्डरीक का ही लिख मारा है। ठीक है न?

उत्तर—मुझे भी ऐसा ही दिखाई पड़ता है; क्योंकि उसने प्रथम जिन श्लोकों में रागों की भार्या व पुत्र बताये हैं, वे भी पुण्डरीक के ही हैं।

"धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मालसी तथा । आसावरी च पंचस्यु-भैरवस्य वरांगनाः ।

आगे पुत्र इस प्रकार बताये हैं:—

"भैरवो ललितश्चैव परजः पंचमस्तथा । बङ्गालः पंच संप्रोक्ताः भैरवस्य सुता इमे ।"

प्रश्न—तो फिर शंका ही नहीं रही! यह भाग बिलकुल 'रागमाला' का ही है। ठीक है, पर क्या इसके भैरव का स्वरूप भी रागमाला का ही है?

उत्तर—नहीं! 'भैरव' का वर्णन करते हुए इसने इस प्रकार कहा है:—

"तत्र प्रथमं भैरवरागालापः । स त्रिधा, औडुवषाडवसम्पूर्णभेदात् ॥ औडुवा षाडवा पूर्णा भैरवे भांति मूर्छनाः । अथोदाहरणं वच्मि यथोक्तं पूर्वसूरिभिः ॥

ऐसा कहते हुए भावभट्ट तत्काल 'पारिजात' में दिए हुए आलाप उद्धृत कर देता है। यह पूरा होने पर फिर स्वतः के तैयार किए हुए आलाप लिखता है। अन्त में सोमनाथ का बताया हुआ स्वरस्वरूप लिखदेता है।

प्रश्न—इसकी पद्धति तो सम्पूर्ण दक्षिण की ही होगी?

उत्तर—हां, उसकी गांधार-निषाद सम्बन्धी परिभाषा बताता हूं। सुनोः—

यदा गांधारसंज्ञोऽसौ श्रुतिद्वयं समाश्रयेत् ।
तदूर्ध्वमध्यमस्यैव तदा स्यात्सांतराभिधः ॥
यदा निषादसंज्ञकः श्रुतिद्वयं समाश्रयेत् ।
तदूर्ध्वसस्य काकली तदाऽसौ कथ्यते बुधैः ॥

प्रश्न—बसबस! यह परिभाषा दक्षिण की ही है। ग्रन्थकार ने स्वरसमुदाय कौन से बताये हैं?

उत्तर—वे इस प्रकार हैं। सर्व प्रथम औडुव अर्थात् रे, प वर्ज्य कर इस तरह के स्वरसमुदाय दिये हैं:—"धनिसा, सा, सानिध, निसा, धनिसा, गमग, सानिध, साध़निनिध, मध, निसा, ग, मग, सानिधनिसा, गमधनिसां, निसां, सांनिध,निसांगंमंगंसां, सांनिध, निध, धम, धनिसां, निधम, गमग, सा।

इस प्रकार के सैकड़ों स्वरसमुदाय तुम बना सकते हो। यह औडुव स्वरूप हुआ। दूसरे स्वरूप में पंचम स्वर लेकर केवल ऋषभ को वर्ज्य किया है। तीसरे स्वरूप में सम्पूर्ण स्वर लिये हैं।

प्रश्न—इसकी विचारधारा हमारे ध्यान में आगई। क्या भावभट्ट ने अपने ग्रन्थ रत्नाकर व अनूप विलास में भैरव के सम्बन्ध में कुछ और जानकारी दी है? परन्तु ठहरिए, भावभट्ट की पद्धति यदि संक्षेप में बताने योग्य हो तो हमारी प्रार्थना है कि सम्पूर्ण पद्धति ही बता दीजिए। शुद्ध आधार पर चलना ही उचित है।

उत्तर—मैं भी यह बताने वाला ही था। आगे भी हमें भिन्न-भिन्न स्थलों पर उसका मत देखने की आवश्यकता पड़ेगी, अतः उसकी पद्धति संक्षेप में जान लेना अनुचित नहीं है। तो फिर सुनो! 'अनूपविलास' की श्रुति स्वर-रचना सभी अन्य ग्रंथों के अनुसार है। जैसे अन्य ग्रंथकारों ने मंद्र, मध्य व तार नाद स्थान तथा प्रत्येक में २२ नाद माने हैं; उसी प्रकार भावभट्ट ने किया है। शुद्ध स्वर स्थान ४, ७, ९, १३, १७, २०, २२, श्रुति पर माने हैं। आगे वह कहता है:—

"प्रतिस्थानं स्वराः सप्त निवसंति यथाक्रमम्। चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्च चतुःश्रुतिः। चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्च यथाक्रमम्॥ आदौ श्रुतौ चतुर्थ्यांतु स्वरः षड्जोऽधितिष्ठति। सप्तम्यामृषभस्तद्वद्गांधारस्य स्थितिः पुनः॥"

इस सम्बन्ध में तुम्हें और कुछ स्पष्टीकरण चाहिए क्या?

प्रश्न—यह सब हमारे ध्यान में आगया, कुछ नहीं चाहिए।

उत्तर—आगे यह ग्रन्थकार कहता है:—

"अथलघ्वक्षरमानेनानेन परिकीर्तितः।" तथा इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—"लघ्वक्षरोच्चारणमात्रो निमेषमात्रो वा कालः श्रुतिः" श्रुति की यह व्याख्या—हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। फिर श्रुति के दो वर्ग बताए हैं, १—गात्रजा २—यंत्रजा। तीव्रा कुमुद्वती, मंदा, आदि-आदि गात्रज (शरीरोत्पन्न) श्रुतियां कही हैं। यंत्रज श्रुतियों के नाम १-निष्कला २-गूढ़ा, ३-सकला ४-मधुरा आदि बताए है। इन्हें अभी कह सुनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनका तुम्हारे लिये अधिक उपयोग दिखाई नहीं पड़ता। आगे ग्रंथकार कहता है कि इन बाईस नादों में से कुछ नाद प्रत्येक बार पसन्द कर उन्हें स्वर मानकर गीत गाये जाते हैं। यह समझ लेने योग्य बात है। इसने

स्वरों की व्याख्या रत्नाकर से उद्धृत की है तथा इस पर की हुई कल्लिनाथ की टीका का स्वर श्रुति-भेद-दर्शक शब्द पांडित्य भी ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार "श्रृंगारहार" ग्रंथ का एक उदाहरण इस प्रकार लेकर रख दिया है:—

श्रुतिभ्यः स्युः स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसंभवः।
ग्रामाभ्यां जातयो जाता रागा जातिसमुद्भवाः॥
यत्किंचिद्वाङ्मयं लोके शब्दो वा कृत्रिमं भवेत्।
सर्वं सप्तस्वरैर्व्याप्तं विष्णुनैव जगत्त्रयम्॥

प्रश्न—इस प्रकार की बातें गम्भीर तो अवश्य हैं, परन्तु न मालूम ये प्रत्यक्ष में उपयोगी कितनी होंगी? ग्रन्थकार को ऐसी बातें एकत्र करने की प्रबल लालसा रही होगी?

उत्तर—यह तो ठीक ही है, परंतु कहीं-कहीं तो इसकी अपेक्षा और भी विलक्षण बातें संग्रहीत करदी गई हैं। परन्तु हम इसको क्यों दोष दें? हमारे देशी ग्रन्थकार भी इस मामले में पीछे नहीं हैं, उनके इतिहास को ही देखो:—

षण्णां स्वराणां जनकः षड्भिर्वा जन्यते स्वरैः।
षड्भ्यो वा जायतेऽगेभ्यः षड्ज इत्यभिधीयते॥
यस्मिन् षड्जादयो जातास्तस्मात्षड्ज इतीरितः।
कंठोरस्तालुरसनानासाशीर्षाभिधेषु च॥
षट्सु स्थानेषु जातत्वात्षड्जः स्यात्प्रथमस्वरः।
कंठात्संजायते षड्जो रिषभो हृदयोद्भवः॥
गांधारः स्यात्तु नासिक्यो मध्यमो नाभिसंभवः।
उरसः शिरसः कंठात् संजातः पंचमः स्वरः॥
ललाटे धैवतं विद्यान्निषादः सर्वसंधिजः॥
सप्तस्वराणामुत्पत्तिः शरीरे परिकीर्तिता।
नादात्मकानामेतेषां रूपवर्णादि वर्ण्यते।
पद्ममुखः स्याच्चतुर्हस्तः पाणिभ्यामुत्पले दधत्॥
वीणाशोभिकरद्वंद्वं स्फुरत्ताम्ररसप्रभः।
कुलं सुरवंजं जंबुद्वीपं ब्रह्मा च दैवतम्॥
श्रृंगारके रसे ज्ञेयो मुख्यगाता तु पावकः।
मयूरो वाहनं त्वस्य स्वरानुकरणात्पुनः॥

अब सभी स्वरों का सिलसिलेवार वर्णन मैं नहीं सुनाऊँगा। नमूना दिखा दिया है। कहां यह इतिहास और कहां पाश्चात्यों की कल्पना ? बस कह दिया कि ध से छटवीं श्रुति की ध्वनि षड्ज होगी। इसका समाधान होना कैसा ? अस्तु—

सम्पूर्ण स्वरों के वर्णन के सिवाय जो बातें अड़चन में डालने वाली हैं वे अब तुम्हें सरलता से मिल सकती हैं।

प्रश्न—किस प्रकार और कहां से ? भावभट्ट के ग्रन्थ अभी तक नहीं छापे गए हैं न ?

उत्तर—हाँ, वे अभी तक किसी ने प्रकाशित नहीं किए, परन्तु अब सङ्गीतसार आदि ग्रन्थ छप गए हैं, उनमें भी यह जानकारी मिल सकेगी। यह प्रश्न तुम्हारा है ही नहीं कि प्रतापसिंह ने यह सच अपने ग्रन्थ में क्यों शामिल किया ? इसमें कोई संदेह नहीं कि यह भी एक बहुत परिश्रमी विद्वान हो गया है। ऐसे खोजी लेखक इस समय में बहुत थोड़े प्राप्त होंगे।

सङ्गीतसार में बहुत सी बातें उपयोगी हैं। रत्नाकर का स्पष्टीकरण करने वाले को इस ग्रन्थ से अवश्य मदद मिलेगी। इसके कुछ विधान हमारे वर्तमान शिक्षार्थियों के लिये आश्चर्यजनक हो सकते हैं, परन्तु सङ्गीत परिवर्तनशील है। ठीक है न ?

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—उदाहरणार्थ मुख्य छहों रागों के सच्चे स्वर लगने की परीक्षा का विषय ही लो।

"अथ भैरव राग की परीक्षा लिख्यते। घाणी में तील डार वामें लाठी मेलके बलध जोते नहीं। और भैरव राग गाइये जो वाके गायबेसें घाणी की लाठी आपही सों फिरने लगे। तब भैरव सांचो जानिये इ०।"

तुम पूछोगे कि किसी ने ऐसा राग गाया भी होगा ? परन्तु इस शंका को प्रथम ही ग्रंथकार ने स्पष्ट कर दिया है, देखो:—

'या रागतें मुक्ति की इच्छा करके श्री शिवजी हनुमानजी नारदजी आदि देवर्षी। भरतादि ब्रह्मर्षी। शारंगदेवादिराजर्षी। सङ्गीतशास्त्र के जानिवे-वार नें गायो है।"

अब जरा बड़े लोगों की नम्रता भी देखो ? राजर्षि शाङ्गदेव ने अपने रत्नाकर में इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं लिखा कि इस प्रकार मैंने यह राग गया है या भैरव की अमुक रीति से परीक्षा हो सकती है। परन्तु क्या ऐसी बातें छुपी रह सकती हैं ? सङ्गीतसार ग्रन्थ तुम अवश्य पढ़ना। उसमें तुम्हें अपने प्रचलित सङ्गीत सम्बन्धी कुछ उपयोगी बातें भी मिल जायेंगी। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है और इस समय मैं इसके विषय में कुछ अधिक नहीं बताऊँगा। ग्रंथकार ने इसमें एक बात बड़ी दूरदर्शिता से सिद्ध कर रखी है, उसे देखकर सभी सङ्गीत-रसिकों को बहुत आश्चर्य हो सकता है।

प्रश्न—वह कौन सी बात है ?

उत्तर—ग्रन्थकार ने समस्त नवीन व प्राचीन रागों का सम्बन्ध शिवजी से संबंधित कर दिया है। नहीं तो हुसेनी, बहादुरी, दरबारी, नायकी, पीलू, जौनपुरी, लाचारी, काफी, सूरदासी, मियांकीमल्लार, रामदासी, फरोदस्त आदि राग बिना इष्ट देवता, शस्त्रास्त्र, रंगरूप, वाहन व क्रीड़ा साधन के निराश्रित जैसे भटकते फिरते होंगे? इस कार्य को सिद्ध करने में इसे बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा, क्योंकि इनके लिये संस्कृत ग्रन्थों का आधार नहीं मिल सकता। अभी हम भावभट्ट की ही प्रशंसा कर रहे थे, परन्तु राधागोविंद ने तो उससे ऊँचे दर्जे की कल्पनायें की हैं। यह सभी स्वीकार करेंगे। मैं जानता हूं कि इस सामग्री से तुम्हारे जैसे पाश्चात्य ग्रंथों के अध्येता, भावुकता-शून्य-शिक्षार्थियों को विशेष कौतूहल नहीं हो सकता, परन्तु उसमें ग्रंथकार क्या कर सकता है? इन बातों का महत्व तत्कालीन राजाओं के दरबारों में कितना होगा, इसकी कल्पना ही कर लेनी चाहिये। साथ ही उस जमाने में संसार में पाप कम होगा, लोग भोले-भाले व गायक चतुर होंगे, राजा दयालु होंगे। ऐसी परिस्थिति में भैरव गाने से घानी फिरना, 'मालकोष' से अँगीठी सुलगाना, 'हिण्डोल' से झूला हिलना, 'दीपक' से दिये जलना, 'मेघ' से पानी बरसना, 'श्री' से मुरदा खड़ा होना, कैसे सम्भव नहीं होगा? यह सभी विचार कर सकते हैं। हां, यह सत्य है कि स्वर और राग के रंग, रूप, वाहन आदि के वर्णन अभी भी गायक लोगों के उपयोग में आते रहते हैं। मुझे स्मरण है कि कुछ दिनों पूर्व एक खां साहब ने मेरे पास से इस प्रकार के विवरण वाले श्लोक मांगे थे।

प्रश्न—किस लिये?

उत्तर—खां साहब कहने लगे कि पण्डित जी! ऐसे 'श्लोक' हमें संग्रहीत करना आवश्यक होता है। किसी-किसी महफिल में कोई सिरफिरा गायक अपने काका, मामा व वालिद की बड़ाई करते हुए चाहे जैसी हांकने लग जावे तो उससे इस प्रकार का एकाध प्रश्न किया जा सकता है। "भाई! तुम्हारी ये सब बकवाद रहने दो, पहले ये तो बतावो कि धैवत सुर की जड़ कहां है, उसका देवता कौन, उसके हाथ में क्या है, वो कौनसे जानवर पर बैठा है?"

यह कथन सुनकर मुझे उसकी समझ पर दया उत्पन्न होगई और मैंने वे श्लोक उसे नकल करा दिये।

प्रश्न—क्या ये लोग आपस में ऐसे प्रश्न पूछते हैं? और क्या ये वर्णन इसीलिये ये लोग चाहते हैं?

उत्तर—हां! नहीं तो क्या, तुम यह समझते हो कि वे इन्हें प्राप्त कर राग-मूर्ति की उपासना करते होंगे! हरे! हरे! यह बात बिलकुल नहीं है। मैंने तो सुना है कि एक बार एक गायक ने दूसरे से तड़ाक से यह प्रश्न किया कि "खां साहब! जब महादेव जी के मुख से भैरों राग पैदा हुआ, तब ब्रह्मा जी का मूँ किस तरफ था?"

प्रश्न—धन्य है बाबा! अपने देवताओं का इन्हें बहुत अभिमान दिखाई पड़ता है?

उत्तर—सङ्गीत व्यवसायी लोगों में तो करीब-करीब ऐसा दिखाई पड़ता ही है। अरे हां! बात पर से बात याद आ गई। परसों मेरा मुन्शी एक प्रसिद्ध व प्राचीन उर्दू

ग्रंथ में से कल्लिनाथ मत की उत्पत्ति का वृतान्त पढ़ रहा था। उसमें बताया हुआ अभूतपूर्व वर्णन मुझे आश्चर्यजनक ज्ञात हुआ और मुझे बड़ा मजा आया।

प्रश्न—क्यों भला, उसमें क्या लिखा था ?

उत्तर—मैंने उतना भाग नकल कर लिया है, वही मैं तुम्हें पढ़कर सुना देता हूं। ग्रन्थकार ने कल्लिनाथ को 'कृष्ण' समझकर, इसी समझ के आधार पर उसने अनुमान लगाया है, ऐसा दिखाई देता है।

"कृष्ण कनैया ब्रिजबासी सें हैं, के वो एक देवता कौमे हिनूद में गुजरा है, के वो रोज गेंद बिलावर लबेदरया जमना हमरा तिफ्लां हमसर के खेल रहा था के कजारा गेंद उसकी जमना में जा पड़ी, उस गेंद को मानी काना कृष्ण कन्हैया फोरन जमना में कूद पड़ा, और तह दर्या में जा लगा और वहां कजारा एक सांप हजार फनियां बैठा था। निहायत बड़ा मिस्ल अशद् है के वो बादशाह सांपों का था और अवाम उसे राजावासट कहते थे। गरज के जब कन्हैया कूदा तो उस सांप हजार फने के एक फन पर जा बैठा। उसने इनको फन मारने चाहा, ये उछल कर उसके दूसरे फन पर जा बैठा और जब उसने वो फन उठाया तो ये उछलकर तीसरे फन पर जा बैठा। गरज के कान्हा देर तक एक फन सें दूसरे फन पर उछल कूद बैठता रहा। उसमें सें एक तर्हे का नाजवा अन्दाज का निर्त पैदा होता रहा। आखिर अलामर काना के हाथ एक रस्सी का टुकड़ा आ गया। उसने उसी रस्सी सें उस नाग की नाक बांधकर और उसके फन पर सवार होकर पानी पर उभरा। उस वख्त हालत खुशी में के रस्सी को बांधकर अपनी गिरफ्त में कर लिया था गया। जब सें उस वजे का गाना जारी हुवा और नाम उसका कल्लिनाथ मत मशहूर हुवा और वे जो एक फन से दूसरे फन पर कुवड़ा हो-हो कर उछल कूद कर गया था उसका एक बजे का निर्त जारी हुवा। के उसको सिफ्त किताब हाजा में दर्बाब निर्त अध्याय के मुनदर्ज है। पस, मालूम हुवा की कल्लिनाथ मत में मिस्ल रासधारियों के गाना-बजाना और नाचना मन्तजमन है। के वो इसी मत की वजा बरतते हैं और इस मत में भी छः राग मिस्ल सोमेशर मत के हैं और फी राग छः-छः रागनियां हैं, लेकिन अकसर रागनियां इसकी और मतों के बरखिलाफ हैं और फी राग आठ-आठ पुत्र हैं × × और बाजे हो के रुत और बख्त इस मत के राग और रागिनी और पुत्र सोमेशर मत के हैं।"

प्रश्न—इसमें कल्लिनाथ मत के राग व रागनी कौन से बताये गये हैं ?

उत्तर—तुम चाहो तो बता देता हूँ, आगे मैं भिन्न-भिन्न मत बताने वाला ही हूं।

(१) श्रीराग—१ गौरी, २ कोलाहल, ३ धवला, ४ वरोराजी, ५ मालकोंस, ६ देवगांधार।

(२) पंचम— १ त्रिवेणी, २ हस्तंतरेतहा, ३ अहीरी, ४ कोकभ, ५ वेरागी, ६ आसावरी।

(३) भैरव—१ भैरवी, २ गुजरी, ३ बिलावली, ४ बिहाग, ५ कर्नाट, ६ कानडा।

(४) मेघ—१ बङ्गाली, २ मधुरा, ३ कामोद, ४ धनाश्री, ५ देवतीर्थी, ६ दिवाली।

(५) नटनारायण—१ तरवंकी, २ तिलङ्गी, ३ पूर्वी, ४ गांधारी, ५ रामा, ६ सिन्धमल्लारी ।

(६) वसन्त—१ अन्धाली, २ गुणकली, ३ पटमन्जरी ४ गौंडगिरी, ५ धांकी, ६ देवसाग ।

इसी ग्रन्थ में भरत के सङ्गीत के विषय में इस प्रकार की टिप्पणी है:—

"भरत एक शक्स बड़ा पंडित और ऋषि यानी फकीर कामिल गुजरा है । उसके मत में सीधा-सीधा गाना मिस्ल भजन और गज़ल वगैरे के गाया जाता है । जैसा कि भरत मौसूफ देवताओं को सिफ्त और सना में गाया था, तबसें सीधा गाने का रिवाज निकला और इस मत में छः राग हैं और फी राग पांच-पांच रागनियां और आठ-आठ पुत्र और उनकी आठ-आठ भार्जा माफक जनोपिस्र यानी बहुओं की है और वाजे हो के वे भार्जा और किसी मत में नहीं हैं ।"

यह मैं बता चुका हूँ कि आजकल राग, रागिनी, पुत्र, पौत्र आदि के वर्णन प्रत्यक्ष सङ्गीत के लिये अधिक उपयोगी नहीं हैं । कभी-कभी मजा यह हो जाता है कि अपने लेखकों, कभी-कभी संस्कृत लेखकों के गपोड़े मुसलमान ग्रन्थकार अपने उर्दू ग्रन्थों में उड़ा कर लिख मारते हैं व ऐसा करते हुए अपने पास का भी कुछ मिला देते हैं और कुछ समय पश्चात् अपने देशी भाषा के ग्रन्थकार बड़े ठाठ से उन रूपान्तर किये हुए गपोड़ों को अपने ग्रन्थों में संग्रहीत कर लेते हैं। ऐसे लेखकों में बहुत विद्या बुद्धि तो होती ही नहीं, परन्तु जहां थोड़ी बहुत वह प्राप्त भी हो, वहां प्रत्यक्ष सङ्गीत का ज्ञान उच्च स्तर का नहीं होता। मेरा यह कथन नहीं है कि सभी देशी भाषा के लेखक ऐसे ही होते हैं। इनमें कोई-कोई बहुत अच्छे मिलते हैं व उनका मत भी समाज में आदर पाता है। कौन भला व कौन बुरा, यह निश्चित करने का कार्य हमारा नहीं। अच्छा, अब हम फिर भावभट्ट की ओर चलें।

प्रश्न—जी हां, 'अनूप विलास' में उसने विकृत स्वरों का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—कहता हूं, सुनो:—

विकृतानां स्वराणां तु लक्षणं प्रोच्यतेऽधुना ।
येषां शुद्धत्वहानिः स्यात्ते स्वरा विकृता मताः ॥
हानिस्तु द्विविधा प्रोक्ता तत्रांतर्बाह्यगोचरा ।
बाह्यगोचरतां याति विकृतत्वं द्विधा ततः ॥
स्वभावात्तदभावात्तु भवत्येव न संशयः ।
रत्नाकरे द्वादशैव, तिथिसंख्याः परे ततः ॥
द्वाविंशतिर्मतंगोक्तास्तेऽहोबलेन कीर्तिताः ॥

यह कहकर भावभट्ट शार्ङ्गदेव के बारह विकृत स्वर बताता है। ये स्वर तुम्हें ज्ञात ही हैं, अतः मैं दुबारा नहीं सुना रहा हूँ। शार्ङ्गदेव के बारह विकृत स्वर कहां व कैसे उपयोग में आये होंगे, इस बात की जानकारी भावभट्ट को हो गई हो, ऐसा बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता ?

प्रश्न—तो फिर रत्नाकर की मूर्छना, जाति, आदि बातें भी उसकी समझ में न आई होंगी ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। ग्राम के सम्बन्ध में भावभट्ट इस प्रकार कहता है:—

ग्रामस्वरो मेरुसंस्थो ध्रुवत्वात्स्यात्कथं च्युतः ।
च्युतस्यापि कथं तस्याच्युतत्वं परिकीर्तितम् ॥
उच्यते भावभट्टेन ग्रामस्वरच्युतिर्नहि ।
षड्जग्रामे मध्यमस्य षड्जस्यापि च मध्यमे ॥
भिन्नग्रामे च्युतिरस्तु स्वग्रामे न कदाचन ।
यथा भावोद्भवस्यैव भवितुं तत्र नार्हति ॥
षण्णां स्वराणां षड्जेऽस्त्याविर्भावो तु मुनीरितः ।
भेदद्वयं मूर्छनायां तस्माद्भवितुमर्हति ॥

हमें भावभट्ट की आलोचना करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इस प्रमाण को देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि वह रत्नाकर के ग्राम अच्छी तरह समझ गया था ? यह दिखाई देता है कि प्राचीन सङ्गीत में 'ग्राम' का महत्व कितना व कहां-कहां है, इस सम्बन्ध में बड़ा ही अज्ञान फैला हुआ है। एक बार प्रवास करते समय मुझे एक संस्कृतज्ञ सङ्गीत-पंडित से बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। यह सुनकर कि उसके पास 'रत्नाकर' पढ़ने के लिए शिक्षार्थी जाया करते हैं, मैं भी गया था। ग्रामों की चर्चा चलने पर उसने कहा:—

"पंडित जी ! तुम ऐसे विषयों पर खाली फांकें मार रहे हो, सच पूछो तो अपने मृत्युलोक के वास्ते एक खरजग्राम ही रक्खा है। मध्यमग्राम पाताल में गाया जाता है और गांधारग्राम देवलोक में प्रचलित है। शार्ङ्गदेव मध्यमग्राम के वास्ते कुछ थोड़ा लिखता है परन्तु वह यथार्थ नहीं है। ग्रामों का भेद समजने वाला मैंने एक भी पुरुष अभी तक देखा नहीं जो मिले तो उसका मैं शागीर्द हो जाऊँ, और जो वो मांगे सो देऊँ"

मैंने फिर आगे उससे बहस ही नहीं की।

प्रश्न—अपने देशी भाषा के लेखकों में से किसी ने ग्राम के सम्बन्ध में कुछ खुलासा नहीं किया ?

उत्तर—अभी तक मुझे तो ऐसा किया हुआ नहीं दिखाई दिया। केवल टेढ़े-मेढ़े तर्क, कहीं-कहीं अवश्य दिखाई पड़ते हैं। किसी ने तो अब दोनों ग्रामों से उकताकर नवीन "निषाद" ग्राम उत्पन्न कर दिया है। शायद गांधार ग्राम के देवलोक प्रस्थान

करने पर उसका संवादी पसन्द किया गया होगा ! अस्तु, अब भावभट्ट के विषय में आगे बताता हूं। रत्नाकर में बारह विकृत स्वर, सोमनाथ के रागविबोध में पंद्रह, पारिजात में बाईस; इस प्रकार बताते हुए फिर भावभट्ट कहता है:—

"चत्वारिंशत्तु ते प्रोक्ता द्व्यधिका भावसंमताः।"

प्रश्न—ऐं यह क्या ४२ विकृत ? और इनका उपयोग कहां पर व कैसे होगा ?

उत्तर—तुम व्यर्थ ही घबरा गये। भावभट्ट की कुल श्रुतियां बाईस ही हैं, इसलिए यह न समझना चाहिये कि इतनी सारी भिन्न-भिन्न ध्वनियां एक सप्तक में आने वाली हैं। भावभट्ट ने यह कुछ भी नहीं बताया कि ये बयालीस ध्वनियां क्यों चाहिये ? उसने सोचा होगा कि मैं अहोबल से बढ़कर कठिन कार्य नियत कर दूँ। हमारे कुछ संस्कृत ग्रंथकारों में ऐसे आडम्बर बढ़ाने की लालसा सचमुच दिखाई पड़ती है। राधागोविंदसङ्गीतसार में ये सारे ४२ विकृत प्रामाणिक रूप से उद्धृत किए हुए दिखाई देंगे। इतना ही नहीं, अपितु इन विकृतों का समावेश बाईस श्रुतियों में ही कर दिखाया है !

प्रश्न—परन्तु उसने इस सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट किया है कि यह सब स्वर भिन्न-भिन्न रागों में किस प्रकार और कहां-कहां पर उपयोग में लिये जायेंगे ?

उत्तर—इस ग्रन्थ की मैं आलोचना करना नहीं चाहता। अब इस ग्रंथ का रागाध्याय प्रकाशित हो ही गया है, उसे तुम पढ़कर देख ही लोगे और इसलिए मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना पसन्द नहीं करता। भावभट्ट के ग्रंथ में एक मजेदार बात तुम्हें यह दिखाई देगी कि इन बयालीस विकृत स्वरों का स्पष्टीकरण संस्कृत में न होकर हिंदी में किया है।

प्रश्न—ऐसा क्यों ? संस्कृत ग्रंथ में हिंदी भाग क्यों दे दिया ?

उत्तर—कौन जाने भावभट्ट के मन में क्या रहा होगा ? यह भाग संस्कृत में लिखने से पाठकों को बोध नहीं होगा, शायद ऐसा ही उसने सोचा होगा। अथवा यह भाग उसने कहीं से उद्धृत कर लिया होगा। भावभट्ट ने अपना ग्रंथ संस्कृत में इसलिए लिखा कि वह समस्त देश में पढ़ने व समझने में आजावे, यह नहीं कि उसकी मातृभाषा भी संस्कृत थी। भावभट्ट के ये ४२ विकृत सङ्गीतसार में इस प्रकार ग्रहण किये हैं:—

"तहा रंजनी श्रुति में रिषभ रहे तब मृदु संज्ञा पावे। ऐसे ही रिषभ के दोय भेद हैं। रौद्री श्रुति में गंधार ठहेरे तब मृदु संज्ञा पावे। रतिका श्रुती में गंधार ठहेरे तब अति मंद्र संज्ञा पावे। रंजनी श्रुती में गांधार ठहरे तब अति मन्द संज्ञा पावे। ऐसे गांधार के तीन भेद हैं इ०।"

यह भाग राधागोविंदसङ्गीतसार के पृष्ठ ३४ पर तुम्हें प्राप्त होगा। इन बातों को सुनकर अशिक्षित गायक व सुशिक्षित नवसिखिये यदि प्रभावित हो जावें तो आश्चर्य नहीं। यदि किसी ग्रंथकार ने अपने समय की दंतकथायें इतिहास के रूप में अपनी

रचना में सम्मिलित की हों, तो कुछ अनुचित नहीं है। उसका हेतु अवश्य पवित्र होना चाहिये। हमें चाहिये कि हम प्राचीन ग्रन्थों का केवल उपयोगी भाग ग्रहण करें, बाकी का छोड़ दें। भावभट्ट को रत्नाकर का स्वराध्याय समझ में नहीं आया, अतः रागाध्याय भी समझ में नहीं आ सका और राधागोविन्द का मुख्य आधार भावभट्ट ही रहा था, ऐसा दिखाई पड़ता है। परन्तु मैं अभी भावभट्ट के सम्बन्ध में बोल रहा हूँ। इस पंडित ने अपने ग्रन्थ में बहुत कुछ हमारे जैसा ही किया है। जिस प्रकार हम अपने प्रत्येक रागों के सम्बन्ध में उपलब्ध ग्रन्थ–मत देखते जा रहे हैं, उसी प्रकार भावभट्ट ने किया है। यह सत्य है कि उसे हमारी अपेक्षा कुछ अधिक ग्रन्थ मिल सके थे, परन्तु यह भी गलत नहीं है कि उसके उदाहरणों से ही हमें भी बहुत से ग्रन्थमत प्राप्त हो सकेंगे। हमें जो–जो ग्रन्थ स्वतन्त्र मिलेंगे उनका उपयोग हम स्वतन्त्र रूप से करेंगे ही, परन्तु जो ग्रन्थ नहीं मिल सकते उनका मत हम भावभट्ट के संग्रह से ही ग्रहण करेंगे। अब "भैरव" पर भावभट्ट क्या कहता है, सुनो:--

रत्नाकरमते प्राह भैरवस्तत्समुद्भवः ।
धांशो मांतो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः ।
धैवतांशग्रहन्यासः संपूर्णः स्यात्समस्वरः ।
तारमन्द्रोऽयमाषड्जगांधारः शुद्धभैरवः ॥
रत्नाकरे द्विधा प्रोक्तः पूर्णौडुवप्रभेदतः ।
तत्रौडुवे हिंदोलेन तस्य भेदः प्रकथ्यताम् ॥
जन्यजनकभेदोऽपि भो सङ्गीतविशारदः ॥

हिंडोल का स्वरूप कुछ संस्कृत ग्रन्थों में ठीक मालकोष जैसा है।

भैरवे तु रिपौ नस्तो धैवतादिकमूर्छनः ।
तत्रोक्तौ च गनी तीव्रौ कोमलो धैवतः स्मृतः ॥

--श्रीनिवासमते ॥

रागार्णवमतेऽपि स्याद्रिपहीनोऽथ मांतगः ।
धैवतो विकृतो यत्र चौडुवः परिकीर्तितः ॥

--रागार्णवे ॥

"शुद्ध भैरव" व "भैरव" की ग्रन्थकारों द्वारा की गई गड़बड़ भी तुम्हें दिखाई देगी। इसका कारण इतना ही है कि उनमें बहुत थोड़े ऐसे थे, जो प्राचीन शास्त्र उत्तम रूप से समझ पाये हों। यदि कोई यह कहे तो हमें आश्चर्य नहीं होगा कि उनमें ऐसे लोग भी थे जिन्हें प्रत्यक्ष सङ्गीत का ज्ञान नाम मात्र का व प्राचीन सङ्गीत का ज्ञान केवल सुना हुआ था। राग मंजर्याम्:—

"रिहीनो भैरवः सत्रिर्मेले हीजेजमेलके" । यह-अपना भैरव थाट है। भावभट्ट ने भैरव के अनेक प्रकार बताये हैं। इनमें तीन औडुव, षाड्व व सम्पूर्ण प्रकार तो मैं बता हीं चुका हूँ। आगेः—

तस्माद्भैरवरागस्तु त्रिविधः परिकीर्तितः ।
वसन्तभैरवस्तुर्यस्तत आनन्दभैरवः ॥
नंदभैरवसंज्ञस्तु गांधारभैरवस्तथा ।
स्वर्णाकर्षणपूर्वस्तु ततः पंचमभैरवः ॥
नवधायं प्रपंचोक्तः श्रीजनार्दनसूनुना ॥

प्रश्न—परन्तु इन सम्पूर्ण प्रकारों के लक्षण भावभट्ट किस प्रकार बताता है ?

उत्तर—वे उसने इस प्रकार बताये हैं। देखोः—

शुद्धा वसन्तमेले सरिमपधा ह्यन्तरश्च काकलिकः ।
अस्माद्वसन्तटक्कहिजेजहिंदोलप्रमुखाः स्युः ॥
—रागविबोधे

कोमलाख्यौ रिधौ तीव्रौ गनी वसन्त भैरवे ।
धैवतांशग्रहन्यासो मध्यमांशोऽपि संमतः ॥
—पारिजाते

भैरवीलक्ष्मसंयुक्तस्त्वानन्दभैरवः स्मृतः ।
स्वमेलजनितत्वात्तु विशेषः समुदाहृतः ॥
भैरवीमेलसंभूता निषादग्रहसंयुता ।
गांधारे नैम्न्ययुक्ता या ज्ञेया सानन्दभैरवी ॥

मेरे गुरु ने आनन्दभैरव, आनन्दभैरवी व नन्दभैरव ये तीनों राग भिन्न-भिन्न माने हैं और उनका कथन उचित भी जान पड़ता है। आगे सुनोः—

नैषादनैम्न्ययुक्तस्तु गांधारग्रहसंयुतः ।
बहुलीलक्ष्मसंयुक्तो नन्दभैरवसंज्ञकः ॥
गांधारेण समायुक्तो गांधारभैरवः स्मृतः ॥
पंचमेन समायुक्तः प्रोक्तः पंचमभैरवः ॥
गांधाररहितः प्रोक्तः स्वर्णाकर्षणभैरवः ॥

इस श्लोक में बसन्त, बहुली, भैरवी, गांधार, पंचम रागों का भैरव से मिश्रण बताया गया है। ये राग मैंने अभी तक तुम्हें नहीं बताये हैं।

प्रश्न—परन्तु ये सभी राग ग्रन्थों में प्राप्त होने योग्य तो हैं ?

उत्तर--हां हां, इन रागों के थाट व आरोह-अवरोह तो ग्रन्थों में अवश्य मिलेंगे। ये राग भैरव से अच्छी तरह मिश्रित किये जा सकते हैं। ऐसे कुछ मिश्र रूप हमारे यहां इस समय भी प्रचलित हैं, परन्तु इनको गायकों द्वारा नये-नये नाम प्राप्त होगये हैं, इतना अन्तर है।

प्रश्न—आपने पहले "हिजेज" नाम लिया था, यह कानों को कुछ विलक्षण सा ज्ञात होता है।

उत्तर—यह भी ऐसा ही अरब देश का एक भूभाग 'हिजाज नाम का है, यह हम भूगोल में पढ़ते हैं। शायद यह नाम उधर से ही आया होगा। पुरातन युग में सम्भवतः हमारे देश व उस प्रदेश के बीच कुछ आमदरफ्त रही होगी। अपने संस्कृत ग्रन्थों में भी ईमन, तुरुष्क तोड़ी, हुसेन तोड़ी आदि यावनिक नाम दिखाई पड़ते हैं। इससे अधिक 'हिजाज' नाम की जानकारी मैं कैसे व कहाँ से दे सकता हूं? अस्तु, अब भावभट्ट के 'अनूप रत्नाकर' नामक ग्रन्थ की ओर हम घूम जावें। यद्यपि यह पंडित मूलतः दक्षिण का था, परन्तु यह उत्तर की ओर भी आकर रहा था, अतः इसके ग्रन्थों में कुछ मात्रा में अपने लिये उपयोगी जानकारी अवश्य मिल सकेगी। हम इस विषय में उसके अवश्य कृतज्ञ हैं कि उसने उत्तम संग्रह किया है।

प्रश्न—क्यों गुरूजी, अपने सङ्गीत के संस्कृत ग्रन्थ लिखने वाले अधिकांश ग्रंथकार दक्षिण के ही क्यों दिखाई पड़ते हैं?

उत्तर—मैं समझता हूं कि इसी प्रकार का प्रश्न अन्य शास्त्रों के विषय में भी किया जा सकता है। क्या हमारे वेदान्त आदि गहन विषयों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ दक्षिण की ओर के नहीं हैं? परन्तु मैं यह उत्तर डरते-डरते दे रहा हूं। हम पढ़ते हैं कि श्रीरामानु-जाचार्य, श्रीशंकराचार्य दक्षिण की ओर के ही थे। उत्तर की ओर ग्रन्थ क्यों नहीं हैं? इस प्रश्न का उत्तर मेरी कल्पना का ही कैसे मान्य होगा? कोई-कोई कहते हैं कि उत्तर के ग्रंथ नष्ट हो गये हैं।

प्रश्न—आपका कथन यथार्थ है। हमारे हृदय में स्वाभाविक ही यह प्रश्न उत्पन्न हो गया था, अतः आपसे पूछ लिया। यदि इसका उत्तर नहीं भी दें तो भी कोई हर्ज नहीं। अस्तु, अब आप 'अनूप रत्नाकर' की पद्धति भी हमें कह सुनाइये। अपनी सभी संस्कृत-पद्धतियां हम अच्छी तरह समझ लेना चाहते हैं। यदि विषयान्तर हो जावे तो भी कोई हानि नहीं। आगे चलकर जब क्रमशः भिन्न-भिन्न रागों का विवरण आयेगा और उन पर आप भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का मत भी सुनायेंगे, तब हमें यह जानकारी अच्छी सिद्ध होगी।

उत्तर—हां, यह भी ठीक ही है। मैं भी इसी उद्देश्य से इस पद्धति को विस्तार-पूर्वक बताता आ रहा हूँ। ऐतिहासिक दृष्टि से भी पद्धति का ज्ञान उपयोगी होता है। साथ ही इससे तुम्हें यह भी दिखाई देने लगेगा कि सङ्गीत में किस-किस प्रकार का परिवर्तन होता आया है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूं कि भावभट्ट का पिता पं० जनार्दन भट्ट बादशाह शाहजहां के पास था। स्वयं भावभट्ट कर्णसिंह के पुत्र अनूपसिंह के यहां नौकर था।

इसको 'अनुष्टुप्चक्रवर्ती और सङ्गीतराज' की उपाधियां प्राप्त थीं । इसलिये यह मान लेना ग़लत न होगा कि उसे प्रत्यक्ष सङ्गीत का अच्छा ज्ञान था । आजकल युग बदल गया है । एक तरह से यह कहा जा सकता है कि इस समय न तो वैसे गुणग्राहक नरेश ही हैं न वैसे पण्डित ही । प्रत्येक राजा के आश्रित सङ्गीत-प्रवीण लोग हों, यह तो एक शोभनीय बात है । ऐसे लोगों को सिवाय राजाश्रय के दूसरा कौनसा प्रोत्साहन मिल सकता है । परन्तु इस समय प्रायः ऐसे गुण ग्राहक-आश्रयदाता नहीं पाये जाते, इसीलिए बेचारे गुणी लोग स्वतः ही अपने आपको शास्त्री, पंडित, प्रोफेसर, नायक आदि पदवियां देकर मन में सन्तोष कर लिया करते हैं । यहां कोई यह कह सकते हैं कि अभी भी किसी-किसी संस्थान के आश्रित गुणी लोग हैं । यह मैं स्वीकार करूँगा कि कहीं-कहीं ऐसे व्यक्ति हैं, परन्तु मैं समझता हूँ कि उनमें से अधिकांश निरक्षर, दुराग्रही, कम-समझ व अल्प महत्व के ही पाये जाते हैं । इन लोगों की ओर से संगीतोन्नति के लिए पर्याप्त सहायता मिलना सम्भव नहीं है । मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि कोरे पीढ़ीजात अनाड़ी गायकों को आश्रित बनाए रखने में किसी का भी हित नहीं है । जिस राजा के आश्रित उत्तम गुणी हों, यदि वह यह व्यवस्था करदे कि उसके आश्रित गायकों का उपयोग सभी संगीत प्रेमी लोगों को हो सके, तो संगीत की उन्नति के लिए कुछ वास्तविक सहायता मिल सकेगी । मैं सुनाता हूं कि कुछ स्थानों पर गायकों को संगीतशाला चलाने का काम सौंप दिया है । मेरी समझ से यह बहुत उपयोगी युक्ति है । ऐसी शाला पर यदि योग्य देखरेख हो, तो आगे चलकर बड़े उत्तम फल की आशा की जा सकती है, यह प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेंगे । एक दो छोटे-छोटे संस्थानों में इस सम्बन्ध में मुझे जो अनुभव हुआ, वह मुझे बहुत बुरा जान पड़ा । इनमें से एक जगह तो एक राजा साहब की थी, जिनके लिये यह ख्याति थी कि ये स्वतः संगीत के जानकार हैं । उनके पास प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ थे । यह पता लगने पर मैंने उन्हें दिखा देने के विषय में उनसे प्रार्थना की थी ।

प्रश्न—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर— वे बोले "पण्डितजी ! आपका उत्साह व परिश्रम देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है । परन्तु मुझे खेद है कि मैं आपको अपने ग्रन्थ नहीं दिखा सकूँगा" । जब मैंने इसका कारण पूछा तो वे कहने लगे कि "यदि मैं अपने ग्रंथ चाहे जिसको दिखाने लगजाऊँ, तो गली-गली में पंडित हो जायँगे तथा वह विद्या जो हमारे पूर्वजों ने सँभालकर रखी थी जाहिर हो जायेगी । और यदि ग्रंथ छपगया फिर तो कोई किसी को नहीं पूछेगा । फिर कौन बड़ा व कौन "छोटा" इसकी कदर कौन करेगा ?"

प्रश्न—क्या फिर अंत में उन्होंने ग्रंथ दिखाया ? ये तो बड़े ही विलक्षण व्यक्ति दिखाई पड़े ।

उत्तर—उनके राजभवन अथवा पुस्तकालय में ही वे पुस्तकें दिखाते हैं । ऐसे लोगों के आगे हम क्या कर सकते हैं ? अपना सा मुँह लेकर मैं वापिस लौट आया । मैं समझता हूं कि ऐसे और भी कई व्यक्ति निकल सकते है । वे संस्थानपति अब नहीं रहे, अब उनकी गद्दी पर एक तरुण युवराज बैठे हैं । कभी-कभी तो हम सुनते हैं,

कि कुछ राजा तो अपने गायक के शागिर्द बनकर उसका पालकी में जुलूस निकालते हैं, यह तरीका भी मुझे पसंद नहीं है। नौकर, नौकर हैं और मालिक मालिक ही है। यदि नौकर बहुत विद्वान व योग्य हो तो उसे यथा शक्ति बड़ा वेतन व योग्यता के अनुरूप सम्मान देने में कोई हानि नहीं, परंतु उसके आगे मालिक का हांजी-हांजी करना व हाथ जोड़कर खड़े रहना कहां तक शोभनीय है ? अस्तु, अब मैं एक भिन्न प्रकार का अनुभव सुनाता हूं। प्रवास करते समय एक नामी गुणी के पास जाने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। मेरे हाथ में उस समय "सङ्गीत-सार-संग्रह" नामक छपी हुई पुस्तक थी। बोलते-बोलते उस सज्जन की दृष्टि मेरी पुस्तक की ओर पहुँची। उसने वह पुस्तक अपने हाथ में लेकर मुझसे पूछा कि "पण्डित जी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?" मेरे मुँह से निकल गया कि "यह 'सङ्गीत दर्पण' नामक ग्रन्थ है।"

प्रश्न—परन्तु वह पुस्तक तो 'सङ्गीत-सार संग्रह' थी न ?

उत्तर—हां, परंतु मेरे मुँह से एकाएक वैसा निकल गया। उस ग्रन्थ में दर्पण का काफी भाग संग्रहीत था, इसलिये मैं वैसा बोल गया। परन्तु मेरा उत्तर सुनते ही वे सज्जन हँसने लगे और मुझसे बोले कि-"दर्पण ग्रन्थ किसने और कब लिखा ?" मैंने उन्हें दामोदर पण्डित का नाम बताया, यह सुन कर वे और अधिक हँसने लगे।

प्रश्न—हम नहीं समझे ! हँसने की क्या बात थी ? क्या 'दर्पण' का लेखक दामोदर नहीं है ?

उत्तर—मैं भी प्रथम उनके हँसने का कारण नहीं समझ पाया, परन्तु आगे चलकर बात कुछ स्पष्ट हुई। उन्होंने नृत्याध्याय में से कुछ भाग पढ़कर दिखाने को कहा। मैंने उन्हें पढ़कर व भाषांतर कर उसे सुनाया। उसमें "संयुतहस्त" व 'असंयुतहस्त' के भेद सुनकर वे महाशय बोले "बस, बस मैं ऐसे ग्रन्थों को बिलकुल नहीं मानता। क्या तुम ये भेद प्रत्यक्ष रूप में दिखा सकते हो ?"

प्रश्न—क्या ? यानी, प्रत्यक्ष नाचकर ?

उत्तर—सचमुच, उसका यही आशय था। परन्तु मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि "महाराज ! मुझे नाचना बिलकुल नहीं आता। मैंने तो इस ग्रंथ में लिखा हुआ ही पढ़कर सुनाया है।" यह सुनकर वे फिर हँसने लगे व अपने शिष्यों की ओर घूमकर बोले, देखते हो ! भ्रष्ट ग्रंथों के छपजाने से क्या-क्या अनर्थ होता है ? इसलिये ही हमारे जैसे गुणी लोग अपने ग्रंथ कभी भी किसी को नहीं दिखाते। अब भला ये बेचारे उन दामोदर का ढोंग क्या-समझ सकते हैं ? दामोदर ने तो असल 'दर्पण' की शकल भी नहीं देखी होगी।"

प्रश्न—हम नहीं समझ सके कि वे क्यों इस तरह नाराज होगये ?

उत्तर—पहिले मैं भी नहीं समझा, परन्तु उसने शीघ्र ही खुलासा कर दिया।

प्रश्न—क्या किया ? यह भी एक मजेदार बात है।

उत्तर—उसने कहा—"पण्डितजी ! यह तुम्हारा ग्रंथ कौड़ियों की कीमत का है। यह बिलकुल "कूढ़ा" (भ्रष्ट) ग्रन्थ है। दामोदर को कुछ नहीं आता था, मैं इस तरह के ग्रंथों का

"क़ायल" नहीं हूँ। मैं तो स्वयं देवताओं द्वारा लिखे हुए ग्रंथों को ही मानता हूँ। मनुष्यों के लिखे हुए नहीं मानता।"

प्रश्न—देवताओं ने कौन से ग्रंथ लिखे ? और किस भाषा में किस प्रकार लिखे ?

उत्तर—इसी प्रकार मैंने भी उससे पूछा। इस पर उसने अपने लड़के से घर में से एक पोथी मँगवाई। सम्पूर्ण शिष्य यह देखकर चकित हो गये और मुझ पर तरस खाते हुए मेरी ओर देखने लगे। पण्डित जी (उस सज्जन) ने एक-दो पन्ने मेरे हाथों में दिये और बोले "तुम्हें संस्कीरत अच्छी आती है न ? अब आंखें खोलकर देखलो।"

प्रश्न—वह कौनसा ग्रंथ था ?

उत्तर—उसका नाम भी "सङ्गीत-दर्पण" ही था। उसमें कुछ भिन्न प्रकार के श्लोक थे। उन्हें देखकर मैं समझ गया कि यह दामोदर रचित नहीं है। उधर उस पण्डित ने भी पढ़ने का जल्दी ही तकाजा कर दिया, अतः मैं यह नहीं देख पाया कि वह ग्रन्थ किसने लिखा था। पन्ने भी मध्य भाग के थे। मैं पढ़ने लगा। मुझे अब वे श्लोक तो याद नहीं हैं, परंतु ग्रन्थकार ने उन श्लोकों में नारद, महादेव, तुम्बरू का थोड़ा सा संवाद लिख रक्खा था। मैंने एक दो जगह "महादेव उवाच" "नारद उवाच" इस प्रकार पढ़ा। ग्रंथ किसने लिखा, यह ज्योंही मैंने देखना चाहा कि उसने मेरे हाथों से वे पन्ने झपट लिये, व मुझसे कहा "महादेव उवाच" याने क्या ? यह इन बैठे हुए लोगों को बतादो। मैंने बताया "महादेव जी कहते हैं।" फिर क्या कहना ! वह अपने शिष्यों की ओर घूमकर जोर से बोले क्यों भाइयो ? अब खुद महादेव जी बोलते हैं कि कोई दूसरे ? मैं नहीं, बल्कि ये खुद पढ़ रहे हैं। मेरा ग्रंथ खुद देवताओं द्वारा लिखा हुआ है कि नहीं अब तुम्हीं देखलो !"

प्रश्न—बहुत खूब ! धन्य है !! ग्रंथकार ने "महादेव उवाच" कहा है, तो इससे उसका ग्रंथ स्वयं महादेव ने लिख दिया ? उसका यही मतलब था न ?

उत्तर—हां, परंतु हमें उसकी हँसी नहीं उड़ानी है। ऐसे अशिक्षित व विक्षिप्त विचार के अनेक गायक-वादक तुम्हें मिल जायेंगे। हमारे देश में अभी भी अनेक प्रशंसा योग्य गुणी हैं, परन्तु उनमें शिक्षा का अभाव होने से उनकी सहानुभूति व सहायता प्राप्त करना सरल नहीं है। मैंने अभी तुम्हें जिनकी बातें बताई हैं वे अपनी कला में बिलकुल अद्वितीय हैं, परन्तु उनकी समझदारी देखी ? ऐसे लोगों को पालकियों में बैठाने व राजा रईसों द्वारा "उस्ताद-उस्ताद" कहकर उनकी खुशामद करने से उनका स्वभाव कैसा बन जावेगा, उसकी तुम स्वयं कल्पना कर सकते हो। ये लोग गरीब शिष्यों की ओर देखेंगे भी क्यों ? खैर, हमतो अपने "अनूपरत्नाकर" की ओर चलें। यह बात-चीत याद आ जाने से मैं सुना गया हूं। यह नहीं समझना चाहिये कि भावभट्ट के समय शार्ङ्गदेव के सभी विकृत स्वरों के नाम प्रचलित थे। वह स्वयं "च्युत व अच्युत" शब्दों के विषय में कहता है—"मार्गसङ्गीते षड्जस्य च्युतत्वं देश्यां तु स अच्युत एव"। अनूप रत्नाकर में एक "लक्षणगीत" मुझे दिखाई पड़ा था, वह मैंने तुम्हारे लिये उद्धृत कर लिया है। देखो:—

३ ३३ ३ ३२ ३ ५३६५ ३ २१ ६१ २ २३ ३
"स प्र सु र क्र म आ दि दे ले त ष ट अंक प रि मा न।
अं त सु र के आ गि ले जे पा छे ने ई गु नि क रो संख्या तैं सें ई गि न ती पर धा न॥
जा के अ ग ले पा छे न हीं ते ई स म भा ई क रि जा नो जु हौ स ज्ञा न।
तौ आ दि अं क ले न ष्ट उ दि ष्ट च र च्यो ज्यौं री भे श हा ज हां सु जा न॥

सम्भवतः यह गीत सुजान खां ने बनाया होगा या इसे जनार्दन भट्ट ने शाहजहाँ के सम्मुख गाया होगा। सुजानखां एक बहुत प्रसिद्ध गुणी हुआ है। उसके अनेक गीत प्रसिद्ध हैं। यह शाहजहां के समय था या नहीं इसका ठीक पता नहीं है। यह नहीं दिखाई देता कि जनार्दन भट्ट सुजान खाँ के गाने गाते होंगे इसीलिये "सुजान" यानी "सयाना" यह विशेषण शाहजहां के लिये ही ग्रहण करना पड़ेगा।

प्रश्न—इसका क्या प्रमाण है कि यह जनार्दन भट्ट ने गाया होगा?

उत्तर—केवल इतना है कि यह शाहजहां का आश्रित था। अस्तु, इस गीत के सम्बन्ध में भावभट्ट कहता है:—

एतत्पद्यं भूपालीरागेण गीयते। तस्माद्भूपालीरागलक्षणं प्रथमतः प्रपंच्यते। तद्यथा रत्नाकरे "त्रिवणा भिन्नषड्जस्य भाषा तदंगं डोंबकृतिः" "तज्जा डोंबकृतिर्मांशा धांता दैन्ये रिपोज्झिता।"

प्रत्येक मर्मज्ञ पाठक को यह दिखाई देगा कि भावभट्ट पंडित को रत्नाकर के भिन्न-षड्जग्राम का स्वरूप अच्छी तरह समझ में नहीं आ सका। उसका लिखा हुआ लक्षणगीत 'भूपाली' राग में है। यह सत्य है कि उसने भूपाली राग की व्याख्या भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों के मतों द्वारा की है, परन्तु कौन जाने ये सब मत उसकी समझ में आ चुके थे, या नहीं? उदाहरणार्थ, शार्ङ्गदेव की—"डोंबकृति" को लो! यह नहीं जान पड़ता कि इसके स्वरूप का स्पष्ट बोध भावभट्ट को हो गया था। भूपाली के सम्बन्ध में उसके एकत्र किए हुए ग्रंथमत जानना हमारे लिये आवश्यक नहीं है।

प्रश्न—इस लक्षणगीत के अक्षरों पर जो अंक लिखे हुए हैं, उन्हें स्वरवाचक समझना चाहिये?

उत्तर—हां, तुमने ठीक पहिचान की। भूपाली में मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य होते हैं इसलिये ४ व ७ के अंक तुम्हें यहां नहीं दिखाई पड़ेंगे। यहां पर मैं और एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करूँगा।

प्रश्न—वह कौनसी?

उत्तर—किसी-किसी अक्षर पर एक ही अंक लिखा हुआ जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, इन स्थानों को इस पण्डित ने "स्थायीवर्ण" बताया है। प्रत्यक्ष अलंकार का नाम "निष्कर्ष" है। इसी पंक्ति में कुछ स्थानों पर "गात्रवर्ण" अलंकार है। इस अलंकार के संबंध में भावभट्ट कहता है:—

"त्रिश्रुतुर्वास्वरोच्चारेर्गात्रवर्णमिमं जगुः ।
निष्कर्षस्यैव भेदौ द्वौ केचिदेतौ बभाषिरे ॥"
तस्माद्गात्रवर्णस्यैव प्रथमा कला "गगगग" ॥६०॥

इस उदाहरण से तुम्हें यह भी थोड़ा बहुत दिखाई देगा कि ग्रन्थोक्त वर्ण, अलंकार, कला आदि शब्दों का अर्थ पंडितों ने कैसा किया है। अस्तु, गीतों में दिखाई पड़ने वाले अलंकारों के सम्बन्ध में बोलकर फिर "शम, प्रतिहति, आहति" आदि वादन प्रकारों के सम्बन्ध में भावभट्ट ने समझाया है, यह भाग मैं अभी नहीं बताऊँगा । 'रागविबोध' के अन्तिम 'विवेक' (अध्याय) में वह तुम्हें प्राप्त हो सकेगा। वीणा पर बजाने के ये भिन्न-भिन्न भेद-प्रभेद हैं सुना जाता है कि इनका स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न इस समय एक-दो विद्वान कर रहे हैं। वे जो स्पष्टीकरण करेंगे वह तुम देखोगे ही। यदि वह योग्य हो, तो उसे स्वीकार कर लेना।

प्रश्न—इन सब बातों से ज्ञात होता है कि भावभट्ट ने बहुत परिश्रम किया है।

उत्तर—इसमें क्या संदेह है। उसने सचमुच परिश्रम किया है। उसके आगे अपने जैसों की बात ही क्या ? चाहे उससे रत्नाकर का स्पष्टीकरण नहीं हुआ हो, परन्तु यह सत्य है कि उसने बहुत सी उपयुक्त जानकारी संग्रहीत की है। इतना ही है कि जब ग्रन्थकार एक के ग्राम, दूसरे की मूर्छना, तीसरे की श्रुति, चौथे के राग और पांचवें के वर्णालंकार इस प्रकार "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा" जैसा कार्य करता है, तो उतना भाग हमें असङ्गत ज्ञात होता है।

प्रश्न—अनूप रत्नाकर में कितने व कौन-कौन मेलराग बताये गये हैं ?

उत्तर—प्रथम भिन्न-भिन्न ग्रंथों के वर्गीकरण बताकर वह अपने 'मेल' इस प्रकार कहता है:—

टोडीगौडीवराटीनां केदारशुद्धनाटयोः ।
मालवाकौशिकाख्यस्य श्रीरागस्य ततः परम् ॥
हंमीराहेरिकल्याणा देशाची देशिकारकः ।
सारङ्गश्चैव कर्णाटः स कामादो हिजेजकः ॥
नादरामक्रिहिंदोलमुखारीसोमरागकाः ।
एतेषां मेलसंजातरागाणां च यथाक्रमम् ॥
लक्षणं वक्ष्यते किंतु लोकवृत्तानुसारतः ॥

इस प्रकार उसने बीस मेल बताये हैं। परन्तु मित्रो ! अब हमें भावभट्ट के पीछे अधिक समय तक पड़े रहने की आवश्यकता नहीं। उसके तीनों ग्रन्थों के सम्बन्ध में मैं थोड़ा-थोड़ा बता चुका हूँ। राग प्रकरण में भावभट्ट ने प्रमुख रूप से सोमनाथ अहोबल व पुण्डरीक का आधार ही ग्रहण किया ज्ञात होता है। यह परिच्छेद भिन्न-भिन्न राग बताते हुए सामने आयेगा ही। एक अन्य "रागमाला" (व्यासकृत रागमाला) में भैरव इस प्रकार बताया गया है:—

"शुभ्रांगः शुभ्रवासाः शिरसि शशिधरः शृङ्गवाद्यश्च हारी ।
शंभोर्वक्त्राब्जजातो धृतगलगरलो भैरवो रक्तनेत्रः ॥
धत्ते शूलं कपालं जलजमणिमये कुण्डले कर्णयुग्मे ।
तारं जूटं जटानां शरदि सुरगणैर्गीयते प्रातरेषः ॥

मैं समझता हूं कि इस राग पर अब और अधिक ग्रंथों का मत प्राप्त नहीं है। यह सरलता से दिखाई देगा कि अपना प्रचार काफी मात्रा में ग्रन्थों से सम्बन्धित है। अब मैं भैरव का वर्तमान स्वरूप बताता हूं। सुनोः—

लक्ष्ये भैरवमेलो यः शास्त्रेऽसौ गौडमालवः ।
तदुत्पन्नः सुविख्यातो भैरवो गीयते बुधैः ॥
धैवतांशग्रहः प्रोक्तः संपूर्णः सर्वसंमतः ।
आरोहणे भवेद्र्यल्पः प्रातःकालोचितः पुनः ॥
अस्मान्मेलात्समुत्पन्ना बहवो विश्रुता मताः ।
प्रातर्गेयसुरागास्ते ह्युत्तरांगप्रधानकाः ॥
रिधयोरत्र वैचित्र्यं यथा गन्योः प्रदोषके ।
आंदोलनं यथान्यायं तयोश्चातीवरक्तिदम् ॥
ग्रंथेषु केषुचिद्दृष्टो निषादः कोमलो यतः ।
अवरोहसमासक्तो रक्तिघ्नो नेति मे मतिः ॥
बहुलत्वं यत्र मस्य तत्र गस्याल्पता सदा ।
नियमः संमतो लक्ष्ये सुप्रसिद्धो न संशयः ॥
भैरवोऽयं यथा प्रातः सायं श्रीराग ईरितः ।
एकस्मिन् धैवतोंऽशः स्याद् द्वितीये रिस्वरस्तथा ॥
संधिप्रकाशरागाणां लक्षणं शास्त्रसंमतम् ।
कोमलत्वं भवेद्धर्योर्गन्योस्तीव्रत्वमीप्सितम् ॥

रागकल्पद्रुमांकुरेः—

रागादिर्भैरवाख्यो मृदुऋषभमधस्तीव्रगांधारनिः स्याद्वाद्यस्मिन् धैवतो-सावृषभ इह तु संवादिरूपोऽभिगीतः । आरोहेऽल्पर्षभत्वं क्वचिदपि मृदुर्निं प्राहुरेकेऽवरोहे प्रातःकाले स नित्यं जगति सुमतिभिर्गीयते मंजुतानैः ॥

रागचंद्रिकायाम्ः—

प्रथमो भैरवो रागो मृदुमर्षभधैवतः ।
वादी धैवत एवात्र संवादी चर्षभो मतः ॥

चन्द्रिकासार:—

भैरव कोमल रिमध सुर तीख गंधार निखाद।
धैवत वादी सुर कह्यो तासु रिखब्र संवाद॥

प्रश्न—वाह! वाह!! ये आधार हमारे लिये बहुत सुविधाजनक है। अब हम. भैरव राग के सम्बन्ध में कुछ नियमबद्ध जानकारी, किसी को बता भी सकेंगे। देखिये, ग्रन्थाधार किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होते हैं? ये समस्त प्रमाण जिस तरह आजकल हमारे गायक भैरव राग गाते हैं, उसी रूप को बताने वाले मानने चाहिये न?

उत्तर--निस्संदेह! मैं तुम्हें जो प्राचीन वर्गीकरण बताता हूं वे भी तुम चाहो तो याद रखो। मेरा इस सम्बन्ध में कोई आग्रह नहीं। ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से यदि वह भी तुम्हारे संग्रह में हो तो क्या बुरा है? पाश्चात्य विद्वान भी अपने हिंदू सङ्गीत पर लिखते हुए हमारे ग्रंथों में बताये हुए वर्गीकरणों का आदरपूर्वक उल्लेख करते हैं। चाहे उससे विशेष लाभ हो या न हो, पर यह कहा जा सकता है कि संसार के राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न कालों में कितनी मात्रा में विचार सादृश्य रहा था, इसे समझने का यह भी एक साधन है। कुछ वर्ष पूर्व Mr. Whitten ने कलकत्ता में छात्रों के सम्मुख एक छोटा सा व्याख्यान दिया था। इसमें उन्होंने अपने राग-रागनियों के प्रभाव आदि का वर्णन किया था। मैंने उनका निबंध यहां मँगवा लिया है और तुम्हारी पसंद का विषय होने से उसमें से थोड़ा सा भाग पढ़कर सुना देता हूं।

प्रश्न--देखें, वे क्या कहते हैं?

उत्तर--वे कहते हैं:--

Beyond doubt India may lay Claim to a very high antiquity. It was among the earliest settlements of the sons of Noah and possessed a people renowned for learning and intelligence and for their proficiency in the arts and sciences; and as Sir William Jones observes 'however degenerate the Hindus may now appear, we cannot but suppose, that in some early day they were splendid in arts and arms, happy in government, wise in legislation and eminent in knowledge.

The God of the Hindus is Brahma and the invention of Music is ascribed to this deity and to his wife Saraswati, the Goddess of learning, music and poetry. According to popular belief, in the beginning, the Gods and Goddesses met on special occassions for the purpose of composing and singing songs, the result of which was the production of a series of systems or modes known to all Hindus as Rags and Raginees. To Shiva or Mahadeva is ascribed the creation of the six Rags and from his wife, the Goddess Parwati are said to have emanated thirtysix

Raginees. These Rags though really representing the original systems or styles of melody, bear in the estimation of the Hindus a sacred and peculiar interest as being the palpable personifications of the will of their originator, each having a separate existence and shape, although unperceived by the eyes of mortals, With each of these six male Rags are associated six female Raginees, which partake of the peculiar measure or quality of their males, but in a softer and more feminine degree.

From each of these thiry-six Raginees have been born three Raginees reproducing the special peculiarity of their original; and these have in their turn produced offsprings without number, each bearing a distinct individuality to the primary Rag, or to use a Hindu expression "they are as numerous and alike as the waves of the sea".

These Rags were designed to move some passion or affection of the mind and to each was assigned some particular season of the year, the time of the day and night, or special locality or district; and for a perfomer to sing a Rag out of its appropriate season or district would make him in the eyes of all Hindus an ignorant pretender and unworthy the character of a musician.

The allotment of a particular mode to a particular district is not common to India alone; the same system prevails in Arabia, Persia and other ancient countries. A line from the veiled prophet of Khorassan runs:—"In the pathetic mode of Ispahan." And this peculiar custom is further described in a footnote as follows:—The Persians, like the ancient Greeks call their musical modes or Perdas by the names of different countries or Cities as the mode of Ispahan, the mode of Irakh etc.

And I would venture to refer even to another passge from Lala Rookh, thus—"Last of all she took a guitar and sang a pathetic air in the measure called Nava, which is always used to express the lamentations of absent lovers."

The names of Rags and their peculiar qualities may be thus briefly described:—

1. Hindol:—The effect of the performance of this Rag is to produce in the mind of the hearers all the sweetness and freshness of spring; sweet as the honey of the bee and fragrant as the perfume of a thousand blossoms.

2. Shri Rag:—The quality of this Rag is to aflect the mind with the calmness and silence of declining day; to tinge the thoughts with a roseate hue, as clouds are guilded by the setting sun before the approach of darkness and night.

3. Megh Mallar:—This is descriptive of storms and tempests or the effect of an approaching thunderstorm and rain; having the power also of influencing clouds in times of drought.

Tradition asserts that a singing girl once, by exerting the powers of her voice in this Rag drew down from the clouds, timely and refreshing showers on the parched rice-crops of Bengal, and thereby averted the horrors of famine in the land.

4. Deepuk:—This Rag is said to be extinct. No one could sing it and live; it has consequently fallen into disuse. But although never practised now, its qualities or effects are well known and are referred to with great awe and expression of wonder.

5. Bhyrub:—The effect of this Rag is to inspire the mind with a feeling of approaching dawn; of the busy hum of insects, the carolling of birds the sweetness of the perfumed air and the sparkling freshness of dew dropping morn.

6. Kowshik:—The effects of this Rag are generally unknown. The renowned singers alone are able to comprehend it.

These several Rags and modes are supposed to possess a godlike and magnetic effect. Their performance is left entirely to the professional or chief songsters, their corresponding raginees being alone practised by the people and these in their several degrees of relationships to the parent Rag according to the worth or proficiency of the performer.

Those persons who have become great in song are held in high esteem by the Hindus. They are not numerous and are

generally attached to the household of a Raja or other noble and their services are highly valued. Of these singers I may mention two, whose names are the household words throughout the land, these are Tansen and Nayak Gopal. Tansen appears to have been the most noted singer the country has produced. It is recorded that he was commanded by the Emperor Akbar to sing the Shree or Night Rag at midday and that the power of music was such that it instantly became night, and the darkness extended in a circle round the palace, as far as his voice could be heard.

Of the magical effects produced by the singing of Gopal Nayak and the romantic termination to the career of this sage it is said that he was commanded by Akber to sing the Rag Deepuk and being obliged to obey repaired to the river Jamuna in which he plunged up to his neck. As he warbled the wild and magical notes flames burst from his body and consumed him to ashes.

ऐसी मजेदार दन्तकथाओं का संग्रह पाश्चात्य पण्डित भी कर लेते हैं, किन्तु यह न समझना चाहिये कि इन्हें वे सत्य मानते हैं। हम स्वयं भी उन्हें कहाँ सत्य मानते हैं ?

प्रश्न—परन्तु इतिहास में लिखी हुई होने पर असत्य भी कैसे कही जा सकती हैं ?

उत्तर—यही उचित है कि हम न तो इन्हें असत्य कहें और न सत्य ही मानें। अकबर का समय कोई प्रलय के पूर्व का नहीं था। यह कैसे भुलाया जा सकता है कि इन चमत्कारों को हुए अभी चारसौ वर्ष भी नहीं हुए हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि यह कवि की कल्पना मात्र है। यह भी कहे देता हूं कि इन बातों को यदि किसी ने लिखकर भी रक्खा हो तो भी उन्हें मैं काल्पनिक ही मानूँगा। यह अनिवार्य नहीं कि मेरा यह व्यक्तिगत मत तुम्हें स्वीकार ही करना होगा। क्या हम कभी-कभी पुस्तकों में भूत, प्रेतों की दन्तकथा नहीं पढ़ते ? क्या यह सब हम सत्य समझते हैं ? लिखने वाला कौन ? उसकी विद्वता कितनी ? लिखने का उद्देश्य क्या ? वह समय कौनसा ? चमत्कार किसने देखे ? प्रमाण क्या ? इन सभी बातों को ध्यान में रखकर निर्णय करना होगा। मालूम होता है Mr. Whitten साहेब को हमारे यहाँ की अन्य एक-दो कथा प्राप्त नहीं हो सकी थीं।

प्रश्न—वे कौन सी ?

उत्तर—परसों एक पुस्तक में मैंने पढ़ा कि जब गायक तानसेन दीपक राग से जल गया, तब वह रोते-रोते गुजरात की ओर आया। वहां एक गुजरातिन ने नदी पर पानी भरने जाते समय उसे देखा। उसने तत्काल उसे आदरपूर्वक अपने घर बुलाया और मल्हार राग गाकर आकाश से जल बरसाया और उसे पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया।

प्रश्न—यह सुनकर केवल हँसी आती है। तानसेन दिल्ली में जल गया, गुजरात तक (जब कि रेल नहीं थी) आ पहुँचा और यहां एक गुजरात की नारी ने 'मल्हार' गाकर उसे अच्छा कर दिया ! यह कैसे सम्भव है ? यह प्रमाण कहां से और किस प्रकार प्राप्त होगा कि उस समय गुजरात में संगीत की स्थिति इतनी उच्च थी ?

उत्तर—तुम्हारी शंका सत्य है, परन्तु ऐसी कथायें अपने अशिक्षित समाज के मनोरंजन का एक बड़ा साधन होती हैं। यदि गायकों से हम यह प्रश्न करें कि हिंदोल, श्री व दीपक के ये अपूर्व चमत्कार किन-किन स्वरों से होते हैं, तब वे चुप बैठ जाते हैं। दूर की बात जाने दो, यदि तुम किसी से यह प्रश्न पूछो कि तुम आज जो हिंडोल व श्रीराग गाते हो, वे किसी ग्रन्थ के प्रमाण से गा रहे हो तो ठीक उत्तर देने वाले हजार में पांच भी नहीं निकलेंगे; परन्तु हमें ऐसे विषयान्तर में अभी नहीं जाना है। मैं समझता हूँ कि भैरव के लक्षण अब ठीक-ठीक तुम्हारी समझ में आ चुके होंगे ?

प्रश्न—जी हां, अब हमें इस राग का स्वरूप स्वरों से और बता दीजिये तो फिर इस राग का वर्णन पूरा हुआ ?

उत्तर—ठीक है, यही करता हूं:—

—भैरव—

सा, रेरे, साध, सारे, सा, मगरे, सा; सारेसा, धधनिसा, साधसा, मगरे, गरे, रे, सा; सारेसा, सारेसा, निसा, ध, निधनिसा, गमगरे, पमगरेसा, सारेसा, निसा, रेरेसा, रेसा, ध, निधप, मपध, रे, सा; सारेसा, मगरेसा, सारेसाध, रेसाध, निध, सा, गमगरे, सा; सारेसा। सा, मग, मप, ध, प, मगरे, गमगरे, सा, निसाध, निसा, पमगरे सा; सारेसा। निसा, रेसा, गरे, मगरे, पमगरे, रेसा, धप, मपमगरे, सा; सारेसा । प, पपध, निसां, सांरें, सां, सांध, निसांरेंरेंसां, निध, रेंसांनिध, निध, ध, प; मगमप, ध, मंगंरेंसां, निधप, सांनिधप, मगरे, गमपमगरे, रेसा; सारेसा।

सासा, मगमप, धधपप, मपमग, रे, पमगरे, सा; सारेसा । सानिधप, धप, मप, धधप, निसा मगरे, पमगरे, रे, सा; सारेसा। मगमप, धध, निधप, सांनिधप, रेंसांनिधप, मपमगरे, पमगरेसा; सारेसा। मगरेसा, गरेसा, रेसा, ध, ध, निध, सा, मगम, धपमगरे, सा; सारेसा। धधप, मप सांनिधप, रेंसांनिधप, निधप, मपधपमगरे, पमगरेसा; सारेसा। निसा, गमप, ध, प, मगरे, गमपमगरे, गरे, सा, ग, मप, ध, प। सानिधप, निधसा, गरे, मगरे, निधपमगरे, सा; ग, मपध, प। निसागम, पधनिसां, सांनिधप, मगरेसा; ग, मप, ध, प। सारेसा, म, गप, गरेसा, निसा, निधनिसा, मगरे, पमगरे, सा। ध, ध, प, मप, निध, प, मपमगरे, मगरे, पमगरे, रे, सा; गमपधप।

प्रश्न—यह भैरव राग तो अच्छी तरह हमारे ध्यान में जम गया। अब आगे का राग लीजिये ?

उत्तर—ठीक है ! अब मैं "रामकली" राग बताता हूँ। रामकली राग की प्रकृति अधिकांश रूप में भैरव जैसी होने से, उसे अभी समझ लेना सुविधाजनक होगा। भैरव व रामकली राग अलग-अलग गाकर सुनाने में गायकों को थोड़ी बहुत कठिनाई पड़ती है। इसी प्रकार की कठिनाई पूर्वी थाट में श्री व गौरी रागों की जोड़ी में होती है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुशल गायक ये समस्त राग अलग-अलग नियमों से उत्तम रूप से सँभालते हैं, परन्तु मैंने अभी साधारण अनुभव की बात बताई है। भैरव के पश्चात् तत्काल यदि किसी ने रामकली गाने की फर्माइश की तो गायक कुछ हिचकिचाने लगते हैं।

प्रश्न—ऐसा प्रायः सभी समप्रकृतिक रागों में होता होगा ?

उत्तर—हां, ये राग दूसरे रागों में मिल जाते हैं, अतः इनमें नियमों की ओर अधिक सूक्ष्मता से ध्यान देना पड़ता है। जिस प्रकार गायक इन रागों को गाते हुए गड़बड़ी में पड़ जाते हैं, वैसे ही श्रोता भी राग पहिचानने में चकरा जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर रामकली में भैरव अंग के ऋषभ व धैवत लगते होंगे ?

उत्तर—हां ! फिर भी ये स्वर बड़ी खूबी से प्रयुक्त किये जाते हैं। मेरे कहने का अर्थ तुम्हारे ध्यान में तब अच्छी तरह से जमेगा, जब मैं इन स्वरों को गाकर दिखाऊँगा।

प्रश्न—रामकली में किस स्वर को वादी माना गया है ?

उत्तर—यह राग प्रचार में दो-तीन तरह से गाया जाता है। इसलिये जो रूप गाया जावेगा, उसी पर उसका वादी स्वर अवलंबित रहेगा। मैं समझता हूं कि पहिले मैं तुम्हें वे प्रचलित रूप बता दूँ; फिर वादी स्वरों के सम्बन्ध में बताना ठीक होगा।

प्रश्न—ठीक है, ऐसा ही कीजिये।

उत्तर—रामकली का एक सरल परन्तु उलझन में डाल देने वाला स्वरूप "संपूर्ण-रामकली" कहा जा सकता है। यह स्वरूप प्रायः भैरव का संदेह उत्पन्न कर देता है।

प्रश्न—फिर इसका इलाज क्या है ?

उत्तर—कुशल गायक इसको भिन्न-भिन्न युक्तियों से भैरव से दूर रखते हैं। भैरव का गांभीर्य, 'मगरे॒सा' की सुन्दर व विलम्बित मींड़, मन्द्र स्थानों का विशिष्ट प्रयोग, धैवत का महत्व आदि सभी बातें तुम जानते ही हो। रामकली में इन्हें प्रयुक्त नहीं किया जाता। रामकली में सा, म, प, स्वरों का प्राबल्य श्रोताओं को अधिक दिखाई पड़ेगा। इस राग के पंचम स्वर की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खासतौर से खींचने वाला हूँ। यह देखो कि "प, प, ग, म ग, रे॒, सा, प" स्वरों को गाते हुए मैं इसे भैरव से कैसे बचा लेता हूं ? इस पंचम में बहुत सूक्ष्म तीव्र मध्यम का एक कण किस प्रकार लगाया गया, यह भी देखा क्या ? मैं तुम्हें, केवल ऐसे कण से ही इस राग को पहिचानने की बात नहीं कहूँगा। यह देखने योग्य बात है कि मर्मज्ञ गायक "सा, म ग म प, प ध॒ प, प ग म, रे॒ सा, ध॒ प," इस प्रकार से गाते हुए हमारा ध्यान पंचम की ओर बड़ी सफाई से किस प्रकार खींच लेते हैं। कोई-कोई तो यह कहते हैं कि रामकली की गति कुछ अधिक चंचल रखनी चाहिये, जिससे उसमें भैरव का गांभीर्य नहीं

आ सके। तुम तो पंचम पर "न्यास" करने की आदत बनालो, समझलो कि इच्छित परिणाम अपने आप उत्पन्न हो जावेगा। रामकली में "मध्यम" भी बीच–बीच में खुला प्रयुक्त कर दिया जाता है, परन्तु वहाँ 'म ग रे॒ सा' यह मींड़ योजित नहीं की जाती। "नि॒ सा, ग म, प, ध॒ प ग म" इस प्रकार का स्वरसमुदाय बुरा नहीं दिखाई देगा, परन्तु इसका प्रयोग कर षड्ज से मिलते हुए, राग सँभालने में ही खूबी है। मुझे स्मरण है कि कुछ वर्ष पूर्व मैं जयपुर गया था, वहां एक प्रसिद्ध व वृद्ध तंत्रकार से मेरी बातें, भैरव व रामकली में कैसे भेद किया जावे, इस सम्बन्ध में हुई थीं। उन्होंने ये राग अपने पुत्र द्वारा बजवाकर दिखाये, परन्तु यह नहीं बता सके कि इन दोनों रागों में अमुक ही भेद है। उस लड़के ने भैरव की गत "सा, ग म प प, ध॒ ध॒, प प, म ग रे॒, प म ग रे॒ सा। सा ध॒ नि॒ सा, रे॒ रे॒ सा सा, म ग रे॒ प, म ग रे॒ सा। "इस प्रकार बजाई, व रामकली की गत उसने "सां रें॒ सां नि, ध॒ नि ध॒ प, म ग रे॒ प, म ग रे॒ सा। नि॒ सा म ग, प प ध॒ प, सां सां रें॒ सां ध॒ नि ध॒ प।" इस प्रकार आरम्भ की। मुझे केवल यही दिखाई पड़ा कि विस्तार करते हुए बार–बार वह लड़का विश्रांतिस्वर पंचम को बनाये हुये था। उन वृद्ध सज्जन से मैंने आरोह–अवरोह के नियम बताने के लिये बहुत आग्रह किया, तब उन्होंने मुक्त हृदय से मुझे यह उत्तर दियाः—"महाराज! आपको क्या चाहिये, यह मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। मैं स्पष्ट रूप से कह रहा हूं कि हमारे गुरू हमें भिन्न-भिन्न रागों के भेद इस प्रकार व्यवस्थित रूप से बताते ही नहीं हैं। गाते–गाते हम लोग कुछ-कुछ रागनियम देख सकते हैं, परन्तु वे खरे हैं या खोटे, यह हम खुद भी नहीं जानते, फिर हम किसी के प्रश्नों का उत्तर कैसे दे सकते हैं? हमें लिखना-पढ़ना भी अधिक नहीं आता, इसलिये खोजकर योग्य नियम निकालने का हमें ज्ञान भी नहीं होता। हमारे पुरखे भी हमारे जैसे निरक्षर थे फिर भला उनसे हमें नियमों का ज्ञान कैसे हो सकता था? आप चाहें तो प्राचीन व प्रसिद्ध गायकों से ऐसा पूछ देखें, तब आपको मेरे कथन की यथार्थता ज्ञात हो सकेगी। हमें अनेक चीजें आती हैं, परन्तु हम उन्हें केवल सुनकर सीखते हैं। वे शास्त्र दृष्टि से शुद्ध हैं या नहीं, यह समझने की सामर्थ्य वास्तव में हम लोगों में नहीं है। हम अपने घराने की "गायकी" अच्छी तरह सँभाले रहें, इसीलिये हमारे बड़े-बूढ़े यह पसन्द नहीं करते कि हम वयस्क होने तक अन्य गायकों का गाना सुनें। एक बार हम वयस्क हो गये और हमारे गले में एक विशिष्टि प्रकार का घुमाव पैदा हो गया तो फिर मानव स्वभाव के अनुसार कहिये या परम्परा की अशिक्षा के कारण, हमें अन्य गायकों का गायन अपनी दृष्टि में तुच्छ ही ज्ञात होने लगता है। इतना ही नहीं, बल्कि हम यह स्पष्ट कहने में भी आगे-पीछे नहीं देखते कि जो मत हमारे मत से असंगत है, वह गलत है। कभी–कभी खुद हमें भी ज्ञान हो जाता है कि यह दुष्ट स्वभाव है, परंतु दुर्भाग्यवश वह स्वाभाविक रूप से हम में घुल मिल गया है और उसे छोड़ना हमारे लिये कष्ट–साध्य है। जैसे–जैसे हम आगे विद्वानों व सभ्य लोगों के सहवास में आते हैं, वैसे-वैसे अपना पूर्व–स्वभाव बदलने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वह हमसे क्वचित् ही सध पाता है। इस अनिष्ट ढङ्ग से केवल एक ही लाभ होता है कि प्राचीन गायकों के कुछ गीत, परम्परा से थोड़े बहुत प्रमाण में सँभाल लिये जाते हैं, और वे आगे खोजने वालों को प्राप्त हो सकते हैं। मैं प्रसिद्ध गायकों के घरानों के सम्बन्ध में कह रहा हूं, ढाढी, मीरासी आदि लोगों की परम्परा के सम्बन्ध में यह बात नहीं है।"

प्रश्न—शायद यह कोई अलग वर्ग होगा ?

उत्तर—हां, तबला-सारंगी बजाने वाले आदि इसी वर्ग के माने जाते हैं। इन्हें सङ्गीत के सांप्रदायिक या घरानेदार गायक नहीं मानते। सुना जाता है कि सच्चे, खानदानी गायक इन लोगों से शायद ही कभी बेटी व्यवहार करते हों। ढाड़ी लोगों में भी कहीं-कहीं प्रसिद्ध गायक निकलते हैं, परन्तु यह कहा जाता है कि वे गायक घराने के "खास" शागिर्द होकर तैयार होते हैं। यह माना जाता है कि सङ्गीत के साम्प्रदायिक घराने पहिले बनाई हुई चार वाणियों के आधार पर हुये हैं। अब समय के अनुसार गायकों के व्यवस्थित वर्ग निश्चित करना बहुत कठिन हो गया है। अब तो जिसे देखो वही गायक, जिस वाणी का पता हो उसे ही दबा बैठते हैं व प्रसंग के अनुसार खंडार, नोहार, डागुर आदि बन जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि आजकल वाणी का अधिक रहस्य प्राप्त नहीं है। प्राचीन काल में गायक के खानदान में कभी भी वाद्य (सारंगी आदि) नहीं बजाये जाते थे। अब देखो तो कोई-कोई गायक जीविका के लिये ताँसे (शादी में बजाये जाने वाला चमड़े का वाद्य) बजाने को तैयार हो जावेगा। आजकल 'तालीम' देने वाले लोग भी गायन, वादन व नृत्य, तीनों कलाओं की शिक्षा देने को तैयार हैं। अनेक बार ऐसे लोगों में योग्यता के नाम पर सुना हुआ गायन-वादन और देखा हुआ नृत्य ही प्राप्त होता है। अस्तु, उन सज्जन का मत मैं तुम्हें बता चुका हूं। अब आगे चलें। रामकली का समय प्रातःकाल है। कभी यह राग भैरव के पहले और कभी पीछे गाया जाता है। यह संधिप्रकाश राग है, अतः इसमें कोमल रि, ध, तथा तीव्र ग, नी स्वर उचित ही हैं। रामकली के सम्पूर्ण स्वरूप में सा, म, या प, इनमें से कोई एक वादी स्वर होता है। रामकली के तीन-चार प्रकार गायक गाते रहते हैं। एक औडव भेद है जिसमें आरोह में म, नी स्वर वर्ज्य किये जाते हैं एवं वादित्व धैवत को दिया जाता है।

प्रश्न—जाति बदल जाने के कारण धैवत स्वर वादी होने पर भी यह राग भैरव से पर्याप्त भिन्न हो जावेगा। ठीक है न ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। यह रामकली का स्वतंत्र भेद माना जाता है। यह राग हमें अधिकतर सुनने को नहीं मिलता। गायकों को नियमों में जकड़े हुए राग अधिक पसन्द नहीं आते। उन्हें नियमरहित व सम्पूर्ण रागस्वरूप सदैव पसन्द आते हैं, क्योंकि इन स्वरूपों में इच्छानुसार तानें लगाना सरल पड़ता है। रामकली का 'औडव-सम्पूर्ण' स्वरूप इस प्रकार होगा:—

"धुधुप, धुप, मगरेरेसा, सारेसाधुसापमगरेसा, सारेसामगपपपधुप, सांधुपनिधुपमग-रेसा। पपपधुधुसांऽसांरेंसां, सांनिधुनिधुरेंसांनिधुप, मंमंगंरेंसांरेंसांनिधुप, सांनिधुनिधु-पमगरेसा"

इसमें भैरव का मंद्रस्थान वाला भाग तथा 'मगरेसा' की प्रसिद्ध मींड बार-बार नहीं लेनी चाहिये। रामकली के इस औडव-सम्पूर्ण प्रकार में आरोह करते हुए मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य करने पड़ते हैं। यहां कुछ 'विभास' राग की छाया किसी को दिखाई देगी, परन्तु 'विभास' का अवरोह औडुव है, इसलिए वह राग अलग हो जावेगा। पहिले स्वरों से गाने का प्रयत्न करो और भैरव व रामकली के इस भेद को

विभास रागों से बचाने का ध्यान रखो, तो तुम्हें यह राग सध जावेगा। यह कार्य कठिन नहीं है।

प्रश्न—क्या ये स्वरसमुदाय चल जायेंगे, देखिये:—

"साधधप, मगरेसा, सारेरेसा, निधसा, मगरेसा, सामग, पपधप, धप, मग, निधप, सांनिधप, गपमगरेसा।"

उत्तर—ये स्वरसमुदाय अशुद्ध नहीं हैं। गाते हुए इनका प्रयोग कहां और किस प्रकार किया जा सकेगा, यह आगे चलकर तुम्हारे ध्यान में आजावेगा। मैं कह चुका हूं कि औडुव-सम्पूर्ण रूप प्रचार में बहुत कम दिखाई पड़ता है। जो स्वरूप आजकल हम प्राय: सुनते हैं वह सम्पूर्ण स्वरूप है तथा उसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाता है यह नहीं भूलना चाहिये।

प्रश्न—अर्थात् "ध प मं ग रे सा" इस प्रकार होता होगा?

उत्तर—नहीं, नहीं, यह नहीं चलने वाला है भाई! इससे तो तत्काल ही राग में सायंगेयत्व आ जावेगा।

प्रश्न—हां, हां, इसमें कोमल मध्यम नहीं है, शायद इसलिये यह रूप वैसा हो जावेगा। अच्छा, यदि "धप, मं ग, मगरेसा" इस प्रकार करें तो?

उत्तर—यह रूप भी अच्छा नहीं दिखाई देगा। तीव्र म लेकर "प मंग" इस प्रकार का अवरोह तो बुरा ही लगेगा। तीव्र मध्यम का उपयोग बड़ी खूबी से किया जाता है। यह स्वर प्राय: कुछ पंचम की सङ्गति में आरोह में दिखाया जाता है। कुछ मर्मज्ञों का मत है कि तीव्र म वाला टुकड़ा किसी भिन्न राग का है। वे कहते हैं कि यह टुकड़ा भैरव से इस राग को अलग करने के लिये खासतौर से लिया गया है। सुविधा के लिये ऐसा ही तुम भी मान लो तो कोई बड़ी हानि नहीं है। एक तरह से तो तुम्हारा इस बात को मान लेना ही अच्छा होगा। तीव्र मध्यम आरोह में लेने से अपने साधारण नियमों में असंबद्धता उत्पन्न हो जावेगी; परन्तु यहां ऐसा समझ लेना चाहिये कि यह एक अलग राग के अन्श का एक खण्ड मात्र है। रामकली में तीव्र मध्यम एक नियमित स्वरसमुदाय में प्राय: आता है। उत्तराङ्ग प्रधान रागों की सम्पूर्ण विचित्रता प्राय: अवरोह में होती है, अत: तीव्र मध्यम का स्पर्श आरोह में होने से अधिक हानि नहीं होती। कभी-कभी गायक दोनों मध्यम जोड़कर तान लेते हैं, परन्तु यह कृत्य बार-बार किया गया तो राग बिगड़ जायेगा। उत्तर रागों का अवरोह बड़े ध्यानपूर्वक अभ्यास से तैयार करना पड़ता है। रामकली में दोनों मध्यम ग्रहण करने वाले गायक इसे भैरव के पहिले ही गाते हैं।

प्रश्न—यह उचित ही दिखाई देता है। तीव्र मध्यम रात्रि बीतते-बीतते अदृश्य होने वाला स्वर है, फिर आगे भैरव में वह स्वर होता ही नहीं।

उत्तर—तुमने ठीक कहा। रामकली भैरव के पूर्व गाये जाने पर ही शोभा देगी। रात्रि के अन्तिम प्रहर में दोनों मध्यम वाले राग दूसरे भी हैं। इनमें तीव्र म अधिक होता है। इस रामकली में यह स्वर अब विदा होने के मार्ग पर आ जाता है। कोई

कुछ भी कहे, परन्तु हमें अपने प्राचीन पंडितों की रचना में बहुत कौशल दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे अनुभव अधिक होने लगता है, वैसे-वैसे यह अपने आप ज्ञात होने लगता है कि अभी हमें बहुत कुछ सीखना है।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि रामकली के गीत अमुक स्वर से ही आरम्भ होते हैं। "सा, मग, मपधु, प" यह प्रारम्भिक भाग तुम्हें भैरव व रामकली दोनों में दिखाई देगा। परन्तु रामकली में पंचम स्वर श्रोताओं के लक्ष्य का तत्काल भेदन कर देता है। रामकली में "मंप, धुनिधुप" इस प्रकार का जो टुकड़ा आ सकता है, वह भैरव में कभी नहीं चल सकता। "मगरेसा', यह स्वरसमुदाय दोनों रागों में आता है, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार से ग्रहण किया जाता है। भैरव में 'मग रेसा" की मीड़ बताई है। रामकली में "ग, मग, रेरेसा" इस प्रकार करना पड़ता है। यह टुकड़ा मेरे साथ दस-बीस बार तुम्हें बोलना पड़ेगा। इसमें "गमग" ये स्वर किस तरह लेता हूं यह देखो। भैरव में प्रयुक्त होने वाली वह मीड़ यहां बिलकुल नहीं चल सकेगी। "नि सा, गमम, प, धुप, धुप, मंपगमरे, सा" यह भाग ध्यान में जमालो, यह गायकी का टुकड़ा है। इन स्वरों को गाते ही रामकली स्पष्ट दिखाई देगी। "सा, ग, मप, धुप, मगरे, पमगरेसा" इन स्वरों को विलम्बित रूप से गाया कि भैरव हुआ। इनमें कहां-कहाँ किस प्रकार से कण लगाये जाते हैं यह भी देखो। यदि ये कण नहीं आये तो यह नहीं कि राग अशुद्ध हो जावेगा; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि ये कण आगये तो राग अधिक सुन्दर बन जायेगा। ये कण ऊपर के स्वरों के ही प्रायः लगाये जाते हैं। पंचम पर मैं किस प्रकार रुक जाता हूँ, तथा तीव्र मध्यम को धीरे से पंचम में किस प्रकार मिला देता हूं, यह ध्यानपूर्वक देखकर सीखलो। "धुधुप, मंप, गमरेसा" इतने स्वर ही प्रथम अच्छी तरह गाकर सीखने चाहिये। "धुधु, प" स्वर विलंबित में, विभास राग का आभास होने पर्यन्त, खींचे जावें व उनमें "मंपग" मरेसा" ये भिन्न टुकड़े जोड़ दिये जावें। केवल मन्द्र स्थान में विशेष हलचल नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यहां भैरव राग से दूर रहना है। "साधु" इस प्रकार मींड़ ली कि रामकली का रङ्ग बिगड़ा। "सा, धुसा" इस प्रकार से यह टुकड़ा धैवत का स्पर्श करते हुए कहीं-कहीं दिखा दिया तो चल जायेगा। ऐसी छोटी-छोटी अनेक तानें जो पंचम पर समाप्त हों, लेते रहना चाहिये तथा श्रोताओं का ध्यान खासतौर से इस स्वर की ओर खींचना चाहिए। बीच-बीच में "ग, मगरेसा, गम," लेकर इसमें ' धु, मंप, धुनिधुप, प, गम, रेसा" भाग जोड़ देना चाहिये। पहिले टुकड़े में व्यस्त (खुले) रूप से मध्यम का प्रयोग करने पर चमत्कारिक परिणाम उत्पन्न होगा। यहां संभवतः ललित राग का अङ्ग दिखाई पड़ेगा। परन्तु "गम, धु, धुपमंपगमरेरेसा" इन स्वरों के प्रयोग से समस्त शंका दूर हो जावेगी! रामकली गाते हुए सदैव भैरव अङ्ग उत्पन्न करने का संकल्प करना चाहिए व साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह कालिंगड़ा जैसा स्वरूप श्रोताओं को ज्ञात न होने पावे। "मंप, धुनिधुप, इन स्वरों को गाते हुए निषाद को केवल 'ईषत्स्पर्श" नियम से दिखाया जावे। इससे स्वतन्त्र प्रभाव उत्पन्न होगा और यह राग अन्य समप्रकृतिक रागों से दूर किया जा सकेगा। हमारे गुणीजनों का यह कथन मिथ्या नहीं है कि अभ्यास एक अद्भुत चीज है। मुस्लिम गायकों के सम्मुख हिंदू गायकों की तेजस्विता नहीं प्रकट होती (लगभग आजकल तो ऐसा ही मत है) इसका कारण मेरे विचार से उचित रियाज का अभाव है। हिंदू गायकों में बुद्धि कम नहीं होती, परन्तु इस क्रिया-सिद्ध विषय में केवल बुद्धि ही सफलता नहीं दिला सकती। बचपन से ही मृदङ्ग या तबलावादक की

संगति से दमदार एवं सुरीली आवाज़ से रियाज करते रहने पर अच्छी तरह से गायन-पटुता आ सकती है। हमारे हिन्दू गायकों को दूसरी कोई कठिनाई नहीं है, कठिनाई है तो हिन्दी भाषा का अज्ञान। इसे दूर करने का सरल उपाय यह है कि शिक्षार्थियों को अपने गुरु से अपनी चीजों का अर्थ स्पष्ट समझकर ग्रहण करना चाहिये। कभी-कभी हमारे हिन्दी-गायक भी शब्दोच्चारण ग़लत करते हैं, चाहें जिस शब्द पर तान लेने लगते हैं और इस प्रकार वे हिन्दी भाषा के जानकार लोगों को हँसने का कारण उपस्थित कर देते हैं। यहां यह बचाव बिलकुल नहीं चल सकेगा कि "क्या यह हमारी भाषा है ?" हिन्दी चीज गाते हुए शब्दोच्चारण की ओर दुर्लक्ष्य करने से कैसे काम चलेगा ? अस्तु, आरोह में म नी, वर्ज्य करने वाला रामकली का जो स्वरूप मैंने बताया है उसमें "सा, मग, पप, धुप, नीधुप, मग, धुप, गम, रेरेसा" इस प्रकार स्वर प्रयोग करने होंगे। अवरोह में म, नी स्वर उचित रीति से दिखाने पर विभास का अङ्ग दूर होजायगा। प्रातःकालीन रागों में सा, म, प, में से कोई एक स्वर वादी बनाने से असंगति उत्पन्न नहीं होती, इसलिए कोई-कोई गायक रामकली में पंचम स्वर पर बहुत काम करते हैं और यह सुन्दर भी दिखाई देता है। अच्छा, अब यह बताओ कि मेरे बताये हुए रामकली के भेद तुमने किस प्रकार ध्यान में जमाये हैं ?

प्रश्न—हमने ये तीन स्वरूप ध्यान में जमा रखे हैं। (१) निसा, ग, मप, धु, प, निधुप, गमरेसा; सांनिधुनिधुप, गमधुप, गमरेरेसा, गमधु, प; (२) ग, मरेसा, रेसा, निधु, गम, धु, पमंप, धधुनिधुप, गमरे, सा; (३) सा, ग, पमंप, धुमंसां, निधुप, पधुप, गमरे, सा, साधुसा, गमरे, धुप, गमरेरेसा, धुप.

उत्तर—मैं समझता हूं कि तुमने ये उठाव अच्छी तरह से ध्यान में रख लिये हैं। जिस प्रकार भैरव में मन्द्र व मध्यस्थान शोभा देते हैं, उसी प्रकार रामकली में मध्य व तार स्थान रंजकता उत्पन्न करते हैं। मन्द्र स्थान में प्रवेश करते हुए भैरव न आने की सावधानी की गई तो रामकली में मन्द्र स्थान के स्वरों का उपयोग करना तुम्हें याद हो जावेगा। इस जगह मीड़ की उलझन में नहीं पड़ना है। "साधु, मगरे, सा, साधु, प, मगरे, पमगरेसा" यह भाग रट लेने का प्रयत्न करो; क्योंकि यह भैरव का जीवभूत अङ्ग है।

हमारे संस्कृत ग्रन्थों में रामकली, रामकेली, रामकृति, रामक्रिया, रामकिरी, रामकरी, रामक्री आदि नाम प्राप्त होते हैं। रागों के नाम हमारे गायकों द्वारा अनेक प्रकार से बदले जाकर ग्रहीत हुए हैं। यह देखते हुए भी हमें इनके सुधारने के झंझट में पड़ने की आवश्यकता नहीं। मियां की तोड़ी, मियां की सारङ्ग, विलासखानी तोड़ी, लाचारी तोड़ी आदि नाम हिन्दुस्थानी पद्धति में अब इतने साधारण हो गये हैं कि इनके औचित्य, अनौचित्य की ओर ध्यान देने की किसी को आवश्यकता ही नहीं रही। स्वयं लक्ष्यसङ्गीतकार ने प्रचलित नाम ही स्वीकार करना अच्छा समझा। जो स्पष्ट रूप से संस्कृत नाम हैं, उन्हें उसी प्रकार शुद्ध मानने में कोई हानि नहीं, परन्तु यावनिक नाम यथावत् रहें तो भी चल सकेगा। मैं यह कह चुका हूँ कि प्रायः गायक लोग एक ही बैठक में भैरव व रामकली को गाना टालते रहते हैं, क्योंकि ये राग समप्रकृतिक हैं। प्रायः ये गायक तानबाजी करते हैं और इन्हें इस कारण दोनों रागों का अलग-अलग विस्तार करना कठिन हो जाता है। परन्तु यह हरएक व्यक्ति कहेगा कि नियमों को उत्तम रूप से समझे हुए अर्थात् बुद्धिमान के लिये

यह कार्य इतना कठिन नहीं होता। मैंने पहले कहीं-कहीं अवरोह में कोमल निषाद लिया था, यह तुम्हें दिखाई दिया होगा। इससे यह न समझना चाहिये कि कोमल निषाद से स्वतन्त्र अवरोह "सां नि॒ ध॒ प" हो सकेगा। यह स्वर रामकली में कहीं-कहीं केवल रंजकता वृद्धि के लिये विवादी स्वर के रूप में गायक लोग प्रयुक्त करते हैं। मजा यह है कि तीव्र मध्यम लेने वाली तान में भी यह स्वर अनेक बार जोड़ दिया जाता है। इसी वजह से मैंने तुम्हें सुझाया था कि यह 'मं प ध॒ नि॒ ध॒ प' का टुकड़ा किसी अन्य राग का रामकली में प्रविष्ट हो जाता है। यदि यहां पंचम को षड्जत्व दिया जावे तो 'नि॒ सा रे॒ ग॒ रे॒ सा' यह तान उपरोक्त तान के रूपांतर में प्राप्त होगी। परंतु षड्ज परिवर्तन व षड्ज संक्रमण के विषय अलग-अलग हैं। इन विषयों पर यहां संक्षेप में नहीं बताया जा सकता। अभी तुम्हें इतनी गहराई में जाने की जरूरत नहीं है। रामकली का न्यास-स्वर कोई पंचम मानता है, कोई षड्ज मानता है। अवरोह में रिषभ स्वर पर अधिक जोर न देने में बड़ी विशेषता है। यहां तुम जितने अधिक आंदोलन लोगे, उतना ही अधिक तुम्हारा राग भैरव की ओर चला जावेगा। कुछ गायक 'ग,म रे॒ सा, ग, म प, मं प, ध॒ प' स्वर इस खूबी से गाते हैं कि वे श्रोताओं को 'जोगिया' नामक राग का थोड़ी देर के लिए आभास करा देते हैं तथा भैरव को दूर रखते हैं। उन्हें ज्ञात रहता है कि गांधार वर्ज्य न होने से जोगिया से यह राग सहज में अलग हो जायगा। रामकली राग भैरव अङ्ग का होने से इसका ग्रन्थों में 'मालवगौड़' थाट में प्राप्त होना आश्चर्य की बात नहीं है। राग-लक्षणकार कहता है:—

> मायामालवगौलाख्यमेलाज्जातः सुनामकः ।
> रागो रामकलिश्चैवस न्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
> आरोहे मनिवर्जं चाप्यवरोहे समग्रकम् ॥

कुछ संस्कृत ग्रंथकारों ने राग रामक्रिया या शुद्ध रामक्रिया को 'पूर्वी थाट' में माना है। मैं समझता हूँ कि रामकली व रामक्रिया, ये दोनों राग भिन्न-भिन्न मान लेने पर उन ग्रंथकारों के उपरोक्त मत से अपने प्रचलित राग रामकली को कोई बाधा न आ सकेगी।

प्रश्न—अपने यहां रामकली में दोनों मध्यम ग्रहण करने का प्रचार है, तो क्या इस से यह ज्ञात नहीं होता कि हमारे गायकों ने संस्कृत ग्रंथकारों के मत को सम्मान देने के लिये ही इस प्रकार का स्वरूप स्वीकार किया होगा ?

उत्तर—इस प्रश्न का विश्वस्त उत्तर कैसे दिया जा सकता है ? शायद ऐसा ही हो।

प्रश्न—जो रामक्रिया को 'पूर्वी थाट' का राग मानते हैं, वे इसके वर्ज्य स्वरों के नियम कैसे नियत करते हैं ?

उत्तर—प्रथम तो यह बात याद रखने की है कि अपने उत्तर की ओर के गायक रामकली व रामक्रिया इस प्रकार के दो अलग-अलग राग गाते ही नहीं, वे सदैव 'रामकली' नाम का ही उपयोग करते हैं। मैंने तुम्हें सुझाया ही है कि पूर्वी थाट में आरोह

में म नि, वर्ज्य कर एक नवीन रूप उत्पन्न हो सकेगा। इस रूप को ग्रंथाधार भी प्राप्त हैं और यह सुन्दर भी दिखाई देगा। पूर्वी थाट को ही अनेक ग्रन्थकार 'रामक्रिया थाट' कहते हैं। रामक्री राग के आरोह-अवरोह के सम्बन्ध में ग्रन्थों में मतभेद है। यह गायकों की इच्छा पर निर्भर है कि वे कौनसा रूप पसन्द करते हैं।

प्रश्न—हमारे रामकली राग में न जाने कब से दोनों मध्यम प्रविष्ट हुए हैं ?

उत्तर—यह सब ऐतिहासिक गुत्थी ही कही जा सकती है। इसका सम्बन्ध उस युग से है, जबकि हमारी पद्धति में मध्यम का महत्व और स्थान अच्छी तरह समझकर राग-व्यवस्था की गई थी। वह काल 'अमुक समय' ही था, यह निश्चित करने के साधन आज प्राप्त नहीं हैं। इसी तरह के अन्य उदाहरण भी देखो ! "पूर्वी, गौरी, परज, वसन्त, ललित" इत्यादि राग अपने ग्रंथों में 'मालवगौड़' थाट में बताये हुए हमें प्राप्त होंगे। मजा यह है कि ये सभी राग हमारे हिन्दुस्थानी गायक इस समय गाते हैं, परन्तु इनमें दोनों मध्यमों का उपयोग नहीं करते हैं। तीव्र मध्यम कैसे व कब इन रागों में आगया, यह बात गायक भी नहीं बता सकते। मैं समझता हूँ कि यह बात भी गलत नहीं है कि ये राग तीव्र मध्यम रहित अपने यहां शायद ही सुनने को प्राप्त हों। तुम्हें हिंदुस्थानी पद्धति के मूलतत्व अब समझ में आगये हैं। अतः चाहे तुम यह न बता सको कि यह तीव्र मध्यम कब शरीक हो गया, परन्तु यह अवश्य समझ सकते हो कि यह स्वर क्यों सम्मिलित हुआ होगा। तुम तत्काल ही कह सकते हो कि ये राग जबकि रात्रिकालीन मानकर निश्चित किये गये तभी इनमें, तीव्र म सम्मिलित किया गया।

प्रश्नः—परन्तु इतना और कहेंगे कि इन रागों में कोमल म बिलकुल ग्रहण न करने से तीव्र म बिलकुल स्वतन्त्र हो जायगा, इसीलिये दोनों मध्यमों का उपयोग गायकों ने पसंद किया होगा। एक म थाट वाचक व दूसरा मं कालवाचक कहा जावेगा। परंतु क्यों गुरूजी ! सांयकालीन रागों में कहीं कोमल म आता होगा, तो भी हम समझते हैं कि उसका प्रयोग बहुत थोड़े रूप में होता होगा ?

उत्तर—तुम्हारा अनुमान सही है। उदाहरणार्थ 'पूर्वी' राग को ही लो। इसमें कोमल म बहुत ही थोड़ा लगता है। आगे चलकर तुम देखोगे कि यमन में जिस प्रकार कोमल म का अल्प प्रयोग ग्राह्य है, उसी प्रकार पूर्वो भाग में भी इस स्वर का सीमित प्रयोग होता है।

प्रश्न—क्या ऐसा होना ही चाहिए, बिना इस प्रयोग के क्या हानि होगी ?

उत्तर—मैं बता ही चुका हूँ कि प्राचीन रागों में सर्वत्र कोमल म बताया गया है। 'पूर्वी' राग का गायन समय संध्याकाल होने से समस्त रागवैचित्र्य तीव्र म पर अवलंबित हो जाता है। रामकली में इसके विपरीत बात है। उसमें तीव्र म गौण है तथा रागवैचित्र्य कोमल म पर अवलम्बित हो जाता है। मैं यहां सांयकालीन रागों पर विचार करना पसन्द नहीं करूंगा। रामकली का तीव्र म आरोह में व पूर्वी का कोमल म अवरोह में देखकर मर्मज्ञों को सचमुच ही बड़ा आनन्द मालूम होता है। अस्तु, अब आगे चलें। रामकली का अन्य एक रूप और भी कहीं-कहीं पर दिखाई पड़ता है। इसमें थोड़ासा कोमल गांधार का उपयोग भी किया जाता है। मुझे एक गायक ने यह भेद इस प्रकार गाकर दिखाया था। "प प रे̱ सा, रे̱ ग ऽ म, ध̱ ऽ ध̱ प, ध̱ नि̱ ध̱ प, ग म ध̱ ध̱, प प ध̱ म,

प ग़ु ऽ प, रे़ रे़ सा ऽ" कोमल ग, नी स्वर गौण रखने व भैरव अङ्ग प्रबल रखने पर यह स्वरूप मनोरञ्जक हो जाता है। गांधार का प्रमाण बढ़ जावे तो यहां टोड़ी का कोई मिश्र रूप उत्पन्न हो जावेगा और उसे 'रामतोड़ी' जैसा कोई नाम देना पड़ेगा।

प्रश्न—इस दोनों गांधार वाली रामकली का अन्तरा उस गायक ने किस प्रकार गाया था?

उत्तर—अन्तरा उसने भैरव जैसा ही गाया था, परन्तु उसके अन्तिम भाग में उसने स्थायी का कोमल ग वाला टुकड़ा युक्तिपूर्वक इस प्रकार जोड़ दिया था:—"प ऽ प प, ध़ु ध़ु नी नी, सां ऽ सां ऽ, सां रें़ सां ऽ, ध़ु ऽ ध़ु ध़ु, नी ध़ु सां नी, ध़ु ऽ ध़ु ऽ, नी ध़ु प ऽ, ग म नी ध़ु प ऽ ध़ु म, प ऽ ऽ ग़ु, प रे़ ऽ सा, इसमें पंचम स्वर लेते हुए मैंने कहां-कहां पर किस प्रकार से तीव्र म की आस लगाई है, यह ध्यान में रखने योग्य है। इसके प्रयोग से ही यह स्वरूप भैरव से अलग किया जा सकता है। यह बहुत गूढ़ बात है। कोमल ग पर जाते हुए "मं प ग़ु, प, रे़ रे़ सा" इस टुकड़े में ही इस स्वरूप की समस्त विशेषता निहित है, यह कहना गलत नहीं है। यह प्रत्येक व्यक्ति कह देगा कि थोड़ा सा ही कोमल ग ग्रहण कर लेने पर एक नवीन प्रकार उत्पन्न हो जाता है, यह स्वर पंचम से युक्तिपूर्वक जोड़ दिया जाता है।

प्रश्न—आपका कथन हम अच्छी तरह समझ गये। अब रामकली, रामक्री, रामक्रिया आदि रागों के सम्बन्ध में हमारे ग्रंथकारों ने क्या कहा है, यह देखना है?

उत्तर—ठीक है, कहता हूं:—

स्वरमेलकलानिधौ:—

शुद्धाः सरिपधाश्चैव च्युतपंचममध्यमः।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः॥
शुद्धरामक्रियामेलः स्यादेभिः सप्तभिः स्वरैः॥

सङ्गीतसारामृते:—

शुद्धाः सपरिधाः स्युर्विकृतपंचममध्यमः।
गांधारोऽतरसंज्ञश्च काकल्याख्यनिषादकः॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः शुद्धरामक्रिमेलकः।
अत्र रागाः शुद्धरामक्रियाद्याः संभवंति हि॥

सद्रागचंद्रोदये:—

शुद्धौ सरी शुद्धपधैवतौ चेन्मनामधेयो लघुपूर्वकश्च।
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चेद्विशुद्धरामक्रयभिधस्य मेलः॥
मेलादमुष्माच्च विशुद्धरामकृतिस्तथा त्रावणिकाभिधाना॥

यहां पर पुण्डरीक ने रामक्रिया नाम का उपयोग करते हुए 'रामकृति' नाम प्रयुक्त किया है। यदि कोई कहे कि यह वर्णन तो "शुद्ध रामक्रिया" राग का हुआ, 'रामक्रिया' के सम्बन्ध में यह आधार कैसे हो सकता है ? यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है और इस प्रश्न पर कुछ संतोषजनक उत्तर प्राप्त हो सके तो अच्छा होगा। एक पंडित ने मुझे बताया था कि जिस उद्देश्य से 'शुद्ध' शब्द लगाकर अपने सङ्गीत में राग-भेद हो सकते हैं, उसी बात को देखते हुए "शुद्ध रामक्री" पूर्वी थाट में व "रामक्री" भैरव थाट में सम्मिलित करना सुविधाजनक होगा। इस बात पर तुम समय निकालकर विचार करना। इस सम्बन्ध में सोमनाथ का थोड़ा सा आधार दिया जा सकता है:—

मालवगौडकमेले सरिमपधा एव पंच शुद्धाः स्युः ।
मृदुमध्यममृदुषड्जौ चास्मान्मेलाद्भवन्तीमे ॥
मालवगौडो गौड्यौ पूर्वीपहाडी च देवगांधारः।
गौडक्रिया कुरंजी, बहुली रामक्रिया चापि ॥

—रागविबोधे

'रामक्री' का लक्षण सोमनाथ ने इस प्रकार दिया है:—

संपूर्णा रामक्रीः सांशांतादिः सदाऽपि गांशाद्या ।

यहां शुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं है। इस राग को भैरव थाट में मान लेने पर उसे रामकली समझा जा सकेगा। पुण्डरीक विट्ठल ने अपनी रागमाला में 'रामक्री' को देशकार राग की एक भार्या माना है और उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

पूर्णेंद्वास्या सुमुक्तामणितरलगला नीलवस्त्रं दधाना ।
कूर्पासं रक्तवर्णं करचरणयुगे कंकणे नुपुरे च ॥
रामक्रीश्चंचलाक्षी विमलतर × रुद्गारयंती विदग्धा ।
शृंगाराढ्या त्रिषड्जा त्वनलगतिगनी राजते सर्वदैव ॥

इस श्लोक में 'अनलगति' ग, नी कह देने से रि, ध,ग,नी स्वर भैरव थाट के हो ही सकते हैं।

प्रश्न—ठीक है ! परन्तु उसने देशकार का थाट कैसे बताया है ?

उत्तर—वह उसने इस प्रकार वर्णित किया है:—

जातोऽघोराख्यवक्त्रात्त्रिगतिगनिगमाः सत्रिपूर्णोत्र रागे ।
रक्तांगः पद्मनेत्रः सितगजगमनो बाखरेजस्य मित्रम् ॥
कंठे मुक्तैकमालो धृतमुकुटशिरश्चित्रवासाः सखड्गो ।
मध्यान्हे योधसंघे सुललितशिशिरे देशिकारश्चकास्ति ॥

यहां नि, ग, म, स्वर 'त्रिगतिक' बताये गये हैं, यह तुम देखते ही रहे हो?

प्रश्न--जीहां देख लिया। यह पूर्वी थाट का देशकार होगा, ठीक है न?

उत्तर—बिलकुल ठीक! 'रामक्री' के वर्णन में मध्यम त्रिगतिक न होने से वह स्वर शुद्ध रहता है तथा थाट भैरव रह जाता है। यह समझ ही गये होगे?

पारिजाते:--

रिकोमला गतीव्रा या मतीव्रतरसंयुता ।
धकोमला नितीव्रा च ख्याता रामकरीति सा ॥
आरोहे मनिवर्ज्या स्यात् पांशा धैवतमूर्छना ।

इस वर्णन में म तीव्र बताया है और आरोह में म, नी वर्ज्य करना कहा गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पूर्वी थाट होता है। इस प्रकार वर्णन देखकर ही शायद अपने गायकों ने यह निर्णय किया होगा कि रामकली राग, रामक्रिया या रामक्री रागों से मध्यम भिन्न होने से अलग ही माना जावेगा। आरोह में दोनों में म, नी, स्वर वर्ज्य किये जायेंगे। दोनों मध्यम की रामकली, इनका मिश्रण ही होगी।

प्रश्न--आपने कहा था कि लोचन पंडित का ग्रन्थ उत्तर भारत का समझा जाता है। इसमें रामकली के विषय में क्या कहा गया है?

उत्तर—इसने राग का नाम "रामकरी" दिया है और राग का थाट 'गौरी' माना है।

प्रश्न--अर्थात् वह भैरव ही हुआ?

उत्तर--हां! प्रत्यक्ष देखो कि इसने थाट वर्णन किस युक्ति से दिया है:—

"शुद्धाः सप्तस्वराः कार्या रिधौ तेषु च कोमलौ ।
टोड़ी सुरागिणी गेया ततो गायकनायकैः ॥
एवं सति च गांधारो द्वे श्रुती मध्यमस्य चेत् ।
गृह्णाति काकली निः स्यात् तदा गौरी प्रवर्तते ॥

प्रश्न—तरङ्गिणी का शुद्ध थाट काफी है। इसमें प्रथम रि, ध कोमल होने से टोड़ी और ग नी तीव्र होने से भैरव होता है। ठीक है न?

उत्तर—परन्तु यह तो तुम्हें ज्ञात ही है कि हमारी हिंदुस्थानी पद्धति की टोड़ी में म नी तीव्र और रि ध ग कोमल होते हैं। हमारे भैरवी थाट को ग्रन्थकार टोड़ी कहते थे। यह प्रचलन दक्षिण की ओर आज भी है। राग तरङ्गिणीकार ने 'रामकरी' नाम स्वीकार किया है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि रामकली, रामक्री, रामकरी आदि नामों का प्रयोग करने में ग्रंथकारों ने बड़ी असावधानी से काम लिया है। अपने प्रचार में एक ही नाम "रामकली" दिखाई पड़ता है। पार्श्वदेव के 'सङ्गीतसमयसार' ग्रंथ में इस प्रकार कहा है:--

टक्करागोद्भवा भाषा योक्ता कोलाहलाख्यया ।
तदुपांगं रामकृतिः षड्जन्यासोपशोभिता ।
मध्यमांशा पहीना च रसे वीरे नियुज्यते ॥

प्रश्न—परन्तु पार्श्वदेव का 'टक्क' राग किस थाट का होगा, इसका निर्णय होना चाहिये न ?

उत्तर—हां, यह ठीक है ! इस पंडित ने रत्नाकर के ही ग्रामराग स्वीकार किए हैं; इसलिये 'टक्क' के लक्षण इस प्रकार होंगे :—

षड्जमध्यमयासृष्टो धैवत्या चाल्पपंचमः ।
टक्कः सांशग्रहन्यासः काकल्यंतरराजितः ॥
प्रसन्नांतान्वितश्चारुसंचारी चाद्यमूर्छनः ।
मुदे रुद्रस्य वर्षासु प्रहरे चापि पश्चिमे ॥
वीररौद्राद्भूतरसे युद्धवीरे नियुज्यते ।

मैं समझता हूँ कि यदि शार्ङ्गदेव के 'टक्क' राग का निर्णय हो जावे तो इसका भी हो जावेगा ।

प्रश्न—शार्ङ्गदेव ने 'रामकली' बताई है क्या ?

उत्तर—उसने रामकली बताई है तथा उसके लक्षण इस प्रकार वर्णन किये हैं:—

कोलाहला टक्कभाषा सग्रहांशा पवर्जिता ।
सधमंद्रा मभूयिष्ठा कलहे गमकान्विता ॥
तज्जा रामकृतिर्वीरे मांशा सांता पवर्जिता ।
भाषांगत्वेऽप्युपांगत्वमतिसामीप्यतोऽत्र च ॥
शार्ङ्गदेवेन निर्णीतमन्यत्राप्यूह्यतां बुधैः ॥

इस पर कल्लिनाथ इस प्रकार टीका करते हैं:—

बहुलीपर्यायभूतां रामकृतिं लक्षयित्वा भाषांगत्वेप्युपांगत्वमतिसामीप्यतोऽत्र चेत्युक्तम्। अस्यायमर्थः कोलाहलोत्पन्नाया रामकृतेर्भाषांगत्वेऽतिसामीप्यतः। सामीप्यमत्र सादृश्यं विवक्षितम् । तेन यत्र किंचित्सादृश्यं तत्रोपांगत्वं, यत्रांगत्वसादृश्यं तत्रो । पांगत्वमिति न्यायेनात्रोपांगत्वं च निर्णीतमिति ।"

बहुली राग का थाट अन्य ग्रंथकार अपने भैरव थाट जैसा ही मानते हैं । 'टक्क' का थाट भी कोई-कोई वही मानते हैं । पार्श्वदेव ने अपने ग्रंथ में 'भैरव' राग का भी संक्षिप्त वर्णन किया है । पहिले बताये हुए रामकली के लक्षण सुनाते समय मेरी दृष्टि इस वर्णन की ओर भी गई थी । वे लक्षण तुमको सुनादूँ ? इन्हें तो मुझे पहिले ही बताना चाहिये था, यह अवश्य ही मेरी भूल हुई !

प्रश्न—जी हां सुना दीजिए। यदि अब सुना दिया तो भी क्या हुआ ?

उत्तर—ठीक है ! वे लक्षण इस प्रकार हैं। देखो:—

भिन्नषड्जसमुद्भूतो मन्यासो धांशभूषितः।
समस्वरो रिपत्यक्तः प्रार्थने भैरवः स्मृतः ॥

प्रश्न—और भिन्नषड्ज कैसा बताया गया है ?

उत्तर—वह अलग से नहीं बताया, उसके लक्षण 'रत्नाकर' से ही लेने पड़ेंगे। यह तुम्हें ज्ञात ही है कि इस सम्बन्ध में शार्ङ्गदेव क्या कहता है।

प्रश्न—पार्श्वदेव ने अपने समयसार ग्रंथ में राग-रचना किस प्रकार की है, यह बात क्या आप संक्षेप में सुना सकेंगे ?

उत्तर—हां ! इसने अपने ग्रंथ में वस्तुतः देशी-संगीत ही बताया है। देशी-संगीत में रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग रागों का समावेश होता है। शार्ङ्गदेव भी इस प्रकार कहता है। देखो:—

अथ रागांगभाषांगक्रियांगोपांगनिर्णयम्।
केषांचिन्मतमाश्रित्य कुरुते सोढलात्मजः ॥
रंजनाद्रागता भाषा रागांगादेरपीष्यते।
देशीरागतया प्रोक्तं रागांगादिचतुष्टयम् ॥

पार्श्वदेव ने आरम्भ में स्वर, ग्राम, मूर्छना, आलाप, गमक, स्वरस्थान आदि बता कर फिर ग्राम-राग व उनके नाम बताए हैं। इतना करने के पश्चात् वह आगे देशी राग प्रपंच की ओर झुका, उसका वर्गीकरण इस प्रकार दिखाई देता है:—

सम्पूर्ण रागांगराग १२

(१) मध्यमादि	(५) आम्रपंचम	(९) दीपक
(२) शंकराभरण	(६) घन्टा राग	(१०) तोड़ी
(३) देशी हिंदोल	(७) गुर्जरी	(११) सोमराग
(४) शुद्ध बंगाल	(८) मालवश्री	(१२) वराली

षाडव रागांगराग ४

(१) गौड़ (२) देश (प हीन) (३) धन्नासी (४) देशाख (रि हीन)

औडुव रागांगराग ४

(१) भैरवी (२) श्री (३) मार्गहिंदोल (४) गुंडक्री (रि प हीन)

सम्पूर्ण भाषांगराग २१

(१) कैशिक	(३) वेलावली	(५) नट्टा
(२) आदिकामोद	(४) शुद्धवराली	(६) आरभी

(७) बृहद्दाक्षिणात्या
(८) दाक्षिणात्या
(९) पौराली
(१०) भिन्नपौराली
(११) मधुकरी
(१२) रगन्ती
(१३) सेरंजी
(१४) प्रथममंजरी
(१५) शालवाहिनी
(१६) नटनारायणी
(१७) उत्पली
(१८) वेगरंजी
(१९) तरंगिणी
(२०) धानी
(२१) नादांतरी

षाडव भाषांगराग ११

१–कर्णाट बंगाल (प हीन)
२–सौवीर (")
३–आंधाली (स हीन)
४–श्रीकंठी (")
५–नीलोत्पली (स हीन)
६–शुद्धगौडी (रि हीन)
७–गौडी (")
८–सौराष्ट्री (")
९—भंमाली (रि हीन)
१०–सैंधवी (नि हीन)
११–छाया (स हीन)

औडुव भाषांगराग १५

१–नादध्वनि
२–अहीरी
३–काम्भोजी
४–पुलिंदी
५–कच्छली
६—वोहारी
७—गोल्ली
८—गांधारगति
९—ललिता
१०–त्रावणी
११–सैंधवी
१२–डोंबक्री
१३–सैंधव
१४–कालिंदी
१५–खसिता

सम्पूर्ण उपांगराग १८

१–सैंधव वराल
२–कुन्तल वराली
३–तुरुष्क तोड़ी
४–सौराष्ट्री
५–गुर्जरी
६–द्राविडी गुर्जरी
७—कर्णाट गौड
८—छाया बिलावल
९—भैरवी
१०–सिंहली
११–कामोदी
१२–देवाल (देशवाल)
१३–मुहाली (सिंघली कामोद)
१४–छायानट्टा

अगले चार नाम मेरी प्रति में नहीं हैं। रत्नाकर में २७ उपाङ्ग दिये गये हैं।

षाडव उपाङ्गराग ७

१–महाराष्ट्र गुर्जरी
२–खम्बावती
३–कुरन्जी
४–रामक्री
५–भुन्जी
६–मल्लारी
७–भल्लाती

औडुव उपाङ्गराग ६

१–छाया तोड़ी
२–देशवाल गौड़
३–तुरुष्क गौड़
४–प्रताप बेलावली
५–पूर्णा
६–मल्लार

क्रियांगराग ३

१–देवक्री
२–त्रिनेत्रक्री
३–स्वभावक्री

इस प्रकार पार्श्वदेव ने लगभग १०२ देशी राग बताए हैं। इन सभी के लक्षण उसने नहीं बताए, कुछ अवश्य कह दिए हैं। अभी तक 'समय सार' ग्रन्थ प्रकाशित नहीं

हो सका, इसलिये मैंने तुम्हें यह जानकारी दी है। मुझे मिली हुई हस्तलिखित प्रति में कुछ रागों के नाम गलत भी हो सकते हैं, परन्तु मेरी प्रति में वे जिस प्रकार बताए गए हैं, वैसे ही मैं बता रहा हूं। पार्श्वदेव ने अपने शुद्ध और विकृत स्वर समझाने का उचित साधन पाठकों के लिए प्रस्तुत नहीं किया। उसने रत्नाकर की ही कई बातें लेकर अपनी भाषा में लिखदी हैं। इसके ग्रन्थ से यह भी ज्ञात नहीं होता कि उसे रत्नाकर का कठिन भाग समझ में आ चुका था। अस्तु, अब हम पुनः रामकली की ओर चलें। एक हिन्दू गायक ने मुझे बताया था कि उसके घराने में रामकली भैरव की एक रागिनी मानी जाती है।

प्रश्न—उसने उसका राग-वर्गीकरण किस प्रकार बताया ?

उत्तर—सुनो, कहता हूँ:—

१—श्रीराग

१-परज, २-धनाश्री, ३-पूर्वी, ४-गौरी, ५-त्रिवेणी, ६-मारवा।

२—भैरव

१-भैरवी, २-रामकली, ३-आसावरी, ४-खमाज, ५-गुर्जरी, ६-हमीर।

३—दीपक

१-केदार, २-नट, ३-भूप, ४-यमन, ५-शुद्धकल्याण, ६-अलय्या।

४—हिंदोल

१-पूरिया, २-शंकरा, ३-वसंत, ४-पंचम, ५-मालश्री, ६-ललित।

५—मेघ

१-सोरट, २-दरबारी, ३-गौंड, ४-मधमाद, ५-छाया, झिंझोटी।

६—मालकंस

१-बागेश्री, २-सोहनी, ३-तोड़ी, ४-बङ्गाली, ५-भीमपलासी, ६-बिहाग।

प्रश्न—यह वर्गीकरण कुछ नवीन धरातल पर किया हुआ ज्ञात होता है। भला भैरव की, खमाज व हमीर रागनियां मानने में क्या खूबी होगी ? यह कारण तो नहीं है कि इनमें भी धैवत जरा अधिक मात्रा में आगे लाया जाता है ? आपने उससे कुछ प्रश्न नहीं पूछे क्या ?

उत्तर—हां हां मैंने, वह वार्तालाप लिखकर रख लिया है। उनसे मैंने अनेक रागों के सम्बन्ध में जानकारी मांगी थी। वह सब मैं यथास्थान, आवश्यकता होने पर कहूंगा। उसने कहा था कि हमारे घराने का यह मत है कि राग व रागिनी में कुछ बातों का साम्य तो होना ही चाहिये।"

प्रश्न—वह कौनसा घराना ?

उत्तर—उसने बताया कि "हमारी गायकी सदारंग-अदारंग से आई है।" मैंने यह पूछा था कि 'भैरव में और हमीर, खमाज' में कौनसा साम्य है। इस पर उसने एक साधारण उत्तर दिया कि "राग-रागनियों में गायकी तो समान मिलेगी।" उसने प्रथम ही यह स्वीकार कर लिया था कि उसकी गायकी अन्य गायकों से भिन्न है। उसका मत इस प्रकार भी दिखाई दिया कि भैरव का धैवत कोमल नहीं, बल्कि शुद्ध है। कोमल स्वर का दर्जा उसके मत से शुद्ध से निचला होता है। रामकली में उसने अति कोमल री का प्रयोग बताया है। हमारे लिये 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' इस न्याय से चलना ही पर्याप्त है।

प्रश्न—तो फिर इस विद्वान ने एक सप्तक में बारह से अधिक स्वर माने होंगे? इसका मत भी संग्रहीत कर लेना अच्छा होगा। आपको कैसा जान पड़ता है?

उत्तर—हां, हां, अवश्य! किन्तु अनिवार्य नहीं है कि हमें उसका मत स्वीकार ही करना चाहिये!

प्रश्न—हमने जो-जो राग सीखे हैं, उनके सम्बन्ध में उसका मत संक्षिप्त रीति से कहा जा सके तो सुना दीजिये?

उत्तर—सभी रागों के सम्बन्ध में उसका मत बताने में तो बहुत समय लगेगा। कुछ थोड़े से रागों के सम्बन्ध में उसका मत सुनाये देता हूं। उसका कथन मैंने जैसा समझा है, वही तुम्हें बता रहा हूँ। उसने बताया—"शुद्ध कल्याण में हम शुद्ध म लगाते हैं। देशकार में हम शुद्ध धैवत के नीचे का ध उपयोग में लाते हैं। इस धैवत के नीचे और भी दो धैवत हम मानते हैं। केदार राग में हम दो प्रकार के ऋषभ स्वरों का प्रयोग करते हैं, आरोह में शुद्ध री ग्रहण करते हैं व अवरोह में कुछ कोमल रिषभ लेते हैं, गांधार आरोह व अवरोह दोनों में तीव्र लेते हैं। शुद्ध धैवत रखते हैं। हमीर में धैवत अधिक ऊँचा रखते हैं। कामोद में गांधार शुद्ध व निषाद तीव्र लेते हैं। केदार में एक ही तीव्र निषाद लिया जाता है। हमीर में दोनों निषाद आते हैं। हमीर में रि, ग तीव्र, मध्यम दोनों व नी आरोह में चढ़ी व अवरोह में शुद्ध ली जाती है। इसका धैवत तीव्रतर कहा जायगा। छाया व छायानट राग हम भिन्न-भिन्न मानते हैं। इनमें ऋषभ व गांधार तीव्र तथा निषाद दोनों लगते हैं। कामोद में री तीव्र, ग शुद्ध, म शुद्ध, ध तीव्र व नी तीव्र प्रयुक्त करते हैं। हम भूप में सभी स्वर तीव्र मानते हैं। बिहाग में रि, ध शुद्ध, दोनों मध्यम, ग तीव्र लगता है तथा निषाद तीनों दर्जे का शुद्ध, तीव्र व कोमल लगता है। सोरठ में सारे स्वर तीव्र व मध्यम शुद्ध, गांधार बिलकुल वर्ज्य व निषाद दोनों आते हैं। देश में गांधार आ जाता है, बाकी सभी सोरठ के स्वर लगते हैं। जयजयवन्ती में देश के ही स्वर लगते हैं व निषाद दोनों लगते हैं। गारा के हम दो प्रकार मानते हैं (१) सिंधगारा (२) खमाज गारा। बिलावल में हम दोनों निषाद, शुद्ध मध्यम, बाकी स्वर तीव्र लगाते हैं। मालश्री में सिर्फ री वर्ज्य करते हैं। हिन्दोल में रि, प, वर्ज्य करते हैं व धैवत शुद्ध रखते हैं। जैत राग में री तीव्र, ग शुद्ध, म शुद्ध, नी तीव्र, ध तीव्र प्रयुक्त करते हैं। मलूहा में हम समस्त स्वर केदार के लगाते हैं, केवल मध्यम वर्ज्य करते हैं।"

मैं समझता हूं इनसे और अधिक रागों की जानकारी तुम्हें अभी नहीं है। ये राग तुम्हें आते ही हैं, अतः इस संक्षिप्त जानकारी से भी तुम उसके मत की कल्पना सहज में ही कर लोगे।

प्रश्न—गुरुजी ! इस विद्वान ने स्वरों के कितने प्रकार माने हैं ?

उत्तर—उन्होंने बताया था कि ये स्वरों के पांच दर्जे मानते हैं। (१) अति कोमल (२) कोमल (३) प्रकृत (शुद्ध, सम) (४) तीव्र (५) तीव्रतर। यहां मैं तुम्हें पुनः सावधान किये देता हूं कि तुम्हें इन दर्जों के झगड़ों में नहीं पड़ना है। अब हम पुनः रामकली की ओर चलें। 'समयसार' के लक्षण तो तुम सुन ही चुके हो। दूसरा एक लक्षण "रागमाला" में इस प्रकार कहा है:—

"धत्ते श्यामलकंचुकीं च गलके मुक्तावलीमंशुकम्।
शोणाभं वरकंकणानि करयोः पादद्वये नूपुरौ ॥
चंद्रास्या मदविह्वला सकरुणां भाषां भृशं भाषती ।
चैषा रामगिरी दिनांतसमये रामेण गीता पुरा ॥

यहां 'रामगिरी' नाम दिया है और यह राम द्वारा गायी हुई बताई है। बस केवल स्वरस्वरूप पाठकों को लगाना पड़ेगा। समय संध्याकाल का बताया गया है।

अनूप सङ्गीत रत्नाकरे:—

निगौ तृतीययतिकौ गौडीमेलः प्रकीर्तितः ।
मेलादतो गुर्जरी बहुला रामकली तथा ॥

× × ×

सत्री रामकली पूर्णा सदा गेया विरागिणी ॥

सङ्गीत दर्पणे:—(हिंदोल की पत्नी बताई गई है)

हेमप्रभाभासुरभूषणा च
नीलं निचोलं वपुषा वहंती ॥
कांते समीपे कमनीयकंठा
मानोन्नता रामकिरी मतेयम् ॥
षड्जग्रहांशकन्यासा पूर्णा रामकिरी मता ।
मूर्छना प्रथमा ज्ञेया करुणे सा प्रयुज्यते ॥
रिधत्यक्ताऽथवा प्रोक्ता कैश्चित्पंचमवर्जिता ।
त्रिविधा सा समुद्दिष्टा संपूर्णा षाडवौडवा ॥

उत्तर के गायकों के मत से रामकली में भैरव के समान अति-कोमल रि, ध, प्रयुक्त होते हैं, परन्तु प्राचीन व प्रसिद्ध गायक सूक्ष्म स्वरप्रपंच की चर्चा नहीं करते, यह भी सत्य है।

प्रश्न—जरा ठहरिये। प्रथम आपने जिन हिंदू गायक का मत बताया था, हमें याद है कि उसमें अति कोमल री लेने को कहा था। क्या आपने उससे यह नहीं पूछा कि उसका आधारग्रन्थ कौनसा है ?

उत्तर—उसका 'दावा' ग्रंथ-शास्त्र पर आधारित बिलकुल नहीं था। मेरा तर्क यह है कि उसकी गुरुपरम्परा में पहिले किसी ने पारिजात जैसा कोई ग्रंथ पढ़ा होगा और उसका स्वराध्याय भी देखा होगा। फिर उसके आधार से स्वरों के भिन्न-भिन्न दर्जे देखकर उसने अपना मत निश्चित किया होगा। उसके आधार जानने से हमें कुछ भी लाभ नहीं है। उस गायक ने मुझे दो-ढाई सौ गीत दिये, वे भी मैंने स्वरलिपि बनाकर लिख लिये हैं। उनमें तुम्हें प्रचलित हिंदुस्थानी राग-स्वरूपों से अनेक जगह विपरीत मत दिखाई देगा, फिर भी वे विद्वान अपना सम्बन्ध सदारङ्ग-अदारङ्ग तक पहुंचा देते हैं।

प्रश्न—सदारङ्ग-अदारङ्ग का काल कौनसा है?

उत्तर—यह बिलकुल सही निश्चित करना कठिन है, परन्तु इसे निश्चित करने का उपाय अवश्य है।

प्रश्न—वह कौनसा?

उत्तर—ये प्रसिद्ध गायक बादशाह मोहम्मदशाह के आश्रित थे। उन्होंने अपने अनेक गीतों में इस बादशाह का नाम भी डाला है। वह नरेश औरङ्गजेब के पश्चात हुआ था और औरङ्गजेब की मृत्यु सन १७०७ में हुई थी।

प्रश्न—तो फिर ये गायक दो-अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे, ऐसा दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में हमें अधिक जानकारी कहां से प्राप्त होगी?

उत्तर—मैं अभी ऐतिहासिक जानकारी एकत्र कर रहा हूं, और वह भी मैं तुम्हें किसी भिन्न-अवसर पर क्रमानुसार बताऊँगा। उन गायकों का वास्तविक नाम सदारङ्ग अदारङ्ग नहीं था। ये नाम उन्होंने केवल अपने गीतों में लगा दिये हैं। इस प्रकार ये नाम रखने की प्रथा अभी भी अपने गायकों में पाई जाती है। सङ्गीत कल्पद्रुम में हमें इस प्रकार के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। जैसे सदारङ्ग, अदारङ्ग, मनरङ्ग, रसरङ्ग, कौडीरङ्ग, इश्करङ्ग, आशिकरङ्ग, दिलरंग, खुशरंग, सरसरंग, रङ्गरस, आनंदरङ्ग इत्यादि। ये कौन-कौन गायक थे तथा अब इनके वंशज कौन-कौन बचे हैं, यह पता लगाना बहुत कठिन है? मैं यह प्रथम ही बता चुका हूँ कि मेरे स्वतः के मुख्य गुरु मनरङ्ग के खानदान के थे। उनका मत लक्ष्यसङ्गीत के मत से बहुत मात्रा में मिलता है। मेरे गुरु ने भी अनेक गीतों की रचना की है, उसमें अपना नाम "हररङ्ग" लिखा है। परन्तु हमें अधिक विषयांतर में नहीं जाना चाहिये।

प्रश्न—अब हमें रामकली के प्रचलित रूप के समर्थक आधार सुना दीजिये?

उत्तर—कहता हूँ, सुनोः—

मेले मालवगौडीये रागो जातः सुमंगलः।
रामकेलीति विख्यातः प्रातर्गेयो बुधप्रियः॥
धैवतस्यैव वादित्वं संवादित्वं तु रेः स्मृतम्।
आरोहे मनिवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम्॥

केचिदत्र निर्दिशंति मध्यमौ द्वौ विपश्चितः ।
शुद्धमध्यममुक्तत्वं गर्हणीयं न मे मते ॥
निषादयोर्द्वयोरेव प्रयोगो दृश्यते क्वचित् ।
भैरवांगप्रभूतत्वं तत्रापि बहुसंमतम् ॥
यथा रामकली प्रातः सायं रामक्रिया मता ।
शुद्धमध्यमयुक्ताद्या द्वितीया तीव्रमान्विता ॥

—उदयसङ्गीतम् ।

धवादिनी रिसंवादिन्यथो रिमधकोमला ।
मनिसंवर्जिताऽऽरोहे प्रोक्ता रामकली बुधैः

—चंद्रिकायाम् ।

रागो रामकली तु यत्र रिमधाः स्युः कोमला धैवतो ।
वादी रिस्तदमात्य ईरित इहारोहे मनी वर्जितौ ॥
संपूर्णं त्ववरोहणं निगदितं कैश्चिन्निषादद्वयं ।
प्रत्यूषे मधुरस्वरं सुमतयो गायंति यं गायकाः ॥

—कल्पद्रुमांकुरे ।

भैरवसी है रामकली बरजै मनि आरोहि ।
ओडव सम्पूरन कही सम्पूरन अवरोहि ॥

—चंद्रिकासार ।

प्रश्न—अब हमें इस राग का विस्तार और बता दीजिये ?

उत्तर—ठीक है, यही करता हूं । साथ ही एक दो सरगम भी बताऊँगा । मेरा विश्वास है कि इन स्वरस्वरूपों से, जो मैं तुम्हें बता रहा हूं, इस राग का स्थूल स्वरूप अवश्य ही अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जावेगा । यह स्पष्ट ही है कि बार-बार उत्तम गायकों का गायन सुनने पर तुम्हें अधिक मात्रा में गायनपटुता प्राप्त हो सकेगी ।

रामकली—

सा, मगमप, ध, प, गमरेसा, धप, मंप, गमप, गम, रेसा, पधप, सा, रेरेसा, गमरेसा, धपमंप, गमरे, प, गमरे, सा; धध, प; सा, धनिसा, रेरेसा, गमधधप, मंप, गम, निधप, गमरेरेसा, गमध, प; सा, म, गम, गमप, मंप, पधनिधप, गम, सांनिध, पमंप, गमरेसा, ध, प; मग, म, ध, प, पमंप, गमरेसा, साम, गम, धप्रपमंप, गमपगमरेसा, सा, निसा, धनिसा, सा, म, गम, गमप, धनिधप, गमरे, सा; ध, प । गम पपप, धध, निसां, निसां, पध, निसां, रेंसां, निसां, निधप, मंप, धधपमंप, गम, धप, सां, रेंसांनिधप, मंपधनिधप, गमरेरेसा; ध, प । सा, रेसा, गम, मप, पधपमंप, गम, निधप, गमरे, सा, धनिसारे, निसा, गमरेसा; ध, प ।

सरगम-ताल-तीव्रा (पहिला प्रकार)

प ऽ प । ध॒ ध॒ । प प ॥ ग म प । ग म । रे॒ सा ॥ सा ध॒ ध॒ । नि॒ सा । रे॒ सा ॥ ग म प । ग म । रे॒ सा ॥ प ऽ प । ध॒ ध॒ । सां ऽ । सां रें॒ सां । ध॒ नि । ध॒ प ॥ मं प प । ध॒ नि । ध॒ प ॥ ग म प । ग म । रे॒ सा ॥

सरगम झपताल (दूसरा प्रकार)

सां सां । नि ध॒ ध॒ । नि ध॒ । नि ध॒ प ॥ ग म । रे॒ ग प । ग म । ग रे॒ सा ॥ सा रे॒ । सा नि॒ ध॒ । सा ऽ । म ग म ॥ ग म । नि॒ ध॒ प । ग म । ग रे॒ सा ।

म प । प ध॒ ध॒ । सां ऽ । ध॒ नि सां । सां ध॒ । नि सां रें॒ । सां नि । ध॒ नि ध॒ ॥ प ग । म प प । नि ध॒ । नि ध॒ प ॥ ग म । नि॒ ध॒ प । ग म रे॒ रे॒ सा ॥

सरगम झपताल (तीसरा प्रकार)

सां सां । नि ध॒ ध॒ । नि ध॒ । प म म ॥ ग रे॒ । ग प म । ग रे॒ । ग रे॒ सा ॥ सा रे॒ । सा नि॒ ध॒ । सा ऽ । म ग म ॥ ग म । रे॒ ग प । म ग । रे॒ रे॒ सा ।

प प । नि ध॒ ध॒ । सां ऽ । सां रें॒ सां ॥ सां रें॒ । गं रें॒ सां । गं मं । रें॒ रें॒ सां ॥ ध॒ ध॒ । रें॒ सां नि । ध॒ ध॒ । नि ध॒ प ॥ म ग । रे॒ ग प । म ग । रे॒ रे॒ सा ॥

सरगम त्रिताल (चौथा प्रकार)

प प रे॒ सा । सा रे॒ ग म । ध॒ ध॒ ध॒ ध॒ । प प मं प ॥ ग म ध॒ ध॒ । प प ध॒ म । प ऽ ऽ ऽ । ग॒ ऽ ऽ ऽ ॥

प प प प । ध॒ ध॒ सां ऽ । नि नि सां ऽ । रें॒ रें॒ सां ऽ ॥ ध॒ ध॒ ध॒ ध॒ । नि नि सां ऽ । ध॒ ध॒ नि नि । ध॒ ध॒ प प ॥ ग म ध॒ ध॒ । प प ध॒ म । प ऽ ऽ ऽ । ग॒ ऽ ऽ ऽ ॥

प्रश्न—अब राग रामकली अच्छी तरह समझ में आगया, आगे चलिये ?

उत्तर—अब हम "गुणक्री" राग को लें। यह भैरव थाट का राग है। इसका समय प्रभात काल है। यह राग "साधारण" नहीं है। प्राय: उच्च स्तर के गायकों को यह आता है। संक्षेप में यह एक दुष्प्राप्य व अप्रचलित राग कहा जाता है। 'गुणक्री' की प्रकृति गंभीर है, अतः इसे गायक लोग विलम्बित लय में गाते हैं। इस राग में गांधार व निषाद वर्ज्य हैं, अतः यह औडुव माना जाता है।

प्रश्न—तो फिर, गुणक्री का आरोह-अवरोह सा रे॒ म प ध॒ सां । सां ध॒ प म-रे॒ सा" इस प्रकार होता होगा ?

उत्तर—हां ! गुणक्री गाने वाले से यदि अपना राग ठीक-ठीक संभालते न बन सके तो वह 'जोगिया' नामक एक अन्य बिलकुल साधारण रागस्वरूप में चला जावेगा। वैसे ये दोनों राग बिलकुल अलग-अलग हैं।

प्रश्न—जोगिया राग इसमें किस जगह पर उत्पन्न होना सम्भव है ?

उत्तर—जोगिया में गांधार वर्ज्य है, इसलिये "म, रे, सा" स्वर लगाते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। जोगिया में ऋषभ बिलकुल अल्प लगता है। मध्यम को लम्बा बताकर "रे सा" स्वर झटके से गाये कि जोगिया हो जावेगा। गुणक्री में भैरव अङ्ग होने से "सा, रे रे, सा, ध़ सा, रे, सा, म, रे, सा" स्वर गाये जाते हैं। "म रे सा" की मीड़ तुम्हें ध्यान में रखते हुए सावधानी से गुणक्री में लेते रहना चाहिए। भैरव में गांधार स्पष्ट आता है, इसलिये "म ग रे, सा" इस प्रकार स्वर लिये जा सकते हैं। गुणक्री में गांधार अवरोह की मीड़ में स्वल्प रूप में लग जायेगा, परन्तु वह स्पष्ट दिखाया नहीं जा सकेगा। मैं तुम्हें यह हिस्सा खासतौर पर याद रखने को कहूँगा। इसी प्रकार एक महत्वपूर्ण जगह "ध म" की है। यह स्वरसंगति गुणक्री में चल सकती है, परन्तु अधिक मात्रा में नहीं लगाई जावे। "ध म, रे सा" इस प्रकार से स्वर गाते ही स्पष्ट जोगिया हो जायेगा। यहां पर "ध प, म रे, सा" इस प्रकार भैरव अंग से चलना पड़ेगा। मध्य में पञ्चम आजाने से जोगिया का प्रभाव बहुत कम हो जावेगा। जोगिया राग, गुणक्री के बहुत निकट है। इसका कारण यह है कि जोगिया में गांधार व निषाद आरोह में वर्ज्य हैं और अवरोह में गांधार वर्ज्य है। इस राग के विषय में आगे बताना ही है। 'गुणक्री' में निषाद बिलकुल न होने से रागभिन्नता तो प्रत्यक्ष ही है, तो भी पूर्वाङ्ग में जोगिया से अलग रखना पड़ेगा। अवरोह में गुप्त रूप से गांधार लगाने में बड़ी विशेषता है। तुम्हें मालूम ही है कि सोरठ में 'म रे' लेते हुए गांधार किस प्रकार गुप्त रखा जाता है। इसके अवरोह में भी गांधार की 'आंस' शास्त्रीय दृष्टि से क्षम्य होगी। भैरव में मैंने तुम्हें जो रिषभ का आन्दोलन सिखाया है, वह अनेक स्थलों पर काम आयेगा। संधि-प्रकाश रागों में 'सा रे रे, सा' इन स्वरों का कितना महत्व है, यह तथ्य धीरे-धीरे अब समझ में आने लगेगा। मैं तुम्हें श्रीराग सिखाते समय बताऊंगा कि वहां पर ये ही स्वर किस तरह भिन्न प्रकार से उच्चारित किए जायेंगे। गायन में यही खूबी तो ध्यान में रखने की है, दूसरी है ही क्या? गायक लोग ऐसी बातों को व्यर्थ ही बड़ा हौवा बनाये रखते हैं। मैं समझता हूं कि प्रत्येक थाट में आने वाले मुख्य-अङ्ग यदि विद्यार्थी को प्रथम ही सिखा दिये जावें, तो सम्पूर्ण मार्ग सरल हो जाता है। मैंने अभी तुम्हें भैरव अङ्ग व जोगिया अङ्ग दिखाए हैं, इन्हें एक बार अच्छी तरह सुनलो, फिर ये ध्यान में ठीक-ठीक जम जायेंगे। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये बातें लिखकर पाठकों को समझा दी जावें, ऐसी स्थिति आज नहीं है। हमारे यहां स्वर-लिपि-पद्धति की संपूर्णता का दावा करने वाले पंडित हैं, तो भी यह कथन बिलकुल ग़लत नहीं है कि कुछ बातें लेखन-पद्धति के बाहर ही रह जाती हैं; परन्तु मैं समझता हूँ कि प्रत्येक समझदार आदमी यह कभी नहीं कहेगा कि यदि सम्पूर्ण लिपि सम्भव नहीं है तो बिलकुल होनी ही नहीं चाहिए। मेरा मत है कि संगीत की लेखन-पद्धति आवश्यक है। यह सहज ही समझ में आ जावेगा कि समस्त देश में एक ही लिपि होने पर कार्य उत्तम रूप से पूरा होगा। पाश्चात्य लोगों ने इसी तत्व पर सर्वत्र समान लेखन-पद्धति स्वीकार की है, इससे उन्हें होने वाले लाभ हम देखते ही हैं। यह नहीं है कि यह बात हमारे यहाँ ज्ञात न हो, परन्तु हमारे यहां प्रत्येक पुस्तक-लेखक यह समझता है कि मेरी ही लिपि निर्दोष व सुलभ है तथा वही सारे देश को मान्य होनी चाहिए। यह समझना स्वाभाविक तो है, परन्तु यह भी देखना होगा कि ऐसा हो सकना सम्भव भी है या नहीं। संगीत पर लिखे हुए प्रायः समस्त ग्रन्थ मैं पढ़ता रहा हूँ।

तथा भिन्न-भिन्न लिपियां मेरे लिए देखने में आई हैं, इनमें शुद्ध 'स्वदेशी' एक भी लिपि नहीं दिखलाई दी। जिसे देखो, उसने चार-पांच पद्धतियों का मिश्रण कर अपनी नवीन लिपि बनाकर रखदी है। कोई यूरोपियन 'स्टाफ' की लकीरों में अपने नादस्थान दिखाता है, कोई यूरोप के 'बार' सम्मिलित करता है, कोई पाश्चात्यों के पुनरावर्तन के चिन्ह लेता है। इस प्रकार की लिपियां सदैव दिखाई पड़ती हैं। मेरा कथन इतना ही है कि जिस विद्वान को अपना सङ्गीत बारह स्वरों का ही लिखना है, वह इस टेढ़े मेढ़े या गङ्गा-जमनी मार्ग को छोड़कर सीधी तरह योरोप का नोटेशन ही क्यों नहीं ग्रहण करले ? हम लिपिकारों से सुनते हैं कि यूरोप की लिपि में, मुरकी, गिटकरी, जमजमा, घसीट, मींड आदि प्रकार अच्छी तरह नहीं बताये जा सकते। मैं समझता हूँ कि यदि इसके लिये नवीन-चिन्हों की रचना भी करनी हो तो किसी Band Master की सहायता से कर लेनी चाहिये। इन्हें स्वदेशी की क्या आवश्यकता है ? रत्नाकर में लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत के लिए दिए हुए चिन्हों को तोड़-मरोड़ कर उलटे-सीधे जमाकर, उन्हें तख्त पर बैठाकर नई पद्धति उत्पन्न करने का उपद्रव करें ही क्यों ? राग विबोध में पांच-पच्चीस चिन्ह दिखाई देते हैं, उन्हें लेकर ही नवीन पद्धति क्यों रची जावे ? ग्रन्थों के राग हमारे नहीं, अतः हम मुसलमानी प्रकार गाते हैं, परन्तु स्वर-लिपि के चिन्ह रत्नाकर के लें ! यह हमारा कैसा अभिमान है ? ऐसे स्वरूपों की कोई निन्दा भी करे तो आश्चर्य नहीं। स्वदेशी पद्धति के अभिमान रखने वालों से मेरा बिलकुल द्वेष नहीं है। मैं उन सभी को अपना मित्र व बन्धु समझता हूं। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि यह विषय विवादग्रस्त है, परन्तु मैंने अपने आंतरिक-विचार तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दिये हैं।

अपनी पद्धति प्रमाणिक रूप से स्वदेशी चाहिये न ? यदि यूरोप के तत्व ग्रहण किए हों तो फिर उन्हें लीपना-पोतना क्यों ? इसकी अपेक्षा यूरोप का नोटेशन ही आवश्यक परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया जावे, तो क्या बुरा है ? मैं इस समय किसी विशेष पद्धति को लक्ष्य कर नहीं बोल रहा हूँ। संभव है मेरा यह मत जल्दबाजी का हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि 'अ' के कोमल स्वर चिन्ह, 'ब' के तीव्र चिन्ह, 'क' के गमक चिन्ह, 'ड' के आवर्तन-चिन्ह, 'ग' के ताल चिन्ह, 'फ' के काल चिन्ह इस प्रकार के व्यर्थ के भेद करते रहने से अनेक लोगों से अकारण वैमनस्य होगा व सङ्गीत की प्रगति को हानि होने का भय हो जावेगा। जिस मार्ग से समाज का हित हो, वही मैं पसन्द करूंगा। मैंने स्वतः कुछ लक्षणगीत तुम्हारे लिये लिख रखे हैं। उन्हें किसी न किसी स्वरलिपि में तो लिखना ही पड़ता। मैं स्वीकार कर चुका हूं कि मुझे यूरोप का सङ्गीत नहीं आता। मुझे अपनी स्वीकृत स्वरलिपि का जरा भी अभिमान नहीं है। यूरोपियन नोटेशन यदि मुझे आता तो मैं अपने गीत उसी प्रकार लिखता। तुम अपने राग अभी उत्तम रूप से सीखलो, फिर जो योग्य जँचे, उस लिपि को स्वीकार कर लेना। अस्तु ! हां, मैं तुम्हें क्या बता रहा था ?

प्रश्न—आप कह रहे थे कि कुछ बातें पहिले प्रत्यक्ष रूप से कानों में सुनकर ही सीखी जाती हैं ?

उत्तर—हां-हां, ठीक है ! ऐसी जगहों पर अपने गायक स्थूल रूप से इस प्रकार कहा करते हैं कि 'इसके उच्चार को देखो, इसके चलन को देखो'। उन्हें अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करने नहीं आते। उनके कथन में कभी-कभी कुछ अर्थ अवश्य

होता है। अस्तु, अब तुम्हारे ध्यान में, गुणक्री का टुकड़ा 'म रे रे, सा' व जोगिया का म, रे रे सा' अच्छी तरह जम गया होगा। दूसरी एक बात यह ध्यान में रखने की है कि गुणक्री-में भैरव अङ्ग प्रधान होने के कारण मन्द्रस्थान में धैवत पर्यन्त गायक द्वारा गाया जाना अच्छा रहता है। इस प्रकार का काम हमारे गायक 'जोगिया' में नहीं करते तथा इस राग में यह काम उतना शोभनीय भी नहीं होता।

प्रश्न—गुणक्री में वादी स्वर कौनसा माना जाता है?

उत्तर—वादी धैवत और संवादी रिषभ स्वर माना गया है। इस औडव राग में ग, नी वर्ज्य होने से इसका भैरव व रामकली से मिश्रण होने का भय कदापि नहीं होता। कोई-कोई गायक इस तरह का एक निर्णय और करते हैं कि गुणक्री में रे, ध अति कोमल व जोगिया में ये स्वर थोड़े ऊँचे रखने पड़ते हैं। यह कार्य तुमसे सध जावे तो देखना, यदि नहीं सध सके तो तुम्हारे रागनियम तो स्पष्ट ही हैं। यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है कि गायकों की इस कल्पना का कोई ग्रंथाधार बिलकुल नहीं है। मैं समझता हूं कि यदि तुमने योग्य स्थलों पर ठहरते हुए व भैरव अङ्ग स्पष्ट रखते हुए "सा, ध ध प, म प, म रे सा सा ध, सा, रे रे सा" स्वर गा दिए तो तुम्हारा राग अच्छी तरह बन जायेगा। अन्तरा गाते हुए "प, ध सां, सां रें रें सां, ध ध, सां, रें सां, ध प, इस प्रकार का आरम्भ करना उचित होगा। यदि किसी ने इसे भैरव कहा तो इसमें गांधार निषाद नहीं, यदि रामकली कहा जावे तो इसमें गांधार नहीं, आरोह में मध्यम वर्ज्य नहीं, अथवा दोनों मध्यम व दोनों निषाद नहीं। 'जोगिया' किस प्रकार दूर रखा जाता है, यह मैंने बताया ही है। अब क्या 'गुणक्री' एक स्वतन्त्र रूप निश्चित नहीं हुआ? इसके पूर्व रामकली के सम्बन्ध में बोलते हुए मैंने बताया था कि ग्रन्थों में रामक्री, रामकरी, रामकली आदि नाम हमें दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार इस गुणकली के विषय में भी थोड़ा सा दिखाई देता है। ग्रन्थों में गुणकली, गुणकरी, गुणकेली, गुण्डक्री, गौंडगिरी, गुणक्रिया आदि नाम दिखाई देते हैं। यह तुम्हें प्रतीत होगा कि स्वरस्वरूपों के सम्बन्ध में भी ग्रंथों में मतभेद है। पिछली बार मैं गुणकली के सम्बन्ध में बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—आपने 'गुणकली राग' बिलावल अङ्ग व स्वरों से हमें बताया था?

उत्तर—हां, मुझे स्मरण है। इस प्रकार की 'गुणकली' का एक प्रसिद्ध गीत अपने गायक गाते हैं, उसी के आधार पर मैंने तुम्हें रागस्वरूप समझाया था। अब 'गुणक्री' पर विचार कर रहे हैं। पहिला प्रश्न यह है कि अपने इस रागप्रकार को संस्कृत ग्रन्थाधार प्राप्त हैं या नहीं? इसका उत्तर स्वीकारात्मक देना पड़ेगा। यह ठीक है कि मैंने प्रत्येक राग का संस्कृत आधार देना स्वीकार नहीं किया है, फिर भी जिस-जिस राग के आधार प्राप्त होंगे, उन्हें मैं देता रहूंगा। 'गुणक्री' नाम संस्कृत ग्रंथ में मिलता है, उदाहरण के लिए अपने 'संगीत पारिजात' ग्रंथ को ही ले लो।

प्रश्न—अहोबल ने "गुणक्री" राग किस थाट में ग्रहण किया है।

उत्तर—तुम्हें यह ज्ञात ही है कि अहोबल का शुद्ध थाट काफी माना जाता है। यह स्वीकार करने पर और उसके रागलक्षण लगाने पर अपने आप खुलासा हो जावेगा। जैसे—

"रिधकोमलसंयुक्ता गनिवर्ज्या गुणक्रिया ।
धैवतोद्ग्राहसंयुक्ता क्वचिद्गांधारसंयुता ॥

प्रश्न—यहां तो नाम "गुणक्रिया" बताया है ?

उत्तर—परन्तु श्लोक के शीर्षक में 'गुणक्री' नाम दिया है। शायद छंद की सुविधा के लिये 'गुणक्रिया' नाम दिया होगा। यह अहोबल का लक्षण मेरे बताये हुए रागस्वरूप से अच्छी तरह मिल जावेगा।

प्रश्न—परन्तु यहां एक शंका है। अहोबल का शुद्ध थाट "काफी" है, अतः गुणक्री में गांधार, निषाद कोमल ठहरेंगे।

उत्तर—शंका ठीक है। मैं समझता हूँ गांधार, निषाद दोनों को वर्ज्य करने पर यह राग भैरव थाट में मान लिया गया होगा। अब "क्वचिद्गांधारसंयुता" पद ध्यान में आने पर यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न होगा कि कौन से गांधार का प्रयोग किया जावे। परन्तु अपना प्रचलित रागस्वरूप भैरव थाट का ही है। गांधार निषाद, वर्ज्य होने पर अहोबल ने इस सम्बन्ध में अपने श्लोक में स्पष्टीकरण नहीं किया। मुझे मेरे गुरू ने गुणक्री भैरव थाट में बताई है और अन्य गायकों को भी इसी थाट में गाते हुए मैंने सुना है।

प्रश्न—हम समझते हैं कि इस सम्बन्ध में अन्य संस्कृत ग्रन्थकारों का कथन देख लेना भी उपयोगी होगा। चाहे उनके लक्षण भिन्न-भिन्न हों, तो भी 'गुणकरी' का थाट कौनसा है, यह तो समझ में आ जावेगा। आपको क्या उचित जान पड़ता है ?

उत्तर—यह तुमने ठीक ही कहा। मैं स्वयं भी बताने वाला था। हम अब यह देखें कि हमारे संस्कृत ग्रन्थकार इस राग के स्वर किस-किस प्रकार के बताते हैं। आरम्भ में पण्डित रामामात्य अपने 'स्वरमेलकलानिधि' में इस प्रकार कहता है:—

शुद्धाः सरिमपाः शुद्धधैवतश्च ततः परम् ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः संमतो रागवेदिनाम् ।
मेलो मालवगौडस्य रामामात्येन लक्षितम् ॥

इन श्लोकों में उसने मालवगौड थाट का वर्णन किया है, आगे इसी थाट में "गुंडक्री" राग इस प्रकार बताया है:—

सांशो गुंडक्रियारागः सग्रहन्यासषाडवः ।
धवर्जितः पूर्वयामे गेयो धैवतयुक् क्वचित् ॥

यह स्पष्ट दिखाई देगा कि यह अपना राग स्वरूप नहीं है, परन्तु थाट भैरव ही है। धैवत वर्ज्य करने पर एक भिन्न रागस्वरूप चाहो तो उत्पन्न हो सकेगा। सोमनाथ ने

"गौडक्रिया" नाम का प्रयोग किया है। उसका राग वर्णन, रामामात्य के वर्णन से अच्छा मिल जाता है। उसका ग्रन्थ आर्या छन्द में है, अतः उसने भिन्न नाम पसंद किया होगा, हमें ऐसा ही समझ लेना चाहिये। सोमनाथ ने भी "गौडक्रिया" का थाट 'मालव गौड' ही माना है। उसमें शुद्ध धैवत तुम योग्य स्थल पर समझ कर लगाओगे ही। 'राग विबोध' में 'गौडक्रिया' का लक्षण इस प्रकार बताया है:—

गौडक्रिया धरिक्ता सांशन्यासग्रहा प्रातः ।

मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि यदि इसे प्रातःकालीन राग मानना हो, तो इसमें धैवत वर्ज्य करना उचित नहीं है, क्योंकि इस स्वर के अभाव से राग पर सायंकाल की छाया दिखाई देगी। यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि तीव्र-मध्यम के अभाव से बिलकुल सायंकालीन राग नहीं हो सकेगा, परन्तु पूर्वांग में कोमल रिषभ व उत्तरांग में धैवत वर्ज्य, यह स्वरूप अपनी हिन्दुस्थानी पद्धति में व्यवस्थित नहीं दिखाई देगा। अभी मैंने तुम्हें सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग नहीं बताये हैं, अतः मेरे कथन का मर्म इस समय तुम्हारे ध्यान में ठीक-ठीक नहीं आ सकेगा, परन्तु उन रागों को सीख जाने पर तुम भी मेरे मत का समर्थन करोगे। भैरव व रामकली का स्वरूप तुम्हें याद ही है। अब मैं धैवत छोड़कर बनने वाले स्वरूप को गाकर दिखाता हूं। देखो—

"नि़रे॒गरे॒सा, गमगमपगमग, गमपगमग, रे॒ग, निसांनिप, गमपगमग, रे॒ग, रे॒सा; सानि़प़, नि़सा, गमग, नि़सा, रे॒गमप, गमग, रे॒सा"

इसमें तुमको भैरव का आभास नहीं होगा।

प्रश्न—ठीक है गुरूजी! बिलकुल नहीं होता। इसकी जगह कहीं-कहीं बिहाग का आभास हो जाता है, परन्तु वह भी कोमल रिषभ से दूर हो जाता है। यह कानों को एक चमत्कारिक स्वरूप ज्ञात होता है।

उत्तर—यह ठीक है। कोई चाहेगा तो "गौडक्रिया" नामक गुणक्री से भिन्न यह रागस्वरूप गा सकेगा। यदि गायक कुशल हो, तथा वह तीव्र म का उपयोग यथा-स्थल उचित प्रमाण में करदे तो अवश्य ही एक नवीन तथा सुन्दर रागस्वरूप उत्पन्न कर लेगा, परन्तु यह विषय निराला है।

संगीत लक्षणे—

शुद्धाः सरिमपाश्चैव शुद्धधैवतवर्जितः ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
सांशो गुंडक्रियारागः सग्रहन्यासषाडवः ॥

'सद्रागचन्द्रोदय' ग्रन्थ में पुण्डरीक विट्ठल ने "गौंडकृति" नाम का प्रयोग किया है तथा थाट मालवगौड ही माना है! "कृति" व "क्रिया" एक ही समझना चाहिये। पुण्डरीक के श्लोकों के छन्द निराले हैं, यह भी ध्यान में रखना होगा। "कृति" यह शब्द 'संगीत-रत्नाकर' में दिखाई देता है, उसमें रामकृति, देवकृति, गौंडकृति आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं।

प्रश्न—तो फिर 'गौंडकृति' के सम्बन्ध में शाङ्गदेव का वर्णन देखना भी उपयोगी होगा। वह क्या कहता है ?

उत्तर—सङ्गीत रत्नाकर में शाङ्गदेव ने 'पूर्व प्रसिद्ध' व 'अधुना प्रसिद्ध' ऐसे संगीत के दो मुख्य भेद किए हैं। उनमें अधुना प्रसिद्ध भाग में जो रागनाम दिये हैं-उनमें तीन 'क्रियांग' बताये हैं। वे अभी मैंने तुम्हें बताये ही हैं। पहिले 'रामकृति' के सम्बन्ध में बोलते हुए मैंने कहा था कि यह राग "कोलाहल" राग से उत्पन्न होता है। 'गौंडकृति' क्रियांग की व्याख्या रत्नाकर में इस प्रकार है:—

षड्जांशग्रहणन्यासां मतारां मपभूयसीम् ।
रिधत्यक्तां पमंद्रां च तज्ज्ञा गौंडकृतिं जगुः ॥

इस क्रियांग का थाट निश्चित करना कठिन पड़ेगा, साथ ही यह विवादग्रस्त विषय भी है, अतः इसका निर्णय करना अभी हम नहीं चाहते। अस्तु, मैं तुम्हें पुण्डरीक का मत बता रहा था न ?

प्रश्न—जी हां, उसी पर से यह चर्चा चली थी। पुण्डरीक क्या कहता है ?

उत्तर—वह कहता है:—

शुद्धौ सरी मध्यमपंचमौ च ।
शुद्धस्तथा धैवतको यदि स्यात् ॥
लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौ चे-
त्तदा भवेन्मालवगौडमेलः ॥
सांशग्रहा सांतयुता धरिक्ता ।
गेया पुनर्गौंडकृतिः प्रभाते ॥

यह मत भी रामामात्य, सोमनाथ आदि पंडितों से मिल जाता है। इनके समय में यह राग इसी प्रकार गाया जाता होगा। आगे चलकर गायकों ने प्रातःकाल के समय धैवत का प्रवेश वैचित्र्यदायक समझकर रागस्वरूप में फेरफार कर दिया होगा।

रागलक्षणे:—

मायामालवमेलाच्च जाता गुण्डक्रिया तथा ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेव च ॥

इस ग्रंथ में राग के आरोह-अवरोह दो प्रकार से बताये हैं:—

(१) सा रे॒ म प नि सां। सां नि ध॒ म ग रे॒ सा ।
(२) सा रे॒ ग प ध॒ सां । सां ध॒ म प ग रे॒ सा ॥

देखते हो न, ग्रन्थकारों में किस प्रकार मतभेद रहा है ? इनमें अमुक सही व अमुक गलत, यह विवाद करना ही नहीं चाहिये। हमें तो अपने गाये जाने वाले स्वरूप के नियम जान लेना ही पर्याप्त है। जो मत हमारे प्रचार के निकट हो, उसे ही हम स्वीकार

करेंगे। मैंने तुम्हें अपना यह अनुमान बताया था कि रागलक्षणकार ने रामकली व रामक्रिया दोनों अलग–अलग राग माने हैं। उसने रामक्रिया राग का वर्णन इस प्रकार किया है:—

मायामालवमेलाच्च जातो रागः सुनामकः ।
रामक्रियेतिविख्यातः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥

सा रे ग म ध नि सां । सां । सां नि ध प ग रे सा ॥

यह भी एक चमत्कारपूर्ण रूप होगा। यहां अवरोह में मध्यम वर्ज्य है। इन सभी रागों को हमारे गायक प्रचार में ला सकते हैं।

प्रश्न—आपकी सहायता से हम इन्हें प्रचलित करने का प्रयत्न करेंगे। इसमें एक बार योग्य रीति से वादी-संवादी स्वर कायम करने की विशेषता सध जानी चाहिए। यह तो प्रायः गायक की इच्छा पर ही निर्भर रहता है कि राग प्रातःकालीन रखा जावे या सांयकालीन। पूर्वाङ्ग व उत्तरांग का मर्म, मध्यम का वैचित्र्य, आदि बातें तो हम अच्छी तरह समझने लगे हैं। संधिप्रकाश के लक्षण भी धीरे–धीरे हमारे ध्यान में आते जा रहे हैं। अच्छा, आगे चलिये?

उत्तर—सङ्गीतसारामृतकार ने 'गुण्डक्रिया' राग मालवगौड थाट में ही सम्मिलित किया है। जैसे:—

शुद्धाः स्युः समपाः शुद्धऋषभः शुद्धधैवतः ।
अंतराख्यातगांधारः काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो यो मेलः परिकीर्तितः ।
सोऽयं मालवगौलः स्यात्संमतो गानवेदिनाम् ॥

प्रश्न—और "गुण्डक्रिया" के लक्षण?

उत्तर—वे उसने इस प्रकार बताये हैं:—

मेलान्मालवगौलस्योद्धृता गुण्डक्रिया प्रगे ।
गेया संपूर्णतायुक्ता सन्यासांशग्रहा मता ॥

इन लक्षणों में इस राग को प्रातर्गेय व सम्पूर्ण बताया है, इन्हें देखकर चाहे पाठक को क्षण भर आनन्द प्राप्त हो, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि आगे का मार्ग इससे सुगम हो जावेगा।

प्रश्न—हम भी यही कहने वाले थे। ये लक्षण बहुत व्यापक हो जाते हैं। इनमें ग्रह, अंश, न्यास, षड्ज स्वर बताया है, परन्तु इतने से ही गायक को यह राग उत्तम रूप से गाना नहीं आ सकेगा। खैर, थाट भैरव का तो निर्विवाद है।

उत्तर—नारद के "चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्" नामक ग्रंथ में रामकी व गौंडकी वसन्त राग की रागिनी बताई हैं। "वसन्त" राग के नाम से थाट का संकेत मिल

सकेगा। यद्यपि नारद के रागों के स्वर बताने का आज कोई साधन उपलब्ध नहीं है, तथापि कुछ संस्कृत ग्रन्थकार वसन्त को भैरव थाट में ही मानते हैं, यह सत्य है। आजकल 'वसंत' पूर्वी थाट में गाया जाता है। नारद ने रामक्री व गौंडक्री के लक्षण इस प्रकार बताये हैं:—

यक्षिणी पद्मवदना यक्षकिंनरदुर्लभा।
वीणाहस्ता पर्वतस्था रामक्रीरुच्यते बुधैः॥
शोकाभिभूतनयनारुणदीनदृष्टिः।
नम्रानना धरणिधूसरगात्रयष्टिः॥
आमुक्तचारुकबरी प्रियदूरवर्ती।
गौडक्रिया विजयते कृशरूपधेया॥

इस वर्णन से कुछ विशेष उपकार होना सम्भव नहीं, क्योंकि इसमें पाठकों को राग के स्वरों की स्पष्टता प्राप्त नहीं हो सकेगी। "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" में "गुण्डक्रिया" राग 'गौल' थाट में बताया है। मैं अब आगे रागों के शास्त्र-लक्षण कहूंगा, तब उस राग के ग्रंथोक्त थाट भी बताता जाऊंगा। चाहे तुम्हें थाटों का ज्ञान हो, तो भी रागलक्षणों के निकट ही थाटलक्षण बताना कहीं-कहीं सुविधाजनक होगा। यदि पुनरुक्ति हो, तो भी चिन्ता नहीं, परन्तु इससे अच्छी तरह समझ में आता जावेगा और ग्रंथकार की परिभाषा फिर अच्छी तरह हृदय में स्थान कर लेगी। व्यंकटमखी कहता है:—

षड्जः शुद्धर्षभश्चैव गांधारोऽतरसंज्ञिकः।
मपधाख्याः स्वराः शुद्धाः काकल्याख्यनिषादकः।
एतावत्स्वरसंभूतो गौलमेलः प्रकीर्तितः॥

यह तुम्हारे भैरव का थाट ही है न? आगे ग्रन्थकार कहता है:—

"गुंडक्रिया गौलमेलजाता सम्पूर्णका मता।"

व्यंकटमखी ने अपने पंचम प्रकरण में कुल ५४ राग प्रसिद्ध कहकर बताए हैं। उनका वर्गीकरण उसने ग्रह, अंश, न्यास, स्वरों द्वारा किया है।

प्रश्न—वह उसने किस प्रकार किया है? बतायेंगे क्या?

उत्तर—यह देखो:—

नाटः सौराष्ट्रसारंगनाटशुद्धवसन्तकाः।
गुंडक्रिया मेचबौली नादरामक्रिया तथा॥
वराली ललिता पाडी रागः सालगभैरवौ।
श्रीरागारभिधन्यासीशंकराभरणाभिधाः॥

रागौ हिंदोलभूपालौ हिंदोल्यथ वसन्तकः ।
आहर्यभैरिसामंता वसन्ताद्याचभैरवी ॥
हेजज्जी मालवश्रीश्च शुद्धरामक्रिया तथा ।
कांभोजी च ठुखारीच देवगांधारिका तथा ॥
नागध्वनिः सामरागस्तथा सामवरालिका ।
एकत्रिंशदिमे रागाः षड्जन्यासग्रहांशकाः ॥
गुर्जरी भिन्नषड्जश्च रेवगुप्तिस्त्रयोऽप्यमी ।
रिन्यासांशग्रहाः प्रोक्ता मतङ्गभरतादिभिः ॥
नारायणाख्यदेशाक्षी देशाक्षीराग एव च ।
नारायण्यथ कर्णाटबंगालश्चेति विश्रुताः ॥
चत्वारस्तु इमेरागा गन्यासांशग्रहाः स्मृताः ।
जयन्तसेनो बहुली मध्यमादिरिमे त्रयः ॥
मग्रहा मध्यमन्यासा मांशकाः परिकीर्तिताः ।
आंधाली चैव सावेरी पन्यासांशग्रहे ह्युभे ॥
रागो मल्लहरी घंटारवो वेलावली तथा ।
भैरवी चेतिचत्वारो धन्यासांशग्रहाः स्मृताः ॥
गौलकेदारगौलौ द्वौ छायागौलाभिधस्तथा ।
रीतिगौलः पूर्वगौलो गौलो नारायणाभिधः ॥
रागः कनडगौलश्च सप्तगौला इमे पुनः ।
निषादग्रहनिन्यासनिषादांशाः प्रकीर्तिताः ॥
चतुःपंचाशदुद्दिष्टा इति रागा ग्रहादिभिः ॥

इस प्रकार का वर्गीकरण करके फिर प्रत्येक राग का थाट, उसके वर्ज्यावर्ज्य स्वर, वादी, विवादी, समय आदि बातें इस पंडित ने बताई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे जैसे विद्वान शिक्षार्थियों को यह पद्धति बहुत पसन्द आवेगी। हमारी हिन्दुस्थानी पद्धति इसी प्रकार व्यवस्थित की जा सके तो बहुत अच्छा होगा। मैं समझता हूँ कि जैसे-जैसे समाज में मतभेद कम होने लगेंगे, वैसे-वैसे यह कार्य अधिक सुसाध्य हो जावेगा। अस्तु, रागतरंगिणीकार ने 'गुणकरी' नामक राग स्वीकार करके उसे अपने गौरी थाट में रखा है। यह ग्रन्थकार उत्तर की ओर का है, अतः हम इसके मत को महत्वपूर्ण मानेंगे। लोचन पंडित का "गौरी थाट" हिन्दुस्तानी पद्धति का भैरव थाट ही हुआ। गौरी राग अपने यहां सायंकाल में गाया जाता है। अब यह तुम सहज ही समझ सकोगे कि ऐसा होने से गौरी थाट में से प्रातःकालीन 'गुणकरी' राग निकल सकेगा। गायन समय का मुख्य सम्बन्ध वादी स्वर से रहता है, यह तुम जानते ही हो।

प्रश्न—यह हमें मालुम है। एक ही थाट से प्रातःकालीन व सायंकालीन राग सहज ही निकल सकते हैं। हिंडोल, कल्याण आदि उदाहरण हम देख ही चुके हैं।

उत्तर—हाँ, वे ठीक हैं! पं० पुण्डरीक विट्ठल ने अपने "रागमाला" नामक सुन्दर ग्रन्थ में 'गुणकरी' व 'गुंडक्री' इन दोनों को श्रीराग की रागिनी माना है। उसने श्रीराग की पाँच रागिनी इस प्रकार मानी हैं–१ पाड़ी, २ गुणकरी, ३ गौडी, ४ नादरामक्री, ५ गुण्डक्री।

प्रश्न—यह दिखाई पड़ता है कि पुण्डरीक बहुत बुद्धिमान पंडित हुआ है। उसने गुणकरी व गुंडक्री रागनियों का वर्णन किस प्रकार किया है?

उत्तर—बताता हूँ:—

गुर्जर्या मेलजाता स्फुरिततरसपा न्यादिमध्यान्तपूर्णा।
वक्षोहारायताक्षी सिततरवसना रक्तकूर्पासिका या॥
नानाशृङ्गारभूष्या मृदुमधुवचना श्यामलाङ्गी सुतन्वी।
भर्तुः संकेतकं सद्विमलगुणकरी कामिनी याति सायम्॥

यह वर्णन 'गुणकरी' का हुआ। अब 'गुंडक्री' का सुनो:—

गुर्जर्या मेलयुक्ता रिधपरिरहिता सत्रिका नीलवस्त्रा।
गौरी मुक्तालका या नवनगरचिता कामसंकेतसंस्था॥
नीपच्छायोपविष्टा विमलकरतले पद्मपत्रं दधाना।
गुंडक्री भामिनी सा प्रियतमपदवीं प्रेक्षयन्ती प्रभाते॥

यह प्रकार भी 'गुर्जरी' थाट का ही है, अर्थात् अपने भैरव थाट का हुआ। 'गुर्जरी' का प्रचलित स्वरूप बदला हुआ है, वह राग मैं अभी तुम्हें नहीं बताऊँगा।

प्रश्न—आजकल 'गुर्जरी' को अन्य किसी थाट में माना जाता होगा?

उत्तर—हां, आजकल गुर्जरी का थाट 'तोड़ी' मानते हैं। अधिकांश संस्कृत ग्रंथकारों ने गुर्जरी भैरव थाट में माना है। धीरे-धीरे अब तुम्हें यह दिखाई देने लगेगा कि यद्यपि हिन्दुस्थानी गायकों ने संस्कृत ग्रन्थों के रागों के विशेष लक्षण, शायद अज्ञानता से मिला दिए या बदल दिए हैं, यथापि अनेक स्थलों पर अभी तक रागों का मूल थाटों से सम्बन्ध दिखाई दे सकता है। अभी हमने भैरव, रामकली, गुणकरी इन रागों के थाट देखे, वे हमारे प्रचार के बिलकुल निकट हैं। मैं यह कहूँगा कि इस दृष्टि से देखते हुए लक्ष्यसङ्गीतकार ने यह ठीक ही किया है कि अपने समय की वास्तविक स्थिति व्यवस्थित रूप से लिखकर रखदी। सम्भवतः आगामी कुछ वर्षों में हिन्दुस्थानी पद्धति का स्वरूप और भी कुछ भिन्न हो जावे।

प्रश्न—आपका यह कथन न्यायोचित है। आगे चल कर नये-नये रागों का गायकों द्वारा प्रचार होना सम्भव है। हमारे सुशिक्षित लोग उन्हें व्यवस्थित करेंगे तथा राग-नियमों की ओर अधिक ध्यान देने लगेंगे, अतः ये सब बातें समझ लेने योग्य हैं। संसार

की जब सभी बातें प्रगतिशील होती हैं, तो सङ्गीत ही कैसे पीछे रहेगा ? अशिक्षित व दुराग्रही गायकों के पास ही सम्भवतः कुछ समय यह प्रतिबन्ध रहे, परन्तु बाद में सभी ओर समानता हो जावेगी।

उत्तर—तुम्हारा कथन कुछ-कुछ समाजसुधारकों जैसा ज्ञात होता है। ये लोग विनोद में कभी-कभी ऐसा कहते हैं कि "ये पुरानखंडी दुराग्रही सुधार-अवरोधक, दस पांच अड़ियल दूर हुए कि समाज की वास्तविक प्रगति होने लगेगी।" किंतु मुझे ऐसे व्यक्तियों का इतना भय नहीं है। मैं समझता हूं कि हम इस समय उनका यथा शक्य उपयोग भी कर सकते हैं और ऐसा होने योग्य भी है। हां, इनकी थोड़ी खुशामद अवश्य करनी पड़ेगी, क्योंकि इनके पास उच्चस्तर की कला है, अतः उनके दोषों की ओर से आँखें मीच लेनी पड़ेंगी। अस्तु, अब हमें अपने विषय की ओर लौटना चाहिये। एक-दो बार गायकों ने मुझे प्रचार में एक शुद्धस्वर थाट का रागस्वरूप सुनाया और उसका नाम भी उन्होंने "गौड़गिरी" बताया!

इस प्रकार के मतभेद देखकर तुम गड़बड़ में तो नहीं पड़ोगे ?

प्रश्न—नहीं! हम क्यों गड़बड़ में पड़ेंगे ? हमें तो आनन्द ही आरहा है। हमको तो राग का माधुर्य, गायक का कौशल, और रागनियम मात्र देखना है।

उत्तर—ठीक है। इन विचारों से तुम्हारा किसी से विरोध नहीं हो सकता। अब हम पंडित भावभट्ट का मत देखें।

अनूपांकुशेः—

गौडी पाडी गुणक्री च नादरामक्रिगौंडिके ।

श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥

प्रश्न—यह तो पुण्डरीक का ही मत हुआ न ?

उत्तर—होगा ही। भावभट्ट तो हमारे जैसा संग्रहकार ही था न ? तब उसके ग्रंथ में पुण्डरीक का मत आयेगा ही। उसने अपने "अनूप रत्नाकर" में रत्नाकर की बहुत सी रागरचना उद्धृत करली हैं। शार्ङ्गदेव के दशविधि राग-ग्रामराग, उपराग, राग, भाषाराग, विभाषाराग, अन्तरभाषाराग, रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग, इसने सभी बताए हैं। किन्तु उनका स्पष्टीकरण यह नहीं कर सका है। परन्तु यह कार्य तो आगे भी किसी से नहीं हो सका। 'ग्रामयोर्जातिव्यवधानेनोत्पन्नत्वादेतेषां ग्रामरागव्यपदेशः' यह ग्रामराग की व्याख्या उसने कल्लिनाथ की टीका से उद्धृत करदी है। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता था ? 'रत्नाकर' के पाठकों को यह सहज में दिखाई देगा कि जाति दो ग्रामों में बांट दी गई हैं। यह भी शीघ्र ही ज्ञात हो सकता है कि इसका उपयोग ग्रह अंश, न्यास, अपन्यास व विवादी को बताने के लिए था। यह बात शायद भावभट्ट को भी दिखाई दी होगी, परन्तु रागों का प्रत्यक्ष स्वर-विन्यास निश्चित हुए बिना इनका उपयोग क्या हो सकता है ? भावभट्ट ने गुणक्री की व्याख्या व स्वरविस्तार पारिजात से ही उद्धृत किए हैं। अनूपविलास में उसने गुणकली को "हृदयप्रकाश" ग्रंथ के आधार पर गौरी थाट में ग्रहण किया है। यह स्पष्ट है कि यह भी भैरव का ही थाट है।

मि० बनर्जी गुणकली में रिषभ, धैवत कोमल व दोनों मध्यम मानते हैं तथा राग का समय दूसरा प्रहर बताते हैं। क्षेत्रमोहन स्वामी भी इसी प्रकार अपने 'सङ्गीतसार' में गुणकली का वर्णन करते हैं। कहना चाहिए कि पूर्व की ओर इसी प्रकार का प्रचार होगा।

प्रश्न—वे अपने मत का कोई संस्कृत आधार भी बताते हैं?

उत्तर—हां, हां, वे भी अपने तरीके से बताते गये हैं। उनका आधार प्रायः "सम्पूर्णत्व, औडुवत्व, षाडवत्व" आदि सिद्धान्तों पर अधिक होता है। उनका खयाल होगा कि रागों के थाट यदि पाठक चाहेगा तो संस्कृत ग्रन्थों से खोज निकालेगा। उन्हें इसकी कल्पना भी न होगी कि इनका अनुसन्धान करने में हमारी नाक में दम आ जाता है। बंगाल में ही यह खोज शायद आसान रही हो। वे कहते हैं:—

सम्पूर्णा गुणक्री प्रोक्ता मतंगमतसंमता ॥

ध्वनिमंजर्याम् ॥

अधिक स्पष्टता के लिये आगे और कहा है कि "गीतसिद्धान्त भास्कर" ग्रन्थ में भी इसी प्रकार कहा गया है। मैंने अभी तक यह ग्रन्थ नहीं देखा। यह कहां मिलेगा तथा इसमें क्या-क्या है, यह सब तुम्हें राजा साहब टागोर बता सकते हैं। कहा जाता है कि ये उन स्वामी जी (क्षेत्र मोहन) के शिष्य हैं।

सङ्गीतदर्पणे:—

रिधहीना गुणकिरी ओडवा परिकीर्तिता।
निग्रहांशा तु निन्यासा कैश्चित् षड्जाश्रया मता ॥
रजनी मूर्छना चात्र मालवाश्रयिणी तु सा ॥

ध्यानम्:—

शोकाभिभूतनयनारुणदीनदृष्टिः।
नम्राननां धरणिधूसरगात्रयष्टिः ॥
आमुक्तचारुकबरी प्रियदूरवृत्ता।
संकीर्तिता गुणकिरी करुणोत्कृशांगी ॥

प्रश्न—यह श्लोक तो आपने पहिले भी सुनाया था न? किन्तु लक्षण नहीं बताये थे।

उत्तर—हां, उस समय यही श्लोक नारद का कहकर सुनाया था। अब यह दामोदर का है। यही तो हमारे ग्रन्थकारों का मजा है! यदि पाठक सहज में यह जानलें कि मूल लेखक कौन था, फिर उनकी खूबी ही क्या रही? कहीं-कहीं यह भी कहा गया है कि इस भूल-भुलैया में से जो अपना मार्ग खोज निकाले, वही पंडित है, परन्तु अब इसका इलाज क्या है? ऐसे लेखकों के सिर पर चाहे जो थाट और चाहे जौनसा काल मढ़ दिया जावे तो आश्चर्य ही क्या है? अभी मैंने जो श्लोक सुनाया है वही श्लोक आगे चलकर

कल्पद्रुमकार ने पकड़ लिया और अपने तरीके से उसको संशोधित करके लिख मारा ! इतना ही नहीं, उस श्लोक में एक और श्लोक कहीं से नवीन लाकर चिपका दिया है !

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—वह श्लोक इस प्रकार है:—

"धैवतांशगृहंन्यासं कुंचितपंचमस्वरं ।
मारवादेशकारश्च गौरायां जायते बुधैः ॥

अथवा

पंचमांशगृहंन्यासं गुणक्रीच इति स्मृता ।
सौवीरीमूर्छना ज्ञेया कौशकस्य वरांगना ॥"

कल्पद्रुमकार ने ऐसी सरल संस्कृत की योजना शायद इसलिये की होगी कि अशिक्षित गायकों को श्लोक-उच्चारण में सुविधा हो ! इस समय भी क्या हमारे गायकों ने रागों के नियम रूपी अङ्ग तोड़-मरोड़ कर उन्हें "सीधा" (सरल) नहीं कर दिया है ? हम आज तानसेन आदि के ध्रुपद गाते हैं, परन्तु यह कितने व्यक्ति या कौन व्यक्ति विश्वासपूर्वक कह सकता है कि उन्हें हम तानसेन के स्वरों में ही गाते हैं ?

प्रश्न—अच्छा, कल्पद्रुमकार ने गुणक्री के स्वर कौन से बताये हैं ?

उत्तर—वह क्यों बताने लगा ? स्वर तुम अपने उस्ताद के पास से सीख ही लोगे ऐसा ही उसने सोचा होगा ? वह हिन्दी में इस प्रकार कहता है:—

खरज ग्रह सरिगममपधनि पूरण जाति बताय ।
शरद दिवस पहिले प्रहर गुनी गुणकली गाय ॥
तिय बैठि मलीन धरे पटके बिथुरी सिर केस तज्यो अलके ।
मुख नीचो किये मुरझाय रही जुग नैन बहें सरकी झलके ॥
तन खीन खरी छवि छीन परी लखिके दुःख सोचत है अलके ।
बिरहागनतें अति व्याकुल बाल बियोग भरी गुनकी कलिके ॥

मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान काम चलाऊ होने से कहीं पर शब्द-चूक होना भी सम्भव है। ऐसे स्थलों पर सुधार कर ग्रहण कर लेना। मुझे पुस्तक में जैसा दिखाई दिया, वैसा ही मैंने बताया है।

प्रश्न—यह तो उन संस्कृत श्लोकों का सार दिखाई पड़ता है। ठीक है न ?

उत्तर—हां, मुझे भी यही ज्ञात होता है। ऐसे गीतों का उपयोग हमारी अपेक्षा अशिक्षित गायकों के लिये अधिक होता होगा, यही समझा जा सकेगा। अब जरा उस्ताद के दोहे भी देखो:—

चंद्रकलाधर शिव सदा कलगुन धर सुखदाइ ।
गुनकलको धरि गुनकली लहो कन्त कलराइ ॥
देशी टोड़ी गूजरी ललित असावरि होइ ।
देसकारकें मिलतहीं होइ गुनकली जोइ ॥
देशकार पञ्चम मिलें टोड़ी गौरी आन ।
और मिलत हैं गुर्जरी होइ गुनकली जान ॥
गौंडवि से जुर लाइयें देवगिरी सुखदान ।
गौंडगिरी यौं होत है ऐसो गुनी बखान ॥

ऐसे ग्रन्थकार प्रायः अपना आधार बताते ही नही हैं। "स्वर तेरे और वर्णन मेरा" इस प्रकार के लिये तो प्रत्येक व्यक्ति कहेगा कि यह समाधानकारक रीति नहीं हो सकती। अच्छा, आगे पंडित हरिवल्लभ अपने हिन्दी संगीत दर्पण में कहते हैं:—

टोडी खंबावति बहुरि गौरी गुनकरि राग ।
ककुभा मिलिये रागनी कौशिक की बड़भाग ॥
न्यास अंश ग्रह षड्जतें अरु सम्पूरन होइ ।
एक प्रहर पर गाइये कहत गुनीजन सोइ ॥

आगे रागचित्र का वर्णन किया है और "सागमपसा, सानीधपमपगमरेसा" इस प्रकार मूर्छना दी है। थाट जिसे चाहिये वह कल्पना से निश्चित करके ग्रहण करले !

संगीत सम्प्रदायप्रदर्शिनी ग्रन्थ में मालवगौड थाट के जन्य रागों में गुण्डक्रिया बताई गई है:—

"गुण्डक्रिश्च सग्रहोऽयमवरोहेऽल्पधैवतः ।
सम्पूर्णः पूर्वयामे तु गातव्यो गायकोत्तमैः ॥"

सा <u>रे</u> ग म प <u>ध</u> नि सां सां नी प म ग म <u>ध</u> प म ग <u>रे</u> सा ।

इसके साथ संक्षिप्त टिप्पणी दी हुई है "उपांग राग, संपूर्ण षड्ज ग्रह, अवरोह में अल्प धैवत, प्रथम याम" संस्कृत श्लोक का आधार व्यंकटमखी का कहा है और चतुर्दण्डि-प्रकाशिका में यह श्लोक है ही नहीं। क्षेमकर्ण रचित रागमाला में "गुण्डग्री" का वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

छायायां कदलीवनस्य वसती कामांगसंकोचिनी ।
गौरी मुक्तकचामरालगमना रक्तांबरैरावृता ॥
तन्वी सर्वगुणाग्रमण्डितवपुः पीनातितुङ्गस्तनी ।
गण्डग्री करपल्लवकसहिता प्रोक्ता महार्यैः परा ॥

यह श्लोक कल्पद्रुमकार ने भी नक़ल कर लिया है, जो प्रायः ठीक ही है। 'सङ्गीत-सार संग्रह' में दो जगह गुणकिरी के लक्षण दिये हैं, मज़ा यह है कि दोनों जगह एक ही से अक्षरशः लक्षण व ध्यान हैं, फिर भी एक "भैरवाश्रयिणी" व दूसरी "मालवाश्रयिणी" रागिनी बताई है। इसी ग्रंथ में एक जगह इस प्रकार लिखा है:—

एषा षड्जग्रहन्यासा गौंडक्री परिकीर्तिता ।
रिधहीना दिनादौ च गातव्याद्यरसे बुधैः ॥

मूर्तिस्तु ।

रतोत्सुका कान्तपथप्रतीक्षा—
मापादयंती मृदुपुष्पतल्पे ।
इतस्ततः प्रेरितदृष्टिरार्ता ॥
श्यामांगिका गौंडकिरी प्रदिष्टा ॥

प्रश्न—परन्तु इन सभी वर्णनों में इस बात का उचित स्पष्टीकरण नहीं मिलता कि गुणकरी अथवा गुणक्री किन स्वरों में गाई जावेगी। यहां क्या किया जावे ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर मैं इस प्रकार तो कैसे दे सकूँगा कि "दर्पण के श्लोक बोले तथा खां साहेब जैसे कहें; वैसे गाओ ?" तुम्हारी कठिनाई वास्तविक है। मैं समझता हूं कि सोमनाथ, रामामात्य, पुण्डरीक, अहोबल, लोचन आदि पण्डितों का मत, केवल तुम्हारे प्राचीन शास्त्र के अभाव की पूर्ति करेगा। हिन्दुस्तानी पद्धति में गुणक्री इस प्रकार बताई है:—

भैरवान्मेलकाज्जाता गुणक्री रागिणी पुनः ।
आरोहे चावरोहेऽपि गनिहीनैव संमता ॥
धैवतस्तु भवेद्वादी यतोऽसौ भैरवांगिका ।
मन्द्रमध्यस्वरैर्गीता नित्यं श्रोतृसुखावहा ॥
रिमयोः संगतेस्तत्र जोगियाशंकनं भवेत् ।
निषादस्याऽप्यपाहाराद्बुधस्तदपसारयेत् ॥
सन्ध्याकालप्रगेयेषु रागेषु नैव शोभते ।
निगयोर्लंघनं प्रातर्गेयेषु रिधयोर्यथा ॥
गुण्डक्रीनामिकाप्यन्या धरिक्ता सांशिका क्वचित् ।
या दिनांते मता कैश्चित्तस्या भित्स्यात्परिस्फुटा ॥

—लक्ष्यसङ्गीते ।

चतुर पण्डित का मत हमें ठीक जँचता है। उसने धैवत वर्ज्य करने का एक नवीन रूप सुझाया है, उसे आगे चलकर कोई भी बुद्धिमान गायक प्रचार में सरलता से ला सकते हैं। केवल "लोकरंजनैकफलत्वम्" के नियम की ओर अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। अब यह दूसरे आधार देखो:—

गुणकली त्वियं मंद्रमध्यगा—
गनिविवर्जिता भैरवांगिनी ॥
ऋषभधैवतौ मंत्रिवादिनौ ॥
सदसि गीयते प्रातरौडुवा ।

कल्पद्रुमांकुरे ॥

गनिवर्ज्या गुणकली मृदुधैवतवादिनी ।
कोमलर्षभसंवादिन्यौडुवा मृदुमध्यमा ॥

—चंद्रिकायाम् ॥

Capt. Day. साहेब "गुण्डक्रिया" का आरोह–अवरोह इस प्रकार बताते हैं। सा रे॒ ग रे॒ म प नी ध॒ नी सां। सां नी ध॒ प म ग रे॒ ग सा। वे एक दूसरा स्वरूप इस प्रकार देते हैं:—'सा रे॒ म प म ग रे॒ म प नी सां। सां नी प ध॒ प म ग रे॒ सा। परन्तु ये दोनों रूप प्रचार में नहीं दिखाई पड़ते। Capt. Willard गुणकली के अवयव "देसी, तोड़ी, ललित, आसावरी, देशकारी, गुर्जरी" बताते हैं। यह बात भी केवल सुनकर संग्रहीत कर लेने योग्य है। इसका तुम्हारे लिये अधिक उपयोग इस समय हो सकना संभव नहीं है। "राधा गोविंद संगीतसार" में "गुनकरी" मालकंस राग की एक भार्या बताई है। प्रत्यक्ष राग वर्णन में ग्रन्थकार ने बड़ी धांधली की है। यद्यपि उसके प्रमुख आधार ग्रन्थ, भावभट्ट के ग्रन्थ तथा दर्पण और पारिजात थे, फिर भी उसके लिखने से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्ष स्वरस्वरूप की दृष्टि से ये ग्रंथ भी अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आये। यह दिखाई पड़ता है कि लेखक स्वयं हिन्दुस्थानी सङ्गीत गाता होगा, परन्तु उसका सम्बन्ध शास्त्र से स्थापित करने की उसे लालसा उत्पन्न हो गई थी। उसका यह काम बहुत ही ऊबड़-खाबड़ हो गया है। रत्नाकर व दर्पण ग्रन्थ तो उसके समझने योग्य थे ही नहीं। उसके समूचे स्वराध्याय में भी तुम्हें यह प्राप्त नहीं होगा कि उसने प्राचीन शुद्ध-स्वर सप्तक क्या समझा था। उसने गुणकरी किस प्रकार बताई है, देखो:—

"अथ मालकंस की चौथी रागिनी ताकी उत्पत्ति लिख्यते। गुणकरी को शिवजी नें वामदेव मुखसों गायके (क्योंकि मालकंस उसी मुख से निकला है) मालकंस की छायाजुक्ति देखी मालकंस को दीनी। गुणकरी को स्वरूप लिख्यते। शोक करिके व्याप्त और लाल जाके नेत्र हैं। और दीनताइसों देखे है:—

प्रश्न—क्या यह पहिले बताये हुए संस्कृत श्लोकों का भाषान्तर मात्र नहीं है?

उत्तर—बिलकुल वही है, यह तुमने ठीक पहिचान लिया। यह श्लोक ग्रंथकार को दर्पण में प्राप्त हुआ, परन्तु आगे चलकर यह कठिनाई उपस्थित होगई कि दर्पणकार ने अपनी व्याख्या इस तरह की है:—"रिधहीना गुणकिरी औडवा परिकीर्तिता। इत्यादि।" यह व्याख्या राजा साहेब को नहीं जँची। अब उन्हें यह निश्चय करना कठिन हुआ होगा कि दर्पण के राग का थाट कौनसा है। यहां पर फिर उन्होंने यह मार्ग निकाला:—

"शास्त्र में तो यह पांच सुरसों कही है। सा रि म प ध। यातें ओडव है। याको दिन के तीसरे पहेर के प्रथम एक घड़ी में गाइये। यह तो याको बखत है। और तीसरे पहेर में चाहो जब गावो। याकी आलापचारी पांच सुरन में किये। सङ्गीत-पारिजात सें। ग्रहांश। धैवत। न्यास। षड्ज॥"

अहोबल की व्याख्या मैं तुम्हें बता चुका हूँ। तब कुल मिलाकर यह निश्चय हुआ कि "शिवजी ने पार्वती के आग्रह और विनती से मालकंस को 'गुणकली' नामक भार्या प्रदान की! दामोदर पंडित ने इसके स्वरूप का वर्णन किया। अहोबल ने वर्ज्यावर्ज्य स्वर बताये, परन्तु प्रतापसिंह के समय तक उस चपला ने अपना रूप बिलकुल बदल डाला, क्योंकि 'सङ्गीतसार' के आलापचारी में रिषभ चढ़ी, धैवत उतरी, षड्ज असली, पंचम असली, मध्यम चढ़ी, मध्यम उतरी, धैवत चढ़ी, इस प्रकार स्वर बताये हैं।"

प्रश्न—वाह! वाह!! परन्तु यह क्या गुरूजी? ऐसा मालूम होता है कि गुणकली व गुणक्री का मिश्रण होगया है।

उत्तर—अथवा यह कहो कि यह शास्त्र व प्रचार का सम्मेलन हुआ है। फिर भी ग़नीमत है कि ग्रन्थकार ने सारे ४२ विकृत उपयोग में नहीं लिये। स्वराध्याय पढ़ने वाले को तो यह भी एक बड़ा भय था। मैं तुमसे प्रतापसिंह का बताया हुआ रागस्वरूप गाने का आग्रह नहीं कर सकूँगा। मैं समझता हूं कि सङ्गीतसार के अनेक राग हमारे वर्तमान प्रसिद्ध गायकों को भी मुश्किल ज्ञात होंगे। यद्यपि राजा साहब ने कहा है कि ये राग स्वयं शिवजी ने गाये हैं, तो भी यह नहीं दिखाई पड़ता कि अपने गायक अब उन्हें अस्वीकार करने में डरेंगे।

प्रश्न—कदाचित वे यह सोचते होंगे कि मुस्लिम गायकों द्वारा प्रचार में लाए हुए राग शिवजी ने कब और कैसे गाए होंगे! क्या यह शंका उचित नहीं है?

उत्तर—इस विषय में मैं क्या कह सकता हूँ। यही उत्तम मार्ग है कि हम ऐसी 'बारीक' बातों की ओर ध्यान ही न दें। यह छोटी-मोटी बात नहीं है कि प्रतापसिंह ने एक राजा होकर भी सङ्गीत की ओर इतना ध्यान दिया। परन्तु मुझे एक बात और सूझ पड़ती है। जब कि मुख्य छः राग शिवजी के मुख से निकले होंगे और उनका लग्न संस्कार हुआ होगा, तो उनके बाल बच्चे होना भी स्वाभाविक हो जायेगा और फिर यदि किसी ने उस परिवार भर का स्वामित्व शिवजी को प्रदान किया तो आश्चर्य क्यों होना चाहिए? तो भी ग्रंथकार ने किसी तरह राग लक्षण में यह बता ही दिया है कि किन-किन रागों की तोड़-मरोड़ या जोड़-तोड़ शिवजी ने की है। यह सत्य है कि स्वर बताते हुए उसने "शास्त्र में तो अमुक स्वरों सें गाई है" ऐसा संदिग्ध उल्लेख किया है। परन्तु कहीं-कहीं दर्पण, पारिजात, अनूपविलास आदि ग्रन्थों का उल्लेख उसने स्पष्ट किया है।

केवल आलापचारी उसने संभवतः अपने आश्रित गायक-वादकों की मदद से लिखी होगी। जब नवीन सङ्गीत को 'नवीन' कहना असुविधाजनक हो और उसे यदि पवित्र (शास्त्रीय देव-सम्बन्धित) बनाना ही निश्चित किया गया हो तो यह समझ में नहीं आता कि फिर ग्रन्थकार को और दूसरा क्या उपाय करना चाहिए? इसमें भी यह ध्यान रखने योग्य बात है कि सम्पूर्ण प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध न हों और शास्त्रों के प्रत्यक्ष

उद्धरण ग्रन्थकारों ने ग्रहण किए हों, तब पाठकों को कुतर्क करने की गुञ्जाइश ही नहीं रहती।

प्रश्न—ये सब बातें हमारे ध्यान में आ गईं। अब हमें 'गुणक्री' का स्वर-स्वरूप बता दीजिए?

उत्तर—ठीक है! सुनाता हूँ:—

गुणक्री

सा, रेरे, साधसा, रे, सा, मरे, साधप, मप, धसारेमरे, सा; सारेसा।

सारेसा, मपमरे, पमरे, रेसा, धधप, मपमरे, रेसा, साधधप, मप, धधरेसा, रेमपमरे, धधपमपमरे, पमरे, रेसा; सारेसा।

मपपधध, सां, सांरेंसां, सांधधसां, रेंरेंसां, धप, मपध, रेंसां, धप, मप, मरे, पमरे रेसा; सारेसा; साधधधप; मप, धधप, सांधप, मपमरे, मरेपमरे, सा; धधसारेसा।

रेंरेंसां, मंपंमंरेंसां, रेंसांध, सांधप, मप, रेंसांधप, मपमरे, पमरे, सा; सारेसा।

सरगम-ताल रूपक (गंभीर स्वरूप)

रे रे सा ×	रे रे	सा सा	ध ऽ ऽ ×	सा ऽ	रे सा
रे रे सा ×	रे रे	सा सा	ध ऽ ऽ ×	सा ऽ	सा ऽ
सा ध ध ×	ध ध	प प	म प म ×	रे रे	सा ऽ

अन्तरा—

प प प ×	ध ध	सां ऽ	सां ऽ सां	ध ध	सां ऽ
सां ध ऽ	सां ऽ	सां ऽ	रें रें सां ×	सां ऽ	ध ऽ
ध रें रें ×	सां ऽ	रें सांऽ	ध ध ऽ ×	सां ध	प प
ध ध सां ×	ध ध	प प	म प म ×	रे रे	सा ऽ

इस सरगम का उठाव कोई–कोई "म प म । रे रे । सा ऽ ॥ प ऽ प । ध ध । प प ॥" इस प्रकार भी करते हैं; परन्तु मेरे बताए हुए स्वरूप में भैरव अङ्ग शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है।

प्रश्न—हम समझते हैं कि 'गुणक्री' राग अब अच्छी तरह समझ में आ गया है। अब अगला राग बताइए ?

उत्तर—ठीक है ! ऐसा ही करता हूँ। अब हम 'जोगिया' को लें। श्रोताओं को प्रायः जोगिया और गुणक्री समप्रकृतिक ज्ञात होते हैं, अतः अब तुम्हें इस राग को ही ठीक तरह से समझ लेना उचित होगा।

प्रश्न—अच्छी बात है, अब आप 'जोगिया' ही बताइये ?

उत्तर—'जोगिया' नाम सुनाई पड़ते ही तत्काल हमें यह कल्पना होती है कि यह नाम हिन्दी या उर्दू भाषा का होगा। यह तर्क सत्य भी है। आगे फिर हम तत्काल यह तर्क और करते हैं कि हमारे अर्वाचीन गायकों ने यह राग किसी प्राचीन संस्कृत राग को तोड़-मरोड़ कर प्रचार में लिया होगा। यह बात नहीं कि हमारा यह तर्क सर्वथा ग़लत ही है, ऐसा होना सम्भव है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में स्पष्ट रूप से 'जोगिया' नाम प्राप्त नहीं होता। हां, सङ्गीत कल्पद्रुमकार आदि ने अपने ग्रन्थों में बताया है, उसकी व्याख्या मैं आगे बताऊँगा ही। मेरा यह दावा नहीं है कि मेरे पास समस्त संस्कृत ग्रंथ हैं अथवा मैंने उन्हें पढ़ा है, तथापि मेरा आशय इतना ही है कि मुझे जो ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं, उनमें 'जोगिया' नाम प्राप्त नहीं होता। उन ग्रंथों में 'इराख' 'बाखरेज' 'सरपरदा' आदि पर्शियन या ईरानी नाम अवश्य दिये हैं।

प्रश्न—जब 'पर्शियन' नाम प्राप्त होते हैं, तब पर्शियन सङ्गीत के सम्बन्ध में जानकारी भी दी होगी ?

उत्तर—ऐसी जानकारी तुम्हें संस्कृत ग्रंथों से प्राप्त नहीं हो सकती, यह तुम्हें ईरानी भाषा के ग्रन्थों में अथवा पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा की हुई खोज में प्राप्त होगी। मुझे यह ज्ञात नहीं कि पाश्चात्य पंडितों ने प्रत्यक्ष ईरानी सङ्गीत पर क्या जानकारी प्राप्त की है।

एक यूरोपियन सज्जन इस प्रकार कहते हैं:—

Glutted with victory no sooner had the Arabs conquered Persia and established a Mahomedan dynasty, than they sought to destroy every vestige of the greatness of her ancient institutions. The practice of any but the Mahomedan religion was forbidden, and the Parsees who refused to abandon the ancient system of their ancestors were driven to the plains of Kernan and Hindustan, and have been wanderers ever since. The koran was to be the book of books, all other learning being deemed useless to the faith of Islam, and it was decreed that all her sacred records, her codes of Law, the literature of the ancient Magi and the rich store of works on the arts and sciences then extant should be

committed to the flames. This ruthless act was duly carried into effect, and thus perished in a brief hour the results of the labour of successive generations, collected during a period of three thousand years.

Passing over the two centuries succeeding the Mahomedan conquest, during which absolutely nothing is known of the history of the Persian Nation, we find the literature of the country gradually regaining somewhat of its ancient celebrity. The language being extremely soft and harmonious, it was well adapted to all kinds of Poetry and no doubt these songs soon became wedded to suitable melodies. The materials from which to gather anything like reliable data as to the progress of music are extremely scanty and for the little that is known, we are mainly indebted to the researches of Sir William Jones, a judge of the Supreme Court of Calcutta and who nearly a century ago gained great eminence as a ripe Oriental Scholar. In summarising the result of his observations in regard to the Music of the Persians, he says:—The Persians had no less than eighty-four modes; but whether, like ours, they consisted of succession of sounds relating by just proportions to one principal note, he was unable to observe; arguing however from the softness of the Persian Language the strong accentuation of the words, and the tenderness of the songs which are written in it, he held that the Persians had a natural and affecting melody, and that they must have possessed a fair knowledge of the Divine art. It is further remarked that their songs were adapted to strains suited to the various emotions of the mind and that they were always sung in Unison, accompanied by such musical instruments as were then known amongst them, and which resembled those already referred to as being peculiar to all ancient nations."

मैं समझता हूं कि तुम्हें यह सब जानकारी शायद् स्थूल रूप की प्रतीत होगी, तुम्हें ईरानी रागरचना चाहिये, उसकी जानकारी तुम्हें Capt. Willard इस प्रकार देता है:-

Muquamat Farsee—Persian Music—These are said to have their origin from the prophets, whilst others ascribe them, as well as the invention of musical instruments to philosophers. Although the Mukamat Farsee are originally of Persia, yet as they are now known in this country, it seems necessary to say a

few words respecting them. The nations of Persia, like those of Hindustan, reckon their ancient music as comprising twelve classes or Muquams, each of which has belonging to it two Shobus and four Goshubs. The Muquams being generally considered equivalent to the Rags of Hindustan, the Shobus being esteemed their Raginees and the Goshubs their Putras or their Bharjas.

इस सम्बन्ध में राजा साहेब टागोर के "Hindu Music" नामक ग्रन्थ से भी कुछ जानकारी मिल सकेगी। ईरानी रागों के नाम तुम्हारे ध्यान में नहीं रह पायेंगे। यदि तुम चाहो तो इस ग्रन्थ से वे उद्धृत कर सकते हो।

प्रश्न—हम बीच में ही एक अप्रासंगिक प्रश्न पूछ रहे हैं कि ये यूरोपियन विद्वान हमारे संगीत पर इतना लिखते हैं तो क्या इन्हें अपने प्रसिद्ध गायकों के समान या हमारे समाज को पसन्द आने योग्य गाना भी आता होगा ?

उत्तर—मैं यह स्पष्टता से स्वीकार करूँगा कि अभी तक तो ऐसे गाने वाले मैंने नहीं सुने। अब मैं स्वयं यह कैसे बता सकता हूं कि Sir William Jones Willard, Day आदि विद्वानों को प्रत्यक्ष सङ्गीत कितना व कैसा आता होगा ? परन्तु इसी सिद्धान्त पर यह देखना भी क्या उपयोगी नहीं होगा कि हमारे वर्तमान लेखकों में से गायक कितने हैं ? यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्यक्ष सङ्गीतज्ञाता अधिक अच्छा लिख सकेंगे, परन्तु यह नियम शायद विवादग्रस्त ही होगा कि प्रत्येक ग्रंथ-लेखक को गायक बनना ही चाहिये।

प्रश्न—आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गये। हमने उक्त प्रश्न क्यों पूछा था, उसका कारण भी सुन लीजिए। इस समय पाश्चात्य पंडित व उन्हीं की देखा-देखी कुछ हमारे विद्वान प्रायः यह कहते रहते हैं कि हमारे सङ्गीत में सुधार होना चाहिये। इन लोगों के इस कथन में कितना सार है, यह हम आगे पूछने वाले थे ?

उत्तर—यह मैं भी सुनता और पढ़ता हूं; परन्तु अभी मैं इसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि यह चिल्लाहट कौन लोग कर रहे हैं। जब तक कोई विद्वान स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि सङ्गीत में किस प्रकार का सुधार किया जाना चाहिये तब तक इस पर विचार भी कैसे किया जा सकता है ? मैंने एक इसी प्रकार के सुधारप्रेमी सज्जन से सहज स्वभाव से इस प्रकार पूछा था—"क्या इसे सुधार कह दिया जावेगा कि अपने सौ-पचास गायक पांच-पचास तबलिये, सौ-दो सौ सारंगिये, इतने ही बीनकार व सितारिये, इन सभी को टाउन हाल जैसी किसी जगह एकत्र कर एक साथ कोलाहल करने दिया जावे ? क्या आपको सुधार इस तरह से ज्ञात होगा कि ओहदेदार, विद्वान व उच्च कुल की स्त्रियों का "Ball" अब शुरू होना चाहिये ? क्या आपको यह पसन्द है कि अपने सुन्दर-सुन्दर रागों में पाश्चात्यों की Harmony जोड़ दी जावे ? क्या अपने प्राचीन रागों में पाश्चात्य रागों के टुकड़े जोड़ देने से सुधार हो जावेगा ? क्या आप सुधार के नाम पर यह समझते हैं कि अपने वाद्य व कुछ गा [illegible]

के वाद्य एक साथ मिला देने चाहिये ? क्या आपको यह पसन्द है कि अपने प्राचीन तालों की सारी व्यवस्था रद्द कर देनी चाहिये और समस्त संगीत को Common Time में ही योजित कर देना चाहिये ? क्या आप यह कहते हैं कि रागों के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों के नियम कठोरतापूर्वक दूर फेंककर बाईस नादों में चाहे जहां चाहे जैसे स्वर मिला देने चाहिये ? क्या आपका यह मत है कि प्राचीन ग्रन्थ Deluge (प्रलय) के पूर्व के हैं, अथवा वे असभ्य लोगों के जंगली शास्त्र हैं, अतः इन्हें केवल Museum (अजायबघर) में रख देना ही उचित है ?" इस प्रकार के कुछ प्रश्न मैंने पूछे थे, पर उसे यह नहीं सूझ पड़ा कि इनका क्या उत्तर दिया जाना चाहिए।

प्रश्न—क्यों भला ? उसने कुछ तो कहा होगा ?

उत्तर—उसने कहा—"मैं भला इसमें क्या समझ सकता हूं ? मेरे लिये तो "भैरव" और "धुमकलास" और "दादरा" सभी एक से हैं। लोग कहते हैं कि अपनी सारंगी की हार्मनी देखो व विलायती फिडल की सुन्दर हार्मनी देखो ! अब उसी एक ही राग को कितनी पीढ़ी तक और गाते रहना है ? परन्तु मैं कसम खाकर कहता हूं पण्डित जी ! मुझे न तो इधर का सङ्गीत समझ में आता है और न उधर का । मैं तो अपने इस विषय में "ढ" हूँ। लोग कहते हैं, इसलिये मैं भी कहता हूं कि आजकल जब सभी बातों में सुधार हो रहा है तो फिर सङ्गीत में क्यों नहीं होना चाहिए ? परन्तु इसकी कठिनाइयों का मुझे पता ही क्या है ?" मैंने इस व्यक्ति को बिलकुल दोषी नहीं समझा ।

प्रश्न—"धुमकलास" क्या कोई राग है ?

उत्तर—नहीं-नहीं, मैं समझता हूँ उसने कहीं "भीमपलास" नाम सुना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत में कौन सा व किस प्रकार का सुधार किया जावे, यह बताने का कार्य सरल नहीं है । यहाँ पाश्चात्यों का उपदेश भी कुछ अंशों में स्वीकार करना होगा। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि जैसे-जैसे हमारे सङ्गीत को पाश्चात्यों द्वारा अच्छी तरह समझने के उदाहरण सामने आयेंगे, वैसे-वैसे उनके कथन का परिणाम भी स्पष्ट होने लगेगा। यह तथ्य प्रसिद्ध ही है कि उपदेशक योग्य अधिकारी ही होना चाहिये। हमारे सङ्गीत के उत्तम जानकर लोग जब तक सुधार के लिये न कहें तब तक हमें रुक जाना होगा। हां, हमें इस समय इस प्रकार के सुधार चाहिये, देखो ! "रागों को उत्तम रूप से व्यवस्थित करना चाहिये जिससे वे सहज में सीखे व सिखाये जा सकें, तानबाजी का प्रमाण कुछ इस तरह नियत करना होगा, जिससे माधुर्य की वृद्धि हो, आवाज़ सुधारने का अपने यहां कोई उत्तम उपाय ज्ञात नहीं है, अतः उसकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। हमारे गायक बांके, तिरछे हाव-भाव करते हैं, चाहे जिस तरीके से गला मारते हैं, उसमें यह सुधार करना इष्ट होगा कि उनका लक्ष्य रस की ओर रहे । सङ्गीत-शिक्षण, पद्धति-युक्त-रीति से होने के साधन खोजे जावें। यह एक स्वतंत्र विषय है कि सङ्गीत कैसे सिखाया जावे, अभी मैं इस पर नहीं बोलूँगा। मेरा कथन इतना ही है कि जैसे भी हो, अपने संगीत की राष्ट्रीयता की रक्षा की जावे ।" अब हमें विषयांतर में अधिक नहीं जाना चाहिये !

प्रश्न—ठीक है । Capt. Willard साहेब ने इतना परिश्रम किया, यदि उन्हें श्रुति, मूर्छना, ग्राम जाति पर अपने समय की उपलब्ध जानकारी मिली होती हो कितना अच्छा होता है । उनका ग्रन्थ कब प्रकाशित हुआ ?

उत्तर—उनका ग्रन्थ Treatise on the Music of Hindustan सन् १८३४ में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था । इस ग्रन्थ को लिखने के पूर्व, दस बीस वर्ष जानकारी प्राप्त करने में लगाये होंगे । यह दिखाई देता है कि उस समय ग्राम, मूर्छना प्रकरण बहुत दुर्बोध होगया होगा । उसके ग्रन्थ में जो Glossary है, उसमें मूर्छना की व्याख्या इस प्रकार की है:—

Murchuna—A term expressive of the full extent of the Hindu scale of Music, and as this extends to three octaves, there are consequently twenty one Murchanas, having distinct names. A Murchana differs from a soor in this respect that there are twenty one of the former and only seven of the latter, so that every soor has the same name whether it belongs to the lowest, middle, or highest octave; whereas every individual sound through the whole range of three octaves has a distinct name where it is considered as Moorchana, by which way of naming them the octave of any particular sound has a distinct appellative. Akhado Rag, for instance, extends to six soors or notes, but it may comprehend within its compass seven, eight or more Murchanas, according to the number of notes which are repeated in another octave.

मूर्छना के उक्त वर्णन से उस साहब का क्या समाधान हुआ होगा, यह ईश्वर जाने । संभवतः उन्हें कोई संगीत व्यवसायी गप्पी मिल गया होगा । मुझे याद है कि कुछ वर्ष पूर्व मेरे पास एक बीनकार आता था । उससे मैंने श्रुति व स्वर में क्या भेद है यह पूछा । उसने कहा—"पण्डित जी ! यह भेद हमारे अनाड़ी लोग नहीं समझते हैं । आज मैं आपको बता रहा हूँ । 'सुरती' याने आप लोगों के 'वेद' हैं और 'सुर' तो साक्षात परमेश्वर का नाम ही है । यह 'विद्या' बड़ी पवित्र है, यह इन्हीं दो प्रथम शब्दों से निश्चित हो जाता है । यह गम्भीर रहस्य हमारे लोग क्या समझेंगे ? 'सुरती' का गाना चाहे जिसको नहीं आता । जानकार लोग कभी-कभी 'सुरती' लगाकर गाते हैं और कभी-कभी घण्टों तक गाते रहेंगे पर एक भी 'सुरती' नहीं लगावेंगे !"

प्रश्न—क्या आपने उससे दोनों प्रकार से गाकर दिखाने की प्रार्थना नहीं की ?

उत्तर—की थी । उसने भैरव का टुकड़ा गाकर दिखाया । एक बार बिलकुल मींड, आन्दोलन रहित "साग, मपधप" मगरे, सा" गाया, फिर वही टुकड़ा मींड आदि

लेकर गाया तथा मुझे भेद पहिचानने के लिये कहा। यह बेचारा तो अशिक्षित व्यक्ति था, परन्तु मुझे एक शहर में एक सामान्य शिक्षित हिन्दू गायक पंडित मिले थे, उनका किया हुआ मूर्छना का स्पष्टीकरण सुनकर तो तुम्हें हँसी आवेगी।

प्रश्न—जरा सुना दीजिए, क्या बात थी ?

उत्तर—वे ब्राह्मण थे उन्होंने प्रथम—शुद्ध रूप से "क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्" इस श्लोक का पाठ किया और गंभीर मुद्रा से बोले:—"अहा हा ! इसमें तो कुछ विचित्र ही रहस्य है !!" मैंने उनसे वह रहस्य बताने का आग्रह किया, तब उन्होंने इस प्रकार स्पष्टता की। "अजी ! सात स्वरों का आरोह व पुनः—अवरोह अर्थात् मूर्छना, यह ऊपरी शाब्दिक अर्थ तो स्पष्ट ही है। आगे रि, ग, म, प, ध, नी, स्वरों की मूर्छना भी बताई हैं। इतना होने पर अर्थात् इन स्वरों की मूर्छना पूर्ण होने पर अगले ऊपरी सप्तक के सप्त स्वरों की मूर्छना शुरू होगी। यह पूरा होने पर अगले सप्तक की मूर्छनाएँ आयेंगी। हम जिस षड्ज को लगाते हैं उसका इक्कीसवाँ निषाद स्वर कितना ऊँचा जावेगा, इसकी तुम स्वयं कल्पना करलो। वहां तक मूर्छना लगाने का काम मनुष्य द्वारा संभव नहीं।"

उनका यह स्पष्टीकरण सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ ही, परन्तु यह उनके ध्यान में भी आ गया। वे तत्काल ही बोले "अजी। तुम्हें मेरा कथन विचित्र जान पड़ता है, परन्तु तुम भूल रहे हो कि हम लोग कलियुग के बालिश्त भर ऊँचाई के निर्बल मनुष्य हैं। यह मूर्छना प्राचीन काल की है। यह तो तुमने पढ़ा ही होगा कि सीता जी जमीन पर बैठकर नारियल तोड़ लेती थीं ! उस काल में मनुष्यों की उँचाई सौ फीट थी। क्या यह तुमने नहीं सुना ? ऐसे लोगों को ऐसी मूर्छना गाने में कठिनाई ही क्या थी ? परन्तु हमारे ग्रन्थकार भोले ठहरे ! उन बेचारों ने यह आजकल के लिये असम्भव बात भी व्यर्थ ही अपने ग्रन्थों में लिख छोड़ी है।"

प्रश्न—और ये सज्जन पढ़े-लिखे कहलाते थे ?

उत्तर—यही तो आश्चर्य की बात है। एक दूसरे मुसलमान संगीत शास्त्री मेरे एक शिष्य को उत्तर की ओर मिले थे। उनके संस्कृत अध्ययन की गायक लोगों में बहुत प्रशंसा थी, इसलिये मेरे वे शिष्य उनसे विशेष रूप से मिलने गये थे। मूर्छना की व्याख्या उन 'खां पंडित' ने इस प्रकार की:—"पंडित जी, कर्मात् सुराणां सपत्तानां आरोहश्चावरोहश्चा, ये मूरछना लच्छन गिरंथ लिखते हैं, मगर मैं केहता हूं कि इस शलोक का लिखने वाला बिलकुल कूड था, उसे संस्कीरता का कायदा बिलकुल खबर नहीं था, सब कोई विद्वान जानता है की, संस्कीरत भाशा में बिगर करता के कोई भी वाक्य सिद्ध हो नहीं सकता। अब यहां देखिये, येह् शिलोक के लिखने वाले नें करम के वास्ते तो लिख दिया, मगर करता का पता कहां है ?"

प्रश्न—शाबास ! 'क्रम' को 'कर्म' समझ मारा ?

उत्तर—हां। इन खां साहेब की मुसलमान गायक इस प्रकार प्रसिद्धि बताते हैं कि इन्होंने बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ हिन्दू पंडितों को परास्त कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जानकारी एकत्र करने में उचित सहायता करने वाले विद्वान मिलने ही कठिन हैं।

मैं समझता हूँ कि यदि कोई दक्षिण की ओर प्रवास कर परिश्रम से खोज करे तो अभी भी कुछ उपयुक्त जानकारी मिलनी संभव है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकार की जानकारी क प्रत्यक्ष उपयोग हिन्दुस्तानी सङ्गीत के लिये होगा ही, परन्तु मैं समझता हूँ कि प्राचीन ग्रन्थों को समझने में वह जानकारी थोड़ी बहुत उपयोगी अवश्य होगी। अपने "गमक" को ही लो। दक्षिण की ओर अधिकांश 'गमकें' उनके ग्रन्थोक्त वर्णन के अनुसार अभी भी प्रचलित हैं। उन्हीं में से कुछ गमक, हमारे गायक "उरप, तिरप, झुरत, फुरत, तुरप" आदि भ्रष्ट नामों से जानते हैं, परन्तु उनके लक्षण वे बिलकुल नहीं जानते। मैं यह नहीं कहता कि दक्षिण की ओर ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले बहुत काफी व्यक्ति हैं, परन्तु मैं इतना ही बता रहा हूँ कि ग्रन्थों में वर्णित बातों में से कोई-कोई वहां अभी भी प्रचलित दिखाई देंगी। स्व० सुब्रह्म दीक्षित एक बहुत ही योग्य एवं विशेष जानकारी देने वाले अभी ही हुए हैं। उनके जैसे विद्वान और भी वहां कहीं-कहीं निकल सकते हैं। अस्तु, अब हम अपने मूल विषय की ओर बढ़ें।

प्राचीन ग्रन्थों में 'जोगिया' नाम नहीं दिखाई पड़ता, यह मैंने कहा ही था। टागोर साहब अपने ग्रन्थ में एक टिप्पणी इस प्रकार लिखते हैं "इस राग का नाम "योगिज्ञा" है तथा 'सङ्गीत सर्वस्वसार' ग्रन्थ में इसकी जाति सम्पूर्ण बताई है।" आगे कभी कलकत्ता जाने का तुम्हें अवसर मिले तो इन राजा साहेब के पुस्तकालय में "सर्वस्वसार" देखना। केवल सम्पूर्ण जाति बता देने से ही हमारा काम पूर्ण नहीं हो सकता। तो भी यह कहा गया है "योगिज्ञा भैरवोपांगी जातिस्तु पूर्ण का मता", यह विचार करने योग्य है। चाहे हम जोगिया को सम्पूर्ण नहीं मानते हों, फिर भी यह आधार काफ़ी मात्रा में हमारे लिये उपयोगी होगा। रागस्वरूपों में अन्तर पड़ता ही रहता है। वैसे भी किसी गायक ने अवरोह में गांधार लगाया तो एक तरह से सम्पूर्ण जोगिया का उदाहरण कहा जायेगा। टागोर साहेब ने कहा ही है कि बंगाल में 'सम्पूर्ण' जोगिया गाया जाता है। हम गांधार वर्ज्य करते हैं। ऐसा करने से जोगिया, सावेरी, गुणक्री राग अच्छी तरह से अलग-अलग किये जा सकते हैं। जोगिया व सावेरी बहुत ही निकट के राग होने से गायक इन्हें परस्पर सरलता से मिला देते हैं, परन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक राग के नियम अवश्य ज्ञात होने चाहिये। रागों का मिश्रण करना और स्वतः मिश्रण हो जाना इन दोनों बातों में बहुत महत्वपूर्ण भेद समझा जाता है।

एक पंडित ने मुझे बताया कि दक्षिण के 'सावेरी' राग को ही उत्तर के गायक जोगिया कहते हैं। मैं समझता हूं कि इसमें गांधार से होने वाला भेद स्वीकार करना अधिक सुविधाजनक होगा। दक्षिण के ग्रंथों में 'योगिज्ञा' नाम नहीं दिखाई पड़ता। एक 'योगानंदी' नाम प्राप्त होता है, परन्तु उस रागस्वरूप में तीव्र म, तीव्र ध, और कोमल नी, इस प्रकार स्वर लगाये हैं। यह हमारा राग नहीं है। उर्दू ग्रन्थों में जोगिया राग हमें दिखाई पड़ता है तथा वह भैरव थाट में ही प्राप्त होता है।

प्रश्न—जबकि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में जोगिया नहीं प्राप्त होता, तब तो देशी भाषा के ग्रन्थकारों का मत ही हमारे लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

उत्तर—ये ग्रन्थ तुम पढ़ोगे ही, इसीलिये इनके उद्धरण मैं पढ़कर नहीं सुना रहा हूं। जोगिया का थाट भैरव है, अतः इसके स्वर 'सा रे ग म प ध नी सां' निश्चित होंगे ही। इनमें आरोह करते समय गांधार व निषाद हमें छोड़ने पड़ेंगे व अवरोह में गांधार वर्ज्य करना होगा। ऐसा करने से इस राग की जाति औडव-षाडव निश्चित होगी। जिन गायकों को नियमों का अच्छा ज्ञान नहीं होता, वे आरोह में भी निषाद ले लेते हैं। इस राग में गांधार स्वर किस प्रकार गुप्त रूप से लग जाता है, यह तुम्हें बारीकी से देखना है। नियम से तो वह वर्ज्य ही माना जाता है परन्तु अवरोह में बहुत स्वल्प मात्रा में इसका कहीं-कहीं स्पर्श हो जाता है। तुमने देखा ही है कि केदार में "म रे सा" स्वर लेते हुए गांधार अपने आप किस प्रकार सुन्दरता से लग जाया करता था। उसी प्रकार थोड़ा सा इसमें भी करते हुए "पधम, रेसा" स्वर गाकर देखो, तो जोगिया की थोड़ी सी "पकड़" तुम्हारे ध्यान में आ जावेगी। मैं इसे दो-चार बार गाकर दिखा देता हूँ। यह राग प्रभातकालीन है अतः यह अवरोह में अधिक प्रकट होकर खुलेगा। यह तुम्हारे नियमों के अनुसार ही है। आरोह में "रे म म, प प, ध ध, सां" इस तरह व अवरोह में "सां नि ध प, ध म रे सा" इस प्रकार स्वर लेने से इस राग का स्वरूप उत्पन्न हो जायेगा। अवरोह में पंचम पर थोड़ा ठहरना पड़ता है। कोई-कोई "सां नी ध प, म प ध म, रे सा" इस प्रकार भी अवरोह करते हैं। यह भी अच्छा दिखाई देगा। आरोह की कुछ तानें इस प्रकार ध्यान में जमा लोः—सा रे सा, म रे सा, रे म म, प प, ध, प, ध म, रे सा; म प ध ध प, नि ध प, ध म, रें सां, नि ध प, म प ध म, रे सा" इस राग में ऋषभ व धैवत स्वर आंदोलित नहीं रखे जाते, क्योंकि इन्हें आंदोलित करने में तुम भैरव में जा पहुँचोगे। भैरव में 'म रे सा' इस प्रकार की एक मींड मैंने तुम्हें बताई थी, उसमें भी गांधार आता था, परन्तु इस में ऐसी मींड नहीं लग सकेगी। यहां "म, रे सा" इस स्वर समुदाय में मध्यम लम्बा और खुला हुआ रखकर "रे सा" स्वर झटके से उच्चारित करने पर जोगिया का रंग अच्छा बन जायेगा। गुणक्री में भैरव की मींड ली जावेगी तो शोभा देगी। इसमें जोगिया की तरह गांधार का "कण" नहीं आने देना चाहिये। रामकली में तो स्पष्ट "प, ग म रे सा, प मं प ध, प ग म, रे सा" इस प्रकार का स्वतन्त्र अङ्ग है। तुम्हें एक और खूबी बताता हूँ, उसे भी देखो। जैसे गांधार स्वर तुम म तथा रे के मध्य में बे मालुम लगाओगे, वैसे ही ध और म के बीच में पंचम लगाने में कुछ विचित्र आनन्द आवेगा। "प, ध, प म" यह प्रयोग वास्तव में है तो सही, परन्तु अन्त के प, म स्वर शीघ्र उच्चारित होने चाहिये। यह मैं बार-बार कहता आया हूँ कि जलद तान लेते हुए इन नियमों का पालन अच्छी तरह से नहीं हो पाता। मैं तुम्हें रागों के मुख्य अङ्ग इन स्वरों से बता रहा हूँ। इनकी सहायता से तुम्हें अच्छी तरह राग पहिचानना आ जावेगा। "रें, सां, ध म, रे सा" इतने स्वर यदि तुमने उचित रूप से गा दिये तो श्रोता तत्काल तुम्हारा राग पहिचान लेंगे। रिषभ पर जोर देने की बात अच्छी तरह याद रखना। प्रचार में गायक प्रायः जोगिया में आसावरी का योग करते हैं, यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा, परन्तु मैं तुम्हें इसका कारण समझा देता हूं। यह सत्य है कि हम आजकल प्रचार में आसावरी में तीव्र री का प्रयोग देखते हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में आसावरी में "कोमल री" बताई है। इतना ही नहीं, बल्कि आसावरी के आरोह में ग, नी वर्ज्य करने की व्यवस्था भी ग्रन्थकारों ने दी है।

प्रश्न—तो फिर जोगिया व आसावरी का अवश्य ही आसानी से मिश्रण हो सकेगा। सा, रे॒ रे॒ म म प, ध॒ सां, इस प्रकार का आरोह दोनों रागों में हो सकेगा, परन्तु आसावरी में ग, नि स्वर कोमल हैं, इसलिये अवरोह नहीं मिल सकता। ठीक है न?

उत्तर—बिलकुल ठीक। परन्तु तुम्हें यह सुनकर और भी आश्चर्य होगा कि संस्कृत ग्रन्थकारों ने आसावरी को भैरव थाट में ही माना है। ऐसा होने से 'जोगिया-आसावरी' ऐसा मिश्र राग सरलता से समझ में आ जावेगा। हमारे यहां 'जोगिया-आसावरी' राग में दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं और अवरोह में कोमल ग, नि का प्रयोग होता है, यह ठीक ही है। इस राग के सम्बन्ध में, मैं आगे बताऊँगा। अभी हमें केवल जोगिया के लिये आवश्यक बातों पर ही विचार करना है।

जोगिया में अवरोह करते हुए कभी-कभी तुम्हें कोमल निषाद भी ग्रहण किया हुआ दिखाई पड़ेगा। एक गायक ने 'जोगिया आसावरी' का आरोह-अवरोह इस प्रकार गाकर दिखाया:—सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध प, म प ध॒, म रे॒ सा। उसने कहा कि मैं पूर्वाङ्ग में जोगिया और उत्तरांग में आसावरी लेता हूँ। अच्छे-अच्छे गायक अभी भी आसावरी में 'सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि॒ ध॒ प, म ग॒ रे॒ सा' इस प्रकार आरोह-अवरोह मानते हैं। संस्कृत ग्रन्थकारों की आसावरी सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा। इस प्रकार दिखाई पड़ती है। अभी मैं यहां पर आसावरी का वर्णन नहीं करने वाला हूँ। यह तो मैंने इसलिये बताया है कि 'मिश्रनाम कैसे उत्पन्न होते होंगे' इस तथ्य पर तर्क करने में तुम्हें सहायता मिले। दक्षिण की ओर प्रवास करते समय मैंने वहां के लोगों के सम्मुख जोगिया राग गाया था, उसे उन्होंने "सावेरी" बताया, परन्तु गांधार स्वर न देखकर वे विचार में पड़ गये। उनकी पद्धति में 'सा रे॒ म प ध॒ सां' आरोह के सारंगनाट, मलहरी राग हैं, परन्तु उनके अवरोह क्रमशः सां नि सां ध॒ प म ग रे॒ सा' और 'सां ध॒ प म ग रे॒ सा' इस प्रकार हैं, इसलिये वे जोगिया से भिन्न हो ही जाते हैं। देखते हो, एक गांधार से कितना अन्तर पड़ जाता है? प्रचार में गायक, नियमों की जानकारी के अभाव में गड़बड़ी कर देते हैं, परन्तु शास्त्र में रागों की परस्पर भिन्नता स्पष्ट दिखाई देने योग्य होती है। जोगिया में वादी स्वर कोई मध्यम व कोई षड्ज मानते हैं। वह सत्य है कि इस राग में सा, म, प स्वर महत्व पाते हैं। यह राग उत्तरांग प्रधान होने से भैरव के समय गाया जाता है।

प्रश्न—जोगिया का वर्णन लक्ष्यसङ्गीतकार ने कैसा किया है?

उत्तर—वह इस प्रकार है। देखो:—

> गौडमालवमेलोत्था जोगिया कथ्यते बुधैः।
> उत्तरांगप्रधानत्वात्प्रातःकालोऽपि प्रस्फुटः ॥
> समयोरत्र संवादो भैरवे रिधयोस्त्वसौ।
> निषादाकलनात्प्राज्ञैर्गुणक्रीभेद उच्यते ॥

गांधारः सर्वथा त्याज्यो निस्त्यक्तश्चाधिरोहणे ।
रिमयोर्धमयोर्वा स्यात्संगतिः सर्वरक्तिदा ॥
अवरोहक्रमे पोऽल्पो निषादे घर्षणं मतम् ।
सुव्यस्तत्वं मध्यमस्य कस्य न स्यान्मनोहरम् ॥

कल्पद्रुमांकुरेः—

आरोहे न निरिह गस्तु वर्ज्य एव ।
क्वाचित्को भवति च पंचमोऽवरोहे ॥
षड्जोंऽशो विलसति मध्यमश्च मंत्री ।
सा योगिन्युषसि चकास्ति भैरवांगी ॥

चंद्रिकायाम्ः—

गांधारहीना षड्जांशा मृदुधर्षभमध्यमा ।
निषादरहिताऽऽरोहे योगिनी प्रातरेव हि ॥

चंद्रिकासारः—

भैरवमेलहि जोगिया नित गंधार तजे हि ।
बादीसमसंबादि है आरोहत नि तजेहि ॥

यह संपूर्ण व्याख्या तुमको उपयोगी सिद्ध होगी । हम इसी प्रकार 'जोगिया' गाते हैं। जोगिया गाते हुए अवरोह में 'सां नि ध म, म, रे सा' इस प्रकार की मींड़ भी अच्छी दिखाई देती है। मैं इसे किस प्रकार लेता हूं, उसे देखो और अच्छी तरह ध्यान में जमा लो। यदि कोमल निषाद प्रमाण से अधिक बढ़ जावेगा तो आसावरी उत्पन्न हो जावेगी। सां, नि ध प, इस प्रकार खुले स्वर इस राग में कभी नहीं लगाने चाहिये । अब बताओ कि श्रोताओं के हृदय में इस राग का चित्र कैसे उत्पन्न कराओगे ?

प्रश्न—हम इस प्रकार के स्वरसमुदाय गायेंगे । सा, रे म रे सा, म प, ध म, रे सा, रे म म प, प ध प ध म, रे सा, सा रे सा, ध ध प, म प ध म, रे सा, नि प ध म रे सा, आदि। क्या ये ठीक हैं ?

उत्तर—हां ठीक हैं ! एक बार इन्हें गा देने पर फिर कहीं–कहीं आरोह में यदि तुमने निषाद लगा दिया तो भी वह श्रोताओं को विरस नहीं ज्ञात होगा, क्योंकि समस्त रागवैचित्र्य अवरोह वर्णों में ही है। 'प प ध सां, रें रें सां ध प ध म, रे सा' इस प्रकार यथास्थान दिखाते रहना पर्याप्त है । गुणकली में 'प प ध, सां, रें, सां, सां ध प, म प, ध प, म, रे रे, सा' इन स्वरों को भैरव अङ्ग से गाया जावे । यह सब कृत्य बड़े रियाज़ से सध सकेगा। जैसे–जैसे रियाज़ करते जाओगे, वैसे–वैसे गला ज़ोरदार व मधुर

आवाज़ निकाल सकेगा। अवरोह में पंचम अपने आप अल्प मात्रा में प्रयुक्त होने लगेगा, क्योंकि धु, म की संगति होने लगेगी। जोगिया बिलकुल साधारण राग है। अपने कथावाचक प्रायः कीर्तन में साखी, पद आदि गीत इसी राग में गाते हुए अनेक बार पाये जाते हैं। कहीं-कहीं वे आसावरी अधिक मात्रा में मिश्रित कर देते हैं। इसमें संदेह नहीं कि शुद्ध जोगिया गाना थोड़ा कठिन ही पड़ेगा, परन्तु तो भी यह राग विशेष महत्वपूर्ण है। सङ्गीत कल्पद्रुम में जोगिया का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

जटाकलापाथ विभूतिधारी
त्रिशूलखर्पंच वीणादधान ॥
प्रचंडकोपा रसवीरयुक्ता
सा योगिनी योगशास्त्रैः प्रवीना
गांधारांशग्रहं न्यासं योगियासावरीतदा ।
वैराग्यज्ञानसंयुक्ता ब्रह्मध्यानसुमिश्रिता ॥
देशीगांधारसावरीच मिश्रितयोगिया भवेत् ॥
दिवसे द्वैप्रहरार्धेच गीयते विद्वज्जनैः ॥

यह वर्णन 'जोगिया' शब्द को देखकर ही किया गया है। योगी के साथ जटाजूट, त्रिशूल, खप्पर, वीणा, प्रचण्ड-कोप, योग-शास्त्र-ज्ञान आदि चीजें आंख मींच कर श्लोक में ठूँस दी जाती हैं। ऐसे श्लोकों का उपयोग मुस्लिम गायकों के द्वारा अधिक होता है। वे ऐसे श्लोक धड़ाधड़ बोलकर साधारण गायकों को घबराहट में डाल देते हैं। तुम्हारे जैसे व्यक्तियों को उन्हें देखकर केवल हँसी आवेगी। नाद-विनोदकार ने यह संपूर्ण शास्त्र अपने ग्रन्थ में उद्धृत करलिया, केवल रागस्वरूप प्रचलित बता दिए हैं। इसमें हमें कुछ आश्चर्य नहीं होता। क्या क्षेत्रमोहन स्वामी जैसे विद्वान ने 'सङ्गीतसार' में थोड़ा बहुत ऐसा ही नहीं किया? यह तो सत्य है कि उसने अशुद्ध श्लोक उद्धृत नहीं किये, परन्तु मर्मज्ञ पाठकों को यह सन्देह अवश्य उत्पन्न हो जावेगा कि ग्रन्थों के श्लोक व मुसलमान गायकों के रागस्वरूप का मिश्रण 'सङ्गीतसार' में कर दिया गया है। पं० भावभट्ट के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उसे भी 'जोगिया' नाम ज्ञात था। उसने कुछ मिश्र रागों का वर्णन किया है। उसमें 'जोगिया' नाम का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि यह नाम उत्तरी भारत में बहुत वर्षों से प्रचलित है।

प्रश्न—पं० भावभट्ट का सम्पूर्ण रागवर्गीकरण भी यदि हमें एक बार सुनादें तो अच्छा होगा। प्रत्येक राग सुनाते समय उसका मत आप हमें सुनायेंगे ही, परन्तु एक बार सम्पूर्ण एकत्र रूप सुन लेने से उसकी समस्त राग-रचना हमारे ध्यान में आ जावेगी?

उत्तर—यद्यपि यह कुछ विषयान्तर हो जाने जैसी बात है, परन्तु चिन्ता नहीं मैं सुना देता हूँ। अनूप-सङ्गीत-रत्नाकर में भावभट्ट ने सङ्गीत ग्रन्थकारों के भिन्न-भिन्न मत संक्षिप्त रीति से अपनी भाषा में बताए हैं। इसके पश्चात् फिर स्वयं की रागव्यवस्था

भी दी है । मैं समझता हूं कि तुम्हें उसके वे श्लोक ही सुना दूँ तो अच्छा रहेगा । हाँ, तो सुनोः—

त्रिंशत्तु ग्रामरागाः स्युर्नवोपरागकाः स्मृताः ।
रागाणां विंशतिः प्रोक्ता भाषाः षण्णवतिः स्मृताः ।
विभाषा विंशतिर्ज्ञेयाः शार्ङ्गदेवेन भाषिताः ।
चतस्रोऽतरभाषाः स्युः रागांगाष्टकमुच्यते ॥
भाषांगानां रुद्रसंख्या क्रियांगाणि त्रयोदश ।
उपाङ्गत्रितयं प्रोक्तं देशीनां तु मितिर्नहि ॥
प्रसिद्धानां किलोद्देशे रागांगाणि त्रयोदश ।
भाषाङ्गानि नवोक्तानि क्रियाङ्गत्रितयं मतम् ॥
उपांगानां तु रागाणां सप्तविंशतिरुच्यते ।
रत्नाकरे चतुःषष्ट्या सहितं तु शतद्वयम् ॥

रत्नाकर के रागों का उपरोक्त रूप से भावभट्ट ने संक्षिप्त वर्णन किया है । आगे कहता हैः—

षट्षष्टिसंख्या रागाणां नृत्यनिर्णयसंज्ञके ।
चत्वारिंशद्रागबोधे संख्योक्ता द्व्यधिका बुधैः ॥
एकाधिका तु नवतिः संकीर्णानां प्रकीर्तिता ।
आद्यायां रागमालायां चत्वारिंशत्प्रकीर्तिता ॥
द्व्यधिका तु द्वितीयायां षट्त्रिंशत्कथिता बुधैः ।
चतुरशीतिरागाणां तृतीयायां बुधैः स्मृता ॥
रागमाला भूरिशः स्युः कपोलकल्पिताः किल ।
मूलं न दृश्यते तासां व्यभिचारः प्रवर्तते ॥
तस्मादाद्या रागमाला मन्यते शास्त्रकोविदैः ।
पारिजातोक्तरागाणां विंशत्यासहितं शतम् ॥

इसके पश्चात् भावभट्ट ने रत्नाकर का वर्गीकरण बताया है । उसके पास रत्नाकर की कौनसी प्रति थी, यह नहीं कहा जा सकता । इसमें प्रकाशित प्रति से कहीं-कहीं भिन्नता दिखाई देगी ।

विख्याता मध्यमग्रामा भाषा ककुभटक्कयोः ।
मधुरी ककुभे भाषा तस्यैव च विभाषिका ॥
भाषा प्रेंखकरागस्य मालवी कथिता बुधैः ।
टक्ककैशिकभाषास्याद्धक्कस्यापि च मालवा ॥

कैशिकस्यविभाषा स्याद्वेसरी प्रेंखटक्कयोः ।
भाषा प्रेंखकरागस्य भाषा मालवकैशिके ॥
मालवाद्या वेसरीच मांगली रागिणी पुनः ।
वोट्टपंचमयोर्भाषा भाषा मालवकैशिके ॥
गौरी प्रेंखकरागस्य भाषा मालवकैशिके ।
टक्कस्य पंचमस्यापि भाषा मालवकैशिके ॥
पूर्वाचार्यैः समाख्याता भिन्नषड्जस्य सैंधवी ।
गांधारपंचमस्यापि सौवीरभिन्नषड्जयोः ॥
गांधारी कथिता भाषा भाषा च ललिता तथा ।
टक्कस्य भिन्नषड्जस्य टक्कस्य पंजमस्य च ॥
त्रावणी भिन्नषड्जस्य भाविनी भाव्यतेऽधुना ।
भाषा पंचमरागस्य भाषा मालवपञ्चमे ॥
टक्कस्य च विभाषा स्यादाभीरी पंचमस्य च ।
ककुभस्य विभाषा स्याद्भाषा मालवकैशिके ॥
आंध्री पंचमभाषा स्याट्टक्कस्य च विभाषिका ।
स्याद्विभाषा गुर्जरी मालवकैशिकटक्कयोः ॥
कैशिकी पंचमस्यैव स्याद्भाषा च विभाषिका ।
स्याद्विभाषा च पौराली भाषा मालवकैशिके ॥
विभाषा भिन्नषड्जस्य टक्के देवारवर्धनी ।
विद्वद्भिः कथिता सा विभाषा मालवकैशिके ॥
श्रीकंठी भिन्नषड्जस्य भाषा वेसरषाडवे ।
विभाषा सैव संप्रोक्ता रामशास्त्रविशारदैः ॥
पौराली च विभाषा स्याद्भाषा मालवकैशिके ।
कांबोजी ककुभे भाषा ज्ञेया मालवकैशिके ।
बंगालरागो रागांगं भाषांगमपि कथ्यते ।
रामक्रीच क्रियांगं स्यादुपांगमपि कथ्यते ॥
कर्नाटोऽपि च भाषांगमुपांगमपि मन्यते ।
रागांगं दीपको ग्रामरागो हिंदोलकः स्मृतः ॥
टक्कोऽपि ग्रामरागः स्यादिति रागविनिर्णयः ॥

यह हिस्सा लक्ष्यसङ्गीत के परिशिष्ट में अधिक स्पष्ट रूप से बताया गया है। अस्तु, आगे चलें:—

नाटास्तु षोडश प्रोक्ताः कर्णाटास्तु चतुर्दश ।
कर्णाटो दशधा त्रेधा वेलावल्यस्तु षोडश ॥
तोडिका नवधा प्रोक्ता गौरी चाष्टविधा स्मृता ।
गौडस्तु दशधा ख्यातो वराटी दशधा स्मृता ॥
सप्तधा पूरिया प्रोक्ता त्रिविधासावरी स्मृता ।
केदारस्त्रिविधः प्रोक्तो द्विधा विहंगडः स्मृतः ॥
सारंगोऽपि त्रिधा ख्यातो दशधा भैरवः स्मृतः ।
कामोदः सप्तधा ख्यातः सप्तधा गुर्जरी मता ॥
सैंधवी सप्तधा ख्याता मल्लारी त्रिविधा स्मृता ॥

अब ये भिन्न-भिन्न स्वरूप व उनके नाम सुनो । इसी वर्णन को लक्ष्य में रखकर कहा गया है:—

वेलावल्यथ कल्याणो नटसारंगगौडकाः ।
मल्लारः कानडाप्येते ह्युपांगजनकाः स्वयम् ॥

लक्ष्यसङ्गीतम्

अथ नाटप्रभेदानामुद्देशः क्रियतेऽधुना ।
शुद्धनाटोऽथ सालंगनाटश्च्छायादिनाटकः ॥
केदारादिकनाटश्च तथा कल्याणनाटकः ।
तथा भीरकनाटश्च वराटीनाटकस्ततः ॥
ततः सारंगनाटश्च तथा कामोदनाटकः ।
वर्णनाटश्च बिभ्रारनाटो हंमीरनाटकः ॥
कदम्बनाटकः पूर्यानाटः कर्णाटनाटकः ।
पूर्याकर्णाटकोऽप्यत्र नाटभेदो बुधैर्मतः ॥
एवं षोडशनाटाः स्युः ततः कर्नाटकान् ब्रुवे ।
शुद्धकर्णाटरागश्च कर्णाटो नायकी ततः ॥
वागीश्वर्यादिकर्णाटः कर्णाटोऽड्डाणपूर्वकः ।
ततः सहानाकर्णाटः पूर्यादिकस्ततःपरम् ॥
ततो मुन्द्रिककर्णाटो गाराकर्णाटकस्ततः ।
हुसेनीपूर्वकर्णाटः काफीकर्णाटकस्ततः ॥
सोरटीपूर्वकर्णाटः खम्बावत्यादिकस्ततः ।
ततः कर्णाटगौडः स्यात् कर्णाटीति चतुर्दश ॥

यह कहना पड़ेगा कि इन सभी रागों के लक्षण भावभट्ट ने नहीं दिए हैं, तो फिर उसने दिया ही क्या ? आगे चलो:—

शुद्धकल्याणरागश्च ततः कल्याणनाटकः ।

इत्यादि ॥

ये सभी कल्याण के भेद, जो कुल तेरह हैं, मैं तुम्हें बता ही चुका हूं।

नट्टेन सहिताऽऽलह्या गौरा मारुविमिश्रिता ।
केदारमिश्रिता पूर्या नट्टा गौंडेन मिश्रिता ॥
देशाख्या स्यात् सुकर्णाटा पंचधा गदिता बुधैः ।
मल्लारमिश्रिता चैव मारुवेलावली स्मृता ॥
कल्याणेनैमनेनैव केदाराद्या द्विधा स्मृता ।
लक्ष्मीकामोदमिलिता कर्णाटाद्या प्रकीर्तिता ॥
सा केदारमलाराभ्यां कुडाईपूर्विका मता ।
देवगिर्यड्डानयुक्ता सूहवीपूर्विका तथा ॥
विहंगडपलाशिभ्यां मारुणा शिवभूषणा ।
भुंचिकाद्या प्रतापाद्या शुद्धा शुद्धस्वरूपिणी ॥
स्तम्भतीर्थी च छायाद्या वेलावल्यस्तु षोडश ॥

ये नाम जिस प्रकार मेरी प्रति में बताये हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। यह न समझना चाहिये कि ये सभी राग भावभट्ट स्वयं गाता रहा होगा । उसने अन्य ग्रंथों से ये उद्धृत कर लिये हैं । उनका सारांश कहीं अपने श्लोकों में लिखा होगा। जिस प्रकार कि आज भी ऐसे लेखक हैं, जो रत्नाकर के एक भी राग का थाट नहीं समझ सकते, फिर भी उसके सम्पूर्ण राग उद्धृत कर डालते हैं, ऐसे ही लेखक पहिले भी थे । परन्तु हम यह अवश्य कहेंगे कि उसने यह संग्रह करके बहुत उपयोगी कार्य किया है। सम्भवत: उसके ग्रहण किए हुए सम्पूर्ण आधार ग्रन्थ हमें आज प्राप्त नहीं हो सकते। मैं यह हरगिज नहीं कहूंगा कि उसे प्रत्यक्ष सङ्गीत आता ही न था । वह अपने समय का एक प्रसिद्ध गायक अथवा वादक भी रहा होगा । यह कैसे भुलाया जायेगा कि उसे 'सङ्गीतराज' पदवी प्राप्त हुई थी ? परन्तु इतने ही प्रमाण से यह मान लेना आवश्यक नहीं है कि वह सभी शास्त्रों में पारंगत था। आजकल भी अपने यहां कुछ शौकीन राजा-महाराजा सोने चाँदी के 'पदक' पुरस्कार रूप में देते हुए क्या नहीं दिखाई पड़ते ? एक दिन तो मुझे किसी ने बताया था कि एक अमुक संस्था तो 'संगीत मुकुट मणि' 'सङ्गीत पद्मराग' आदि पदवियां भी देती है ! इससे हमें कोई काम नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि भावभट्ट ने उत्तम संग्रह किया है । उसने अपने ग्रंथ में सहस्रों प्राचीन 'चीज़ें' (गीत) भी संग्रहीत कर दी हैं ।

प्रश्न—इन चीज़ों का क्या कुछ उपयोग हो सकेगा ?

उत्तर—हां, यदि कोई गीत-गोविन्द के अष्टपदी जैसा उपयोग कर सके, तो हो सकता है। वास्तव में तो वह होने योग्य ज्ञात नहीं होता, क्योंकि गीतों के स्वर नहीं लिखे होने से उन्हें योग्य रीति से और प्राचीन ढङ्ग से कैसे गाया जा सकेगा ? हमारे कुछ चंट गायक खींच तान कर चाहें तो उन्हें जमा देंगे, परन्तु इन्हीं में से कोई चीज किसी प्राचीन गायक को आती हो तो तत्काल ही असल नकल का झगड़ा खड़ा हो जाएगा। फिर उसे मिटाने वाला कौन ? अपने गायक भी ऐसे ही निरे गीतों का संग्रह बना रखते हैं। परसों एक गायक मेरे पास आए थे, उन्होंने अपने एक भोले शिष्य की बात सुनाई, जिसे सुनकर मुझे बड़ा आनन्द आया।

प्रश्न—उन्होंने क्या सुनाया ?

उत्तर—वे बोले—"मैं अपने लड़के को तालीम दे रहा था, इतने में मेरा एक शिष्य निकट आकर बैठ गया। जमीन पर मेरी ध्रुपद की कापी पड़ी हुई थी। उसकी ओर उसका ध्यान गया। उसने वह एकदम उठाली और पढ़ने लगा। उस कापी में एक-एक राग की दस-दस बीस-बीस चीज़ें देखकर वह आश्चर्य चकित होगया तथा बड़े अनुरोधपूर्वक कहने लगा—खां साहेब ! अब आप वृद्ध हो गये हैं, आप यह अपना भंडार लोगों को दिखादें और उनकी 'दुआ' लें। सब लोग अँधेरे में भटकते फिरते हैं, मैं इस कापी की कीमत इसी समय दो हज़ार रुपए आपको देता हूं और इन चीजों को छपवा कर प्रसिद्ध किए देता हूं।' परन्तु मैंने उससे कहा कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि तुम दो लाख रुपये की ढेरी भी मेरे सामने रखदो, तो भी मैं इन चीजों को छपने नहीं दूंगा।"

प्रश्न—शायद उनकी चीज़ें ताल, स्वर के साथ लिखी हुई होंगी ?

उत्तर—नहीं, केवल 'बोल' (गीत के शब्द) ही उस कापी में लिखे थे, यही उन्होंने बताया था।

प्रश्न—शाबास ! तो भी इतनी कीमत ? फिर आपने क्या कहा ?

उत्तर—मैंने कहा—"खां साहेब ! आपने 'नहीं' कहकर बहुत ही सज्जनता दिखाई। वह बेचारा भोला व्यक्ति यह क्या समझे कि ऐसा गीत-संग्रह कौड़ियों के मूल्य का है ? जब कि वे चीज़ें ताल, स्वर के साथ नहीं थीं, तो उनका उपयोग भला कैसे हो सकता था ? यदि वह शिष्य आपसे पुनः मिले तो आप उससे कह दीजिए कि 'संगीत कल्पद्रुम' में लगभग एक लाख चीज़ें छपी हुई हैं। ये चीज़ें किसी के लिये विशेष उपयोगी नहीं होतीं। उसे यह भी कहियेगा कि यदि दस-बीस हज़ार प्राचीन चीज़ें ही वह नकल करना चाहता हो तो मैं अपने कल्पद्रुम की प्रति से मुफ्त में कर लेने दूंगा।" यह मैंने उनसे स्पष्ट रूप से कह दिया।

चीज़ों के ताल-स्वर बताये हों तथा राग की समुचित कल्पना हो, तो स्वर-ज्ञान वाला व्यक्ति उन चीज़ों को गाने का प्रयत्न कुछ मात्रा में कर सकेगा, किन्तु ताल-स्वर यदि न बताये हों तो एक ही ध्रुपद चार रागों में सुनने का प्रसङ्ग आ जाता है। कुछ गायक तो प्राचीन चीज़ों में से मूल रचनाकार का नाम हटाकर

अपना नाम डाल देते हैं। उनका इस सम्बन्ध में यही सिद्धान्त होगा कि यह तो सार्वजनिक सम्पत्ति है! इसका चाहे जैसा उपयोग करने की मनाई कहां है? "महादेव शंकर जटा जूट" यह ध्रुपद मुझे तीन गायकों ने तीन रागों में सुनाया! यह मूल रूप से किस राग का होगा! यह कौन जानता है? ठीक है, परन्तु हम तो इस चर्चा में भावभट्ट को बिलकुल भूल ही गये? आगे सुनो:—

प्रथमा स्याच्छुद्धतोडी देशीतोडी द्वितीयिका।
बहादुरी तृतीया स्यात्तुर्या गुर्जरिका मता॥
छायातोडी पंचमी स्यात् षष्ठी तोडी वराटिका।
हुसेनी सप्तमी प्रोक्ता जौनपूरी तथाष्टमी॥
आसातोडी च नवमी नवधा कथिता बुधैः।

अब गौडी के भेद सुनो:—

प्रथमा शुद्धगौडीस्याद्गौडीभेदान् ब्रुवेऽधुना।
आसावरीमिश्रणेन जोगिया परिकीर्तिता॥
नायकी पौरवीयुक्ता खूमरी नायकीयुता।
सैव चैत्रीतिविख्याता गौरी बिभ्रारसंयुता॥
त्रावणीसहिता सैव कथिताऽऽधुनिकैर्बुधैः।
मालवी देवगांधारयुक्ता गौरी प्रकीर्तिता॥
श्रीगौरी पूर्विकायुक्ता द्विविधा परिकीर्तिता।
एवंचाष्टविधा गौरी गौडभेदान् प्रचक्ष्महे॥

अब गौड के भेद देखो:—

प्रथमः शुद्धगौडः स्यात् कर्णाटाद्यो द्वितीयकः।
देशवालस्तृतीयः स्याच्चौरुष्कस्तु तुरीयकः॥
द्रविडाद्यः पंचमः स्यात् षष्ठो मालवगौडकः।
केदाराद्यः सप्तमः स्यात् सारंगाद्यस्तथाष्टमः॥
नवमो रीतिगौडः स्यान्नारायणादिकस्तथा।
एवं दशविधो गौडः पूर्वाचार्यैः प्रकीर्तितः॥

इनमें से कुछ नाम हमें रत्नाकर में भी दिखाई पड़ते हैं। दक्षिण के ग्रन्थों में इनमें से कुछ रागों के थाट स्पष्ट बताये गए हैं। अब वराटी के भेद सुनाता हूं:—

आद्याशुद्धवराटी स्याद्द्वितीया कौंतली मता।
तृतीया द्राविडी प्रोक्ता चतुर्थी सैंधवी मता॥

अपस्थाना पंचमी स्यात् षष्ठी हतस्वरा मता ।
प्रतापाद्या सप्तमी स्यादष्टमी तोडिकादिका ॥
नागवराटी नवमी पुन्नागा दशमी स्मृता ।
एकादशी तु वाशोका कल्याणी द्वादशी मता ॥
एवं द्वादशधा प्रोक्ता वराटी पूर्वसूरिभिः ॥

अब पूर्या के भेद सुनो:—

पूर्विका ललितायुक्ता हिंदोलांता तदा भवेत् ।
ललिताभैरवाभ्यां तु भैरवांता प्रकीर्तिता ॥
ललिताविहंगडाभ्यां स्यात् पूरियाविहंगडा ।
युता पूर्याधनाश्रीः स्याद्धिंदोलेन धनाश्रिका ॥
ललितेमनसंयोगे भवेत् पूर्येमनीरिता ।
सप्तमी शुद्धपूर्या स्यादेवं सप्तविधा स्मृता ॥

आसावरी के तीन भेद इस प्रकार भावभट्ट बताता है:—

प्रोक्ता सासावरी शुद्धा जोगिया नायकी त्रिधा ।

केदार राग तीन प्रकार का बताया है:—

शुद्धसुल्तानिमल्लोहाकेदारस्त्रिविधः स्मृतः ।
केवलो नायकी चेति द्विधा विहंगडस्तथा ॥
शुद्धः सामंतपूर्वश्च वृन्दावनी चतुर्विधः ।
ख्यातः सारंगरागोऽसौ देवगिर्यादिकस्तथा ॥

ये 'विहंगड़' व 'सारंग' के भेद होगये ।

औडवः षाडवश्चैव संपूर्णश्च त्रिधा मतः ।
वसंतनंदकानंदस्वर्णाकर्षणपूर्वकाः ॥
गांधारपंचमाद्यश्च बहुलीपूर्वकः स्मृतः ।
रागभैरव इत्येवं भैरवो दशधा मतः ॥

ये भैरव के भेद हो गये, अब कामोद के भेद सुनो:—

प्रथमं शुद्धकामोदः कल्याणाद्यो द्वितीयकः ।
सामंताद्यस्तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तिलकादिकः ॥
नाटांतः पंचमः प्रोक्तश्चाडीकामोदकस्ततः ।
षष्ठः सिंहलिकामोदः सप्तधा परिकीर्तितः ॥

अब गुर्जरी के भेद बताए हैं:—

गुर्जरी प्रथमा शुद्धा द्वितीया बहुलादिका ।
तृतीया मंगलाख्या स्याच्चतुर्थी मामगुर्जरी ॥
पंचमी तु महाराष्ट्री षष्ठी सौराष्ट्रगुर्जरी ।
सप्तमी दाक्षिणात्या स्याद्द्राविडी चाष्टमी मता ॥
एवमष्टविधा प्रोक्ता गुर्जरी पूर्वसूरिभिः ॥

प्रश्न—इतने भेद प्रभेद एकत्र करने में उस पण्डित को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा !

उत्तर—मैं समझता हूं कि उसने विशेष प्रयास नहीं किया होगा। उसके पास रत्नाकर, दर्पण, रागमाला, चंद्रोदय, मंजरी, हृदयप्रकाश आदि ग्रन्थ थे ही । उनमें से उसने ये नाम ले लिए होंगे । क्या यह काम तुम स्वयं नहीं कर सकते ? हां, यह सत्य है कि उसने इन ग्रन्थों को प्राप्त करने का श्रम अवश्य किया होगा । यदि वह इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देता कि ये समस्त मिश्र-राग किस प्रकार गाए जाते हैं, तो अवश्य ही उसका ग्रन्थ अद्वितीय हो जाता । मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया । उलटे कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों का वर्गीकरण नकल कर "भावभट्टेन कीर्तिताः" इस प्रकार नीचे मोहर लगादी है । सारांश यह है कि जितना तुम समझते हो उतना भारी काम भावभट्ट का नहीं है । रागों की जानकारी प्राप्त करने में उसे बड़े-बड़े गायकों का सत्संग वर्षों तक करना पड़ता और उत्तम स्वरज्ञान व रागज्ञान प्राप्त करना पड़ता । कोरे नाम उद्धृत कर लेने में व उन्हें संस्कृत श्लोकों में ग्रथित कर देने में कौनसी बड़ी भारी विद्या खर्च होगी ? यह सत्य है कि उसने बड़ा भारी ग्रंथ लिखा, परन्तु उसे सम्पूर्ण पढ़ जाने के बाद यदि हम स्वतः से ही यह प्रश्न करें कि हमने इसमें से क्या-क्या सीखा है, तो मैं नहीं समझता कि हम सन्तोषपूर्ण उत्तर दे सकेंगे ! हां, उनके संग्रह की हम अवश्य प्रशंसा करेंगे । कोई यह कहेगा कि उसी प्रकार का संग्रह आप भी तो कर रहे हैं, परन्तु यह तुम देख ही रहे हो कि हम प्रत्येक राग में कहीं भी संदिग्ध अवस्था नहीं छोड़ते । मेरा खयाल है कि जिस प्रकार हम प्रत्येक राग का थाट, आरोह, अवरोह, वादी, विवादी, संगति अन्य रागों का भिन्नत्व, मुख्य अङ्ग, आदि बातें देखते जाते हैं; उस प्रकार भावभट्ट ने नहीं किया । मैं यह बात अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये नहीं कह रहा हूं । मैंने तो यह बताया है कि उसकी और हमारी विचारधारा में कौनसा भेद है । शायद भावभट्ट के समय में इन बातों को बताने की जरूरत न रही होगी, इसीलिये उसने इन्हें विस्तृत रूप से नहीं कहा है । यद्यपि हम यह दम्भ कभी नहीं करेंगे कि हम प्राचीन ग्रन्थकारों से अधिक चतुर हैं; तो भी मैं यह मानता हूं कि उनके ग्रंथों में क्या-क्या कमी रह गई है, यह बताना अपना कर्तव्य है । अस्तु, गुर्जरी के भेद बताकर भावभट्ट सेंधवी के भेद इस प्रकार कहता है:—

टक्कभाषाच भाषा स्यात्पंचमस्य ततः परम् ।
भिन्नषड्जस्य भाषास्याद्भाषा मालवकैशिके ॥
शुद्धमेलोद्भवा षष्ठो प्रोक्ता हृदयभूभुजा ॥

प्रश्न—यह "हृदय" कौन ?

उत्तर—कहा जाता है कि किसी "हृदयनारायणदेव" नामक राजा ने "हृदयप्रकाश" नामक ग्रंथ रचकर प्रकाशित किया था। इस राजा का इतिहास मैं कभी ऐतिहासिक विद्वानों से पूछ कर तुम्हें बताऊँगा। हृदय प्रकाश ग्रंथ बीकानेर के संग्रह में है, आगे:—

एवं च षड्विधा प्रोक्ता सैंधवी पूर्वसूरिभिः ।
मल्लारी गौंडमल्लारी मेघमल्लारिका त्रिधा ॥
अष्टाधिकं सार्धशतमुपांगानि जगुर्बुधाः ॥

इस प्रकार कहा है। भावभट्ट ने अन्य ग्रंथों से भी कुछ राग–वर्गीकरण उद्धृत कर लिये हैं। रत्नाकर का ग्राम राग आदि परिच्छेद उसने ग्रहण किया है, उसका व्यौरा नहीं बताऊँगा; क्योंकि अब रत्नाकर ग्रंथ प्रकाशित हो गया है। दूसरा वर्गीकरण उसने इस प्रकार दिया है:—

सद्योजातात्तु श्रीरागो वामदेवाद्वसंतकः ।
अघोराद्भैरवोऽभूत्तत्पुरुषात्पञ्चमोऽभवत् ॥
ईशानाख्यान्मेघरागो नाट्यारम्भे शिवादभूत् ।
गिरिजाया मुखाल्लास्ये नट्टनारायणोऽभवत् ॥
नट्टनारायणस्यापि मेघस्य भैरवस्य च ।
श्रीरागस्य च संप्रोक्तं रागत्वं पूर्वसूरिभिः ॥
पञ्चमो ग्रामरागः स्यात् रागांगं च वसंतकः ।
शुद्धभैरवहिंदोलौ देशकारस्ततः परम् ॥
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणेति षट् ॥
हिंदोलो दीपकश्चैव भैरवो मालकौशिकः ।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाः स्मृताः ॥
भैरवः पञ्चमो नाटो मल्लारो मालवस्ततः ।
देशकारः षडेते स्युः रागा रागार्णवे मताः ॥
मालवी त्रिवणा गौडी केदारी मधुमाधवी ।
ततः पहाडिका चेति श्रीरागस्य वरांगनाः ॥
देशी देवगिरी चैव वराटी तोडिका तथा ।
ललिता चाथ हिंदोली वसंतस्य वरांगनाः ॥
विभासश्चाथ भूपाली कर्णाटी बडहंसिका ।
मंजरीचैव मालश्रीः पंचमस्य वरांगनाः ॥
भैरवी गुर्जरी रेवा गुणक्री बहुली तथा ।
बंगाली भैरवस्यैव षडेता योषितो मताः ॥

मल्लारी सोरटी चैव शंकराभरणेति षट् ।
रागिण्यो मेघरागस्य भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
कामोदी नाटिकाहीरी कल्याणी च हमीरिका ।
नट्टनारायणस्यैव पंचैता योषितो मताः ॥
धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मालवी तथा ।
आसावरी च पंच स्युर्भैरवस्य वरांगनाः ॥
भैरवो ललितश्चैव परजः पञ्चमस्तथा ।
बंगालः पंच संप्रोक्ता भैरवस्य सुता इमे ॥
भूपाली च वराटी च तोडिका पटमंजरी ।
तुरुष्कतोडिका पंच हिंदोलस्य वरांगनाः ॥
कामोदः प्रथमः पुत्रः बंगालस्तु द्वितीयकः ।
वसंतस्तु तृतीयः स्यात्तुर्यः सामः प्रकीर्तितः ॥
सामंतः पंचमः प्रोक्ता हिंदोलस्य सुता इमे ॥
रामक्री बहुली देशी जेतश्रीश्चैव गुर्जरी ।
पंचैता देशकारस्य योषितः परिकल्पिताः ॥
ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।
कल्याणः पंचमः प्रोक्ता देशकारसुता इमे ॥
गौडी पाडी गुणक्री च नादरामक्रिगौंडिके ।
श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
टक्कश्च देवगांधारो मालवो गौडकस्ततः ।
कर्णाटः पंचमः प्रोक्ताः श्रीरागस्य सुता इमे ॥
मालश्रीश्चैव देशाची देवक्री मधुमाधवी ।
अहीरी पञ्चमी प्रोक्ताः शुद्धनाटस्य योषितः ॥
जिजावंतश्च सालंगः कर्णाटः शुद्धनाटकः ॥
छायानाटश्च पंचैते शुद्धनाटस्य सूनवः ॥
वेलावली च कांभोजी सावेरी सुहवी ततः ।
सोरटी पंचमी नट्टनारायणस्य योषितः ॥
मल्लारगौंडकेदाराः शंकराभरणस्ततः ।
विहंगडः सुताः पंच नट्टनारायणस्य च ॥

मध्यमादिर्भैरवीच बंगाली च वराटिका ।
सैंधवी पंचमी प्रोक्ता भैरवस्य वरांगनाः ॥

टोडी खंबावती गौडी गुणक्री ककुभा तथा ।
मालकौशिकरागस्य योषितः पंच कीर्तिताः ॥
वेलावलीच रामक्री देशाख्ी पटमंजरी ।
ललिता पंच संप्रोक्ता हिंदोलस्य वरांगनाः ॥
केदारिका च देशीच कामोदी नाटिका ततः ।
कर्णाटी पंच संप्रोक्ता दीपकस्य वरांगनाः ॥
वसंती मालवी मालश्रीः सावेरी धनाश्रिका ।
श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
मल्लारी देशकारी च भूपाली गुर्जरी तथा ।
टक्का च पंच मेघस्य योषितः कीर्तिता बुधैः ॥
बंगाली भैरवी वेलावली पुण्याकिका ततः ।
स्नेहोच पंच संप्रोक्ता भैरवस्य वरांगनाः ॥
बंगालः पंचमश्चैव ललितश्च मधूकरः ।
अष्टौ सुता भैरवस्य देशाख्यो हर्षमाधवौ ॥
गुणक्रीश्चैव गांधारी श्रीहर्षी चंद्रिका तथा ।
धनाश्रीः पंचमी प्रोक्ता मालकौशिकयोषितः ॥
मेवाडः खोखरो मारुवर्धनः चंद्रहासकः ।
मिष्टांगो नंदनश्चैव भ्रमरश्चाष्टमः सुताः ॥
मालवाद्यकौशिकस्य संप्रोक्ता भावसूरिणा ।
वसंती चैव तैलंगी देवक्री सिंदुरी तथा ॥
आभीरी पञ्चमी प्रोक्ता हिंदोलस्य वरांगनाः ।
मंगलश्च वसंतश्च विनोदश्च विभासकः ॥
शुभ्रांगश्चन्द्रबिंबश्च ह्यानंदः सुखवर्धनः ।
हिंदोलस्य सुता अष्टौ ते प्रोक्ता भावसूरिणा ॥
कावेरी गुर्जरी तोड़ी कामोदि पटमंजरी ।
दीपकस्य प्रियाः पंच हेमाडः कुसुमस्ततः ॥
रामरागः कुंतलश्च कमलो बहुलस्ततः ।
कलिंगश्चंपकश्चाष्टौ दीपकस्य सुता मताः ॥
वराटी चैव कर्णाटी सावेरी गौडिका तथा ।
रामक्रीः सैंधवी चैव श्री रागस्य वरांगनाः ॥

गुणसागरनामा च कल्याणश्च विहंगडः ।
गौडमालवगंभोरौ कुम्भः सिंधुस्तथा गडः ॥
श्रीरागस्य सुताष्टौ ते कीर्तिता भावसूरिणा ।
मल्लारी सोरटी ह्यासावरी कौंतलिका ततः ॥
बहुली पञ्चमी प्रोक्ता मेघरागस्य योषितः ।
नट्टनारायणो गौडमल्लारस्तदनंतरम् ॥
कर्णाटश्चैव केदारः शंकराभरणस्ततः ।
नारायणश्च सारंगो जालंधरः सुतोष्टमः ॥
मेघरागसुताः प्रोक्ताः श्रीजनार्दनसूनुना ॥

प्रिय मित्रो ! अब मैं तुम्हें 'अनूप रत्नाकर' का रागवर्णन तथा भावभट्ट के आधार-ग्रन्थ बता ही चुका हूं । अब कदाचित् तुम यह पूछोगे कि इन सभी रागों के प्रत्यक्ष लक्षण कहां मिल सकेंगे ?

प्रश्न—जी हां, हम यही बात अब पूछने वाले थे ?

उत्तर--इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है । मुझे यह विश्वास नहीं कि संस्कृत ग्रन्थों में मिश्ररागों के समाधानकारक लक्षण मिल जायेंगे ! अपने देशी भाषा के ग्रन्थों में कुछ-कुछ इन रागों के स्वर बताने जैसा उपक्रम किया हुआ मुझे दिखाई दिया, परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि उन ग्रन्थकारों ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार ही प्राप्त नहीं किए हैं । स्वयं भावभट्ट के ग्रन्थों में इन रागों की स्पष्टता, योग्य रूप से नहीं मिलती । जो राग, पारिजात, रागविबोध, चन्द्रोदय आदि ग्रन्थों में बताये हैं, उनके लक्षण तो सुबोध ही हैं । हां, "राधागोविंद सङ्गीतसार" में भावभट्ट के कुछ रागों के स्वर, किसी प्रकार बताने का प्रयत्न किया है । प्रतापसिंह ने ऐसे रागों के स्वर अपने समय के गायकों के पास से संभवतः प्राप्त किये होंगे, परन्तु उसने इस तथ्य का कहीं भी उल्लेख नहीं किया । मुझे यह विश्वास नहीं कि अप्रसिद्ध रागों के विषय में, तुम्हें प्रतापसिंह से कुछ अच्छी सहायता मिलेगी । प्रत्येक रागवर्णन में उसने कहा है "शास्त्र में तो अमुक सुरन सों गायो है" परन्तु इससे विशेष अर्थ सिद्ध नहीं होता । यह मैं अपना व्यक्तिगत मत बता रहा हूँ, शायद यह ग़लत भी हो ।

प्रश्न—क्या भावभट्ट ने अपना स्वतः का मत कह कर कोई राग-वर्गीकरण नहीं बताया ?

उत्तर—हाँ, इस प्रकार भो किया है । उसे भी मैं बता दूँ, तो अच्छा ही रहेगा ! उसने मुख्य मेल-जनक-थाट बीस मानकर प्रचलित रागों को उन्हीं में व्यवस्थित किया है । प्रत्येक राग बताते हुए, अपने पास के ग्रन्थों के लक्षण भी वह बताता गया है । मैंने तुम्हें अभी जो श्लोक बताए हैं, वे यद्यपि भावभट्ट के हैं, तो भी उनका विवरण प्रायः प्राचीन ग्रन्थों से ही उसने ग्रहण किया है । भावभट्ट के ग्रन्थां की समता 'संगीतसार' से कभी नहीं हो सकतो । खैर, मैं उसके मेल बता रहा था न ? वे इस प्रकार हैं:—

टोडीगौडीवराटीनां केदारशुद्धनाटयोः ।
मालवाकौशिकाख्यस्य श्रीरागस्य ततः परम् ॥
हंमीराहेरिकल्याणदेशाक्षीदेशिकारकाः ।
सारंगस्य च कर्णाटः सकामोदहिजेजकः ॥
नादरामक्रिहिंदोलमुखारीसोमरागकाः ।
एतेषां, मेलसंजातरागाणां च यथाक्रमम् ॥
लक्षणं वक्ष्यते किंतु लोकवृत्तानुसारतः ॥

इन मेलों के स्वर व जन्यराग भावभट्ट इस प्रकार बताता है:—

तोडीमेलः प्रसिद्धः स्यादेकैकगतिकौ निगौ ।
मेलादतस्तोडिकाद्याः कतिचित्तु भवंति हि ॥

तोडी ।

निगौ तृतीयगतिकौ गौडीमेलः प्रकीर्तिताः ।
मेलादतो गुर्जरीच बहुला रामक्रीस्तथा ॥
आसावरी च मारुश्च गुणक्री पटमंजरी ।
पञ्चमः शुद्धललितष्टक्को मालवगौडकः ॥
पूर्वी बंगालपाडीपरजाद्याः कतिचित् परे ॥

गौडी ।

निगौ तृतीयगतिकौ वराटीमेल एव सः ।
अस्माद्वराट्यः सामादिवराट्याद्या अनेकशः ॥

वराटी ।

रिधौ द्वितीयगतिकौ तृतीयगतिकौ निगौ ।
एष केदारमेलः स्यादतो जाताश्च रागकाः ॥
केदारगौंडमल्हारनट्टनारायणास्ततः ।
केदारनाटादिकास्ते रागा अस्मिन् समुत्थिताः ॥

केदारः ।

तृतीयगतिकाः शुद्धनाटमेले रिधौ गनी ।
अस्मिन्मेले संभवंति शुद्धनाटादिकाः परे ॥

शुद्धनाटः ।

एकैकगतिकौ रिधौ निगौ मालवकौशिके ।
अस्मिन्मेले मालवश्रीर्धन्नासी भैरवी तथा ॥
सैंधवी देवगांधार इत्याद्या ह्यपरे यथा ॥

मालवकौशिकः ।

धरिन्येकैकगतिका गस्तृतीयगतिर्यथा ।
श्रीरागमेल एषः स्यात् श्रीरागाद्या अनेकशः ॥

श्रीमेलः ।

द्वितीयगतिको रिश्च तृतीयगतिकौ निगौ ।
हमीरमेल एषः स्याद्धमीराद्या अनेकशः ॥

हमीरः ।

एकतृतीयगतिकौ गनीस्वरौ यथाक्रमम् ।
द्वितीयगतिको रिश्च त्वाहेरीमेल एव हि ॥

आहेरी ।

मनी तृतीयगतिकौ द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
एकैवगतिर्गांधार एष कल्याणमेलकः ॥
अतोऽपि मेलात् कल्याणप्रमुखास्ते भवंति हि ॥

कल्याणः ।

तृतीयगतिकौ रिगौ निश्च देशाक्षिमेलकः ।
अतोऽपि मेलाद्देशाक्षी प्रमुखाद्या भवंति हि ॥

देशाक्षीः ।

तृतीयगतिनिगमा देशकारस्य मेलकः ।
देशिकारस्तिरवणी देशी ललितदीपकौ ॥
विभासाद्याहिकेचित्तु संभवंत्यत्र मेलनात् ॥

देशाकारः ।

तृतीयगतिमनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
तुरीयगतिको गश्च मेलः सारंगरागजः ॥
मेलादतोऽपि सारंगप्रमुखाद्या भवंति च ॥

सारंगः ।

तृतीयगतिगनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
तदा कर्णाटमेलः स्यात्तत्र संभूतरागकाः ॥
कर्णाटरागः सामंतः सौराष्ट्री छायनाटकः ॥

कर्णाटमेलः ।

निगावेकैकगतिकौ तृतीयगतिकोऽपि मः ।
एष कामोदमेलः स्यादस्मादन्यतराः परे ॥

कामोदः ।

गनी ह्येकगती यत्र हिजेजाख्यस्य मेलकः ।
मेलादतो हिजेजश्च भैरवाद्याह्यनेकशः ॥

हिजेजः ।

निगावेकगती मेलो नादरामक्रुतेश्च सः ।
मेलादतो नादरामक्याद्याश्च कतिचित्परे ॥

नादरामकृतिः ।

द्वितीयगतिको रिश्च त्वेकैकगतिकौ गनी ।
तदा हिंदोलमेलः स्यात्तज्जो हिंदोलरागकः ॥
वसंतरागाद्यन्येऽपि केचित्केचिद्भवंति हि ॥

हिंदोलः ।

सप्तस्वराः स्वभावस्था मुखारीमेलको भवेत् ।
मुखारीमेलतोऽन्येपि मुखार्याद्या भवंति च ॥

मुखारी ।

निरेकगतिकः सोमरागः सदाशिवप्रियः ।
अमुष्मादपि केचित्तु रागा नित्यं भवंति हि ॥

सोमः ।

पं० भावभट्ट के सम्पूर्ण बीस मेल मैंने ऊपर एक साथ बताये हैं। तुम्हारे सम्मुख ये ही श्लोक बार-बार आते रहेंगे जब कि मैं भिन्न-भिन्न रागों का वर्णन करते हुए स्थान-स्थान पर इनका उपयोग करूंगा। इसके पारिभाषिक नाम सरल हैं। यह कहा जा सकता है कि इसने प्रायः पुण्डरीक के ही पारिभाषिक नाम लिये हैं। तुम्हें याद होगा कि रागमाला के स्वर समझाते हुए मैंने यह कहा था कि इसमें रि, ध, म, नी स्वर तीन-तीन गति के और केवल गांधार चार गति का बताया गया है। रि, ध, स्वरों की गति समझने में विद्यार्थियों को कुछ कठिनाई भी पड़ सकती है।

प्रश्न—यह हम समझ गये। ऋषभ की मूल अवस्था, अर्थात् हिन्दुस्थानी का कोमल री मान लें। धैवत को भी इसी प्रकार कोमल ध समझ लें। ग्रंथकार चतुःश्रुतिक रि, ध और पंचश्रुतिक रि, ध, मानता है। पंचश्रुतिक रि, ध, पुनः उसके ग, नी स्वर हो जाते हैं, यह भी हम जानते हैं। एक-एक गति के रि, ध, को हम चतुःश्रुतिक रि, ध, समझें और दो-दो गति के रि, ध, पंचश्रुतिक रि, ध, समझलें।

उत्तर—परन्तु पंचश्रुतिक रि, ध, तो हिन्दुस्थानी पद्धति के तीव्र रि, ध स्वर ही उच्चारित होने चाहिये।

प्रश्न—जी हां, हमें यह ज्ञात है। आपने बताया था कि ग्रन्थकार ने वीणा के दूसरे परदे पर शुद्ध ग यानी पंचश्रुतिक रि माना है। इसी परदे पर मध्यम के तार के नीचे शुद्ध पंचम निकलता है, यह भी एक बड़ा महत्वपूर्ण चिन्ह है। इसमें पंचश्रुतिक रि यानी शुद्ध ग का प्रमाण (२७० आन्दोलन) माना जावेगा। हमारे सितार पर यही परदा तीव्र रि का है। हमने अपने ध्यान में जमा रखा है कि जब आगे चलकर सङ्गीत बारह स्वरों पर निर्भर हो गया, तब पंचश्रुतिक रि, ध, चतुःश्रुतिक रि, ध, और शुद्ध ग, नी, ये हिन्दुस्थानी में तीव्र रि, ध, माने गये। गांधार की तीन गति साधारण, अन्तर व मृदु म, का हमें बोध है। आगे चलकर अन्तर व मृदु दोनों परस्पर मिल गये और अब दक्षिण की ओर एक ही नाम "अन्तर ग" का प्रयोग होता है। इसी प्रकार काकली नी और मृदु सा मिलकर "काकली नी" नाम अब प्रचार में है। ये स्वर हिन्दुस्थानी गायक तीव्र ग और तीव्र नी नामों से पहिचानते हैं। हम समझते हैं कि यह सम्पूर्ण भाग अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया है। चतुःश्रुतिक रि, ध, भावभट्ट ने श्रीराग मेल में बताये हैं, यह हमारे ध्यान में जमा हुआ है। परन्तु हम समझते हैं कि प्रचार में तीव्र रि, ध, स्वर ही यहां प्रयोग में आयेंगे; क्यों कि दक्षिण के चतुःश्रुतिक रि, ध स्वर अपने रि, ध स्वरों से आज भी मिलते हैं, यह आपने भी कहा था।

उत्तर—शाबास! शाबास!! ये सभी बातें तुमने बहुत अच्छी तरह ध्यान में जमा रखी हैं। परन्तु मित्रो! हम लोग कहां से कहां आ निकले? हमें अपने मुख्य विषय का बिलकुल ध्यान नहीं रहा। परन्तु यह अच्छा है कि तुम लोग भी मेरे जैसे सङ्गीत प्रेमी हो, अन्यथा अन्य विद्यार्थी तो इन समस्त पुराणों से कभी के उकता गये होते। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि तुमने इन सब बातों को धैर्य पूर्वक सुनकर ग्रहण कर लिया। क्योंकि भावभट्ट के ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए और यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे कब प्रकाशित होंगे, अतः इस सम्बन्ध में यह जानकारी प्राप्त कर लेना भी तुम्हारे लिये अच्छा ही हुआ है।

प्रश्न—अब आप हमें जोगिया राग का स्वरूप स्वरों में बताइये?

उत्तर—वह इस प्रकार होगाः—

जोगिया—

म, रेसा, रेरेमरेसा, रेम, मपप, धमरेसा; सारेसा; रेरेसा, निध, सा, मपधपधम, रेमरेसा, निधपधम, निधम, रेसा, सारेसा। सारेमम, पप, धधप. धसां, धपधम, सांनिधप,

पधनिधप, धमरेसा, सारेसा। धध, धधपप, धसांनिधप, मपधधम, सांनिधपम, धम, रेमपध, म, निधम, पमरेसा, सारेसा ।

मम, पप, ध, सां, सांरेंसां, सांरेंमंमं, रेंरेंसां, सांरेंसांनि ध, पसांनिधप, ममपप, धधमप, सांरेंसांनिधप, मपधप, निधपधम, रेरेसा, सारेसा, सारेसा, सारेमरेसा, धसा, रेरेसा, सारेमपधधममरेसा, निनिधध, मपधप, ममरेसा, सांनिध, रेंसांनिधमपधध-ममरेरेसा, सारेसा ।

सरगम—त्रिताल

म	म	प	ध	सां	नि	ध	नि	ध	प	ध	म	प	ऽ	ऽ	ऽ
०				१				×				३			
म	म	प	प	ध	ध	म	प	म	प	ध	प	म	म	रे	सा
०				१				×				३			
सा	सा	रे	रे	म	म	प	प	ध	ध	ध	म	म	म	प	ध
०				१				×				३			

अन्तरा—

म	म	प	ध	सां	ऽ	सां	ऽ	सां	रें	मं	मं	रें	रें	सां	ऽ
०				१				×				३			
रें	रें	सां	नि	ध	प	ध	म	प	ध	सां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				१				×				३			
सां	रें	सां	नि	ध	प	ध	म	म	प	ध	प	म	म	रे	सा
०				१				×				३			
सा	रे	म	म	म	म	प	प	प	प	ध	ध	म	म	प	ध
०				१				×				३			

मैं समझता हूँ कि इतने विवरण से इस राग का प्रत्यक्ष स्वरूप तुम्हारे ध्यान में सरलता से आ जाएगा ।

प्रश्न—अब आप किस राग को लेंगे ?

उत्तर—अब मैं राग 'सावेरी' के सम्बन्ध में दो शब्द कहूंगा । इस राग को कोई-कोई दक्षिण का जोगिया समझते हैं, एक तरह से यह समझना स्वाभाविक भी है। यह मैंने तुम्हें बताया भी था कि जोगिया और सावेरी में बहुत अधिक साम्य है। सावेरी का थाट ग्रन्थकारों ने मालवगौड ही माना है, अतः यह सहज ही ध्यान में आ जावेगा कि इस राग में रिषभ और धैवत कोमल हैं। इसके आरोह में गांधार व निषाद स्वर वर्ज्य

होते हैं, इसलिए सावेरी और जोगिया परस्पर बहुत निकट आ जाते हैं। अवरोह में गांधार लेने से यह राग जोगिया से भिन्न होजाता है। गायक लोग संवादी-वादी स्वरों में भिन्नता मानकर भी इन दोनों रागों को अलग-अलग गाकर दिखा सकते हैं। 'वादिभेदेरागभेदः' यह हमारा प्रसिद्ध नियम ही है। जोगिया में 'समयोःसम्वादः' मैंने बताया ही था। सावेरी में कोई पंचम और षड्ज वादी स्वर मानते हैं। जोगिया और सावेरी को अलग-अलग कर गाने में अवश्य ही कुशलता की आवश्यकता है। दक्षिण की ओर सावेरी प्रसिद्ध व लोकप्रिय राग है। यह अपने यहां भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तानी गायक इस राग को दक्षिण से ही इधर लाये होंगे। दक्षिण का गायक यदि सावेरी गाता होगा, तो भी वह तुम्हें जोगिया ही जान पड़ेगा। 'सा रे म, म प ध सां, सां रें सां। नि ध प, म प ध प, म ग, रे सा' इस प्रकार का आरोह-अवरोह तुम्हारे हृदय में जोगिया की मूर्ति तत्काल खड़ी कर देगा। 'म म प, ध सां रें सां' यह तान जोगिया और सावेरी दोनों में समान है। जोगिया में हम 'ध म रे सा' इस तरह लेते हैं, इस प्रकार न लेते हुए यदि 'ध प, म ग, रे सा' इस प्रकार किया तो सावेरी अलग हो जावेगी। दक्षिण में रागलक्षणों की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। एकाधिक बार वे चाहे राग के माधुर्य की ओर कम ध्यान देंगे, परन्तु थाट और वर्ज्यावर्ज्य स्वरों की ओर से कभी भी दृष्टि न हटायेंगे। तुम्हें याद ही होगा कि दक्षिण की ओर स्वर-ज्ञान पर अधिक ध्यान दिया जाता है, इस बात को मैं कह भी चुका हूं। मेरा यह कहना नहीं है कि उत्तर की ओर के गायकों को बिलकुल ही स्वरज्ञान नहीं होता। इनमें कोई बहुत अच्छे स्वरज्ञाता भी हमें प्राप्त होते हैं। उनके रागविस्तार करने की विशेषता दक्षिण के गायकों में हमें दिखाई नहीं पड़ती। तो भी उत्तर के गायकों में जो-जो दोष हैं, उन्हें अस्वीकार कैसे किया जा सकेगा ? अपने रागों के ही नियम न जानना, नियम जानने वालों का उपहास करना, सदैव बुरा बोलना, ये स्पष्ट दोष क्या अपने गायकों में हमें प्राप्त नहीं होते ? मैं तुमसे यह कहता ही आया हूं कि अनियमित रूप से कभी कुछ भी नहीं गाना चाहिये। किसी प्रसिद्ध राग में चाहे जैसे एक-दो स्वर घुसेड़ कर अप्रसिद्ध राग गाने का श्रेय गायक थोड़ी देर के लिये चाहे प्राप्त कर ले, परन्तु मर्मज्ञ श्रोता उस गायक की "फिरत" (रागविस्तार करने का तरीका) ध्यान से देखकर उसके गायन का मूल्य निश्चित कर लेंगे। फिर भी स्वयं मुझे उत्तर का सङ्गीत ही अधिक पसन्द आता है, यह मैं बता ही चुका हूँ। मेरा समस्त अध्ययन भी इसी पद्धति का है। मेरे अनेक गुरु हुए और वे सब उत्तर पद्धति के ही थे। मैं समझता हूं कि दक्षिण की ओर संगीत शिक्षण देने की पद्धति ही ऐसी है कि विद्यार्थियों को अच्छी तरह स्वरज्ञान हो जाता है। मद्रास, तंजोर, मैसूर, त्रिवेंद्रम आदि जो दक्षिण की ओर सङ्गीत के लिये प्रसिद्ध नगर हैं, वहां जाकर प्रत्यक्ष देखी हुई स्थिति ही मैं बता रहा हूं। मुझे स्वतः स्वरज्ञान है, यह तुम जानते ही हो। यह मुझे उत्तर के गायकों के सहवास से ही प्राप्त हुआ है, यह मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूंगा। यह कहना भी ग़लत नहीं है कि हमारे अनेक गायकों को स्वरज्ञान नहीं है। अस्तु, एक बार एक गायक ने भैरव अङ्ग के निम्न स्वरसमुदाय गाकर मुझे 'सावेरी' राग सुनायाः—

"रेरेसा, ध़, नि़ध़, सारेरेसा, मगरे, पमगरेसा; रे, मप, धधप, मप, मगरे, धपमगरे, पमगरेसा; निनिधधप, धनिधप, धमप, धप, मगरे, सा"

इस स्वर समुदाय में "पधुम, रेसा, रेमप, धुम, रेसा; इस प्रकार के स्वरों को उसने खासतौर से टाल दिया। शास्त्रीय दृष्टि से उसका राग भैरव राग से भिन्न हो ही जाता है, क्योंकि उसने आरोह में गांधार व निषाद वर्ज्य किये और "रेम पधुप" यह तान भी भैरव प्रतिबंधक ग्रहण की। मैंने तुम्हें पहिले ही बताया है कि गुणक्री, जोगिया और सावेरी राग बहुत ही पास-पास दिखाई देने वाले हैं। इन्हें अच्छी तरह नियमों को सँभालते हुए भिन्न-भिन्न करके गाना बड़ी कुशलता का काम है।

प्रश्न—तो फिर हमें यह बता दीजिए कि सावेरी राग हम कैसे गायें ?

उत्तर—यह मैं बताने वाला ही था। सावेरी में तुम जितनी मधुरता से भैरव और जोगिया का मिश्रण कर सको उतना अच्छा होगा। जितना गांधार दिखाई पड़ेगा, उतना ही जोगिया दिखाई देगा। उसे आगे लाकर जब ऋषभ पर आंदोलन आयेगा, तब भैरव सम्मुख हो जावेगा, यही सारी विशेषता है। "सा, रेम, मप, धुम, पधुम, रेसा" इन स्वरों के गाये जाने पर कभी भी भैरव नहीं दिखाई देगा। भिन्न-भिन्न रागस्वरूप आंखों के सम्मुख उपस्थित रहें और अपने-अपने नियमों से वे परस्पर भिन्न होते जावें तो क्या यह आनन्द की बात नहीं है ? अब मैं इस स्वरसमुदाय से भैरव और जोगिया इन दोनों रागों को दूर करने का प्रयत्न करता हूँ। देखो:—

"सा, रेम, पमप, मग, रेसा; सारेसा, धसा, गरेसा, रेसा, मरेसा, रेम, पधुप, मगरेसा; सारेरेसा, ममप, निधुप, पम, पमगरे, मगरेसा"

बीच-बीच में किसी को 'कालिंगड़ा' (भैरव थाट का एक राग) का आभास हो सकता है, परन्तु कालिंगड़ा के आरोह में गांधार व निषाद बिलकुल वर्ज्य नहीं हैं।

प्रश्न—आगे तार स्थान में कैसे जाना होगा ?

उत्तर—वहां इस प्रकार करना पड़ेगा:—

"प, धधुप, धुसां, सांरेंगंरेंसां, निधु, निधुप, मप, रेंसांनिधु, प, निधुप, धुमग, रेम, गरेसा"

प्रश्न—गुरुजी ! वास्तव में यह मिश्रण कुछ निराला ही प्रतीत होता है। ठीक है, परन्तु पंचम स्वर को वादी दिखाना है, इसे किस प्रकार आगे रखा जायेगा ?

उत्तर—यह इस प्रकार किया जा सकता है:—

"सारेम, पप, धुपप, मप, निधुप, सांनिधुप, पधुमप, मगरे, पमपमगरे, गरे, सा, साधुसा, मपधुप, सा, रेसा, मगरे, पमगरेसा"

मैं समझता हूँ कि इस प्रकार के स्वरसमुदाय अब तुम लोग भी धड़ल्ले से बना सकते हो, इसमें कोई विशेष कला नहीं चाहिए। सारी खूबी इतनी ही है कि राग की रंजकता नष्ट न होनी चाहिए। प्रत्येक राग के स्वरसमुदाय तो तुम कैसे और कितने कंठस्थ कर सकोगे ? मैं नमूने बता रहा हूं, इन्हें बार-बार सुनकर समझ लेना पर्याप्त है। एक बार ये तुम्हें अच्छी तरह आने लगे कि मैं तुमसे ही ऐसे नवीन टुकड़े तैयार कराकर गाने के लिये कहूँगा। जहां ये बिगड़ जायेंगे वहां तत्काल भूल समझा दूंगा और गलती दुरुस्त कर दिखाऊँगा। इस प्रकार से तुम स्वयम् नवीन तानें उत्पन्न करना

सीख जाओगे। विद्यार्थीगण तानों को शुरू-शुरू में बड़ा भारी हौआ समझते हैं। हमारे यहां उचित पद्धति से शिक्षण न होने से विद्यार्थियों की बुद्धि का उत्तम विकास नहीं होता। स्थायी व अन्तरा गुरु द्वारा बता दिये जाने पर शिष्यों से नवीन तानें उत्पन्न करवाना चाहिये। अपने यहां कभी-कभी यदि कोई शिष्य ऐसा प्रयत्न गायक के सम्मुख करने लगता है तो गायक उसे तत्काल डांट फटकार कर निरुत्साहित कर देते हैं, यह व्यवहार बिलकुल गलत है। ऐसे प्रयत्नों को तो उत्साह ही देना चाहिये। जहां पर गलती हो, या नीरसता हो, वहां गुरु को चाहिये कि वह शिष्य के प्रयत्न की प्रशंसा करते हुए होने वाली गलती को दुरुस्त कर गाकर दिखावे और सुधारी हुई तान शिष्यों से उच्चारित करवा ले। यह सब अभ्यास की विद्या है। विद्यार्थियों में नवीन काम करने की स्फूर्ति होनी ही चाहिये। गुरु को उन लोगों के सम्मुख बार-बार गाना चाहिये और उनसे अपना साथ कराना चाहिये। प्रथम गुरु को चाहिये कि राग के समस्त नियम अच्छी तरह समझादे फिर आरोह-अवरोह का उच्चारण करावे। यह भाग अच्छा तैयार हो जाने पर शांतिपूर्वक अनेक बार छोटे-छोटे हिस्सों से "स्थाई" सुनावे। इसे सौ-पचास बार अपने साथ शिष्यों से गवाले तब अन्तरे की ओर बढ़े। चीज़ में रागवाचक जो तानें आती हों, उन्हें शिष्यों के हृदय में अच्छी तरह जमा दे। इस कार्य में शिष्यों से आरम्भ में अनेक स्थानों पर गलतियां होना सम्भव है; परन्तु इसके लिये उनका उपहास कभी न किया जावे क्योंकि ऐसा करने से शिष्य खुले हृदय से नहीं गाते। मैं चिल्लाता हूं, वैसे ही तू भी चीख" यह तरीका सुशिक्षित विद्यार्थी कैसे पसन्द करेंगे ? गुरु को प्रत्येक बात इस तरह बतानी चाहिए कि वह विद्यार्थियों द्वारा उनकी स्मृति-पुस्तिका (नोट बुक) में लिखी जा सके। शिक्षित शिष्यों के हेतु गुरु को अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। थोड़ा सा संकेत ही उन्हें पर्याप्त होता है। अस्तु,

पंचम स्वर का परिमाण किस तरह बढ़ाया जाता है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। सावेरी में मध्यम स्वर अधिक न बढ़ाया जावे क्योंकि ऐसा करने से यह राग जोगिया को आगे ले आयेगा! संस्कृत ग्रन्थों में "शुद्ध सावेरी" नामक जो राग हम देखते हैं, उसका थाट बिलावल है। अतः इस राग को गड़बड़ी अपने भैरव थाट की सावेरी से कभी नहीं हो सकती। तुम्हें याद ही होगा, मैंने तुम्हें आसावरी राग के सम्बन्ध में दो शब्द पहिले बताये थे ?

प्रश्न—जी हां। अपने बताया था कि सभी ग्रन्थकारों ने आसावरी को भैरव थाट में माना है और उसके आरोह में ग, नी स्वर वर्ज्य करने की व्यवस्था की है।

उत्तर—ठीक है। दक्षिण के ग्रन्थकार सावेरी के स्वर इस प्रकार बताते हैं:—

"सा, रेरेसा, मपधप, धसां, रेंरेंसां, धप, मपधरेंसां, गंगंरेंसां, रेंसांनिध, पमप, धसां, म, पधनिधप, रेंरेंसां, निधप, मपधप, मगरे, गरेसा, सारेसा निध, निधप, मपधधमा, रेगरेसा, मपधपमगरेसा।"

यह स्वरूप तुम्हें ध्यान में जमा लेना चाहिए। मेरे गुरु ने इस राग का एक 'सरगम' मुझे इस प्रकार बताया था:—

सावेरी झपताल—

ध	ध	।	प	म	प	।	ध	प	।	म	ग	रे
ग	रे	।	सा	रे	म	।	प	प	।	ध	म	प
ध	ध	।	प	ध	सां	।	रें	गं	।	रें	सां	नि
ध	ध	।	प	नि	ध	।	प	म	।	ग	रे	सा

अन्तरा—

म	प	।	प	ध	ध	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
सां	ध	।	ध	सां	रें	।	सां	ध	।	नि	ध	प
म	प	।	प	गं	रें	।	सां	नि	।	ध	नि	ध
प	म	।	प	ध	प	।	म	ग	।	रे	रे	सा

इस राग का विस्तार करना तुम्हें इस प्रकार सरलता से आ जावेगा:—

"रेरेसा, ध़ध़, रेरेसा, पमपमगरेसा, रेमम, पपधमप, रेमप, धधनिधप, मपधपमप, मगरेसा। सारेसानिध़, निध़प़, मप़ध़, सा, रे, मपमग, रेसा; पपध, सां, रेंरेंसां, सांरेंमंगंरेंसां, सांरेंसांनिध, निधप, मप, ध, गंमंगंरेंसां, निध, धप, मपधप, निधपमगरे, धपमगरे, सा, सारेसा।"

प्रश्न—यदि हम निम्न प्रकार की कोई सरगम बनालें, तो क्या 'साबेरी' की हो जावेगी ?

सां	रें	सां	नि	।	ध	नि	ध	प	।	म	ग	रे	प	।	म	ग	रे	सा
रे	रे	सा	नि़	।	ध़	ध़	सा	ऽ	।	म	ग	रे	प	।	म	ग	रे	सा
म	म	प	प	।	ध	ध	सां	ऽ	।	रें	गं	रें	पं	।	मं	गं	रें	सां
सां	नि	ध	नि	।	ध	प	ध	म	।	प	ध	प	म	।	ग	ग	रे	सा

उत्तर—इसमें रामकली व कालिंगड़ा मिले हुए दिखाई देते हैं। कुछ अधिक स्पष्ट जोगिया लाना हो तो कैसा करोगे ? सा, म, प स्वर अधिक मात्रा में लिए गए तो अच्छा दीखेगा। ठीक है न ?

प्रश्न—तो फिर प्रथम झपताल में जो सरगम आपने बताया है, उसमें इस प्रकार किया जावे:—

म	म	।	प	प	ध	।	सां	नि	।	ध	ध	प
म	प	।	ध	म	प	।	म	ग	।	रे	रे	सा
सा	रे	।	ग	रे	सा	।	नि	ध	।	सा	ऽ	सा
ध	ध	।	प	म	प	।	म	ग	।	रे	रे	सा

अन्तरा—

म	म	।	प	ध	प	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
रें	रें	।	गं	रें	सां	।	रें	सां	।	नि	ध	प
म	प	।	ध	म	प	।	म	ग	।	रे	रे	सा

आरोह में गांधार नहीं है, अतः जोगिया की छाया कुछ न कुछ दुर्निवार हो जाती है। यह कैसे कहा जा सकता है कि शास्त्रीय दृष्टि से रागभिन्नता नहीं है ? अपने गायक इन दोनों रागों को ठीक ही मिलाकर गाते हैं।

उत्तर—यह सत्य है। देश-सोरठ, परज-कालिंगड़ा, धनाश्री-भीमपलास, काफी-सिंधुरा, आसावरी-जौनपुरी, पूर्या-मारवा, सूहा-सुघराई आदि मिश्रण अपने यहां हम सदैव सुनते हैं। लगभग पच्चीस जोड़े इस प्रकार निकाले जा सकते हैं। इनका मिश्रण जो समझदारी से करते हैं, वे गुणी कहलाये जाते हैं। समप्राकृतिक रागों का एक कोष्ठक मैं तुम्हें आगे चलकर बताऊंगा। यद्यपि दक्षिण की ओर अधिक सावधानी से रागलक्षण सँभाले जाते हैं तो भी वास्तविक कला की दृष्टि से उधर के गायक अभी भी उत्तर के गायकों से पीछे हैं। मुझे याद है कि कुछ दिन पूर्व हमारी "गायन-उत्तेजक मण्डली" में दक्षिण का एक उत्तम स्वरज्ञानी गायक आया था। उसे उस तरफ के राजे-रजवाड़ों की ओर से बड़ी-बड़ी पदवियां भी प्राप्त हुई थीं, यह बात हमें उसके द्वारा बताए हुए शिफारिसी पत्रों से मालुम हुई। दक्षिण के प्रसिद्ध राग तो वह अच्छी तरह जानता ही था, परन्तु उत्तर के कुछ रागों की साधारण जानकारी भी उसने प्राप्त की थी। उसने अपने जलद तानों की सरगम भली प्रकार गा सुनाई। परन्तु उत्तर के गायकों की वह अत्यन्त मधुर, मींड़ व भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रीतियों से वादी स्वर दिखाने की खूबी, बिना विशेष रूप से सिखाये उसे कैसे आ सकती थी ? इसके सिवाय उसके वे गाने भी हमें हिन्दुस्थानी पद्धति के मालूम नहीं होते थे। उसके वे टूटे-टूटे स्वर, चाहे जिस जगह पर रुकना, मात्रा के आधार पर तान लेना, उलटे-सीधे तरीके से आवाज़ को छोटा बड़ा करना, यह सब बातें देखकर किसी को आनन्द नहीं आया।

प्रश्न—तो फिर वादी स्वरों की विशेषता अच्छी तरह जाने बिना उत्तम संगत करना भी उससे नहीं आ सका होगा ? उससे आप प्रश्न पूछ देखते तो बहुत अच्छा होता। उसने कौन-कौन से राग गाये थे ?

उत्तर—वह गायक कुछ चंट था अतः उसने पहिले अपने बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी रागों को गाने का रूपक गाँठा, किन्तु वह कृत्य उससे अच्छी तरह नहीं सध सका।

पूरिया, दरबारी, ललित राग उत्तम रूप से गाना बड़ी कुशलता का कार्य समझा जाता है। उसने यही राग हाथ में लिये, परन्तु रंग जमता उसे दिखाई न दिया। श्रोताओं को अपना गायन कितना पसन्द आ रहा है, यह चतुर गायकों को तुरन्त ही मालुम हो जाता है। उसकी वादी स्वर की कल्पना जानने की मेरी इच्छा हुई तो मैंने उससे दस-पांच रागों के (हिन्दुस्तानी रागों के) वादी स्वर पूछे। तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उसने प्रत्येक राग का वादी स्वर षड्ज बताया। पूरिया, कल्याण, दरबारी, केदार तथा भैरव, इन सब रागों के वादी स्वर षड्ज बताने वाले को हिन्दुस्तानी पद्धति के तथ्यों की कितनी जानकारी होगी, इसकी कल्पना अब तुम सहज में ही कर सकते हो। ऐसे अज्ञ गायक अपने यहां भी निकलेंगे; किन्तु वे अच्छे ठिकाने के सीखे हुए होने के कारण उनकी चीजें नियमबद्ध रची हुई होंगी तथा वे जब तक अपने ढंग से गायेंगे, तब तक उनका गायन विसंगत व कर्ण कटु नहीं होगा।

प्रश्न—तो फिर उस गायक की वादी स्वर के विषय में क्या धारणा होगी?

उत्तर—मुझे ऐसा दिखाई दिया कि वादी का अर्थ Tonic (Key Note) मात्र ही वह समझता होगा। हम 'वादी' शब्द को भिन्न अर्थ में आजकल ग्रहण करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपना व्यक्तिगत मत मैंने तुम्हें बार-बार इसीप्रकार बताया है कि दक्षिण के गायकों को, उत्तर के गायकों से सीखने योग्य बहुत सी बातें हैं। दक्षिण की ओर प्रवास करते समय एक बार मेरे सम्मान के हेतु उधर के एक मित्र ने एक छोटा सा 'जलसा' किया। उसमें उस शहर के कसबी लोगों को गायन-वादन के लिये आमन्त्रित किया। गायकों ने शंकराभरण, रीतिगौड़, धनाश्री, पूर्व्याकल्याण आदि राग गाए। गायन समाप्त होने पर मैंने सरल हृदय से अपना मत उन मित्र महाशय को बताया, उसे सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन मैंने उन्हें कुछ हिन्दुस्थानी राग भिन्न-भिन्न अलंकारों से गाकर दिखाए तथा उनकी व उनके गायकों की सहानुभूति व सन्तोष प्राप्त किया। मेरा कथन उनके गायकों को तत्काल ही जँच गया और वे गायक बोले कि "आजकल हमारे यहां हिन्दुस्थानी संगीत तेजी से प्रवेश करता जा रहा है और वह हमारे प्रसिद्ध गायकों को भी पसन्द आने लगा है"। उनका यह कथन असत्य नहीं था। रेल की सुविधा हो जाने के कारण हमारी ओर के गायक आजकल सदैव दक्षिण की ओर जाते रहते हैं। मैंने सुना है कि मैसूर में तो कोई मुसलमान गायक सरकारी नौकरी में भी हैं। अब भी उधर के लोगों को हमारी पद्धति अच्छी तरह समझ में नहीं आ पाती, क्यों कि उन्हें अशिक्षित गायक भला कैसे समझा सकते हैं। तथापि आजकल उपयोगी ग्रन्थ प्रसिद्ध होने लगे हैं और कदाचित् शीघ्र ही उत्तर व दक्षिण पद्धति का सुन्दर संयोग हो सकेगा। दक्षिण के ग्रन्थशास्त्र और उत्तर की अद्वितीय कला इनका संयोग एक तरह से अभीष्ट ही होगा। इस संयोग से प्रचार में नये-नये राग रूप भी आने लगेंगे और फिर वे सब अपने आप शास्त्रोक्त ठहरने लगेंगे। परन्तु यह सब कार्य अभी हमें "भावी-सङ्गीत" शीर्षक के अन्तर्गत ही रखना है।" "सावेरी" राग अपने यहां नवीन ही है, अतः इसके विषय में, मैं तुम्हें अधिक क्या बता सकता हूं? अपने ग्रन्थ इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं, वही मैं अभी तुम्हें बताता हूं।

राग लक्षणे:—

मायामालवगौलाख्यमेलाज्जातः सुनामकः ।
सावेरीराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहे गनिवर्जं चाप्यवरोहे समग्रकम् ॥

प्रश्न—यह तो बिलकुल अपने प्रचलित राग के ही लक्षण हुये ?
उत्तर—हां, ऐसा ही है ।

लक्ष्य संगीते:—

मेलान्मालवगौलीयात्ख्याता सावेरिनामिका ।
आरोहे गनिवर्जं स्यादवरोहे समग्रिका ॥
पंचमोऽत्र मतो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।
गानमस्याः समादिष्टं प्रभाते गायनोत्तमैः ॥
प्रचारोऽस्याः सुरागिण्याः कर्णाटकेऽधिको मतः ।
कहिंचित्सा श्रुताह्यत्र संगृहीतेह तन्मया ॥
पूर्णत्वादवरोहस्य रागिण्यावपवारयेत् ।
गुणक्री जोगिये चैव स्फुटमेतत्तु तद्विदाम् ॥

प्रश्न—ये सब बातें तो आप हमें बता ही चुके हैं ।
उत्तर—हां बता चुका हूँ ।

संगीत पारिजाते:—

सावेरी तीव्रगांधारा धैवतोद्ग्राहसंभवा ।
मध्यमांशा निहीना चारोहणे गनिवर्जिता ॥

यहां रि, ध, स्वर शुद्ध हैं, अतः यह बिलावल थाट का "शुद्ध सावेरी राग" समझा जावेगा ।

स्वरमेलकलानिधौ:—

सावेरीरागो धन्यासो धांशो धग्रह एव च ।
औडुवो गनिलोपेन प्रगे गेयो विचक्षणैः ॥

परन्तु यह स्वरूप हमारा नहीं है, क्योंकि रामामात्य ने इस राग को सारंगनाट थाट में सम्मिलित किया है । यह थाट उसने इस प्रकार बताया:—

पंचश्रुत्यृषभः शुद्धषड्जमध्यमपंचमाः ।
पंचश्रुतिर्धैवतश्च च्युतषड्जनिषादकः ॥
च्युतमध्यमगांधार एतैः सप्तस्वरैर्युतः ।
सारंगनाटमेलोऽयं रामामात्येन लक्षितः ॥

प्रश्न—यह तो बिलावल थाट का राग ही कहा जावेगा ?

उत्तर—हां, इसी प्रकार समझना चाहिये।

सद्रागचंद्रोदये:—

धांशग्रहांता सपवर्जनीया ।
सावेरिका प्रातरियं नियोज्या ॥

यह राग पुण्डरीक ने केदार थाट में बताया है, अर्थात् यह भी बिलावल थाट ही हुआ। अपने कुछ ग्रन्थकार षड्ज वर्ज्य करने को कहते हैं, परन्तु यह स्वर कहां व किस प्रकार वर्ज्य किया जावे, इस सम्बन्ध में एक शब्द भी लिखा हुआ नहीं मिलता। अतः इस सम्बन्ध में पाठक ही कहने लगते हैं कि उनका ऐसा करने का कारण समझ में नहीं आया। किन्तु हमें इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है, साथ ही ग्रन्थकार का बचाव करने का अधिकार भी हमारा नहीं है।

इसी प्रकार शुद्ध तानों का विवरण देते हुए भी ग्रन्थकारों ने ऐसी ही अस्पष्ट व्याख्या की है, जो प्रायः पाठकों की दृष्टि में खटकने लगती है। ग्रन्थकार केवल इतना लिखते हैं कि शुद्ध तान ८४ हैं, उनके नाम पते अमुक-अमुक हैं। परन्तु इन्हें किस प्रकार प्रयुक्त किया जावेगा, इस विषय पर पाठक चाहे जैसी कल्पना लड़ाने के लिये स्वतन्त्र हैं! खैर, इसे जाने दो।

सङ्गीतदर्पणे:—

मल्लारी सोरटी चैव सावेरी कौशिकी तथा ।
गांधारी हरश्रृंगारा मेघरागस्य योषितः ॥

सङ्गीतसारसंग्रहे:—

सावेरी धैवतांता च गातव्या मंद्रमध्यमा ।
ग्रहांशन्यासषड्जा च पहीना करुणे मता ॥

इस ग्रंथ में "शाविरी" नामक एक अन्य रागस्वरूप इस प्रकार और बताया है:—

शाविरी धैवतांता च गातव्या मंद्रमध्यमा ।
मग्रहांशान्पषड्जा च पहीना करुणे मता ॥

इन श्लोकों में जिस सावेरी का विवरण दिया है, उसे मेघ राग की रागिनी माना है। उसके स्वर कौन से हैं, यह ग्रन्थ में बिलकुल नहीं बताया गया !

संगीतसारामृत में सावेरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

मेलान्मालवगौलीयाच्छुद्धसावेरिकाभिधा ।
गनिलोपादौडुवा सग्रहा गेया प्रगे बुधैः ॥

यहां तुम्हें दिखाई देगा कि इस श्लोक में शुद्ध सावेरी नाम का प्रयोग हुआ है। इससे यह अवश्य दिखाई पड़ जाता है कि सावेरी और शुद्ध सावेरी नामों की ग्रन्थकार भी कभी-कभी गड़बड़ कर देते हैं। इस सारामृत का आधार हमारे लिये थोड़ा बहुत उपयोगी हो सकेगा।

प्रश्न—परन्तु यहाँ आरोह-अवरोह दोनों में ग, नी वर्ज्य करने को कहा है, जो कि हमें स्वीकार नहीं हो सकता।

उत्तर—यह ठीक है; क्योंकि फिर गुणक्री और सावेरी राग अलग-अलग गाने में झगड़े खड़े होंगे। हम अवरोह सम्पूर्ण मानते हैं यह भी ठीक है। ऐसा दिखाई देता है कि सारामृतकार को भी यह ज्ञात था कि प्रचार में इस राग का अवरोह सम्पूर्ण माना जाता है। इसी कारण वह शुद्ध सावेरी की व्याख्या देकर आगे कहता है:—

"अस्य रागस्यारोहे गांधारनिषादलंघनम्। अवरोहे स्वरगतिः ऋजुतयाऽऽगच्छति। उदाहरणम्। धृसा, रेमगरे, मपधुध, निधुप, म, पधुसां, निधुसां, निधुपम, रेसा, रेगरे, सानिधृ सा" इत्यादि।

प्रश्न—यह उदाहरण तो बिलकुल स्पष्ट और समझ में आने योग्य है। ग्रन्थकारों द्वारा यदि इस प्रकार स्पष्टता की जावे तो फिर उन्हें कौन बुरा कह सकेगा? परन्तु कई जगह इस दृष्टि से निराशा ही प्राप्त होती है।

उत्तर—हां यह सत्य ही है। सम्भवतः हमारे ग्रंथकारों को इस सम्बन्ध का उत्कृष्ट ज्ञान भी रहा हो, परन्तु इतने मात्र से ही हमारा समाधान कैसे होगा? उनका काव्य-कौशल कितना ही उच्चकोटि का क्यों न हो, तो भी सङ्गीत जैसे विषय के लिये इतना मात्र ही पर्याप्त नहीं होता। यह अर्थ प्रधान विषय है, अतः पाठक स्वाभाविक रूप से कविता की अपेक्षा अर्थ की ओर अधिक ध्यान देगा। यह अलग से बताना आवश्यक नहीं कि उत्तम अर्थ भी उत्तम शब्दों द्वारा व्यक्त करना बहुत ही श्रेष्ठ कार्य हो जाता है। देखो, इस छोटे से उद्धरण से तुम्हें अनुभव होगा कि नवीन विद्यार्थियों को संक्षेप में, परन्तु पद्धति से ये सिखाये जाने योग्य बातें हैं:—

षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चैव निषाद इति सप्तधा॥
षड्जं शिखावलो वक्ति ऋषभं वृषभो वदेत्।
कूजत्यजस्तु गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमम्॥
कोकिलः पंचमं वक्ति निषादश्चोच्यते गजैः।
इतिस्वभावसंभूतस्वरलक्ष्म प्रचक्षते॥
षड्जस्त्वेकविधः प्रोक्त ऋषभस्त्रिविधः स्मृतः।
गांधारो द्विविधः प्रोक्तः मध्यमो द्विविधः स्मृतः॥

पंचमस्त्वेकधा प्रोक्तः धैवतो द्विविधः स्मृतः ।
निषादस्त्रिविधश्चैव शुद्धाशुद्धप्रभेदतः ॥
एतेषु रागा जायंते बहवः परिवर्तनात् ।
औडुवाः षाडवाश्चेति पूर्णाश्चेति त्रिधा भवेत् ॥
सप्तस्वरैः पूर्णरागः षड्भिः षाडव उच्यते ।
औडवः पंचभिः प्रोक्तो रागानुपारपारगैः ॥
एकैकपूर्णरागेतु स्वराणां परिवर्तनात् ।
सहस्रपंचकं चत्वारिंश× स ध्वनिर्भवेत् ॥
पूर्वोक्तस्वरभेदेन बहुधा भवति ध्वनिः ।
शुद्धमध्यमसम्बन्धाद्रागाः षट्त्रिंशदीरिताः ॥
अशुद्धमध्यमत्वाच्च रागाः षट्त्रिंशदीरिताः ।
इति मेलजुषो रागा द्वासप्ततिरितीरिताः ।
एतेषु जन्यरागास्तु बहवः प्रभवंति हि ॥
आरोहादवरोहाच्च स्वराणां तारतम्यतः ॥
शुद्धाशुद्धस्वरत्वाच्च वक्ररागास्त्वनेकधा ।
औडवे षाडवेऽप्येवमूह्यो भेदो विचक्षणैः ॥
औडवे विंशतियुतशतधा स्वरवर्तनात् ।
षाडवे विंशतियुतशतानि स्युश्च सप्त च ॥

स्वरप्रस्तारे ॥

प्रश्न—वाह ! वाह !! इन श्लोकों में कितनी ही बातें संक्षिप्त रूप से कह रखी हैं। छोटे-छोटे बालकों को ये श्लोक आरम्भ में कंठस्थ करा देने चाहिये।

उत्तर—मैं समझता हूं कि उस समय इसी प्रकार की प्रथा रही होगी। क्या करें आजकल ग्रंथ सामग्री का अभाव होने से पद्धतिपूर्वक सीखना-सिखाना ही नहीं होता। किसी प्रकार उलटी-सीधी सौ-पचास चीजें गाने लगे कि बस हो गये सङ्गीत प्रवीण गवैये ! प्राचीन काल में आज जैसी स्थिति वास्तव में नहीं होगी। आजकल तो सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान (Theory) का नाम विद्यार्थियों के सामने कहने मात्र से उनके माथे पर बल पड़ने लगते हैं ! यदि आगे कभी सङ्गीत सिखाने का अवसर प्राप्त हो तो, तुम्हें पद्धतिरहित एक कदम भी नहीं रखना चाहिये। मेरे बताये हुए स्वरप्रस्तार के श्लोक विद्यार्थियों को आरम्भ में बताकर फिर थाटप्रस्तार, बहत्तर थाट कैसे होते हैं, यह सिखाया जावे। यह भाग भी मैं तुम्हें पिछली बार बता चुका हूँ। 'लक्ष्य सङ्गीत' में यह स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। मैं यह बता ही चुका हूँ कि यह रचना व्यंकटमखी की है।

प्रश्न—यह सब हम समझ चुके हैं। पूर्वाङ्ग के छः मेलार्ध से उत्तरांग के मेलार्ध मिलाने से ये थाट उत्पन्न होते हैं। ठीक है न ?

उत्तर—हां, इसी बात को व्यंकटमखी इस प्रकार कहता है:—

अतः पूर्वांगभेदानां षण्णामपि पृथक् पृथक् ।
उत्तरांगस्थितैः षड्भिर्भेदैः संयोजने कृते ॥
षट्षण्मेलप्रकारेण मेलाः षट्त्रिंशदागताः ।
षट्त्रिंशन्मेलकेष्वेषु प्रतिमेलं च मध्यमः ॥
मसंज्ञो यदि मध्ये स्यात् पूर्वमेलाभिधास्तदा ।
एतेष्वेव तु षट्त्रिंशन्मेलेषु प्रतिमेलकम् ॥
मसंज्ञमध्यमस्थाने मिसंज्ञो यदि मध्यमः ।
निवेश्यते तदा तेषां भवेदुत्तरमेलता ॥
इत्यस्माभिः समुन्नीता जाता मेला द्विसप्ततिः ॥

इस विचारधारा पर आक्षेप करने वालों का समाधान उस विद्वान ने किस प्रकार किया है, देखो:—

ननु त्यक्त्वा मसंज्ञं तु केवलं मध्यमं पुनः ।
मिसंज्ञिकस्य तत्स्थाने मध्यमस्य निवेशनात् ॥
त एव पूर्वमेलाः किं भवंत्युत्तरमेलकाः ।
इति चेद्व सदृष्टांतं परिहारं प्रचक्ष्महे ॥
कटाहसंभृतं क्षीरं केवलं दधिबिंदुना ।
यथा संयोज्यमानं तद्दधिभावं प्रपद्यते ॥
तथैव पूर्वमेलास्ते मध्यमेन मिसंज्ञकाः ।
केवलेनापि संयुक्ता भजंत्युत्तरमेलताम् ॥

क्या हमारी हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में मध्यम स्वर का महत्व इसी प्रकार नहीं माना गया है? क्या सायंकाल कल्याण, प्रातःकाल बिलावल, सायंकाल पूर्वी, प्रातःकाल भैरव आदि चमत्कार मध्यम से उत्पन्न नहीं होते हैं? परन्तु यह विषय कठिन है और शायद विवादग्रस्त भी होगा। जो बातें मुझे आनन्ददायक ज्ञात हुईं वे ही उत्साह से तुम्हारे सामने रखदी हैं। जितनी अच्छी ज्ञात हों उतनी ही ग्रहण करना और बाकी को चाहो तो निराधार समझ कर छोड़ देना। अस्तु, मैं सावेरी के स्वर-समुदाय का उदाहरण "सारामृत" में से दे रहा था। आगे सुनो:—

"ममरे̤सा, ध̤, ध̤ध̤सा, रे̤रे̤मम, रे̤मपध̤प, मप, ध̤सां। रे̤रे̤साध̤, ध̤साध̤प, रे̤रे̤साध̤सा। ध̤सारे̤मपध̤, ध̤सांध̤ध̤पम, पमरे̤, मरे̤रे̤, सा, ध̤ध̤प, मपध̤ध̤सा, ध̤ध̤पमरे̤, मरे̤सा।"

यह स्वरूप 'शुद्ध सावेरी' का ही ग्रन्थकार बताता है। अर्थात् शुद्ध सावेरी और सावेरी वास्तव में भिन्न-भिन्न राग हैं, यह तथ्य समझाया गया है।

प्रश्न—परन्तु हम समझते हैं कि जिस अभिप्राय से हम गुणक्री में ग और नी स्वर पूर्ण रूप से वर्ज्य करते हैं, उसी अभिप्राय से इन स्वरों को सावेरी के अवरोह में रखते हैं; यही हम पसंद करें। केवल वादी स्वर के अन्तर से श्रोताओं को भेद पहिचानना कठिन ही हो जायेगा।

उत्तर—तुम्हारा यह कथन सत्य है। यह तुम जानते ही हो कि सारामृतकार की गुण्डक्रिया संपूर्ण है। उसने अपनी 'गुण्डक्रिया' का उदाहरण इस प्रकार दिया है:—

"मपमगरे॒सा, गमप, सांनिम, पम, गमपग, रे॒सा। गमग, सारे॒सानि॒, सारे॒गमग सारे॒सानि॒, गरे॒सा, निपमम गरे॒सा।

इस उदाहरण का कोई विशेष अभिप्राय नहीं है, फिर भी मैंने तुम्हें यह बताया है कि ग्रन्थकार ने किस प्रकार वर्णन किया है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्:—

गौलमेलसमुद्भूतः सावेरीराग ईरितः।
आरोहे गनिलोपोऽयं प्रातर्गीतो विचक्षणैः॥

यह आधार भी हमारे लिये अच्छा उपयोगी सिद्ध होगा। यह कहा जा सकता है कि अपने प्रचार को सहायता देने वाले ग्रन्थमत अब भी प्राप्य हैं। ग्रंथ प्रमाण से सावेरी, आसावरी, शुद्धसावेरी राग भिन्न-भिन्न हैं, अभी इतना ही ध्यान में रखना पर्याप्त है।

रागमालायाम्:—

आद्यंतांशासपा या नयनगुणगती चात्र धांत्यौ रिगौ स्तः।
कस्तूरीबिंदुमाला मृगशिशुनयना चंद्रवक्त्रा सुतन्वी॥
सावेरी हारकंठा सुशबरवसना पीतकूर्पासयुक्ता।
द्व्यूष्टाढ्या श्यामवर्णा वरगजगमना सस्मिता सायमेति॥

कल्पद्रुमे:—

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले राजीवपत्रानना।
चित्राभांबरधारिणी कुचतटे पीता तथा कंचुकी॥
श्यामा रंजितदंतिदंतवलया मुक्तास्रजं बिभ्रती।
सावेरी मदपूर्णहस्तिगमनी गेया दिनांते सदा॥

सावेरी के स्वर-स्वरूप मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूं, इसलिये अब और फिर से क्यों सुनाना चाहिये।

प्रश्न—जी नहीं, वे हमारे ध्यान में अब अच्छी तरह आ चुके हैं।

उत्तर—तो फिर अब अगला राग हम आरम्भ करें।

प्रश्न—अब हमें आप कौनसा राग बताने वाले हैं ?

उत्तर—अब हम "मेघरंजनी" नामक राग पर विचार करेंगे। यह नाम कानों को थोड़ासा अपरिचित ज्ञात होगा; किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत ही विचित्र राग है। यह तो स्पष्ट ही है कि यह साधारण रागों में से नहीं है, उत्तम गायकों में से थोड़े ही गायक इसे अच्छी तरह गा पाते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में यह रागस्वरूप स्पष्ट नियमों से बताया गया है और अपने गायक भी उन्हीं नियमों के अनुसार सदैव गाते हैं। इस राग में तानबाजी को अधिक स्थान न मिल सकने के कारण इसका अधिक प्रचार नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा होने पर भी तुम्हें इस राग को अवश्य सीखना चाहिए। संस्कृत ग्रन्थों में इस राग का थाट 'मालवगौड़' बताया गया है। आजकल इस राग की बहुत चर्चा होने लगी है। और मेरा ख़याल है कि अब यह राग तुम्हें अनेकों बार सुनने को मिलेगा। इसमें हमारे गायकों द्वारा संयोजित की हुई थोड़ी सी चतुराई भी तुम्हें कभी-कभी दिखाई देगी।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—वे लोग इस राग में कभी-कभी क्वचित तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग वे जान बूझकर करते हैं और इस प्रयोग से राग भी नहीं बिगड़ पाता।

प्रश्न—अर्थात् "सा रे॒ ग मं प" इस प्रकार तान लेते होंगे ?

उत्तर—नहीं, नहीं ! ऐसा प्रयोग किया कि संपूर्ण रागस्वरूप नष्ट हुआ। इस राग का प्राण कोमल मध्यम है। तीव्र मध्यम तो यहां एक अनावश्यक और आगन्तुक स्वर है। यह नहीं कि इस स्वर को अनिवार्य रूप से आना ही चाहिये, परन्तु यदि इसका प्रयोग ही किया तो योग्य प्रमाण और योग्य तरीके से ही करना आवश्यक है। इस राग में कोमल मध्यम का खुला प्रयोग बहुत शोभा देता है। कोई-कोई तो कहते हैं कि इस राग की समस्त खूबी इसी स्वर में निहित है।

प्रश्न—तो फिर आरोह में तीव्र म और अवरोह में कोमल म ग्रहण करने का नियम मान लें तो ?

उत्तर—नहीं, नहीं, इस प्रकार का नियम भी नहीं माना जा सकता। कोमल मध्यम स्वर आरोह व अवरोह दोनों में है। उसमें ही कहीं-कहीं रंजकता की दृष्टि से तीव्र म जोड़ दिया जाता है।

प्रश्न—तो फिर केदार राग में किया हुआ प्रयोग जैसा ही थोड़ा बहुत यह प्रयोग भी होगा ?

उत्तर—हां, कुछ अन्शों में इस प्रकार कहना उचित हो सकता है।

प्रश्न—यदि इस राग का स्वरूप स्थूल मान से हमारे ध्यान में आजावे तो हम समझ लेंगे कि यह किस राग के समान है।

उत्तर—यह कहना गलत नहीं है कि इस राग में थोड़ा सा 'ललित' राग का अङ्ग है। ललित में तीव्र म का प्रमाण अधिक है, परन्तु यह सत्य है कि इस राग का उठाव प्रायः ललित जैसा ही होता है। अभी तक मैंने तुम्हें 'ललित राग' नहीं बताया है।

प्रश्न—तो फिर कहा जायगा कि इस राग में तीव्र म 'असत्प्राय' है।

उत्तर—हां-हां, इस शब्द से उस मध्यम का ठीक-ठीक प्रयोग निकल आयेगा। यदि यह कहो कि इस स्वर का प्रयोग विवादी जैसा होता है तो भी समाधानकारक होगा।

प्रश्न—यही न कि यदि इस स्वर का प्रयोग किया तो रागवैचित्र्य बढ़ जायगा, परन्तु यदि नहीं लिया गया तो भी रागहानि नहीं होगी।

उत्तर—हां, तुम ठीक-ठीक समझ गये।

प्रश्न—इस राग का गायन-समय कौनसा है ? संभवतः यह तीव्र मध्यम की दिशा में ही स्वीकार किया जाता होगा ?

उत्तर—ठीक है ! इस तरफ तुम्हारा ध्यान पहुँच गया, यह अच्छा हुआ। यह राग रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाया जाता है। जब तक रात्रि समाप्त नहीं होती, तब तक यह नहीं कि तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं किया जाता हो। तो भी जैसे-जैसे प्रातःकाल निकट आने लगता है, वैसे-वैसे कोमल म, श्रोताओं का हृदय अपने आप ही अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। यह राग ललित जैसा दिखाई देता है, परन्तु इसके नियम ललित से बिलकुल भिन्न हैं। यह हमारी सङ्गीत पद्धति की एक विशेषता ही है। यह न भूलना कि तीव्र मध्यम के प्रयोग के लिये ग्रंथों में आधार नहीं मिलता। यह बात भी नहीं है कि सम्पूर्ण संस्कृत ग्रंथों में इस राग का विवरण दिया गया हो। अस्तु ! अब अच्छी तरह ध्यान देकर देखो कि इस राग में तुम्हें किस-किस प्रकार से चलना है। यह मैं प्रथम ही बता चुका हूं कि प्रचार में ग्रह स्वर के नियम का पालन कड़ाई से नहीं किया जाता। मेघरंजनी औडव जाति का राग है। इसमें पंचम और धैवत स्वर वर्ज्य होते हैं।

प्रश्न—यह क्या ? फिर तो कहना पड़ेगा कि यह राग बहुत ही कठिन है। क्या मध्यम और निषाद का फासला बहुत अधिक नहीं है ? इतनी बड़ी उछाल गाते-गाते कैसे लगाई जा सकेगी ?

उत्तर—तुम्हारी बताई हुई कठिनाई अवश्य उपस्थित होती है। इसीलिये इस राग में अपने गायक अधिक तानबाजी नहीं करते। फिर भी इस राग में 'नि़ सा रे़ ग म' ये पांच स्वर एक के बाद एक आते ही हैं न ? इनके आधार पर यह राग-स्वरूप मधुर हो सकता है। इसमें गम्भीर प्रकृति का गायन बहुत अच्छा दिखाई देगा। इसमें देर तक लिया जाने वाला कोमल मध्यम कुछ न कुछ उत्तम परिणाम उत्पन्न करता ही है। प्रभात के समस्त राग मधुर होते हैं, परन्तु उनमें भी 'ललित अङ्ग' श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका गांभीर्य अवर्णनीय है। यदि तुम 'नि़ रे़ ग म, म' स्वर विलम्बित लय से गाने लगो, तो तुम स्वयं देख सकते हो कि तुम्हारे हृदय पर क्या परिणाम होता है। आगे चलकर तुम्हें ज्ञात होगा कि यही वह 'ललित अङ्ग' है। तीव्र रे और कोमल ग, नी स्वर वाले थाट को गाते-गाते हम इस संधिप्रकाश थाट तक आ जाते हैं और धीरे-धीरे प्रातःकाल की ओर बढ़ते हैं। इस पवित्र समय तक पहुंचाने वाले अङ्ग भी बहुत विचित्र होते हैं। यह तुम जानते ही हो कि इस समय में षड्ज, मध्यम और पंचम स्वर का साम्राज्य हो जाता है। मेघरंजनी का उठाव मेरे बताए हुए ढङ्ग से यदि किया गया तो समाधानकारक होगा। अच्छा देखें आगे बढ़ो।

प्रश्न—"नि़ रे़ ग ग, म, म ग, रे़ ग, रे़ सा, म, नी सां, रें रें सां, नी म, ग, म रे़ ग रे़ सा, नि़ रे़ ग म" यदि इस प्रकार किया जावे तो क्या शोभनीय होगा ?

उत्तर—हां ऐसा करने में कोई हानि नहीं। यह एक साधारण नियम है कि जैसे-जैसे प्रभातकाल निकट आता है, वैसे-वैसे ऋषभ का आरोह में प्रयोग क्रमशः अल्प मात्रा में होने लगता है; परन्तु उसका अधिकार प्रकाश होने पर अधिक दिखाई पड़ेगा। रात्रि के अन्तिम प्रहर में 'नि़ रे़ ग' का प्रयोग प्रचार में तुमको बारम्बार दिखाई देगा, इस प्रयोग का विशेष महत्व नहीं है, फिर भी श्रोताओं के हृदय पर कोई विसंगत परिणाम नहीं होता। इस समय तो सम्पूर्ण रागवैचित्र्य उत्तरांग में पहुँच जाता है। श्रोता तो तार षड्ज की ओर टकटकी लगाए बैठे रहते हैं, अतः वे इस रिषभ की ओर ध्यान नहीं देते। गायकों को "नि़ सा ग की अपेक्षा नि़ रे़ ग" की तान लेना अधिक सुविधाजनक होता है। एक बार वे मध्यम तक जा पहुँचे कि उनका राग ललित अङ्ग से शोभा देने लगता है। इन तथ्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते जाना चाहिए।

प्रश्न—परन्तु इस राग में तीव्र मध्यम किस प्रकार और कहां लगाया जाता है, यह बताइए न ?

उत्तर—बताता हूँ, सुनो ! 'नि़ रे़ ग म, म, मं म ग, रे़ ग, म, ग रे़ सा' इस प्रकार लेना चाहिए। यह समस्त भाग ललित में भी आवेगा, अतः इसे रागवाचक नहीं कहा जा सकता। राग का मुख्य स्थान, धैवत छोड़कर मध्यम व निषाद की संगति करना है। यह बिलकुल स्वतन्त्र अङ्ग है। यह स्वरूप तुम्हें किसी भी अन्य राग में नहीं दिखाई पड़ेगा। "नि मं म, ग म, रे़ ग म, नि़ रे़ ग म, सां रें सां, ग म, नि, म ग, नि़ रे़ ग, म ग, रे़ ग, म म, नि नि सां, म, रे़ ग रे़ सा, नि़ रे़ ग म;" यह 'चलन' ललित में नहीं है। मैंने अभी तक तुम्हें ललितांग के राग नहीं बताये हैं, अतः इस सम्बन्ध की चर्चा एक तरह से इस समय अप्रासंगिक होगी। "सां, रें सां, नी म ग, म ग, रे़ सा" यह अवरोह तुम्हें अच्छी तरह ध्यान में जमा लेना चाहिए। निषाद और मध्यम मींड़ से लेकर फिर गांधार पर विश्रान्ति ठीक ही होती है। अपने कसबी गायक इस राग को अच्छी तरह गाते हैं। उनके गले उत्तम रूप से तैयार होते हैं, इस कारण उनके कण्ठ से यह राग बहुत रंजक हो जाता है। जिन्हें इस राग के नियम ज्ञात नहीं होते, वे इसे एक प्रकार का 'ललित' या पंचम (राग विशेष) ही समझते हैं, परन्तु यह कभी न भूलना चाहिए कि 'ललित' और पंचम दोनों रागों में धैवत वर्ज्य नहीं होता।

प्रश्न—शायद ललित में सभी स्वर लगते होंगे ?

उत्तर—नहीं, ललित षाड़व राग है। इसमें पंचम वर्ज्य होता है। मेघरंजनी औडव है। ललित का जीवभूत अङ्ग, "मंध, मंधसां, नीध, मंत्र, मंमग, रे़गरे़सा" है। इसी कारण मेघरंजनी में इस राग का संदेह नहीं किया जा सकता। मेघरंजनी में ललित की अपेक्षा प्रभात का अङ्ग अधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है, ऐसा भी कोई-कोई कहते हैं, परन्तु मैं समझता हूं कि यह कथन समाधानकारक नहीं हो सकता। प्रभात में ललित अङ्ग बिल्कुल गौण है, वैसा इसमें नहीं।

प्रश्न—प्रभात में ललितांग गौण होने का अर्थ ?

उत्तर—'प्रभात' राग में भैरव का प्रमुख भाग अच्छी तरह संभाल कर केवल रागभिन्नता बताने के हेतु वह अङ्ग बहुत थोड़े प्रमाण में दिखाया जाता है। किन्तु इस राग मेघरंजनी में ललित का अङ्ग बहुत महत्व प्राप्त करता है। भैरव का अङ्ग तो इस राग में आना संभव ही नहीं है, क्योंकि पंचम और धैवत दोनों स्वर वर्ज्य हैं। जिस तरह केदार, मालकंस आदि रागों में मध्यम वर्ज्य करना अनुचित होगा; उसी प्रकार भैरव में पंचम और धैवत वर्ज्य करना भी अयोग्य समझा जावेगा। मैंने अभी तक तुम्हें प्रभात राग नहीं बताया है, किन्तु अभी उसकी रचना के सम्बन्ध में चर्चा करना मुझे पसन्द नहीं है। मेघरंजनी गाते हुए गायक प्रायः मन्द्र सप्तक में नहीं जाते, क्यों कि ऐसा करना बहुत असुविधाजनक हो जाता है। इस राग में प्रायः ध्रुपद ही गाये जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर अब मेघरंजनी के लक्षण संक्षिप्त रूप से हम इस प्रकार ध्यान में रखेंगे। "नि़ सा रे॒ ग म, नि सां। सां नि म ग, रे॒ सा" यह आरोहावरोह है। वादी स्वर मध्यम और संवादी षड्ज है। समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। ललित-अङ्ग इस राग में प्रधान है, और मध्यम व निषाद की संगति होती है! मध्य व तार स्थान में चलन है। तीव्र मध्यम की स्वर-स्थिति विवादी स्वर जैसी है। गांधार ग्रहण करने और धैवत ग्रहण न करने से यह राग सहज में ही गुणक्री और जोगिया से भिन्न हो जाता है। यह अप्रसिद्ध रागस्वरूप है। क्या इतनी जानकारी इस समय पर्याप्त होगी ?

उत्तर—मैं समझता हूं कि इतना जान लेना काफी है। इन बातों को ध्यान में रखने के लिये यदि चाहो तो कल्पद्रुमांकुर ग्रन्थ का यह सुन्दर श्लोक याद रख सकते हो:—

भैरवस्य मेल एव मेघरंजनी मता।
पंचमेन धैवतेन वर्जिता सदौडुवा ॥
षडजमंत्रिणी समीरिता च वादिमध्यमा।
गीयते विलंबितं बुधैर्निशांत्ययामके ॥

प्रश्न—ठीक है, यह श्लोक हमारे लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इसे हम कंठस्थ कर लेंगे। क्या बतायें, यदि हमारे गायकों को भी नियमों का ज्ञान और महत्व का पता होता तो सङ्गीत का कितना अधिक हित होता ?

उत्तर—इस समय जो पुराने गायक हैं, उनसे तो सङ्गीत-शास्त्र के नियमों के विषय में प्रोत्साहन मिलना थोड़ा कठिन ही है। जिन लोगों ने जीवन भर उच्छृङ्खल रीति से स्वेच्छानुसार गायन किया हो, उन लोगों से सहायता की आशा व्यर्थ है। परन्तु अब उन्हें भी अपने सुशिक्षित एवं मार्मिक लोगों के सम्मुख गाना मुश्किल होने लगा है। चूँकि अब, राग नियम प्रसिद्ध होने लगे हैं, और समाज में स्वर ज्ञान बढ़ता जा रहा है अतः गायकों की भी समझ में आने लगा है कि मन चाहा-बेढंगा गाना गाकर समाज को खुश करना संभव नहीं है। ध्रुपद का ख्याल बनाकर गाना, पुरानी चीज को चाहे जिस

राग में गाना, उसमें मनचाहे स्वरों का प्रयोग कर नवीन राग दिखाने का प्रयत्न करना, दो तीन रागों के टुकड़े उलटे सीधे जोड़कर उस मिश्रण को अपनी ओर का ही कोई राग-नाम दे देना और यह कहना कि यह प्राचीन और सीखा हुआ राग है, आदि-बातों का अब अपने यहां आदर नहीं हो सकता। गायक ने राग शुरू किया कि श्रोता उसके लक्षण देखने लगते हैं। जो गायक उन लक्षणों का उत्तम रूप से निर्वाह कर सके तथा उन लक्षणों के साथ मधुरता पूर्वक रागगायन कर सके, उसे ही आगे चलकर सम्मान प्राप्त होगा। प्राचीन काल में कैसी स्थिति थी, यह कौन बता सकता है? परन्तु मेरा अनुमान है कि भविष्य में इसी प्रकार की स्थिति होगी। निस्संदेह, यह हो सकता है कि हमारे तुम्हारे जीवनकाल में यह स्थिति नहीं हो पाये, परन्तु यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है कि अब इसी रुख की हवा चलने लगी है। परसों मेरे एक परम मित्र उत्तर भारत से आये थे। उन्होंने यहां बहुत से सङ्गीत-व्यवसायी व्यक्तियों को सुना। उन्होंने वापिस जाते हुए मुझे बताया कि "पंडित जी! सङ्गीत चर्चा एवं तत्संबन्धी ज्ञान जैसा आपके यहां मुझे दिखाई पड़ा, वैसा मुझे उत्तर और पूर्व के किसी भी शहर में दृष्टिगोचर नहीं हुआ।" ये सज्जन स्वयं एक धनाढ्य, परन्तु सङ्गीतज्ञ व्यक्ति थे। उनका अपने नगर के विषय में यह मत सुनकर मुझे बहुत संतोष प्राप्त हुआ। अस्तु, कल्पद्रुमांकुर रचयिता का श्लोक तो मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ। यह ग्रन्थकार भी लक्ष्य सङ्गीतकार के मत का ही है। अतः हम उसका मत पसन्द करेंगे।

प्रश्न—लक्ष्यसंगीत में मेघरंजनी का वर्णन किस प्रकार किया है?

उत्तर—सुनोः—

भैरवस्यैव संमेलाद्रागिणी मेघरंजनी।
औडुवा पधहीनाऽसौ मध्यमेनसुभूषिता॥
व्यस्तमध्यमयोगोऽत्र ललितांगं प्रदर्शयेत्।
प्रलुप्तत्वे धैवतस्य पुनस्तन्नैव संभवेत्॥
तीव्रमस्य लवं केचिदादिशंति विचक्षणाः।
रात्रिगेये विलोमे तद्दोषार्हं नैव मे मते॥

इन श्लोकों में बताये हुए सिद्धांत मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक समझा ही चुका हूँ। इस राग को ललित के पश्चात गाने पर यह बहुत शोभनीय होगा। मैं समझता हूँ कि इस अप्रसिद्ध राग के सम्बन्ध में इससे अधिक जानकारी मैं नहीं दे सकूंगा। संगीतसार-संग्रहकर्त्ता ने इसका वर्णन इस प्रकार किया हैः—

धपोज्झिता षड्जभवा च गेया।
दिव्या च वीरे किल मेघरंजी॥

इन लक्षणों के पश्चात् रागमूर्ति इस प्रकार बताई हैः—

श्रुतौ दधाना नवकर्णिकार-
मारामगा केशरपुष्पकांची ॥
अध्यापयंती स्वरकरस्थसारिकां
श्रीरामरामेति च मेघरंगी ॥

इस ग्रन्थकार ने मेघरंजनी के थाट का उल्लेख नहीं किया, अतः पाठकों को केवल तर्क के आधार पर इस राग के स्वर निश्चित करने पड़ेंगे। तर्क करने के लिये यह सूत्र अधिक महत्वपूर्ण होगा कि पंचम और धैवत वर्ज्य बताये गये हैं। अनेक ग्रंथों का मत जानकर रागों के थाट निश्चित करने योग्य सामर्थ्य प्राप्त होना असम्भव नहीं है। संगीत-रत्नाकर में जो राग बताये गये हैं, उनमें से बहुत से राग इस ग्रन्थ के पश्चात् लिखे गये ग्रन्थों में हमें स्पष्ट और समझ में आने योग्य लक्षणों से बताये हुए प्राप्त होते हैं। मजा यह है कि कहीं-कहीं तो शार्ङ्गदेव से परवर्ती ग्रन्थकारों ने रत्नाकर में वर्णित रागों का जन्य-जनक सम्बन्ध बताया है। इससे विद्वान व्यक्ति कभी-कभी शार्ङ्गदेव के राग-स्वरूपों के सम्बन्ध में युक्तिपूर्ण तर्क करते हैं। हम देखते हैं कि रत्नाकर में भाषा, विभाषा, भाषांग उपांग आदि नामों का प्रयोग जन्य-जनक सम्बन्ध के हेतु हुआ है। परवर्ती ग्रन्थकारों द्वारा इन नामों का ग्रहण करना नहीं पाया जाता। मैं समझता हूँ कि मेरा यह कथन तुम्हें किसी उदाहरण के माध्यम से शीघ्र ही समझ में आ जावेगा। तुम्हें यह ज्ञात ही है कि रत्नाकर में 'टक्क' नामक एक ग्रामराग बताया गया है। यदि तुम इस टक्क राग के जन्यरागों को देखो और सावधानी पूर्वक यह मिलान करो कि परवर्ती ग्रन्थकारों ने टक्क व इसी थाट के और दूसरे कौन से राग बताये हैं, तो तुम्हें इसी प्रकार की बहुत सी उपयोगी जानकारी प्राप्त होगी। सम्भवतः कहीं-कहीं यह दिखाई देगा कि रत्नाकर के किसी मेल राग को परवर्ती ग्रन्थकारों ने जन्य राग मान लिया है; परन्तु इतने मात्र से अपनी विचारधारा को अधिक बाधा नहीं आ सकती। मैं समझता हूं कि यदि कोई परिश्रम अध्येता अर्वाचीन वर्गीकरण को पद्धतिबद्ध लिखकर सूक्ष्मतापूर्वक खोज करे तो शार्ङ्गदेव के रागस्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत सा अनुमान कर सकेगा। चूँकि आज हमारा विषय 'रत्नाकर' नहीं है, अतः हम स्वयं इस प्रकार का प्रयत्न अभी नहीं करेंगे। इस समय तो हम अपने प्रचलित सङ्गीत के सम्बन्ध में ही प्रमुख रूप से चर्चा करेंगे। ग्रन्थ सङ्गीत में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के लिये ग्राम, मूर्छना, जाति, आदि विषयों पर संपूर्णतः समाधानकारक जानकारी देनी आवश्यक होगी। यह मैं प्रथम ही बता चुका हूँ कि यह एक स्वतन्त्र भाग है और विवादग्रस्त भी है। मैं स्वीकार करता हूँ कि कहीं कहीं मैं वाक्प्रवाह में अपने मन के तर्क भी बताता गया हूँ, परन्तु रत्नाकर की इस प्रकार व्यवस्थित जानकारी देना एक स्वतन्त्र और उपयोगी कार्य है और वह योग्य अधिकारी व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिये। सङ्गीतसारामृत में मेघरंजनी इस प्रकार बताई गई है:—

मेलान्मालवगौलीयान्मेघरंजः पधोज्झितः।
औडुवः पर्जन्यकाले गेयः षड्जग्रहादिकः ॥

इस वर्णन में "पर्जन्यकाले" कहा गया है, परन्तु अन्य ग्रन्थकारों द्वारा इस प्रकार कुछ नहीं बताया गया। शायद इस ग्रन्थकार ने राग के नाम की ओर देखकर यह कल्पना

की होगी। नाम से राग लक्षण बताने का सिद्धांत मेरे गुरु ने मुझे नहीं सिखाया। यह सिद्धान्त सभी जगह लागू करना सुविधा जनक नहीं होगा। राग नामों की धुन में लगकर किसी-किसी समय अनाड़ी गायक कैसी-कैसी अनर्गल बातें अपने श्रोताओं को सुनाते रहते हैं, इसका एक नमूना तुम्हें मैं सुनाता, परन्तु वह राग इस थाट का नहीं है अतः कुछ अप्रासंगिक हो जायेगा।

प्रश्न—आप हमें सुना तो दीजिये। इस समय चर्चा के प्रवाह में वह बात आ निकली है, इसलिये हम आग्रह कर रहे हैं।

उत्तर—अच्छा, सुनाता हूँ। एक बार मैं दक्षिण के एक संगीत प्रसिद्ध नगर में कुछ जानकारी एकत्र करने के लिये गया था। वहां मुझे एक हिन्दू गायक से इस सम्बन्ध में चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस दिन मैं किसी अच्छे मुहूर्त से घर से नहीं निकला था, यह अनुभव मुझे घर लौटकर आने पर हुआ।

प्रश्न—क्यों भला? मालूम होता है कि शायद उस गायक की और आपकी कुछ गरमागरम तकरार होगई होगी?

उत्तर—नहीं-नहीं, मुसाफिरी में मैं झगड़ा तो कभी भी किसी से नहीं करता। हाँ, केवल बहस करने में आगे पीछे भी नहीं देखता, परन्तु मैं सदैव अपनी भाषा निर्भीकता पूर्ण रखने के साथ सभ्यता पूर्ण भी रखता हूं। वहां होने वाली घटना सुनाता हूँ। इस गुणी की ख्याति मैं बड़ी-बड़ी दूर तक सुन चुका था। यह प्रसिद्ध बात है कि जिस गुणी को राज्याश्रय प्राप्त हो, उसकी कीर्ति सहज में ही काफी दूर-दूर तक फैल जाती है, ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति की भेंट का लाभ मिलने का सुयोग पाकर मुझे बहुत अधिक हार्दिक आनंद प्राप्त हो रहा था और वह हिन्दू था, अतः मुझे आशा थी कि उसमें सौजन्य विनय आदि गुण भी होंगे। परन्तु भेंट के बाद बिलकुल विपरीत अनुभव हुआ। जब मैंने अपना उद्देश्य नम्रतापूर्वक उसे बताया कि मुझे सङ्गीत शास्त्र पर जानकारी चाहिए और इसे प्राप्त करने के लिये ही मैं नगर-नगर घूम रहा हूँ; तब उसने साधारणतः अक्खड़पन से मुझे उत्तर दिया कि "तुम एक बार इस शहर में आगये, यह बहुत अच्छा हुआ। यहां से तुम्हें गंडा बांधकर ही घर जाना होगा!"

प्रश्न—यह बात हम नहीं समझे। गंडा बांधने का क्या अर्थ है?

उत्तर—यह बात बिना बताये हुए तुम नहीं समझ सकोगे। हमारे अशिक्षित अथवा अनाड़ी सङ्गीत व्यवसायी लोगों में किसी नवीन शिष्य को मूंडते हुए उसके हाथ में एक काले सूत का टुकड़ा बांधने की प्रथा है। उसी सूत को "गन्डा" कहा जाता है। आजकल जहां-तहां सङ्गीतशाला व सङ्गीत कक्षाएँ खुल जाने के कारण यह गंडा बांधने का ढोंग बहुत पिछड़ गया है, फिर भी अशिक्षित लोगों में तुम्हें अब भी यह प्रथा दिखाई पड़ेगी, अस्तु।

मैं उस गायक के कथन का अभिप्राय समझ गया। मैंने उत्तर दिया-महाराज! मुझे गंडा बँधवाने में शर्म नहीं आयेगी। बात इतनी सी है कि मेरे अनेक गुरु हो चुके हैं उनमें एक और बढ़ जावेगा। जिसमें आप तो हिन्दू हैं, आपके गंडे को तो मैं अपने लिये भूषण मानूंगा। मुझे तो योग्य जानकारी मिलनी चाहिये, फिर कोई बात नहीं है।

प्रश्न—आपको उस गायक के उक्त कथन पर बहुत क्रोध आया होगा ?

उत्तर—नहीं, मैं बिलकुल शांत था। यह मेरा पहिला अनुभव नहीं था। अजी ! उत्तम जानकारी प्राप्त करने के लिये एकाध सूत का टुकड़ा हाथ में बांध ही लिया तो क्या हुआ ? मैं तो तुम लोगों से भी यही कहूँगा कि यदि कोई अधिकारी और योग्य गुरु हो, उसका आग्रह गंडा बांधने का हो तो बिला झिझक के बँधवा लेना। मैंने उन भावी गुरुदेव से कहा कि-महाराज ! आप किसी भी ग्रन्थ का अपना देखा हुआ राग वर्णन करने वाला श्लोक लेकर उसे मुझे समझा दीजिये, जिसमें इस विषय की चर्चा करना सुगम हो सकेगा। यह सुनते ही—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती ।
अद्यापि मज्जनभयात्तुंबं वहति वक्षसि ॥
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद ॥
पूर्णं चतुर्णां वेदानां सारमाकृष्य पद्मभूः ।
इमं तु पंचमं वेदं संगीताख्यमकल्पयत् ॥
नादेनव्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः ।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत् ॥

इस प्रकार के श्लोक उसने धड़ल्ले से सुनाने आरम्भ कर दिये, इतना ही नहीं अपितु नाद, पिंड, चक्र आदि के सम्बन्ध में भी उसकी बकबक चलने लगी। यह देखकर समय बचाने के हेतु मैंने उससे स्पष्ट कह दिया कि "इस प्रकार की जानकारी तो मैं प्राप्त कर चुका हूं, इसलिये मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।"

प्रश्न—ऐसा आपने क्यों कहा ?

उत्तर—अजी ! ऐसी बेकार गप्पें इन अशिक्षित लोगों द्वारा सुनने से कौनसा अभिप्राय सिद्ध हो सकता है ? यह मुझे दिखाई पड़ चुका था कि उसे संस्कृत की गंध भी प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसे व्यक्ति से, प्राणी क्यों जन्म लेता है, क्यों मरता है, प्रारब्ध क्या है, नाद ब्रह्म क्या है ? आदि विषयों पर भला क्या जानकारी मिल सकेगी ? मैंने उससे रागलक्षण-वाचक कोई श्लोक बताने का आग्रह किया, तब—

षड्जादिमूर्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः ।
गनिहीनोऽपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः ॥

यह 'पारिजात' का श्लोक उसने सुनाया।

प्रश्न—सम्भवतः "षड्जत्रयसमन्वितः" पद में वह अटक गया होगा। ठीक है न ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि अपना संभाषण जैसा का तैसा तुम्हें सुना देना ही अच्छा होगा—ऐसा पंडित मुझे यह पहली बार ही मिला था।

प्रश्न—ठीक है ऐसा ही कीजिये।

उत्तर—सुनो, सुनाता हूं:—

"मैं—महाराज! आपने यह बहुत ही अच्छा श्लोक पसन्द किया। मुझे आशा है कि यह श्लोक अच्छी तरह समझ जाने पर मेरी बहुत सी कठिनाइयां दूर हो जावेंगी।

पंडित—परन्तु यदि मैं तुम्हें यह श्लोक समझा दूँ, तो मुझे क्या इनाम दोगे?

मैं—मैं आपकी बहुत प्रशंसा करूँगा, और आपका उपकार मानूँगा। भला इनाम क्या दे सकता हूं?

पंडित—अच्छा! कोई बात नहीं। परन्तु अब अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो। इस श्लोक में "षड्जादिमूर्छनोपेत:" यह चरण आरम्भ में ही रखने में ग्रन्थकार ने क्या विशेषता की? यह तुम्हारे ध्यान में नहीं आ सकता। अहा हा! अहोबल पंडित क्या कोई सामान्य व्यक्ति था।

मैं—वास्तव में इसकी खूबी मेरे ध्यान में नहीं आई। कृपाकर अलग-अलग स्पष्ट रूप से समझा दीजिये?

पंडित—अरे! क्या तुम नहीं जानते कि प्रत्येक गायक जब अपना गायन गाता है तो 'प्रारम्भ में' अपना षड्ज कायम करता है। इसलिये ग्रन्थकार कहता है कि "षड्जादि-मूर्छनोपेत: अर्थात् गायक को सर्व प्रथम अपना षड्ज स्वर कायम करना चाहिये।

मैं—"षड्जादि" का अर्थ "षड्ज स्वर प्रारम्भ में" इस प्रकार अर्थ होगा?

पंडित—स्पष्ट ही है। इसे समझने के लिये बड़ी भारी विद्या की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—यह सुनकर आपको तो हँसी आ गई होगी? हम तो पेट पकड़कर हँस रहे हैं।

उत्तर—मैं बिलकुल नहीं हँसा। मुझे मजा जरूर आया, परन्तु आगे और क्या आनन्द आने वाला है, यह भी मुझे देखना था। उसके शिष्य व मित्र भी उस समय जमे हुए थे। उनके सम्मुख उनका अपमान करने से शायद कोई अनिष्ट परिणाम भी उत्पन्न हो जाता। मैंने उसे स्वेछानुसार बहकने दिया। उसने प्रथम पद का फैसला कर फिर अगले पद को लिया।

पंडित—अब "षड्जत्रयसमन्वित:" इस पद को देखो। इसमें तो प्रथम पद की अपेक्षा और भी आनन्द है। तुम जानते ही हो कि "षड्जं वदति मयूरो, आदि" मोर षड्ज का उच्चारण करता है, बैल ऋषभ का, बकरा गांधार का उच्चारण करता है, आदि। इसमें बड़ा भारी गंभीर रहस्य है। तुम पूछोगे कि इन जानवरों से हमें क्या उपयोग लेना है?

मैं—जी हां, यही मैं अब पूछने वाला था।

पंडित—इसका रहस्य मैं बताता हूँ। देखो, "ऋषभ" यह दूसरा स्वर है ही। परन्तु समझ लो कि यदि हमने इसे षड्ज मान लिया तो क्या हम ऐसा नहीं कर सकेंगे?

इसी तरह गांधार है । तब सा, रि, ग ये तीनों स्वर कारण-परत्व से षड्ज हो सकते हैं। इसीलिये पंडित कहता है "षडजत्रयसमन्वितः" मेरा कथन तुम्हारे मस्तिष्क में उतरने योग्य नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु इसका क्या इलाज है ? [उसके शिष्य इस रहस्य को समझ लेने का अभिनय करने लगे, और मेरी ओर दया से देखने लगे।]

मैं—महाराज! यह मैं कुछ भी नहीं समझा । आप गांधार तक षडजत्व साबित करके क्यों रुक गये ? यह मैं नहीं समझ पाया ।

पंडित—तो फिर इसे जाने दो,अब आगे चलो । "गनिहीनोऽपि मल्लारः" अहा हा ! धन्य है वह ग्रन्थकार ! रहस्य समझने वाले की तो मौत है ! गांधार व निषाद क्यों वर्ज्य किये ? यह समझे क्या ? वह "मेघ मल्लार" है, इसमें यह "सूर" ठीक ही वर्ज्य किये अब जरा ध्यान देकर देखो—"षड्जादिमूर्छनोपेतः" हां, प्रथम मयूर की स्थापना की है, वह तो आवश्यक ही था। अरे भाई ! वर्षाकाल आगया न ? आगे 'वृषभ' तत्काल उसका विवादी है ! ठीक ही है। मोर और बैल की जन्मजात शत्रुता है ही। गांधार ठीक ही वर्ज्य किया है । तुम चाहे जो करो, बकरे कभी पानी में नहीं उतरने वाले हैं। तुम जाँचकर देखलो, वर्षाकाल में बकरी कभी बाहर नहीं फिरती। "अजा वदतिगांधारं" यह क्या झूँठा कह दिया है ?

आगे और मजा देखो। षड्ज का अनुवादी ग है, तंबूरा छेड़कर जांच करलो। षड्ज छेड़ा कि उसमें से ग निकल आयेगा। इसीलिये इसे छोड़ दिया ! इसकी जगह मध्यम रख लिया; क्योंकि वह 'चातक' है । पंचम अपने आप संवादी होगया; क्योंकि "पिकोवदति पंचमम्" कोकिल को वर्षाकाल बहुत पसन्द आता है। अब रह गये दो, घोड़ा और हाथी, इनमें घोड़ा रख लिया और हाथी छोड़ दिया !

मैं—महाराज ! मैंने अनेक प्रदेशों की यात्रा की है, परन्तु राग स्वरूप सिद्ध करने की यह शैली प्रथम बार ही देख रहा हूं।"

अब आगे का संभाषण रहने दो। वह भी इसी तरह का अनर्गल था। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि राग के नाम गाम से उसके स्वरों को निश्चित करना उचित नहीं हो सकता। यह समझने की आवश्यकता नहीं है, कि मेघरंजनी का सम्बन्ध वर्षाकाल से स्थापित करना ही चाहिये ।

प्रश्न—अभी तो हमें उस पंडित की बातों पर हँसी आ रही है। उसने भी कैसी-कैसी अद्भुत कल्पनाऐं लड़ाईं थीं, गुरु जी !

उत्तर—ऐसे अनेक अर्द्ध विक्षिप्त लोग तुम्हें मिलेंगे । भला अशिक्षित लोगों से दूसरा और क्या स्पष्टीकरण हो सकता है ? ये लोग अपने शिष्यों के सम्मुख चाहे जैसी बहकी-बहकी बातें कर जाते हैं; और वे शिष्य उसमें और नमक मिर्च लगाकर आगे बढ़ाते रहते हैं। मौखिक गप्पें हांकना तो ठीक ही है, परन्तु इसी प्रकार के गपोड़े तुम्हें अपने कुछ देशी भाषाओं के ग्रंथों में भी प्राप्त हो जावें तो आश्चर्य नहीं। इस प्रकार के ग्रन्थकारों में बहुत थोड़े ऐसे होते हैं, जो संस्कृत ग्रन्थों को समझ सके हों। ऐसे लेखकों द्वारा चाहे जैसे अनर्गल विधान प्रसिद्ध हो जावें तो आश्चर्य ही क्या ? हमें तो उनका उपयोगी भाग स्वीकार करना और निरुपयोगी भाग छोड़ देना चाहिये। प्रत्यक्ष प्रचार में कभी-कभी उनका उपयोग भी हमारे लिये आवश्यक हो सकता है। हम उनकी निंदा करना पसंद

नहीं करेंगे। उन्होंने जो-जो गप्पें सुनी हैं वे ही लिख दी हैं। मैं तुम्हें इस प्रकार के अनेक उदाहरण दे सकता हूं, परन्तु किसी भी लेखक से निष्कारण वैमनस्य उत्पन्न करना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। हमें तो इतना ही स्पष्टता पूर्वक देख लेना है कि हमारे लिये कौनसा मत भला और खरा है। इतने मात्र से ही अपना कर्तव्य पूर्ण हो जाता है। अस्तु, अब अपने विषय की ओर लौटना चाहिये ?

प्रश्न—जी हां, आप ग्रंथों का मत बता रहे थे।

उत्तर—रागलक्षणकार ने मेघरंजनी इस प्रकार बताई है:—

"मायामालवगौलाख्यमेलाज्जाता सुनामिका।
सा मेघरंजनी तस्यां सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहेऽप्यवरोहे च पधवर्जं तथौडवम्॥"

पं० व्यंकटमखी के बताये हुए लक्षण इस प्रकार हैं:—

औडुवी पधवर्ज्या रीवक्रत्वमवरोहणे।
षड्जग्रहेण संयुक्ता गातव्या मेघरंजनी॥

Capt. Dey. साहब ने अपनी सूची में यह राग मालवगौड़ थाट में बताया है। परन्तु इसके आरोह अवरोह इस प्रकार बताये हैं—"सा रे॒ म प ध॒ नी सां। सां ध॒ प म ग रे॒सा।" यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूं कि हमारा प्रचलित राग इस प्रकार नहीं है। इसलिये यह स्वरूप एक स्वतंत्र राग रूप के समान प्रचार में चाहो तो आ सकता है, यह सुन्दर भी दिखाई देगा। जोगिया के अवरोह में निषाद होने पर गांधार नहीं है। सावेरी में अवरोह संपूर्ण है। गुणक्री में ग, नि बिलकुल नहीं हैं। मेघरंजनी में प, ध स्वर वर्ज्य हैं। इसी भिन्नता के कारण ये राग परस्पर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। ठीक है न? Captain साहब ने सावेरी का आरोह अवरोह इस प्रकार बताया है:-'सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा।' यह मेरे बताये हुए जैसा ही है।

प्रश्न—मालूम होता है, इन्होंने गुणक्री के संबन्ध में कुछ नहीं कहा ?

उत्तर—इन्होंने गुण्डक्रिया नाम दिया है और इस नाम के राग का आरोह-अवरोह सारे॒गरे॒म, पनीध॒निसां। सां। सांनिध॒पमगरे॒गसा' इस प्रकार बताया है। यह राग स्वरूप अपना नहीं है। परसों एक गायक ने संपूर्ण शुद्ध स्वरों से, मेरे यहां आकर एक राग गाया और उसका नाम 'गौड़गिरी' बताया। उसमें गौड़ मल्लार और बिलावल का मिश्रण दिखाई देता था। उसको राग के नियम बिलकुल ज्ञात नहीं थे, अतः उसे इस राग में 'फिरत' [राग विस्तार] करना नहीं आया। किन्तु तुम्हें इस मतभेद में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा यही निश्चय होना चाहिये कि जब स्पष्ट रूप से राग नियम न दिखाई पड़ते हों तो निराला राग नहीं माना जावे। यह तुम जानते ही हो कि कुछ रागों के आरोहावरोह वक्र व कुछ रागों के सरल होते हैं। वक्र रागों में फिरत करते हुए गायकों को बहुत कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में वे लोग कभी-कभी सरल स्वरों को लेकर भी तान लेते हुए दिखाई देते हैं। तो भी बीच-बीच

में ऐसी तानें लेते जाते हैं, जिनमें रागों की वक्रता स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ कल्याण थाट के दोनों मध्यम लगने वाले राग देखो। इनमें गायक पंचम से आगे आने वाले स्वरों की बार-बार सरल तान लेते हुए दिखाई पड़ेंगे। नियम की कठोरता की दृष्टि से यह कृत्य योग्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु उत्तरांग दुर्बल होने और मनाक् स्पर्श के न्याय से समाज इस प्रकार की तानें नापसन्द नहीं करता। इस संबंध में मैं पहिले भी बता चुका हूं। तुम यह भी जानते हो कि इन दोनों मध्यम वाले रागों का वैचित्र्य षड्ज से पंचम तक के क्षेत्र में ही होता है। इन रागों के अन्तरे में प्रायः चार टुकड़े आते हैं और उनमें से प्रथम दो टुकड़े "प प, सां सां, सां रें सां; सां ध सां, रें सां, ध प" सदैव एक से ही होते हैं, यह तथ्य भी तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा। कहने का उद्देश्य यह है कि आजकल के तानप्रिय श्रोताओं को खुश करने के लिये अपने गायक कभी-कभी नियमों की ओर दुर्लक्ष्य करने लगें तो आश्चर्य नहीं, तथापि यह सभी जानते हैं कि जिस गायक को राग-नियम ही ज्ञात न हों, उसकी प्रशंसा समाज में कभी नहीं होती और न कभी होगी। रागविस्तार करते समय आश्रयराग की सहायता जान-बूझ कर ग्रहण करना विशेष दोषपूर्ण नहीं होता, परंतु यह भी सत्य है कि राग में मनमाने स्वरों का प्रयोग कर, नवीन राग का आभास कराने वाला गायक उच्चस्तर का कभी नहीं माना जा सकता।

प्रश्न—Capt. Willard साहेब ने क्या मेघरंजनी का वर्णन किया है?

उत्तर—नहीं! गुणकली या गुण्डकली किन-किन रागों के मिश्रण से बन जाती है, यह बात उन्होंने अवश्य बताई है। गुणक्री के सम्बन्ध में बोलते हुए तुम्हें यह बात बतानी रह गयी थी। इनके बताये हुए वर्णन से कुछ बोध होना भी संभव है। इनके मत से गुणकली में राग देशी, तोड़ी, ललित, आसावरी, और गुर्जरी का मिश्रण होता है। मजा यह है कि संस्कृत ग्रन्थों में खोजकर देखें तो "देशी, ललित, आसावरी देशकार, गुर्जरी" ये सब राग हमें संधिप्रकाश थाट में बताये हुए प्राप्त होंगे। इनमें कुछ तीव्र मं वाले और कुछ कोमल म वाले राग चाहे हों, परन्तु रे कोमल और ग नि तीव्र, यह निशानी अवश्य प्राप्त होगी। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि तोड़ी का थाट स्वतंत्र है, और आसावरी का थाट भी आजकल भिन्न माना जाता है; परन्तु अपनी गुणक्री या गुणकरी के स्वरों के संबन्ध में Captain साहेब का मत अवश्य ही थोड़ा बहुत प्रकाश डालने योग्य है।

प्रश्न—आपका कथन यथार्थ है। इन साहब का "रागमिलाप" का कोष्ठक तो हम एक बार नकल ही कर लेंगे? यह तो एक छोटा सा कोष ही होगा। ठीक है न?

उत्तर—हां यही बात है। राजा साहब टागोर के "Hindu Music From various Authors" नामक ग्रंथ में यह कोष्ठक तुम्हें प्राप्त हो सकेगा। इसे Willard साहेब ने न मालुम कहां से प्राप्त किया। अपने कुछ हिन्दी ग्रंथों में भी ऐसे कोष्ठक हैं। तुम्हें याद होगा कि पहिले मैंने "सुरतरङ्गिणी" नामक ग्रन्थ के विषय में तुम्हें बताया था। इस ग्रंथ में भी इस प्रकार के राग मिश्रण बताये गये हैं। यह ग्रन्थ अब मेरे एक मित्र ने प्रकाशित करवा दिया है और यह तुम्हें बाजार में मिल सकेगा। "सुरतरङ्गिणी" ग्रंथ में सर्वसामान्य बाह्य बातें बहुत काफी मात्रा में हैं। रागों के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण, उनकी मूर्तियां, रत्नाकर के स्वराध्याय का हिंदी दोहों में किया हुआ भाषान्तर आदि अनेक बातें तुम्हें इसमें दिखाई पड़ेंगी।

प्रश्न—क्या इस ग्रन्थ में रागों के थाट व लक्षणों के विषय की जानकारी मिल सकेगी ?

उत्तर—ये बातें नहीं मिलेंगी। इसमें तुम्हें स्वराध्याय और रागाध्याय में कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखाई देगा। तो भी इसमें बताये हुए "राग मिलाप" (राग मिश्रण) का प्रकरण बिलकुल निरुपयोगी नहीं है। अन्य कई हिन्दी पुस्तकों की अपेक्षा यह पुस्तक मुझे वास्तव में अच्छी ज्ञात हुई और यह प्रकाशित हो गई है, यह भी बड़ा अच्छा हुआ। इसके आधार पर कुछ राग स्वरूप अपने गायक प्रचार में ला सकते हैं। इसी ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति मैंने काठियावाड़ के एक गुजराती सज्जन के पास देखी थी और उसे प्राप्त करने का मैं प्रयन्न करने वाला था, परन्तु यह ग्रन्थ अब प्रकाशित होगया है, अतः बड़ी सुविधा हो गई है। सङ्गीतकल्पद्रुम में भी एक प्रकरण राग मिश्रण के सम्बन्ध में दिया गया है, जो तुम आगे चलकर देख ही लोगे।

प्रश्न—अब हमें यह बता दीजिये कि इस मेघरंजनी राग को हम कैसे गायेंगे ?

उत्तर—हां बताता हूँ।

मेघरंजनी—

नि़ सा, ग म, म, ग रे॒ ग म, ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, ग म, म॑ म, रे॒ ग म, ग रे॒ सा; सा रे॒ सा म ग रे॒ सा, सा रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, रे॒ सा, ग म, म रे॒ ग म, म॑ म, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा नि़ रे॒ ग म रे॒, ग म, म॑ म, नि़ सा ग म, रे॒ ग, म नि सां नि म ग, रे॒ ग, म ग, रे॒ सा, म म, म ग, म नि सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ गं रें॒ सां, गं रें॒ सां, सां नि म ग, मं मं गं रें॒ सां, नि म ग, म ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा।

सरगम—झपताल

नि	रे॒	ग	म	म	म	म	ग	म	म
म	ग	म	म॑	म	ग	ग	रे॒	ग	ग
म	ग	म	ऽ	म	नि	सां	रें॒	नि	सां
रें॒	रें॒	सां	नि	सां	म	म	ग	रे॒	ग

अन्तरा—

म	म	ग	म	म	सां	ऽ	सां	रें॒	सां

नि	रें	गं	गं	रें	सां	ऽ	नि	रें	सां
सां	सां	रें	रें	सां	गं	रें	सां	नि	सां
सां	नि	रें	रें	सां	म	ऽ	ग	रे	ग

मैं समझता हूं कि, उक्त 'स्वर समुदाय' एवं 'गत' से तुम्हें मेघरंजनी की थोड़ी बहुत कल्पना हो जावेगी। इसमें स्वर कम हैं और प तथा ध, ये दोनों प्रमुख स्वर वर्ज्य हैं, अतः राग विस्तार बहुत ही मर्यादित रूप में होता है। तो भी यदि गायक का कंठ मधुर हो और वह राग नियम उत्तम रूप से निभा सके तो यह राग भी अच्छा प्रभाव उत्पन्न कर सकता है।

प्रश्न—यह राग हम समझ गये। अब कोई दूसरा राग बताइये ?

उत्तर—ठीक है। अब हम "प्रभात" राग पर विचार करेंगे। "प्रभात" बिल्कुल सामान्य शब्द है। इसका अर्थ प्रातःकाल होता है। संस्कृत में यह शब्द नपुंसक लिंग में है, परन्तु तुम्हें प्रचार में प्रभात राग या "प्रभात" पुल्लिंग में प्रयोग किया हुआ दिखाई देगा। 'प्रभात' नाम कानों में पड़ते ही, यह कल्पना हो जाती है कि यह प्रातःकाल गाने का राग होगा। वास्तव में बात भी यही है, यह सचमुच ही प्रातः कालीन राग है। "प्रभात" नाम केवल काल वाचक है, अतः यह सन्देह भी हो सकता है कि इस नाम को राग के लिये स्वीकार किया जाना चाहिये अथवा नहीं। यह भी एक तर्क उत्पन्न होता है कि संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा नाम कहीं नहीं दिखाई पड़ता। मेरी समझ से इस राग के लिये यह कह देना अधिक सुविधाजनक होगा कि यह अपने गायकों द्वारा दो-तीन रागों का मिश्रण कर उत्पन्न किया हुआ नवीन राग स्वरूप है। लक्ष्यसङ्गीत आदि अर्वाचीन ग्रन्थों में इस राग का बताया जाना भी उचित ही है, क्योंकि ये ग्रन्थ प्रचलित हिन्दुस्थानी सङ्गीत पर लिखे हुए हैं। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह मिश्र स्वरूप मनोहर और कुछ अंशों में स्वतन्त्र भी है। इसमें प्रमुख रूप से भैरव, रामकली और ललित का सुन्दर संयोग दिखाई देता है।

इस राग का मुख्य अङ्ग भैरव का है। इसलिये हमारे विद्वान इसे भैरव थाट का ही मानते हैं। प्रत्येक राग किसी न किसी थाट में तो स्थान पायेगा ही, क्यों कि बिना इसके सङ्गीत पद्धति में बाधा उपस्थित होजावेगी। जन्य-जनक तत्व तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। 'राग' कहने पर उसका थाट भी बताना ही पड़ेगा। 'प्रभात' में स्वल्प रूप में तीव्र मध्यम का प्रयोग भी होता है। अतः इसके थाट के सम्बन्ध में किसी को सन्देह होना सम्भव है, परन्तु वह तीव्र मध्यम इस राग में बिलकुल गौण रूप में प्रयुक्त होता है, अतः इस राग को भैरव थाट में निश्चित करने का कार्य बिलकुल सरल हो जाता है। सन्धिप्रकाश के राग प्रातः कालीन व सायंकालीन होते हैं।

राग का समय उसके मुख्यांगों से तत्काल ही मर्मज्ञों को दिखाई पड़ जाता है। सायंकाल में दोनों मध्यम के प्रयोग वाले रागों में "पूर्वी राग" प्रमुख है। अभी मैंने तुम्हें यह राग नहीं सिखाया है। 'प्रभात' और पूर्वी में यह एक बड़ा भेद है कि प्रभात में तीव्र म॑ गौण है और पूर्वी में कोमल म गौण है।

प्रश्न—ऐसा ही थोड़ा बहुत रामकली में भी था। ठीक है न?

उत्तर—हां, यह तुमने अच्छा ध्यान रखा। 'प्रभात' में तीव्र म॑ भिन्न रीति से प्रयुक्त किया जाता है। 'प्रभात' में कोमल मध्यम बहुत महत्व प्राप्त करता है। इस स्वर को इस राग का वादी कहना भी शोभनीय होगा। एक मात्र इसी लक्षण से ही यह राग सायंकालीन नहीं हो सकता। 'प्रभात' का धैवत कोमल है, क्योंकि यह भैरव थाट का ही एक राग है।

प्रश्न—आपने बताया है कि इस राग में भैरव अङ्ग प्रधान है, तब इसमें तीव्र मध्यम किस प्रकार दिखाया जाता होगा। क्या यह आप हमें बतायेंगे?

उत्तर—यह स्वर ललित अङ्ग से लिया जाता है।

प्रश्न—अर्थात्, जिस प्रकार मेघरंजनी में लिया जाता है, उसी तरह?

उत्तर—हां, तुम ठीक समझे। रामकली राग के समान इस राग में "म॑ प ध॒ प म॑, ग रे॒ सा" इस प्रकार अपने गायक नहीं करते, यथा संभव वे भैरव अङ्ग को उत्तम रीति से दिखाते हैं। ललित अङ्ग दिखाने के लिये मध्यम का प्रयोग व्यक्त अर्थात् खुला आवश्यक होता है।

प्रश्न—तो इस राग की 'फिरत' गायक लोग किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—गायक लोग अधिकांश तानें भैरव की ही ग्रहण करते हैं, परन्तु बीच-बीच में वे ललित अङ्ग की निश्चित तानें लेकर राग भेद दिखाया करते हैं। "सा, रे॒ रे॒ सा, ग, म, ग रे॒ सा, म म, ग म, प ध॒ प, म, रे॒ ग म म॑, ग म, ग रे॒ सा, ध॒, सा"। यदि इस प्रकार से तुम तानें लेते गये तो 'प्रभात' राग दिखाई देगा। इस राग को तुम्हें मेघरंजनी और रामकली से सावधानी पूर्वक बचाना होगा।

प्रश्न—मेघरंजनी तो औडुव राग है, अतः यह तो अलग हो ही जाना चाहिये। परन्तु रामकली से बचाने में सचमुच कुछ कठिनाई होगी। "म॑ प, ध॒ नि॒ ध॒ प, म॑ प, म ग रे॒ सा" यह रामकली की तान हमें अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये, ठीक है न? परन्तु रामकली में ललित अङ्ग कहां है?

उत्तर—यदि रामकली में किसी ने मध्यम कुछ बढ़ा दिया तो ललित अङ्ग नहीं आ पायेगा। यदि "ध॒ प म, ग रे॒ सा" तान मध्यम पर ठहरते हुए लीगई, तो भी ललित अङ्ग नहीं आ सकता। प्रभात राग में "नि़ सा, ग म म, ग, रे॒ ग, म, ग म ग रे॒ सा" यह भाग विचित्र ही है। इसे देखकर कोई-कोई सोचते हैं कि प्रभात राग में कालिंगड़ा का भी कुछ मिश्रण स्वीकार किया जावे। मैं यह नहीं कहूंगा कि इस

कथन में कोई तथ्य नहीं है। यह ठीक है कि कुछ अन्शों में प्रभात राग का मुख इसी प्रकार दिखाई देता है। परन्तु यह भी सत्य है कि अन्तरे में भैरव अङ्ग स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रभात राग में मध्यम का प्रमाण अधिक होने से इसकी प्रकृति गंभीर होनी ही चाहिये। भैरव अङ्ग मानने वाले गायक यह भी कहते हैं कि प्रभात राग के रे, ध स्वर कालिंगड़ा की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं। परन्तु हम इस प्रकार के भेदों में नहीं जायेंगे; क्योंकि रागों में अन्तर दिखाने वाले अन्य लक्षण भी हमारे पास हैं। कालिंगड़ा में ललित अङ्ग कभी नहीं आ सकता और इसी प्रकार भैरव अङ्ग। इसके विपरीत गायक इसे टालने का प्रयत्न ही सदैव करते हैं। प्रभात राग का अन्तरा तो प्रायः भैरव की छाया ही दिखाता है।

प्रश्न—तो फिर अभी हम इस प्रकार प्रभात राग का स्वरूप अपने ध्यान में रख लेते हैं कि यह एक भैरव थाट का राग है, इसमें दोनों मध्यम हैं, परन्तु शुद्ध मध्यम वादी स्वर है। इसमें ललित का एक टुकड़ा आ जाने पर रामकली राग इससे अलग हो जाता है। कालिंगड़ा का उठाव ग्रहण करने पर भैरव निराला हो जाता है। अन्तरा भैरव जैसा ग्रहण करने पर और ललित अङ्ग ग्रहण करने पर कालिंगड़ा अलग हो जाता है। यह ठीक होगा न ?

उत्तर—ठीक रहेगा। मेघरंजनी और गुणकली रागों में तो दो-दो स्वर छोड़े जाते हैं, अतः वे सरलता से अलग किये जा सकते हैं। प्रभात सम्पूर्ण जाति का राग है। इस राग को तुम सहज में पहिचान सको इसके लिये एक बात और बता देता हूं। अपने वैष्णव मन्दिरों में इस राग के पद "उठ प्रभात सुमर लिये, जागिये गोपाल लाल" इस प्रकार के गाये जाते हैं। हमारे कुछ प्राचीन घरानों में स्त्रियाँ भी प्रातःकाल इस प्रकार के पद गाती हैं। आजकल सुधारवादी घरानों में, मूर्ति पूजा का कार्य पिछड़ जाने से यह नहीं जान पड़ता कि कोई जल्दी प्रातःकाल के समय जागकर इस प्रकार के पद गाते हों। प्रभात और सावेरी का अन्तर तो तुम जान ही गये होगे ?

प्रश्न—आपने बताया है कि सावेरी के आरोह में ग नि स्वर वर्ज्य हैं और अवरोह में सम्पूर्ण स्वर लगते हैं।

उत्तर—यह ठीक है। तो फिर तुम यह देख ही रहे हो कि भैरव थाट में खुले मध्यम का प्रयोग ग्रहण करने वाले अनेक राग हैं, परन्तु वे सब अपने-अपने भिन्न लक्षणों द्वारा स्वतन्त्र हैं। इस थाट के रागों में ललित अङ्ग ग्रहण करने वाले रागों का एक छोटासा वर्ग ही अलग मान लेना उचित होगा। प्रातःकाल के समय शुद्ध मध्यम एक महत्वपूर्ण स्वर हो जाता है, और यह अनेक रागों में चमकता हुआ पाया जाता है। संध्या के समय इससे भिन्न स्थिति होती है, इस समय तीव्र मध्यम का बड़ा महत्व है। आगे चल कर तुम यह समझने लगोगे कि जिन रागों में यह स्वर नहीं होता उन रागों में थोड़ा सा अभाव खटकने लगता है। 'प्रभात' में ललित अङ्ग है,' यह कहने से शायद तुम यह पूछोगे कि इस राग को 'ललित' से अलग कैसे किया जाता है। बड़े-बड़े गायक प्रभात, मांड, धानी, पीलू, बरवा आदि रागों को अधिक सम्मान नहीं देते। कोई-कोई तो इन्हें एक "धुन" मात्र ही मानते हैं, परन्तु हम तो इन सभी को राग ही मानेंगे। लक्ष्यसङ्गीतकार ने भी इसी प्रकार माने हैं और हम उसी मत के अनुयायी हैं।

प्रश्न—लक्ष्यसंगीत में 'प्रभात' राग का वर्णन किस प्रकार बताया है ?

उत्तर—सुनो:—

भैरवे मेलके प्रोक्तः प्रभाताख्यो मनीषिभिः ।
मध्यमांशः प्रभातार्हो ललितांगविभूषितः ॥
भैरवस्थरिधावत्र प्रातःकालप्रसूचकौ ।
वादित्वान्मध्यमस्यैव तद्भिन्नत्वं परिस्फुटम् ॥
प्रयोगः पञ्चमस्यात्र ललितांगनिवारकः ।
भक्तिमार्गसुप्रयुक्तो नूनं स्याद्भुक्तिमुक्तिदः ॥

इस राग को कुछ सावकाश रीति से गाया जावे तो वास्तव में विलक्षण प्रभाव उत्पन्न होता है ।

प्रश्न—यह राग सूर्योदय के कुछ पहिले ही आजकल गाया जाता होगा, क्योंकि इसमें स्वल्प रूप में तीव्र मध्यम प्रयुक्त होता है ?

उत्तर—खूब बताया । इस राग का समय अरुणोदय काल माना जाता है । दोनों मध्यम के चिन्ह खूब तुम्हारे ध्यान में रहे ।

प्रश्न—आपने संस्कृत ग्रंथों में दोनों मध्यम वाले कौन-कौन से राग भैरव थाट में बताये थे ?

उत्तर—संभवत: यह बात मैं पहिले भी बता चुका हूँ कि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अधिकतर दोनों मध्यम ग्रहण करने वाले राग ही प्राप्त नहीं होते । हां, कुछ ग्रंथों में शुद्ध मध्यम को अति तीव्रतम ग बताकर सारंग आदि राग बताये हैं, परन्तु ऐसे राग बहुत थोड़े हैं और वे मेरे बताये हुए नियम को ही सिद्ध करते हैं । कोई-कोई तो कहते हैं कि यह नियम ही उत्तर व दक्षिण पद्धति का मुख्य भेद समझा जाता है, तुम जानते ही हो कि दक्षिण की ओर ७२ थाटों की रचना है । इसमें शुद्ध म वाले और तीव्र म वाले राग भिन्न-भिन्न हैं । आजकल अपने गायक भी दक्षिण की ओर जाने लगे हैं, इसलिये वहां के गायक भी इनका थोड़ा बहुत अनुकरण करने लगे हैं ! तो भी यह ध्यान में रखने की बात है कि यह (दोनों मध्यम का एक ही राग में प्रयोग) वहां के संगीत शास्त्र की दृष्टि से मान्य नहीं है । संगीत पारिजात में सारङ्ग, सौदामिनी, कुरंग आदि राग दोनों मध्यम वाले बताये हैं । छायानट में भी अहोबल ने 'अनेकमध्यम:' ऐसा एक पद डाल रखा है । तुमने मुझसे भैरव थाट के दोनों मध्यम वाले रागों के विषय में पूछा था । इसके उत्तर में मेरा यही कथन पर्याप्त है कि इस थाट में दोनों मध्यम ग्रहण करने वाले राग संस्कृत ग्रंथों में नहीं बताये गये हैं ।

प्रश्न—आपने यह बताया था कि राग तरंगिणी ग्रंथ का शुद्ध थाट काफी है । कौन जाने शायद इस ग्रन्थकार ने दोनों मध्यम वाले राग भी बताये हों ।

उत्तर—अच्छी याद दिलाई ! तुम्हें गौड़सारंग राग बताते हुए इस ग्रंथ का 'मेघ' थाट मैंने बताया था, ठीक है न ? इस थाट में वास्तव में दोनों मध्यम वाले राग बताये हैं । यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तर भारत में यह प्रचार प्राचीन-

काल से चला आरहा है। उत्तर पद्धति के प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध न होने से हम उत्तम और विश्वस्त जानकारी देने का साहस नहीं कर सकते। दक्षिण के प्रचार का हमें अभी कुछ भी नहीं करना है।

प्रश्न—दक्षिण के गायक भैरव थाट में अधिकतर कौन से राग गाते हैं?

उत्तर—इस थाट में उधर के लोक प्रिय राग "गौल, नादरामक्री, सावेरी, परज, बहुली आदि हैं। उधर ललित, बसन्त, सौराष्ट्र, भी गाये जाते हैं, परन्तु इन रागों में वे तीव्र धैवत ग्रहण करते हैं। तीव्र धैवत ग्रहण करने वाले रागों का वर्ग अभी तक हमने अपने हाथ में नहीं लिया। इस थाट के राग आगे आयेंगे ही। दक्षिण के रागस्वरूपों से, अपने रागस्वरूपों का साम्य कहीं-कहीं नहीं हो सकेगा। दूर क्यों जाते हो, अपने इस भैरव राग को ही लो न?

यह राग हमारे यहां इतना अधिक प्रसिद्ध है कि हम यह सोचने लगते हैं कि यह राग समस्त देश में इसी प्रकार गाया जाता होगा। परन्तु हमारी यह कल्पना निश्चय ही गलत सिद्ध हो जायेगी। दक्षिण के कुछ ग्रन्थों में भैरव को तीव्र धैवत युक्त राग बताया है! यह सुनकर हमारे अतिकोमल धैवत के अभिमानी पंडित एकदम सकपका जायेंगे। यदि सोमनाथ का शुद्ध ध चौथे परदे पर स्थापित किया तो इसका भैरव भी क्या तीव्र धैवत ग्रहण करने वाला नहीं हो जाता? किन्तु इन मतभेदों में अब हम बिलकुल नहीं पड़ने वाले हैं। हमें तो अपने प्रचार को ग्रहण कर आगे बढ़ना ही पर्याप्त है। हमें अपने मत को डाँवाडोल नहीं रखना चाहिये। यह अवश्य कहा जायेगा कि मतभेदों का बिलकुल अभाव होना भी अशक्य है। आजकल रेल की सुविधा होने से देश के भिन्न-भिन्न भागों के गायकों का मेल-जोल बढ़ जाने के कारण रागस्वरूपों में परिवर्तन होना अवश्यंभावी है, और अगर ऐसा हुआ भी तो क्या हुआ? हमें तो अपना मत स्पष्ट और नियमबद्ध रूप से कहना ही उचित है। क्या अपने यहां अब हंसध्वनि, नागस्वरावली, प्रतापवराली, देशगौड़, सावेरी, मेघरंजनी, कांभोजी, नीलाम्बरी आदि राग स्थायी रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो गये हैं, ये बहुत मधुर रागरूप हैं, अतः अपने यहां भी लोगों को पसंद हैं। जिन गायकों को ये राग नहीं आते, वे गायक और उनके अनुयायी थोड़े दिनों तक नाक भौं सिकोड़ेंगे परन्तु मेरा मत है कि 'गुणसुन्दरी' आदि नाम रखकर दो तीन पुराने रागों की अजीब तोड़-मरोड़ कर मिश्रण करने की अपेक्षा, ये संस्कृत ग्रन्थोक्त सुन्दर नियमों के राग स्वरूप जो अपने आप प्राप्य हैं, अधिक पसन्द आने योग्य हैं। दक्षिण के राग भी हमारे उत्तर के गायक अच्छी प्रकार से गा लेते हैं। यह समझ में नहीं आता, जबकि दक्षिण के उपयोग में आने वाले बारह स्वर ही हम उत्तर के गायकों द्वारा गायन में प्रयोग किये हुए देखते हैं, फिर हमें दक्षिण के रागों का क्यों तिरस्कार करना चाहिये? यदि हमें दक्षिण की गायकी पसन्द न हो, तो उत्तर की गायकी ही रखें, परन्तु वर्ज्यावर्ज्य नियमों से बँधे हुए रागस्वरूपों के लिए यह दोष कैसे दिया जा सकेगा? आजकल कहीं-कहीं हमारे यहां नवीन-नवीन रागस्वरूप प्रचलित करने की प्रवृत्ति होती जा रही है। उस दिन मुझे एक मुस्लिम गायक ने "देश गौड़" राग गाकर सुनाया। मुझे वह राग भी बहुत पसन्द आया।

प्रश्न—वह राग उसने कैसा गाया था?

उत्तर—उसके गाये हुए गीत के 'बोल' तो अब मुझे याद नहीं है, परन्तु उसके स्वर इस प्रकार थे:—

सा, रे रे सा, ध़ ध़ प़ प़, ध़ ध़, नि़ सा, रे रे सा। सा रे सा, प, रे ध ध प, ध नि ध प, रे प, रे सा। ध ध प नि, सां, सां सां, रें रें सां, ध, नि सां रें, सां नि ध प, रे प प ध ध प, सां नि ध प, नि ध प रे, प रे सा।

इन स्वरों के आधार पर तुम भी एक 'सरगम' अपनी जानकारी के लिये तैयार करलो, इतना ही यथेष्ट होगा।

प्रश्न—ज्ञात होता है कि इस रागस्वरूप में गंधार और मध्यम वर्ज्य होते होंगे ?

उत्तर—हां, यह औड़व राग है। ग, म, स्वर वर्ज्य होने के कारण ऋषभ और पंचम की सङ्गति हो जावेगी। यहां तुम्हें थोड़ा सा श्री राग का आभास हो सकता है। यदि धैवत स्वर पर ज़ोर दिया और पंचम को संवादित्व दिया, तो यह श्री-अङ्ग का ही कोई रागस्वरूप दिखाई देगा। इस राग के आरोह-अवरोह ग्रंथों में "सा रे सा, प ध नी सां। सां नी ध प, सा रे सा" दिये हैं। इसमें रिषभ वक्र है, परन्तु गाते समय वक्रत्व नहीं रखा जाता।

प्रश्न—क्या हमें इस राग की एक छोटी सी "सरगम" बनाकर दे सकेंगे ?

उत्तर—देता हूँ, लो:—

देश गौड – तीव्रा

स्थाई—

रे	रे	सा	रे	रे	सा	सा	ध़	ध़	ध़	नि़	नि़	सा	सा
×			१		२		×			१		२	
रे	रे	सा	प	प	ध	प	रे	रे	प	रे	रे	सा	ऽ
×													
नि़	रे	नि़	ध़	ध़	प़	प़	ध़	सा	ऽ	रे	रे	सा	ऽ
×													
सा	रे	सा	प	प	ध	प	रे	रे	प	रे	रे	सा	सा
×													

अन्तरा—

प	प	प	ध	ध	नि	नि	सां	ऽ	सां	रें	रें	सां	ऽ
×							×						
सां	ध	ध	नि	नि	सां	ऽ	रें	रें	सां	ध	ध	प	प

रे̱	रे̱	रे̱	सां	सां	ध̱	प	ध̱	सां	ऽ	नि	ध̱	प	प
×													
प	प	ध̱	नि	ध̱	प	प	रे̱	प	प	रे̱	रे̱	सा	सा
×													

मैं तुम्हें यह स्थूल रूप बता रहा हूं। उस गायक ने अपनी चीज़ बहुत अच्छी तरह गाई थी। यदि गायक कुशल हो, तो वह अपना गायन रंजक बना सकता है। केवल उसमें गायकों के लिये आवश्यक होने वाली तीन बातों में से एक-दो तो होनी ही चाहिये।

प्रश्न—वे कौनसी बातें हैं ?

उत्तर—अपने अशिक्षित गायक हमें बताते हैं कि गायक में "आदत, जिगर और हिसाब" इनमें से कम से कम पहिली दो बातें तो होनी ही चाहिये। यह नहीं कि इन शब्दों का कोई बड़ा भारी गहन अर्थ है। उत्तम रियाज़ कर अच्छी तरह तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करना 'आदत' समझी जाती है। "जिगर" अर्थात् Musical Temperament 'अङ्ग स्वभाव' समझा जाता है। 'हिसाब' अर्थात् राग व ताल के शास्त्रीय नियम आदि का ज्ञान रहना चाहिये। यह नहीं कि ये तीनों बातें एक ही गायक में सदैव होती ही हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर उत्तम रूप से मिलना आता है, परन्तु वह बेचारा 'हिसाब' के नाम-गांव को नहीं जानता। यह तान लेना उसकी 'आदत' मानी जा सकती है। यह स्पष्टीकरण मैं तुम्हें गायकों की दृष्टि से और भाषा की दृष्टि से समझा रहा हूं। तबलची अपने तबले को ठोक-ठोककर तम्बूरे से मिला लेता है, परन्तु उसे दूसरे स्वर समझ में नहीं आते, यह उसकी 'आदत' है। अस्तु:-

राग 'देश गौड़' तुम्हारे कानों में बार-बार सुनाई पड़ने योग्य रागस्वरूप है, इसलिये इसे विस्तृत रूप से मैंने बताया है। इसमें रिषभ पर से एकदम पंचम स्वर पर उछाल मारनी पड़ती है। इसी तरह थोड़ासा श्री राग में भी हम प्रयोग करते हैं, परन्तु श्री राग के अवरोह में ग, म॑ लिये जाते हैं। ऐसे स्वरूप गायक लोग तैयार करके अपने लिये रख छोड़ते हैं। अब हम अपने राग की ओर पुनः लौट चलें।

मैं तुम्हें प्रभात राग की अधिकांश जानकारी अब दे ही चुका हूं। धीरे-धीरे आलाप के मधुर अक्षरों से, छोटे-छोटे स्वरसमुदाय गाकर बीच-बीच में 'सम' दिखाने जैसा रूप बताते हुए रागविस्तार करते जाना उचित है।

प्रश्न—आलाप के शब्द अथात् 'अनन्त हरि' के टुकड़े ही न ? हमने तो यही ध्यान में रख छोड़ा है कि कानों को अक्षर कर्कश न लगें, इतनी ही विचारधारा गायकों को पसन्द रही होगी ?

उत्तर—हां, ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं। गायक लोग कुछ अक्षरों का संग्रह कंठस्थ करके सदैव युक्ति से प्रयोग किया करते हैं। वे 'गतानुगतिक' मनोवृत्ति के होने के कारण ऐसे अक्षरों का भी बड़ा महत्व समझते हैं।

प्रश्न—यदि ऐसे कुछ निश्चित अक्षर हों, तो हम भी उन्हें लिख डालें ?

उत्तर—ऐसे रूप तुम्हें कल्पद्रुम में मिल सकते हैं। एक-दो गायकों ने यह मेरे पास से खास तौर पर मांग लिये थे, वे सभी तो मैं तुम्हें नहीं बताऊँगा, परन्तु थोड़े से बता रहा हूँ। यदि तुम चाहो तो इन्हें भी लिख लो!

"न न री न न आ न न उ न न आ न न अ द त न री त न री त न उ न न आ न न री न न री न न, ता ना तो म। अ द न तुं अ न न तुं ता न न री न न आ न त न त नुं त नुं त री न त नो म री र न ने ता न ना न त नरी न त नुं न न न न ना न न ता नुं त न न री न न, ता ना तों म। री र न नि ता न ना न न आ न न न री र न तुं इ०।

अब और अधिक बताने की आवश्यकता नहीं। समस्त खूबी इसी पर है कि तुम्हारी जीभ कैसी चलती है। यह अनुभवपूर्ण तथ्य है कि निरे 'आ' कार की तानें उच्चारण करने में कुछ कठिनाई पड़ती है, इसलिये गायक लोग इन अक्षरों का प्रयोग करते हैं। यदि कोई कुछ अक्षर बदल ले तो तुम्हें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। आलाप में प्रयुक्त होने वाले अक्षर किसी परिश्रमी गायक द्वारा एक ध्रुपद में इस प्रकार जमाये हुए भी देखे थे:—

ध्रुपद—चौताल, यमन

त न री इ ना ता न री ई न न उ अ न तु म तु म अ द न तु म अ द न तुं त द न तुं री न र ना न र न न तुं री न र ना न रा न न न त न न न इ न न उ न न त न र ना न त ना न त नुं त नुं।

आलाप करते हुए एक तरह की 'लय' उत्पन्न करके इन अक्षरों को राग की रूपरेखा पर गाने की आदत डालनी चाहिये। यह मैं किस प्रकार करता हूं, इसे देखो तो यह कृत्य सरलता से सध जायगा। श्रोता तुम्हारे "अ न न न त न न न" की ओर नहीं देखते, वे तो राग के माधुर्य की ओर देखते हैं। समस्त खूबी यही है कि तुम्हारी जीभ अटकनी नहीं चाहिये और क्रम से लय बढ़ती जानी चाहिये। उदयपुर के गायक इस आलाप के विषय में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। गायकों में भी यह मान्यता है कि ऐसे लोग इस देश में बहुत थोड़े निकलेंगे। तुम भी यदि उन तन्तकारों के निकट जा पाओ और वहां जोड़ बजाते हुए वे एक प्रकार की जो लय उत्पन्न करते हैं, उसे देखो, तो तुम्हारे ध्यान में यह बात अच्छी तरह आ जावेगी। अक्षरों की उलट पुलट हो जावे अथवा दो-एक अक्षर कम अधिक हो जावें तो इसका कोई विधि निषेध नहीं है। परिणाम उत्तम होना ही सब कुछ है। यह मैं कह चुका हूँ कि आलाप को ताल की आवश्यकता नहीं होती, और अब मैं एक तरह की लय उत्पन्न करने की बात कह रहा हूँ, इससे कोई विरोधाभास नहीं समझना चाहिये। हम जिन अक्षरों का उच्चारण करते हैं, उन्हें 'काल' की आवश्यकता तो है ही। ये ही चार-चार, तीन-तीन के समूह के रूप में उच्चारित किये गये तो एक प्रकार की लय उत्पन्न हो जाती है; यह सहज ही समझ में आ जावेगा। यह वर्णन कुछ कठिन ज्ञात होगा, परन्तु यह कृत्य प्रत्यक्ष रूप में बिल्कुल सरल है। 'न न न न न' इस प्रकार एक से अक्षर उच्चारित करना शोभनीय नहीं होता, अतः इन्हें गायक बदल डालते हैं और उनके विभाग बना लेते हैं।

प्रश्न—'प्रभात' का आरम्भ किस प्रकार से करना चाहिये या किस प्रकार किया जाता है, यह बात यदि स्पष्ट रूप से आप कह सुनायें तो अच्छा होगा ?

उत्तर—देखो ! कहता हूं । 'ग म ग रे, सा, सा धृ, नि़ सा, सा रे ग, रे ग म, म म, रे ग म म, ग म ग रे सा, धृ नि़ सा।'

ललित का अङ्ग मध्य में इस प्रकार लाया जाता है:—'म म, म ग म, ध ध प, म ग, रे, ग, म मं, ग म ग, रे, सा,' आगे अन्तरा इस तरह लेना चाहिये—प, प, ध ध, नि सां, सां, ध नि सां, रें रें, सां नि ध प। इस प्रकार के स्वर गाकर पुनः स्थायी का ललित अङ्ग दाखिल किया जावे और राग पूर्ण किया जावे। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि जब तक अन्तरे में भैरव अङ्ग नहीं आयेगा, तब तक श्रोताओं को ललित और कालिंगड़ा का मिश्रण दिखाई देगा। कोई-कोई यहां कालिंगड़ा की जगह गौरी का योग मानते हैं।

प्रश्न—क्यों भला ? मालूम होता है कि गौरी में और कालिंगड़ा में कुछ साम्य है ?

उत्तर—कोई-कोई गायक तो गौरी में कालिंगड़ा का अङ्ग ही मानते हैं, परन्तु यह चर्चा गौरी राग का विचार करते समय आयेगी। 'प्रभात' के गीत तुम्हें अनेक बार 'दादरा' ताल में प्राप्त होंगे। यह भी कह सकते हो कि ये गीत इस राग में शोभा भी देते हैं। अब इस राग की पकड़ 'ग म मं, ग म ग रे, सा, नि़ नि़ सा' ध्यान में जमा लो, इतना काफी है। यह सत्य है कि अधिकतर श्रोता इस स्वरसमूह के सम्मुख आते ही और 'नि़ नि़ सा' स्वर कानों में पड़ते ही, 'प्रभात' राग पहिचान सकते हैं। 'प्रभात' के लक्षण अन्य आधुनिक ग्रन्थों में इस प्रकार बताये गये हैं:—

संस्थाने किल भैरवस्य कथितो रागः प्रभाताभिधः ।
संपूर्णस्वरमंडितश्च ललितांगेन प्रयुक्तः सदा ॥
वादी मध्यम ईरितो मधुरसंवादी च षड्जस्वरो ।
गायंति ध्रुवमेनमत्र सुधियः प्रत्यूषकाले मुदा ॥

—कल्पद्रुमांकुरे

अस्मिन्भैरवसंस्थाने प्रभातो वादिमध्यमः ।
षड्जसंवाद्यनुगतो ललितांगेन गीयते ॥

—रागचन्द्रिकायाम्

प्रश्न—हम समझते हैं कि अब हमें इस राग के स्वरूप की यथेष्ट कल्पना होती जा रही है। बस, एक बार इसे स्वरों में गाकर और सुना दीजिये ?

उत्तर—ठीक है। सुनो:—

सरगम—झपताल

स्थायी—

ग ×	म	ग	रे	सा	नि़	सा	ध़	नि़	सा
ग ×	म	ध	ध	प	म	ग	रे	ग	म
म ×	ग	म	ध	नि	सां	ऽ	ध	नि	सां
सां ×	नि	ध	प	म	ग	रे	ग	म	मं

अन्तरा—

म ×	प	प	ध	ध	नि	नि	सां	नि	सां
ध ×	ध	ध	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प
म ×	म	ग	म	म	ध	ध	प	म	म
सां ×	नि	ध	प	म	ग	रे	ग	म	मं

साधारण चलन—

म ग रे, सा, ध़ ध़ नि़ सा, रे सा ग म, रे ग ग म म मं, ग म ग रे, सा, सा रे सा नि़ सा ग म, रे ग म, ध ध प म, ग म, रे ग म मं, ग म ग रे सा, सा रे सा ध़ ध़ नि़ ध़ प़, ध़ ध़ नि़ सा, रे रे, सा, ग म ग रे, सा, ग म मं ग म, रे ग म प, म ग रे सा, नि़ सा ग म प प, ध ध प म, रे ग म मं, ग म ग रे, सा, ध़ नि़ सा, ग म प म, ग, म ग रे सा, प प ध ध नि नि सां, ध नि सां, रें रें सां, नि ध प, म, म मं म, ग रे ग म, ध प म, रे ग म मं, ग म ग रे सा, नि़, सा।

. इस राग को भैरव, रामकली, कालिंगड़ा, गौरी, ललित, आदि रागों से बचा लेने में ही संपूर्ण विशेषता है। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि इस राग में उक्त समस्त रागों की छाया आती है, फिर भी यह स्वतन्त्र रागस्वरूप है।

प्रश्न—अब हम इस राग को अच्छी तरह समझ गये। अब अगला राग लीजिये!

उत्तर—ठीक है। अब हम 'कालिंगड़ा' राग लें। भैरव थाट के जन्यरागों में 'कालिंगड़ा' बहुत सरल और साधारण रागस्वरूप समझा जाता है।, यह मैं कह ही चुका हूँ कि कुछ लोग इसे आश्रयराग मानने की सिफारिश भी करते हैं; किन्तु यह मत हमें क्यों स्वीकार नहीं है, यह बात भी मैं तुम्हें बता चुका हूं। अस्तु, यह राग सरल और सुविधापूर्ण होने से अनेक लोगों को आता है, तो भी इसे शुद्ध और रंजक रूप से गाना कुशलता का काम है।

प्रश्न—सरल और सुविधापूर्ण होने पर फिर कठिनाई कहां रह जाती है?

उत्तर—मैं कठिन नहीं कह रहा हूँ। प्रचार में प्रायः अपने गायक कालिंगड़ा और परज का मिश्रण कर जाते हैं। इनमें किसी को यह नहीं ज्ञात होता कि हम मिश्रण कर रहे हैं। मेरे गुरु के मतानुसार कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लिया जाता।

प्रश्न—तब इसका गायन समय प्रातःकाल माना गया होगा?

उत्तर—हाँ, तुमने ठीक तर्क किया।

प्रश्न—प्रचार में इस राग का गायन समय कौनसा माना जाता है?

उत्तर—रात्रि के उत्तर भाग में दो-तीन बजे कालिंगड़ा गाया हुआ मैंने अनेक बार सुना है, परन्तु इसमें गायकों द्वारा दोनों मध्यम का प्रयोग करते हुए देखा है। मैं यह नहीं कहूंगा कि यह स्वरूप बुरा ही है। 'परज' में तीव्र मं होता है अतः इस प्रकार दोनों मध्यम ग्रहण करने वाले रागस्वरूप को 'परज-कालिंगड़ा' जैसा मिश्र नाम देना उचित होगा। यदि एक शुद्धमध्यम ही लेकर राग गाया हो तो उसे केवल कालिंगड़ा नाम देना और गायन समय प्रातःकाल मानना उत्तम पक्ष दिखाई देता है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि प्रचार में कालिंगड़ा का समय रात्रि के दो-तीन बजे माना जाता है। लक्ष्य-सङ्गीतकार ने भी इसी प्रकार स्पष्ट कहा है। 'परज' का योग कालिङ्गड़ा से सदैव होता है यह भी लक्ष्य सङ्गीतकार ने बताया है। जैसेः—

लक्ष्याध्वनि दृश्यतेऽसौ कलिंगेन विमिश्रितः।
मिश्रणं तन्न रक्तिघ्नं निश्चयेन सतां मते॥

प्रश्न—तीव्र मध्यम रहित कालिङ्गड़ा भी भैरव, रामकली, आदि प्रातःकालीन रागों जैसा थोड़ा बहुत दिखाई देगा।

उत्तर—स्पष्ट ही है। तो भी भैरव में रे॒, ध॒ स्वर एक विशिष्ट प्रकार से आंदोलन पाते हैं। कालिङ्गड़ा में ऐसा नहीं होता। इसलिये यह राग स्पष्ट रूप से भिन्न पहिचाना जा सकता है।

प्रश्न—कालिङ्गड़ा को प्रायः किस प्रकार आरम्भ करते हैं?

उत्तर—इसका उठाव कभी-कभी 'म प, धु प, म ग, म म, प प, धु धु, पधु, म प,' इस प्रकार होता है। कोई-कोई इसे 'नि़, सा रे॒ ग, म म, धु प म ग, म ग रे॒ सा' इस प्रकार भी लेते हैं। मेरे गुरु ने मुझे बताया है कि भैरव के अवरोह में जैसे हम कभी-कभी कोमल निषाद का स्पर्श दिखाते हैं, वैसा कालिंगड़ा में नहीं करना चाहिये, और जहाँ तहाँ पंचम स्वर चमकता हुआ रखना चाहिये, इससे रागभिन्नता अच्छी तरह दीख पड़ेगी। यह भी एक प्रमुख तत्व है कि इसमें रे॒ धु स्वर आन्दोलित नहीं होते। रामकली में तो तुम्हें दोनों म और दोनों निषाद दिखाई देते हैं, अतः तुम रामकली से कलिंगड़ा को सहज ही अलग कर सकते हो। कालिङ्गड़ा में रे॒ धु, बढ़ाकर भैरव में जाते हुए तुम अनेक गायकों को देखोगे, क्योंकि वे इस मर्म को ठीक रूप से समझे हुए नहीं होते। कालिङ्गड़ा एक उत्तरांग प्रधान राग है, अतः इसके गायन में इस अङ्ग को सदैव प्रधानता देने की सावधानी रखनी चाहिये। यदि ऐसा न हुआ तो तत्काल ही तुम एक प्रकार की गौरी श्रोताओं के आगे प्रस्तुत करने लगोगे।

प्रश्न – ऐसा किस जगह होना सम्भव है ?

उत्तर—देखो बताता हूँ। 'नि़, सा, रे॒ ग, रे॒ म ग, रे॒, सा, नि़ धु़, म़ प़, नि़, सा रे॒, सा म, रे॒ ग, रे॒ सा' इस प्रकार का स्वरसमूह तुमने लिया कि तत्काल गौरी दिखाई देगी।

प्रश्न—कालिङ्गड़ा राग सुविधाजनक और सरल होने के कारण अपने गायक सदैव गाते रहते होंगे ?

उत्तर—नहीं, यह राग सदैव नहीं गाया जाता। गायक इसे एक क्षुद्र प्रकार मानते हैं। वास्तव में तो इस राग को निम्न कोटि का समझने का कोई कारण नहीं है। भैरव, रामकली और विभास के समय में ही अच्छी रीति से यदि कालिंगड़ा गाया जावे तो मैं समझता हूँ कि बहुत मनोहर हो जावेगा। यह सत्य है कि भैरव की अपेक्षा कालिंगड़ा में गंभीरता कम है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह भी एक मधुर राग है। यदि कालिङ्गड़ा को विलंबित लय में गाया जावे तो भैरव में पहुँचने का अधिक भय रहता है। तथापि जिसे अच्छी तरह पंचम का वादित्व सँभालना आता हो वह चाहे तो इसे विलंबित लय में शोभनीय बना सकता है।

प्रश्न—कालिंगड़ा के विस्तार में हमें कौन से स्वरसमुदाय अधिक दिखाई पड़ेंगे ?

उत्तर—तुम इन स्वरसमुदायों को ध्यान में रखलो:—

"नि़, सा रे॒ ग, ग म ग, धु धु प म ग, म ग रे॒ सा; प धु नि धु प, ग म प धु म प, म ग; नि़ सा ग म, धु धु प धु म प धु प म ग, म ग रे॒ सा।

प्रश्न—इस राग का अन्तरा कैसे शुरू किया जाता है ?

उत्तर—'प धु, प धु, नि नि सां, धु नि सां रें॒ सां नि धु प, ग म प धु, नि सां नि धु प, ग म प धु, प म ग' इस प्रकार से अधिकतर शुरू किया जाता है। कालिङ्गड़ा में प्रायः ख्याल, ध्रुपद नहीं गाये जाते। यथा सम्भव बड़ी-बड़ी महफिलों में कालिङ्गड़ा, झिंझोटी, मांड, पीलू आदि रागों की फ़रमाइश नहीं की जाती।

प्रश्न—क्यों भला ? ये राग तो बड़े मधुर हैं ?

उत्तर—शायद श्रोताओं को यह भय रहता होगा कि गायक हमारा मूल्यांकन कम करेंगे। यह बात सत्य है कि यदि किसी ने इस प्रकार की फरमाइश की तो गायक मुँह टेढ़ा बांका कर "अच्छा साहेब" बड़े कष्ट से कहकर आस-पास के श्रोताओं को यह आभास करा देते हैं कि फरमाइश करने वाला बेचारा बिलकुल दया का पात्र और अल्पज्ञ है और यह फरमाइश उसकी प्रतिष्ठा एवं स्तर के लिये शोभनीय नहीं है। ऐसे प्रसंग अनेक बार मैं देख चुका हूँ। अनेक बार तो ऐसे मुँह बिचकाने वाले गायक तृतीय श्रेणी के भी नहीं होते! फिर भी उन्हें कालिंगड़ा की फरमाइश हलकी जान पड़ती है। मुझे स्मरण है कि मैंने अपने गुरु से एक बार प्रातःकाल के समय यह राग गाने की प्रार्थना की थी। उन्होंने पंचम को वादी बनाकर इस राग को इतना सुन्दर गाया कि उस दिन की याद मुझे आगे कितने ही महीनों तक रही थी।

"ध॒, प, ध॒ म प, म ग, म प, ध॒ म, ग म रे॒ ग, प ध॒ प, ग म ग, नि सां नि ध॒ प, म प, ध॒ प म ग, नि़, सा रे॒ ग, म ध॒ प म ग, प प, ध॒ प, म प, नि ध॒ प, ध॒ म प, म ग, ग म, प ध॒ प म ग, म ग रे॒ सा, नि़ सा ग म, प प, सां रें॒ सां नि ध॒ प, म प, ध॒ प म ग।

आदि स्वरसमुदाय उन्होंने बहुत ही युक्ति से गाकर अन्य समकालीन रागों से इसे भिन्न कर दिखाया। उन्हें मेरी फरमाइश से बिलकुल रोष नहीं हुआ।

प्रश्न—तो फिर मजलिस में फरमाइश करना कुछ जोखम का ही कार्य कहना पड़ेगा?

उत्तर—एक तरह से यह सत्य है। हम लोग गायन की बैठकों में जाते हैं, वहां प्रायः तीन-चार प्रकार के श्रोता हमें दिखाई पड़ने संभव हैं। १-मार्मिक २-अर्द्ध शिक्षित समझदार ३-भोले परन्तु संगीत प्रेमी इत्यादि। जो अर्द्ध शिक्षित समझदार होते हैं, वे यद्यपि 'वाहवा' देने में बहुत भाग लेते हैं, तथापि वे सहसा फरमाइश करने के झंझट में नहीं पड़ा करते।

प्रश्न—यह क्यों ?

उत्तर—उनकी स्थिति अपने आप ही कुछ विलक्षण सी हुआ करती है। 'वाहवा' करने की आदत होने से उनसे चुप तो रहा नहीं जाता। परन्तु उनके वाहवाह की झड़ी लगाने से अन्य श्रोताओं के हृदय में उनके सम्बन्ध में सङ्गीतज्ञ होने का बड़ा विश्वास बना हुआ होता है। इसमें भी वे बतायें वही राग का नाम, वे कहें उतना ही गायक का मूल्य, वे बतायें वहीं गायन थम जाना, आदि बातों तक उनका महत्व बढ़ा हुआ होता है। परन्तु कुछ-कुछ कठिनाई उन्हें भी आती हैं।

प्रश्न—कैसी ?

उत्तर—मान लो किसी गायक ने कोई ऐसा राग गाया, जिसे वे लोग नहीं पहिचान सके और यही बात बार-बार होने लगे तो उस राग का नाम, उसके नियम आदि वे गायक से कैसे पूछ सकते हैं ?

प्रश्न—क्यों, ऐसा करने से क्या गायक रुष्ट हो जाता है ?

उत्तर—गायक के रुष्ट होने की बात तो अलग ही रहती है। अभी अन्य श्रोता क्या कहेंगे ? "अरे रे ! क्या ये भी हमारे जैसे ही हैं ? जिस प्रकार यमन, भूप, केदार, बिहाग, दरबारी, मालकोष, भैरवी आदि के आगे के रागों में हम गड़बड़ा जाते और ठप्प हो जाते हैं, इसी प्रकार क्या इनकी भी स्थिति है ?" क्या इस प्रकार उन्हें महसूस नहीं होता होगा ?

प्रश्न—फिर ?

उत्तर—ऐसे व्यक्ति चालाक होने के कारण यहां कोई युक्ति निकाल लेते हैं। वे किसी पास में बैठे हुए व्यक्ति के नाम से गायक से राग का नाम पूछते हैं। परन्तु तुम इस प्रकार कभी मत करना। यदि तुम्हें कोई कठिनाई उत्पन्न होती हो तो गायन समाप्त होने पर गायक से प्रसन्नतापूर्वक अपनी शंका का समाधान कर लेना चाहिये। यह कहने में लज्जित होने की आवश्यकता नहीं कि अमुक बात की जानकारी मुझे नहीं है। यद्यपि मुझे बड़े समझदारों की श्रेणी में प्रविष्ट होने की बिलकुल इच्छा नहीं थी, फिर भी मैं एक बार अजीब कठिनाई में फँस गया था। यह मजेदार बात तुम्हें अनुभव से लाभ लेने के लिये सुनाता हूँ।

एक बार मैं एक गायन की महफिल में गया था। गायक 'काफी' राग का एक गीत गा रहा था। वह अपने राग में गांधार व निषाद स्वर इस प्रकार लगाने लगा कि मुझे उसकी चीज किसी कानड़ा के प्रकार जैसी जान पड़ी। मेरे पास बैठे हुए सज्जन ने मुझसे राग का नाम बताने का तकाज़ा करना आरम्भ किया, किन्तु मुझसे राग का नाम निश्चित नहीं हो रहा था। उस गायक के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि भी मैं सुन चुका था कि वे कभी-कभी प्राचीन रागों के स्वरों को उलट-पलट कर अथवा एक दो रागों का मिश्रण कर नवीन राग पैदा कर लिया करते हैं। अतः राग निश्चय करने की मेरी कठिनाई और भी बढ़ गई थी।

प्रश्न—किन्तु आपने यह क्यों नहीं कह दिया कि भाई ! मुझे इस राग के नाम का निश्चय नहीं हो रहा है।

उत्तर—यह तो मैं दो बार कह चुका था। परन्तु या तो ऐसे उत्तर सुनने की उसे आदत न रही हो अथवा कोई अन्य कारण हो, वह मुझे छोड़ ही नहीं रहा था। अन्त में उससे मैंने कहा कि गांधार स्वर के प्रयोग से मुझे तो यह राग कानड़ा का कोई प्रकार जान पड़ता है।

प्रश्न—फिर उसने क्या कहा ?

उत्तर—उसने मेरा उत्तर कुछ देर तक स्वीकार कर लिया, परन्तु थोड़ी देर बाद उसने वही प्रश्न वहां उपस्थित एक अन्य समझदार व्यक्ति से मेरी ग़ैर जानकारी में, परन्तु मेरे एक मित्र के सम्मुख पूछ लिया।

प्रश्न—यह तो व्यर्थ का हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति जान पड़े।

उत्तर—ऐसे लोग भी कभी-कभी श्रोतृ-समूह में हम लोगों को दिखाई पड़ते रहते हैं। अस्तु, वे समझदार बड़े धूर्त थे। उन्होंने फिर गाना समाप्त होने पर यही प्रश्न स्वयं खां साहेब से किया कि आपके अमुक बोल की चीज़ का राग ये पूछ रहे हैं।

उत्तर—इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। जब गायक अधिक ऐंठ में आजाते हैं, तब कुछ देर के लिये अपना अस्तित्व भूलकर इसी प्रकार कुछ-कुछ बर्राने लगते हैं। आगे चलकर सम्भवतः तुम्हें भी इस तरह का अनुभव होगा। मैं समझता हूँ कि जब तक यह विद्या अपने सुशिक्षित व्यक्तियों के हाथों में न आ जावे, तब तक ऐसी बातें दिखाई पड़ेंगी। तो भी ऐसे गायकों से हमें झगड़ा करने का कष्ट नहीं उठाना चाहिये। कुछ समय में वे अपने आप शांत हो जाते हैं। 'सा से सा' मिलाना अर्थात् उस गायक के सम्मुख बैठकर गाने का साहस करना, इतना ही अर्थ समझना चाहिये। गायक लोगों को यह भ्रम होता है कि शास्त्रों का विचार करने वाले सङ्गीत (क्रियात्मक सङ्गीत) जानते ही नहीं। मैं समझता हूँ कि अब थोड़े ही दिनों में उनका भ्रम दूर हो जावेगा। बादशाही युग में, उनके विचार के अनुसार स्थिति चाहे जैसी रही हो, परन्तु यह दिखाई नहीं पड़ता कि अब आजकल के हमारे विद्वान भी इन गायकों से इस प्रकार डरेंगे। उन्हें तो अब सुशिक्षित समाज का ही बहुत सहारा है। गायक से निरर्थक शास्त्र-चर्चा करनी भी नहीं चाहिये।

प्रश्न—फिर आपने उस गायक से क्या कहा?

उत्तर—मैंने शांति पूर्वक कहा:—खां साहेब! आप व्यर्थ ही रुष्ट हो रहे हैं। आपको पढ़ना-लिखना नहीं आता, यह बात जान कर भी भला कौन आपसे शास्त्र-चर्चा करने को तैयार होगा? इस पर उस गायक ने कहा "मैं एक ऐसी तान मारूँगा कि पण्डित अपनी 'पोथी-वोथी' छोड़कर भाग जायगा।"

प्रश्न—मालूम होता है, यह तो बड़ा ही उन्मत्त व्यक्ति था?

उत्तर—अशिक्षित गायकों की व्यर्थ प्रशंसा होती रहने से उनकी वृत्ति इसी प्रकार की हो जाती है। अस्तु, आगे मैंने धीरे-धीरे उसे शांत किया और उससे इस प्रकार बातें की।

मैं—खां साहेब! आप भैरव में जो ऋषभ और धैवत स्वर लगाते हैं, वे तीव्र लेते हैं या कोमल?

खाँ—वे तो हम कोमल ही लेते हैं। गांधार और निषाद स्वर अवश्य तीव्र लेते हैं।

मैं—फिर भैरव और कालिंगड़ा में भिन्नता किस प्रकार रखते हैं?

उत्तर—यह क्या कहते हो? भैरव में रि. ध. आंदोलित लगते हैं, इस प्रकार कालिंगड़ा में नहीं लगाये जाते। धैवत तो भैरव की 'जान' ही है।

मैं—भैरव का गायन समय कौनसा है?

उत्तर—वह प्रातःकाल का राग है, यह बात प्रसिद्ध ही है।

मैं—तो फिर खां साहेब! आप व्यर्थ ही ग्रन्थों को बदनाम करते हैं। सच पूछो तो आप स्वयं भी बिलकुल ग्रन्थों के अनुसार ही गाते हैं। यह एक शास्त्र का श्लोक देखो—

"रागादिर्भैरवाख्यो मृदुऋषभमधस्तीव्रगांधारनिः स्यात् ।
वाद्यस्मिन् धैवतोसावृषभ इह तु संवादिरूपोऽभिगीतः ॥

इस श्लोक की प्रत्येक बात का आप प्रत्यक्ष उपयोग करते हैं । यह आश्चर्य है कि ऐसा होने पर भी आप ग्रन्थों को बुरा कहते हैं । मैं तो कहूँगा कि आप स्वयं 'शास्त्रप्रमाण' से गाते हैं । संभवतः ग्रन्थों में क्या कहा गया है यह बात किसी ने आपको नहीं समझाई, इसी से आपको गलतफहमी हो गई होगी । जयपुर के बहराम खां के लिये तो आप जैसे गायकों में बड़ा सम्मान है । उन्हें तो ग्रंथ बहुत ही पसन्द आते थे । वे एक हिन्दू पंडित के ही शिष्य थे और उन्हीं बहराम खां के नाम से आज आपके गायक लोग हमें बड़ी-बड़ी बातें सुनाया करते हैं । अब कालक्रम से यदि आपका गायन ग्रन्थों से भिन्न हो गया हो तो भी सचमुच यह न्याय नहीं कहा जा सकता कि इससे आप ग्रन्थ पढ़ने वालों से द्वेष करें । आप स्वयं ग्रन्थों के नियम तोड़-मरोड़ दें और फिर ग्रंथकारों को गाली देने लगें, यह कैसे हो सकेगा ? यदि किसी ने आपको ग्रन्थोक्त नियमों से कोई राग अच्छी तरह गाकर दिखा दिया तो भला फिर आपकी स्थिति कैसी हो जावेगी ? खैर ग्रन्थों को छोड़दो, परन्तु क्या आप यह विश्वास दिला सकते हैं कि आज जो-जो राग आप गाते हैं, वे समस्त देश में आपके समान ही गाये जाते हैं ? यह आप जानते ही हैं कि गायक लोगों के अनेक भिन्न-भिन्न घराने माने जाते हैं । क्या जयपुर के गायकों के संपूर्ण राग, ग्वालियर के गायकों से मिल सकेंगे ? क्या पंजाब के गायकों के राग आपके गायकों से मिल सकेंगे ? इतना ही क्यों ? पटमंजरी, पटदीपकी, लच्छासाख मंगल-भैरव, नंदभैरव, अहीरभैरव, भीलफ, हिजाज, जंगला, भटियार, भँखार, कौंसी, हुसैनी, देवसाख, मालगुञ्ज, चैती, दरबारीतोड़ी, बहादुरीतोड़ी, बिलासखानीतोड़ी, छाया-तोड़ी, आदि बीस राग ही उदाहरण के लिये लेता हूं । ये सभी राग मुझे मेरे गुरु ने बताये हैं और शायद आपको भी आते होंगे । यदि अब इन्हें हम मिलाकर देखें तो क्या आपके नियम और मेरे नियमों में कहीं-कहीं अन्तर होना सम्भव नहीं है ? और यदि ऐसा हुआ और मैंने आपके रागों को ग़लत बताया, तो भला आपको कैसा लगेगा ? हां, मेरा यह भी मत है कि सुशिक्षितों का अशिक्षितों को गाली देना बिलकुल अनुचित है । अपने ग्रन्थकार उच्चकोटि के गायक-वादक भी रहे होंगे । यह कहना तो मूर्खता ही होगी कि उनके नियम तुमसे नहीं सध सके, इसलिये वे मूर्ख थे और तुम सयाने हो । उन ग्रन्थकारों ने अपने नियम अच्छी तरह लिखकर रख छोड़े तो क्या यह उन्होंने कोई पाप किया ?

प्रश्न—फिर ?

उत्तर—फिर क्या, वे गायक महाशय तत्काल ही ठंडे पड़ गये और कहने लगे, "नहीं, नहीं, पंडितजी ! विद्वान लोगों को मैं बुरा कैसे कहूँगा ? ग्रंथों को भी मैं 'झूंठ' नहीं कह सकता । ग्रंथकर्त्ता भी तो हमारे ही पूर्वज हैं । हम भी कौन हैं ? मूल रूप में तो हम भी हिन्दू ही हैं । हमारे बाप-दादा सदैव ग्रन्थों को मानते आये हैं । समस्त ग्रंथों में "नाद बिरह्म" ही बताया है । 'नाद सागर अपार सरसती न पायो पार' आदि बातें पंडितों ने जो शास्त्रों में 'लिखकर' रखदी हैं, वे सत्य हैं । हमारे पुराने घरों में अभी भी कहीं-कहीं कुछ ग्रन्थ छिपे हुए निकल सकते हैं ।"

यह घटना मैंने तुम्हें अपनी प्रशंसा के लिये नहीं, अपितु इसलिये सुनाई है कि यदि इस प्रकार के प्रसंग तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हों तो वहां तुम्हें किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिये, यह बात तुम समझ सको। अब कालिङ्गड़ा की ओर मैं पुनः चलता हूँ।

कालिंगड़ा में हमें सदैव क्षुद्रगीत सुनने को मिलेंगे, यह बात मैं बता ही चुका हूँ। यथा सम्भव इस राग में गायक मींड़ का काम नहीं करते। इस राग के वादी स्वर के विषय में गायकों में मतभेद पाया जाता है। कोई-कोई वादी स्वर गांधार-मानने के लिये कहते हैं और कोई-कोई मध्यम स्वर को वादी मानने की बात सुझाते हैं। मध्य रात्रि के उपरांत गांधार को वादी बनाना मुझे भी पसन्द नहीं। यह नहीं कि यदि "नि़, सा रे॒ ग, ग म प ध॒ प, म ग" इस प्रकार का टुकड़ा बार-बार आता हो तो इतने से वादित्व गांधार को ही देना चाहिये। मेरे गुरु द्वारा बताया हुआ पंचम स्वर का वादित्व यदि तुम्हें स्वीकार हो तो मेरे मत से चल सकेगा। यदि रात्रि के बीतते-बीतते कालिंगड़ा गाना हो तो परज और कालिंगड़ा का मिश्रण कर गाना अच्छा दिखाई देगा। और गायक लोग प्रायः इसी प्रकार करते भी हैं। जो लोग कालिंगड़ा में मध्यम को बढ़ाते हैं, वे उस स्वर को इस प्रकार आगे लाया करते हैं—स्वर पंक्ति—

"नि़, सा रे॒ ग म, ग म, प ध॒ प म, रे॒ ग, म ग रे॒ सा; ध॒ प ध॒ प म ग, रे॒ ग म, ग म ध॒ प म, रे॒ ग, नि़ सा, ग म प, ध॒ ध॒, नि ध॒ प, म, प ध॒ प म ग, रे॒ ग म ग रे॒ सा, नि़, सा रे॒ ग म"।

प्रश्न—यदि कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम प्रयुक्त करना हो, तो यह स्वर कहां पर और किस प्रकार लिया जावेगा? क्या नि़ सा रे॒ ग, मं प, ध॒ नि सां" इस प्रकार आरोह हो सकेगा?

उत्तर—तुमने यह प्रश्न बड़ा अच्छा पूछ लिया। कालिंगड़ा में ऐसा आरोह नहीं होता। यहां तो कोमल मध्यम ही लेना पड़ेगा। "नि़ सा ग मं प, ध॒ नि सां" इस प्रकार के स्वर गाये कि श्रोताओं को किसी सायंकालीन राग का आभास हो जावेगा। कालिंगड़ा में तीव्र मं बहुत थोड़ा प्रयुक्त होता है। प्रायः यह स्वर "मं ध॒ मं ध॒ नि नि सां" इस प्रकार अन्तरा आरम्भ करते हुए उपयोग में लिया जाता है और यहीं परज का मिश्रण होता है। तुम्हें तो कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम न लगाने की आदत बना लेनी चाहिए। सम्पूर्ण खूबी उत्तरांग में दिखाने की सावधानी रखनी चाहिये।

"ध॒ नि सां नि ध॒ प, नि ध॒ प, ध॒ प, ग म ग, ध॒ ध॒, ग म ग" यह स्वरसमुदाय इस राग में बार-बार दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न—यह अब हमारे ध्यान में आगया। 'कालिङ्गड़ा' नाम कानों को थोड़ा विलक्षण जान पड़ता है। है न ऐसा? क्या यह बताया जा सकता है कि यह नाम कहां से आया होगा?

उत्तर—इस नाम में 'ड़' अक्षर सचमुच कुछ अपरिचित सा जान पड़ता है। 'कलिङ्ग तो अवश्य ही एक प्राचीन नाम है। हमारे देश के प्राचीन इतिहास में यह एक पूर्व की ओर के प्रदेश का नाम बताया है। Early History नामक ग्रन्थ में एक जगह इस प्रकार कहा गया है—

"In the twelfth year of his reign or the ninth as reckoned from the coronation, Ashoka embarked upon the one aggressive war of his life and rounded off his dominion by the conquest of the kingdom of Kalinga, the strip of territory extending along the coast of the Bay of Bengal from the Mahanadi to the Godavari."

संभवत: इस 'कलिंग' देश की ओर से ही यह कालिंगड़ा राग आया होगा। 'ड़ा' अक्षर आगे भी तुम्हें कुछ रागनामों में जोड़ा हुआ दिखाई देगा। हालांकि 'कलिंग' नाम प्राचीन है तो भी यह समझना चाहिये कि 'कालिंगड़ा' समस्त प्राचीन ग्रन्थों में बताया गया है। एक 'रागमाला' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार बताया है:—

सारंगी गुर्जरी तोड़ो कामोदी पटमंजरी।
रागांगना इमा:पंच दीपकस्यैव वल्लभाः ॥
कालिंगः कुंतलो रामः कमलः कुसुमस्तथा।
पंचमो लाहुहेमालौ दीपकस्याष्ट पुत्रकाः ॥

इन कोरे रागनामों से तुम्हें विशेष सहायता प्राप्त होनी संभव नहीं है; क्योंकि इन सभो रागों के लक्षण प्राप्त करने की तुम्हारी आवश्यकता बनी ही रहेगी। एक दूसरी 'राग माला' में इस प्रकार बताया गया है:—

कामोदो पटमंजरी च परजस्तोडी तथा गुर्जरी।
सारंगी वरबुद्धयोऽपि जगतो गायंति पंचांगनाः ॥
अप्यष्टौ कमलाव्हयोऽथ कुसुमो रामः सुतः कुंतलः।
कालिंगो बहुलोऽपि पंचम इतो हेमालको दीपके ॥

रागलक्षणे:—

गायकप्रियमेलाच्च जातः कलिंगडस्तथा।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च मवर्जं षाडवं तथा।
सा रे ग प ध सां। सां नि ध प ग रे सा ॥

हम कालिंगड़ा को भैरव थाट में मानते हैं, किन्तु यहां धैवत स्वर तीव्र बताया गया है और भी एक मजेदार वर्णन सुनो:—

प्रायः शंसति गुर्जरीं मृगवधुर्वेलावलं हारिणो।
हंसो वै ललितं च सारसगणो ब्रूते निशं सोरटीम् ॥
कुंतं चित्रगलः कलंकषरवः कालिंगरागं तथा।
कीरः खोखररागमेव बहुलं हेमाद्रिजो मूषकः।

अपने ग्रन्थकारों का ऐसा उद्योग देखकर कभी-कभी बड़ा मनोरंजन होता है।

रागमालायाम्:—

तांबूलवक्त्रो धृतखड्गहस्तश्चित्रांबरः कुंकुमलिप्तभालः ।
कृपाणकोपेतकटिश्च गौरः सर्वप्रियोऽप्यस्ति कलिंगरागः ॥

यह स्पष्ट ही है कि इस वर्णन का प्रत्यक्ष उपयोग कुछ भी नहीं हो सकता। कल्पद्रुमकार ने कलिंग को हिंदोल का एक पुत्र माना है। उसका श्लोक (यदि इसे श्लोक कहना पड़े तो) सुनाता हूँ।

"शंकराभरन अरन आभीरः सोमहंसकलिंगः पंचम सोहनमोहन हिंदोलपुत्रक ।"

इस श्लोक में हिंदोल के आठ पुत्र बताये हैं। इसने ही फिर एक दूसरा मत इस प्रकार बताया है:—

'कालिंगकुंतलो रामः कमलकुसुममालवौलाहनं चैव हेमलं दीपकस्य च नंदनाः ॥'

प्रश्न—मालूम होता है कल्पद्रुमकार ने कलिंग के लक्षण अलग से नहीं दिये ?

उत्तर—उसने रागमाला के लक्षण ही दिये हैं, जैसे "तांबूलवक्त्रो धृतखड्गहस्तः" इत्यादि। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। अहोबल, लोचन, सोमनाथ, रामामात्य, पुण्डरीक, आदि ने यह राग बताया ही नहीं है। 'राधागोविंदसंगीतसार' में इस प्रकार कहा गया है:—

"अथ दीपक को पांचवो पुत्र कलिंग याको लौकिक में कलिंगडो कहे हैं ताकी उत्पत्ति लिख्यते। शिवजी नें प्रसन्न होके उन रागन में सों विभाग करिवेकों। सद्योजात नाम मुखसों गाईके दीपक की छाया युक्ति देखि। वाको कलिंग नाम करिके दीपक को पुत्र दीनो। अथ कलिंग को स्वरूप लिख्यते। गोरो जाको अङ्ग है। केसरी की खोल जाके ललाट में है। मुख में बीड़ा खाय है। रंगविरंगे वस्त्र पेहेरे है। बांई कोर कमर में जाके कटारी है। और हाथन में जाके खड्ग है। जाके मनमें क्रोध है। युद्ध के लिये सिंहनाद करे है। जाके रूपकूँ देख बैरिन के हिय धरके हैं। बडो बलवंत है। युद्ध के लिये बाँह जाकी फरके हैं। ऐसो जो राग ताहि कलिंग जानिये।"

प्रश्न—क्या यह वर्णन भी 'तांबूल वक्त्रो इ०' श्लोक के आधार पर किया हुआ नहीं दिखाई पड़ता ? निस्संदेह कुछ बातें श्लोक के बाहर की भी हैं, यह स्वीकार किया जावेगा।

उत्तर—तुम्हारा अनुमान सत्य है। जो बातें श्लोक में नहीं हैं वे राजा साहेब ने कल्पना से सम्मिलित करली होंगी। हाथों में खड्ग और कमर में कटार होने पर क्रोध, सिंहनाद, बाहुस्फुरण आदि वर्णन खुशी से मिलाया जा सकता है। यह बात किसी शूर राजपूत राजा को सिखाने की आवश्यकता ही क्या है ?

प्रश्न—ठीक है, परन्तु कलिंग के स्वर श्लोक में नहीं दिये गये हैं, वहां क्या किया है?

उत्तर—वह भाग मैं अब सुनाने वाला ही था। वह इस प्रकार है:—

"शास्त्र में तो यह सात सुरन सों गायो है। म ग रे सा सा रे ग म प ध नि सा। यातें संपूर्ण है। याको रात्रि के चौथे पेहेर में गावनो। यह तो याको बखत है। दिन के दोय पेहेरतांई चाहो तब गावो।

प्रश्न—तो फिर आपके गुरु ने जो गायनसमय प्रातःकाल बताया है, उस कथन में अवश्य ही तथ्य है। इस ग्रन्थकार ने कलिंग की 'आलापचारी' किस प्रकार बताई है?

उत्तर—वह ऐसी दी गई है देखो:—

ग— गांधार चढ़ी	नि— निषाद चढ़ी
म— मध्यम चढ़ी	ध— धैवत उतरी
प— पंचम असली	प— पंचम असली
ध— धैवत उतरी	म— मध्यम चढ़ी
म— मध्यम उतरी	ग— गांधार चढ़ी

प्रश्न—इसमें दोनों मध्यम ग्रहण करने का प्रकार बताया हुआ जान पड़ता है?

उत्तर—हां! यह व्यवहार में बता ही चुका हूं। अब यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतापसिंह को राग नियमों की कितनी मात्रा में जानकारी रही थी। उसकी आलापचारी के लिये यह आवश्यक नहीं माना जा सकता कि उसके लिये ग्रंथाधार मिल ही सकेंगे। यह मैं कह चुका हूं कि उसने 'आलापचारी' अपने गायकों की सहायता से लिखी होगी। 'सङ्गीतसार' ग्रंथ सौ वर्ष से ऊपर का है, अतः उस समय का प्रचार कहीं-कहीं देख लेना उपयोगी होगा। मुझे जहां योग्य जान पड़ेगा वहां मैं इस ग्रंथ का उपयोग करूंगा ही।

प्रश्न—ठीक है। अब आप हमें कालिंगड़ा का स्वरूप स्वरों में और दिखा दीजिये तो यह राग भी समाप्त हुआ।

उत्तर—ठीक है। यही करता हूं।

कालिंगड़ा

निनिसारेग, रेग, मग, ममग, गमपधमप, धपमग, रेगमग, रेसा, धधनिसा, धनिसा, निनिसा, गगमम, रेग, गमधप, गमग, मगरेसा, गमगमप, धधप, धमप, धनिसांनिधप, गमपध, पमग, मग, रेसा, सारेगम, रेगम, मपगम, गमपधनिधपधमपधपमग, मगरेसा, पपमग, ममपप, धधपधमप, गमगरे, गमपप, गमपग, मगरेसा, निसागम, रेगमप, धनिसांनि धपधम, पपमग, ममपप, धधपप, धधपध, निनिसांसां, धनिसांरें, सांनिधप, सांनिधनि, धपगम, धपगम, गरेसा, निसागम, पगमप, सांरेंसांनि, धपधम, पपमग, ममपप, धधपप।

निसा, गम, रेगम, गमपगम, धधप, गम, निध, सांनिधप, गमपगम, रेगमगरेसा, निसागम।

गमपधमप, धधपधमप, गमप, निनिधप, धनिसांरेंसांनिधप, गमप, रेंरेंसांनिधप, धध, ममग, सारेग, म, पमग, रेसा।

मैं समझता हूं कि इतने से इस राग का चलन तुम्हारे ध्यान में सरलता से आ जावेगा।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग हाथ में लेंगे?

उत्तर—अब हम 'बङ्गाल' राग पर विचार करेंगे। बङ्गाल नाम तो स्पष्ट ही देश-वाचक है, ठीक है न? इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह राग बङ्गाल

प्रान्त में बिलकुल साधारण होगा। यह राग अप्रसिद्ध रागों में से एक माना जाता है, इसका वर्णन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया हुआ है। अतः इसके बारे में समाज में मतभेद भी दिखाई पड़ना सम्भव है। यह भी सत्य है कि हमारे गायक भिन्न-भिन्न प्रकार से 'बङ्गाल' राग गाते हैं।

प्रश्न—तो हमें कौनसा प्रकार स्वीकार करना चाहिये?

उत्तर—यह मैं अभी बताने वाला ही था। भैरव थाट में जो प्रकार है, हम उसी स्वरूप को स्वीकार करेंगे। इस स्वरूप को गायक लोग 'बङ्गाल-भैरव' कहते हैं। यह नाम भी बहुत ही सुविधाजनक है। निरे 'बङ्गाल' नाम को स्वीकार कर यदि किसी ने अपना राग किसी अन्य थाट के स्वरों में भी गाया, तो उससे हमारा बिलकुल विरोध नहीं होगा। मैंने इस प्रकार से भी गाते हुए सुना है।

प्रश्न—आपने किन-किन थाटों में इसे गाते हुए सुना है?

उत्तर—मैंने 'काफी' और 'बिलावल' थाटों में भी बङ्गाल राग गाते हुए सुना था। यद्यपि वे रागस्वरूप मुझे अधिक अच्छे नहीं लगे, परन्तु मैं यह नहीं कहूंगा कि जो मुझे पसन्द नहीं, वह राग अशुद्ध ही हैं या अयोग्य हैं।

प्रश्न—'बङ्गाल-भैरव' संयुक्त नाम से यह राग भैरव का ही एक भेद समझा जाता होगा?

उत्तर—हां, ऐसा समझ लेना भी अनुचित नहीं है। पहिले मैंने भावभट्ट के ग्रन्थों में वर्णित भैरव के जो भेद बताये थे, उनमें यह भेद नहीं था। यह एक निराला ही राग-स्वरूप है। यदि व्यवस्थित राग-नियम हों तथा रागस्वरूप रंजक हो तो हमें नवीन राग-स्वरूप स्वीकार करने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं है। बङ्गालभैरव में हमें निषाद स्वर बिलकुल वर्ज्य मानना है और अवरोह में गांधार को वक्र रखना है। गांधार की यह वक्रता तानबाजी के लिये कुछ असुविधाजनक होने के कारण अनेक गायक इसकी ओर ध्यान नहीं देते, परन्तु ध्रुपद-गायक ये दोनों नियम अच्छी तरह संभाल सकते हैं। प्रचार में तुम्हें अनेक गायक, अनेक बार बङ्गालभैरव राग सम्पूर्ण रूप में गाते दिखाई पड़ेंगे। ये लोग, अपने राग की 'भैरव' से भिन्नता दिखाने के हेतु इसके मुखड़े में एकाध स्वर व्यर्थ ही बढ़ाते हुए दिखाई देंगे; परन्तु मैं नहीं समझता कि वे इसके लिये कोई वास्तविक रागनियम बता सकें। यह बात मैं प्रत्यक्ष अनुभव से कह रहा हूं। जिस गायक ने मुझे सम्पूर्ण प्रकार सुनाया था, उसको मैंने खास तौर से अपने 'बङ्गालभैरव' के नियम बताये और देखा कि वह क्या कहता है।

प्रश्न—क्या उसने अपने सम्पूर्ण प्रकार के लिये कोई आधार बताया था?

उत्तर—उसने कहा कि "मेरे गुरु ने मुझे यह चीज इसी प्रकार बताई है। यह बहुत पुरानी चीज है।" आगे चलकर वह कुछ ठसक से बोला कि "पण्डित जी! रागों के ये सब कायदे क्या हम नहीं जानते? मगर वैसे गाने से राग का मजा सब जाता रहता है, क्योंकि वैसी "फिरत" हो नहीं सकती।" यह ठीक है कि तानबाजी करने वाले गायकों को राग-नियमों का पालन करने में कठिनाई पड़ती है, परन्तु इस कठिनाई के लिए नियमों को समूल हटाते हुए, टालते जाना कैसे पसन्द किया जा सकेगा? मुझे यह दिखाई पड़ा कि इस गायक को बङ्गाल के कोई भी नियम ज्ञात नहीं थे।

प्रश्न—क्या संस्कृत ग्रन्थकार "बङ्गाल-भैरव" इस प्रकार का संयुक्त नाम बताते हैं ?

उत्तर—यह मुझे कहीं नहीं दिखाई दिया। मैं समझता हूं कि यह नाम गायकों ने सुविधा के लिये प्रचार में ग्रहण कर लिया है। ग्रन्थों में बङ्गाल, शुद्ध बङ्गाल, बङ्गाली, आदि नाम दिखाई पड़ते हैं। भैरव थाट के बङ्गाल को कन्नडबङ्गाल, कर्नाटबङ्गाल, इस प्रकार के नाम भी दिये हुए दिखाई पड़ेंगे। ग्रन्थों में राग-नियम कौन-कौन से बताये हैं, यह मैं अब बताने वाला ही हूं।

प्रश्न—बङ्गालभैरव का वादी स्वर कौन सा है ?

उत्तर—वादी धैवत स्वर माना जावे। इसके स्वतन्त्र नियम होने से यह राग भैरव से भिन्न हो ही जावेगा। कुछ ग्रंथों में वादी षड्ज बताया गया है। कोई-कोई गायक इस राग में मध्यम बढ़ाकर रागभिन्नत्व दिखाया करते हैं। कोई-कोई "रे़म" "निप" इस प्रकार की स्वर-संगति कहीं-कहीं ग्रहण करना पसन्द करते हैं। इस राग के सम्पूर्ण प्रकार को गाने वाले व्यक्ति ही ऐसी युक्तियां अधिक प्रयुक्त करते हैं, यह बात भी ध्यान देने योग्य है। यह 'बङ्गाल-भैरव' राग भैरव अङ्ग से गाया जावे क्यों कि इसमें भी रे़, ध़ स्वर आंदोलन पाते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि ये स्वर "अति कोमल" ग्रहण करने चाहिये।

प्रश्न—यह आप बता ही चुके हैं कि हमें 'अति कोमल' की उलझन में नहीं पड़ना है। क्या भैरव-थाट के रागों में और भी कोई दूसरा राग ऐसा है, जो बंगाल-भैरव की शंका उत्पन्न कर देता हो ?

उत्तर—संभवतः तुम्हें प्रचार में ऐसा कोई रागस्वरूप प्राप्त नहीं होगा। 'बङ्गाल' का एक प्रसिद्ध उठाव "ध़, ध़, प, ग, मपगमरे़, सा" इस प्रकार ध्यान में जमा लो। धैवत को देर तक उठावदार रखना शोभनीय होगा। आगे मन्द्र-सप्तक में इस प्रकार जाना चाहिये—"सारे़सा,ध़, सा, रे़, सा"।

प्रश्न—तो फिर, हम बङ्गालभैरव का साधारण स्वरूप यदि इस प्रकार समझ लें तो कैसा रहेगा ?

"ध़, प, गमप, गमरे़, सासारे़सा, सा, ध़प़, म़प़, ध़रे़, सा, गमप, मगमरे़, सा"

उत्तर—ठीक है, चल जायेगा। आगे अन्तरा इस प्रकार शुरू करना चाहिये। "धध़, सां, सांरें़सां, सांध़, रें़रें़सांध़, प" भैरव में हम प्रायः अनेक बार इस प्रकार अन्तरा आरम्भ करते हैं:—"पपध़, निसां, सां, सांध़, निसां, रें़रें़, सांध़, प" इसमें निषाद छोड़ दिया जावे तो स्वाभाविक कुछ निराला रागप्रभाव अपने आप हो जावेगा। निषाद का नियम पालन करते हुए और खुला मध्यम बीच-बीच में दिखाते हुए यदि तुमने इस खूबी से रागभिन्नता श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित की तो तुम्हारी प्रशंसा ही होगी। जो भी काम किया जावे उसे समझ बूझ कर अपने राग को भ्रष्ट न करते हुए किया जावे, यही ध्यान रखना पर्याप्त होगा। कोई-कोई कहते हैं कि इसमें बीच बीच में 'रे़म' स्वरों की संगति दिखाई जानी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से भैरव का प्रभाव कम होता जावेगा। कोई-कोई कुशल गायक तो निषाद स्वर लगा कर भी 'बङ्गालभैरव' का स्वरूप नहीं बिगड़ने देते। यह सुन कर तुम्हें आश्चर्य होता होगा, परन्तु ऐसा करने की भी एक युक्ति है।

प्रश्न—वह कौन सी युक्ति है ?

उत्तर—इस निषाद को स्थायी में नहीं लिया जाय। अन्तरा लेते हुए एक दो जगह थोड़े प्रमाण में लेना पर्याप्त है। वास्तविक दृष्टि से तो यह काम नियम भंग करता है, परन्तु यह गलत नहीं है कि इस प्रकार का प्रयोग आरोह में किया हुआ कभी-कभी दिखाई पड़ जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति कहेगा कि ग्रन्थों में बंगाल को संपूर्ण राग बताया ही है और बंगालभैरव प्रातःकालीन राग होने से इसका समस्त रस अवरोह ही में आ जावेगा।

प्रश्न—तनिक हम भी देखें कि आरोह में निषाद स्वर किस प्रकार व कहां लगाया जाता है ?

उत्तर—मैंने इस स्वर का प्रयोग इस प्रकार करते देखा है—"ध॒, नि सां, सां, सां ध॒, नि सां, रें॒, रें॒, सां, ध॒, प, म प ध॒ सां, ध॒, प म ग, म रे॒, सा," इसमें मैंने निषाद स्वर किस प्रकार गौण रूप में रखने का प्रयत्न किया, वह देखते हो न ? स्थायी के भाग में इसे नहीं लाना चाहिये। तो अब बंगाल-भैरव का स्वरूप-तुम मुझे गाकर दिखाओ, देखें कैसा गाते हो ?

प्रश्न—हम इस प्रकार गायेंगे, देखियेः—ध॒, ध॒ प, ग, ग म प म ग, म रे॒, सा, ध॒ ध॒, प, ग म ध॒, प, ग, म प ग म, रे॒ सा, सा ध़॒ सा, ध॒ प, सां ध॒ प, ग म प, ग म रे॒, सा;

उत्तर—शाबास ! आगे अन्तरा किस प्रकार लोगे ?

प्रश्न—ध॒, नि सां, निसां अथवा ध॒, ध॒, सां, रें॒ सां, इस प्रकार आरम्भ करके आगे इस प्रकार स्वर लेंगे। "ध॒, सां रें॒, रें॒ सां, ध॒ सां, ध॒, प, ग, मप, ध॒, रें॒ सां, रें॒ सां ध॒, प, ग, म प, ग मरे॒, सा," आपने कहा था कि कोई-कोई गायक मध्यम स्वर को बढ़ाते हैं और रे॒, म, इन स्वरों की सङ्गति कहीं-कहीं दिखाते हैं। यह किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—देखो बताता हूं—ध॒ प, ग म प, ग म, रे॒ सा, ध॒ प, ग म रे॒, ग म प ग म रे॒ सा, सा ध़॒, सा, रे॒ रे॒ सा, रे॒ म, ग म, प म, रे॒ सा, सा रे॒ म, प प ध॒ प, ग म, ध॒ प ग म रे॒, रे॒, सा।

इसमें कुछ जोगिया का आभास होना संभव है; वहां अवश्य ध्यान देना है।

प्रश्न—यहां गांधार को स्पष्ट रूप से आगे नहीं लाया जावेगा क्या ?

उत्तर—हां, यह तुमने ठीक बताया। परन्तु यह गांधार भी युक्तिपूर्वक दिखाना पड़ेगा।

प्रश्न—अवरोह में इस स्वर का वक्रत्व है, इसलिये ही आप यह कह रहे होंगे। हम इसे अच्छी तरह सम्हाल सकेंगे।

"सा रे॒ रे॒, सा, रे॒ म, ग म, ध॒ प; ग म, सां ध॒ प, ग म, रे॒, सा" इस प्रकार की तान में जोगिया छिपाया जा सकेगा ?

उत्तर—हां, यह ठीक है। मैं समझता हूं कि अब तुम्हें बंगाल राग अच्छी तरह गाना आ जायेगा। अब कुछ ग्रंथों का मत बताता हूँ, उसे सुनोः—

षाडवादेव बंगालो ग्रहांशन्यासमध्यमः ।
प्रहर्षे विनियोक्तव्यः प्रोक्तः सोढलसूनुना ॥

"षाडव" यह शार्ङ्गदेव का एक ग्रामराग है और इसके लक्षण रत्नाकर में इस प्रकार बताये गये हैं:—

विकारिमध्यमोद्भूतः षाडवो गपदुर्बलः ।
न्यासांशमध्यमस्तारमध्यमग्रहसंयुतः ॥
काकल्यंतरयुक्तश्च मध्यमादिकमूर्छना: ।
अवरोह्यादिवर्णेन प्रसन्नान्तेन भूषितः ॥

प्रश्न—हमें इसमें "काकल्यंतरयुक्तश्च" पद मनोरंजक ज्ञात होता है । इसकी आवश्यकता भी हम महसूस कर रहे थे । किन्तु "विकारिमध्यमा" यह एक फिर नई अड़चन आ गई ? यहां क्या मार्ग निकलेगा ? शुद्ध 'षाडव" का थाट ठीक-ठीक लगेगा, तो आगे की बात ?

उत्तर—वह तो है ही । समझलो कि किसी ने, शंकराभरण जैसा थाट स्थापित किया, तो भी फिर सारे रागलक्षण प्राप्त करने रह जाते हैं ।

प्रश्न—परन्तु किसी ने आपको बङ्गाल राग, बिलावल थाट में भी गाकर दिखाया था न ?

उत्तर—हां, परन्तु मित्रो ! हमने रत्नाकर के लक्षणों की ढूँढ-खोज तो स्थागित करदी है न ? यह कार्य तो हम योग्य अधिकारी व्यक्ति को सौंप रहे हैं । यही उचित होगा कि उसे सफलता मिलने पर हम उससे ही रत्नाकर का स्पष्टीकरण ग्रहण करें । अभी तो यही ठीक है कि तुम शार्ङ्गदेव के लक्षण केवल सुन लो । "विकारिमध्यमोद्भूतः" इस पदकी कल्लिनाथ ने इस प्रकार टीका की है:—

"मध्यमाया जातेः शुद्धभेद एकः । विकृतभेदास्त्रयोविंशतिः ।
तत्र शुद्धावस्थां परित्यज्य विकृतावस्थापन्ना ।
मध्यमा विकारिमध्यमा तस्यामुद्भूतः ॥

प्रश्न—क्या वह संक्षेप में कहा जा सकता है कि शार्ङ्गदेव ने शुद्ध व विकृत जाति के भेद किस प्रकार निश्चित किये हैं ?

उत्तर—यह विवरण रत्नाकर के स्वराध्याय के सप्तम प्रकरण में है । मैं तुम्हें सुझा चुका हूँ कि रत्नाकर के जाति प्रकरण की स्पष्ट एवं व्यवस्थित व्याख्या अगले विद्वानों ने अपने ग्रंथों में नहीं की । अर्थात् उनकी समझ में यह आया ही नहीं, अतः यह टीका भी इस दृष्टि से योग्य नहीं हुई । केवल रत्नाकर का विधान अपनी भाषा में कह देना, अथवा उसका भाषांतर प्रस्तुत करना, अध्येताओं की वास्तविक सहायता करना नहीं कहा जा सकता । जो व्यक्ति-उत्तम प्रमाणों से यह समझा दे कि अमुक "जाति" अमुक स्वरांतर हुआ, उसके लिये तुम कह सकते हो कि रत्नाकर उसकी समझ में आ गया है । मुझे विश्वास है कि इस सम्बन्ध में तुम केवल लम्बी-चौड़ी गप्पें सुनकर मानने वाले नहीं हो ।

आज तो पंडितों को इसी में कठिनाई हो रही है कि रत्नाकर का शुद्धः स्वर-थाट अब किस प्रकार सिद्ध किया जावे। हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में आजकल जाति प्रकरण महत्वहीन हो गया है, अतः यह विभाग दुर्बोध हो गया है। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूं कि हमारे अर्वाचीन विद्वानों ने शाङ्गदेव का शुद्ध थाट कौनसा माना है? उनका "दावा" तो इस प्रकार है कि हम आज भी शाङ्गदेव का सङ्गीत ही गाते हैं! यह बात असत्य नहीं है कि हमारे अनेक राग रत्नाकर के "उपांग" शीर्षकांतर्गत—वर्णित प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—तब तो अब इतना ही बाकी रह गया है कि तत्काल ही उनके थाट व विशेष लक्षण हिन्दुस्तानी थाट व लक्षणों से अच्छी तरह मिला दिये जावें?

उत्तर—स्पष्ट ही है! परन्तु उसे छोड़ो। हां, मैं तुम्हें शाङ्गदेव के शुद्ध और विकृत जाति-भेद का विवरण सुना रहा था न? सुनोः—

शुद्धाः स्युर्जातयः सप्त ताः षड्जादिस्वराभिः।
षाड्ज्यार्षभी च गांधारी मध्यमा पंचमी तथा॥
धैवती चाथ नैषादी शुद्धतालक्ष्म कथ्यते।
यासां नामस्वरो न्यासोऽपन्यासोंऽशो ग्रहस्तथा॥
तारन्यासविहीनास्ताः पूर्णाः शुद्धाभिधा मताः।

इससे तुम्हारे ध्यान में यह आ जावेगा कि पंडित शाङ्गदेव ने 'शुद्ध जाति' सात मानी हैं और उन्हें अपने प्रसिद्ध सप्त-स्वरों के नाम ही दिये हैं। शुद्ध जाति के लक्षण वह इस प्रकार बताता है:—जिस जाति में न्यास-अपन्यास, अन्श और ग्रह ये सभी स्थान जाति के नाम-स्वर पर आते हों, जो सदैव सम्पूर्ण हो और जिसमें न्यास कभी भी तारस्थान में नहीं जाता हो, वह जाति शुद्ध होगी।"

प्रश्न—और जाति में विकृति-रूप कैसे आयेगा?

उत्तर—पंडित कहता है—"विकृता न्यासवर्ज्यैतल्लक्ष्महीना भवंत्यमूः॥" अर्थात् न्यास का नियम न तोड़ते हुए, अन्य बातों में अंतर डाला गया कि जाति विकृत हुई। उसे "शुद्ध विकृत" इस प्रकार विशेषण लगाया जावेगा। कल्लिनाथ कहते हैं:—

"नामस्वरमेव न्यासं कृत्वाऽपन्यासादीन्स्वरान्तराणि कुर्यात्। एवं कृता यदि तदा विकृतावस्थापन्ना भवंति। न तु विकृतसंसर्गजातिवद्व्यपदेशांतरे सारभाज इत्यर्थः। अत्र न्यासनियमस्य परित्यागो नेष्टः। तस्मिन्नपि परित्यक्ते सति विकृतासु जात्यंतरभेदकत्वेन प्रधानभूतावयवाननुवृत्तौ तासां तत्तच्छुद्धजातिभेदत्व-प्रतीतिर्न स्यात्।"

प्रश्न—मालूम होता है कि आगे 'विकृत संसर्गज' जाति का वर्णन आया होगा ?

उत्तर—हां, एक-एक शुद्ध जाति के अनेक विकृत भेद हो सकते हैं, यह दिखाई पड़ेगा।

रत्नाकरे:—

संपूर्णत्वग्रहांशापन्यासेष्वेकैकवर्जनात् ।
भवन्ति भेदाश्चत्वारो द्वयोस्त्यागे तु षण्मताः ॥
त्यागे त्रयाणां चत्वार एकस्त्यक्ते चतुष्टये ।
भेदाः पंचदशैवैते षाड्ज्याः सद्भिर्निरूपिताः ॥
तत्राष्टौ पूर्णताहीनाःषाडवौडुवभेदतः ।
अतोऽष्टावधिका आर्षभ्यादिष्वौडुवजातिषु ॥
अतस्त्रयोविंशतिधा षट्सु प्रत्येकमीरिताः ॥

इस विवरण पर सिंह भूपाल ने इस प्रकार टीका की है:—

"शुद्धजातीनां चत्वारि लक्षणानि—नामस्वरग्रहत्वं, नामस्वरांशत्वं नामस्वरापन्यासत्वं, संपूर्णत्वं चेति । तत्र संपूर्णत्वपरित्यागेनैको विकृतभेदः, ग्रहपरित्यागेनैकः, अंशपरित्यागेनैकः, अपन्यासपरित्यागेनैकः, एवमेकैकपरित्यागे चत्वारो भेदाः । संपूर्णत्वग्रहत्वपरित्यागेनैकः, संपूर्णत्वांशपरित्यागेनैकः ।

प्रश्न—इस विचारधारा को हम अच्छी तरह समझ गये। इस प्रकार षाड्जी जाति से पन्द्रह भेद अवश्य हो जायेंगे, आगे ?

उत्तर:—आगे टीकाकार कहता है:—

"तेषु पूर्णताहीना अष्टौ । इतरलक्षणहीनाः सप्त । किन्तु षाड्ज्याः षाडवत्वेनैव असंपूर्णत्वम् । अन्येषां षाडवत्वेनौडुवत्वेनैव च भेदाधिक्यं मतम् ।'

प्रश्न—समझ गये ! अर्थात् आर्षभी आदि छः जातियों के तेईस-तेईस प्रकार और षाड्जी के पन्द्रह प्रकार बताये गये। कुल मिलाकर ६×२३=१३८; १३८+१५ =१५३ प्रकार हुए।

उत्तर—यह हिसाब तुम ठीक तरह से समझ गये; परन्तु सङ्गीत विषय में निरे हिसाब का महत्व नहीं है।

प्रश्न—आपका यही उद्देश्य है न कि श्रुति, ग्राम, मूर्छना, जाति ग्रामराग, जन्यराग और प्रचार की सरल और सन्तोषजनक सङ्गति होनी चाहिये ?

उत्तर—तुमने ठीक तर्क किया। संसर्गज विकृत जाति, ग्यारह बताई गई हैं।

रत्नाकरे:— विकृतानां तु संसर्गाज्जाता एकादश स्मृताः ।

पहले तुम जिन विकृत जातियों को देख चुके हो वे 'शुद्ध-विकृत' थीं। 'रत्नाकर' का जाति प्रकरण बहुत ही महत्वपूर्ण है। शार्ङ्गदेव ने अपना 'वीणा प्रकरण' स्पष्ट नहीं लिखा, इसलिए उसके सङ्गीत का अच्छी तरह स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। वह अपने मेरु पर आरम्भ में तार कैसे मिलाता है, यहीं पाठक को कठिनाई पैदा हो जाती है। दक्षिण के ग्रंथकारों के लेखों से यह सहज में दिखाई देता है कि वे 'सा, प, सा, म' इस प्रकार तार मिलाते थे। कोई-कोई कहते हैं कि शार्ङ्गदेव भी ऐसा करता ही होगा, क्योंकि उसने अपने वाद्याध्याय में आलापिनी और किन्नरी वीणा बताते हुए 'मुक्त तन्त्री' स्वर 'षड्ज और 'मध्यम' कहीं-कहीं बताये हैं। जैसेः—

"मध्यमो मुक्तया तंत्र्या तर्जन्याद्यंगुलीत्रयात्। वामस्यानामिकावर्ज्यास्त्रयः स्युः पंचमादयः॥' आगे, 'मुक्ततंत्र्याऽथ षड्जः स्यादृषभस्तर्जनीभवः। गांधारो मध्यमांगुल्या दक्षिणेनाथ वादनम्॥'

इस प्रकार आलापिनी के लक्षणों में कहा है—किन्नरीवीणा के वर्णन में भी एक जगह इस प्रकार का विवरण मिलता हैः—

"मुक्ततंत्रीभवं कृत्वा स्वरमाद्यं चतुर्दशम्।
स्वराः परे स्युः सारीणां चतुर्दशभिरंतरैः॥
सप्तकद्वयमेवं स्यादेकतारस्वराधिकम्।
यथास्वं स्वरदेशांशैः श्रुतिस्तस्या विचिन्वते॥
द्वित्रास्ततोऽधिकाः सारीर्निबध्नीयात्परे त्विह।
लक्षयंत्यंतराण्यासां स्वराविर्भावतो बुधाः॥
श्रीशार्ङ्गदेवोपदेशात्तद्बोधः सुलभो नृणाम्।
केचित् त्रयोदशैवात्र सारीर्निदधते बुधाः॥
बृहती किंनरीत्येषा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता॥"

परन्तु यही अच्छा है कि अभी हम इस विभाग पर अपना मत स्थिर नहीं करें, क्योंकि ऐसा करने लगेंगे तो चाहे जिस विषय के प्रवाह में बह जाने का भय हमारे लिये रहेगा। मैं यह तुम्हें सुझा चुका हूं कि कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में मेरु पर 'सा, प, सा, म' स्वरों में तार नहीं मिलाये जाते थे। उनका मत है कि रत्नाकर में इसी कारण से मूर्छना, जाति, साधारण, आदि उलझनें हैं। वे अपना स्पष्टीकरण अब प्रकाशित करेंगे ही, तभी वह देखा जा सकेगा।

प्रश्न—परन्तु ये लोग मुख्य बाईस श्रुति और शुद्ध स्वरमेल भी नये प्रकार से स्वीकार करेंगे, ठीक है न?

उत्तर—स्पष्ट है। यह तो आगे दिखाई देगा ही कि उनको कितनी सफलता मिलती है और उनका मत समाज को कितना ग्राह्य होता है। यदि उनका मत योग्य होगा तो प्राचीन संगीत का निर्णय अपने आप हो जायगा। खैर, अब हमें अपने 'बंगाल' की ओर लौटना चाहिए न?

प्रश्न—जी हां, आप ग्रंथ-मत बता रहे थे?

उत्तर—हां रत्नाकर में 'बंगाली' नाम एक जगह दिखाई पड़ता है। उसका वर्णन इस प्रकार है:—

धन्यासांशग्रहा भाषा बंगाली भिन्नषड्जजा।
गापन्यासा दीर्घरिमा धमंद्रोद्दीपने भवेत् ॥

भाषांग रागों में शार्ङ्गदेव ने 'कर्णाट बंगाल' नामक एक रागप्रकार बताया है:—

अंगं कर्णाटबंगालं वेगरंज्याः पवर्जितम्।
गांशं सांतं च शृङ्गारे वक्ति श्रीकरणेश्वरः॥

"वेगरंजी" को 'टक्क' की भाषा बताई है। टक्क की व्याख्या मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। दक्षिण की ओर टक्क और कन्नड़बंगाल, इन दोनों का थाट मालवगौड़ माना जाता है। शार्ङ्गदेव ने और भी 'बंगाल' बताये हैं:—

षड्जग्रामे मंद्रहीनः षड्जमध्यमया कृतः।
बंगालोऽशग्रहन्यासषड्जस्तुन्याखिलस्वरः॥
मध्यमे कैशिकीजातः षड्जन्यासांशकग्रहः।
बंगालस्तारमध्यस्थपंचमःस्यात् समस्वरः॥

इस सम्पूर्ण मतभेद का स्पष्टीकरण होगा तब हो जायगा, इसकी चिन्ता आज हमें क्यों हो ? रामामात्य स्वरमेलकलानिधि में कहता है:—

रागः कन्नडबंगालो गांधारग्रहकांशकः।
गन्यासऋषभन्यूनः प्रातर्गेयः स षाडवः॥

इस राग का थाट यहां भी मालवगौड़ ही बताया गया है, अर्थात् यह हमारा भैरव थाट होगा। राग विबोधे:—

बंगालः शाश्वतिकः पूर्णः सांशग्रहश्च सन्यासः॥
मालवगौड़मेले॥

शुचिबंगालः पूर्णो मांशन्यासग्रहो व्युष्टे॥
कर्णाटमेले॥

ये दो भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, यह सरलता से समझ में आ जायेगा। कर्णाटमेल अर्थात्:-

कर्णाटगौडमेले शुचिसमपास्तीव्रतमरिमृदुमौ च।
तीव्रधकैशिकिनौ स्युः + + + ॥

सारामृते:—

मेलान्मालवगौलीयाद्बंगालः कन्नडादिकः।
जातो भाषांगो निवर्ज्यः प्रातर्गेयश्च गग्रहः॥
आरोहे गांधारलंघनम्। अवरोहे क्रमवक्रतया गांधारः।

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम्:—

राग: कर्णाटबंगालो भाषांगं गौलमेलजः ।
प्रातःकाले प्रगातव्यः षाडवोऽयं निवर्जितः ॥

यह कहा जा सकता है कि ये दोनों आधार अपने वर्तमान प्रचार के बहुत निकट हैं। यह मान लिया जावेगा कि जिसे हम बंगालभैरव कहते हैं, उसे ही ये ग्रन्थकार कर्णाटबंगाल कहते हैं। व्यंकटमखी के समय में 'रत्नाकर' बिल्कुल दुर्बोध हो गया होगा, ऐसा दिखाई देता है; क्योंकि वह कहता है:—

तत्र रत्नाकरग्रन्थे शार्ङ्गदेवेन धीमता ।
चतुःषष्ट्यधिकं रागशतद्वयमुदीरितम् ॥
लक्ष्यंते ते न कुत्रापि लक्ष्यवर्त्मनि संप्रति ।
ततः प्रसिद्धिवैधुर्यात्त्यक्त्वा रागांस्तु तान् पुनः ॥
सर्वत्र लक्ष्यमार्गेऽत्र संप्रति प्रचरंति ये ।
तानस्मत्परमाचार्यतानप्पार्यसमुद्धृतान् ॥
रागान्निरूपयिष्यामि लक्ष्यलक्षणसंमतान् ।
ग्रहांशन्यासमंद्रादिव्यवस्था तेषु यद्यपि ॥
देशीत्वात्सर्वरागेषु नैकांतेन प्रवर्तते ।
तथापि लक्ष्यमाश्रित्य गानलक्ष्मानुसृत्य च ॥
रागाणां लक्षणं ब्रूमो संप्रति प्रचरंति ये ॥

संगीतदर्पणे:—

बंगाली ह्यौडुवा ज्ञेया ग्रहांशन्यासषड्जभाक् ।
रिधहीना च विज्ञेया मूर्छना प्रथमा मता ॥
पूर्णा वा मत्रयोपेता कल्लिनाथेन भाषिता ॥
कक्षानिवेशितकरंडधरायताक्षी ।
भास्वत्त्रिशूलपरिमंडितवामहस्ता ॥
भस्मोज्ज्वला निबिडबद्धजटाकलापा ।
बङ्गालिकेत्यभिहिता तरुणार्कवर्णा ॥

अनूपविलासे:—

बङ्गाली रिधहीना स्यान् मतीव्रतरसंयुता ।
नितीव्रेणापि संयुक्ता सस्वरोत्थितमूर्छना ॥

सांशग्रहांतः सकलस्वरश्च ।
सदैव बङ्गालकनामधेयः ॥

—चन्द्रोदये ॥

मध्यमे कैशिकीजातः षड्जन्यासांशकग्रहः ।
बङ्गालस्तारमध्यस्थपंचमः स्यात्समस्वरः ॥

—रत्नाकरे ॥

रागमंजर्याम्:—

सदाकालः सत्रिकश्च बङ्गालः सकलस्वरः ।

चन्द्रोदयेः—

सांशग्रहांतो रिविवर्जितश्च ।
कर्णाटबङ्गाल उषस्युपात्तः ॥

—मालवगौडमेले ॥

नृत्यनिर्णयेः—

श्यामं तांबूलहस्तं करधृतकुमुदं मालवीमेलजातं ।
पत्रिं चारिं सुरेशं पिकमृदुवचनं वैणुकं पीतवस्त्रम् ॥
लिप्तांगं पद्मपंकैः शिरसि सुमुकुटं बालचन्द्रार्कवर्णं ।

* * * * *

पुंडरीक ने अपनी रागमाला में जो तीन भेद बताये हैं, वे इस प्रकार हैं:—

अंत्यो गश्च स्वरौ स्तः त्रिनयनगतिकौ सत्रिकाद्यश्च पूर्णो ।
वामे पाणौ सुमालां शशधरमणिभां शुभ्रवस्त्रं दधानः ॥
बङ्गालः पानपात्रं विशदकनकजं सव्यहस्ताग्रभागे ।
विद्वान् सङ्गीतवेदं पठति च नितरां गद्गदैः कंपभेदैः ॥
जातः कर्णाटमेले स्वरसकलरतो मत्रिकः पूर्णकायः ।
शुभ्रांगः पीतवासामणिगणरचिते कुंडले कर्णयोः स्तः ॥
आस्ते मौलौ किरीटः करतलकमलः कुंकुमालिप्तदेहः ।
प्रातर्याच्यः प्रमत्तो युवजनसहितः शुद्धबंगालकोऽसौ ॥
बंगालांतश्च कर्णाट इति रिरहितो गादिमध्यांतकोऽयं ।
गौडीसंमेलभूतः कमलकरतलः पुष्पयष्टिं दधानः ॥
गौरांगः शुक्लवासाः कटकमुकुटकेयूरकाढ्यः+
+धारी परिजनसहितो याति पूर्वाह्णकाले ॥

बंगाल के ये भिन्न-भिन्न प्रकार देखते हो न ? यह भी एक मज़ा ही है ! मूर्ख गायक कौन ? जिसे अपने स्वतः के राग के स्वर-नियम ज्ञात नहीं हों । पहिले तुम पारिजात में वर्णन किया हुआ प्रकार देख ही चुके हो ?

प्रश्न—जी हां, गुरु जी ! वह तो 'नि़ सा ग मं प नि सां । सां नि प मं ग नि़ सा ।' प्राय: ऐसा ही स्वरूप था । क्या यह एक नवीन प्रकार नहीं हो सकता ? इसमें वादी पंचम अच्छा दिखाई देगा ।

उत्तर—हां, हां, यह हो सकता है । इस प्रकार के स्वरूप सध सकें तो उन्हें बेशक प्रचलित करना । प्राचीन नाम व नवीन रूप देखकर तो गायक नाचने लगेंगे, परन्तु यदि तुम्हारा राग आधारपूर्ण एवं रंजक हुआ तो उन्हें भी अङ्गीकार करना ही पड़ेगा । अस्तु, राजा साहेब टागोर अपने सङ्गीतसार में इस राग के संपूर्णत्व पर सोमेश्वर, नारायण, सिंह भूपाल आदि पण्डितों की सम्मति बताकर आगे प्रचलित भैरव थाट का 'बंगाल' बताते हैं । प्रतापसिंह ने अपने सङ्गीत-सार में क्या मज़ा किया है, उसे ज़रा ध्यानपूर्वक देखना । उसकी विचारशैली के विषय में मैं पहिले ही बता चुका हूँ । "अथ भैरव राग की तीसरी बंगाली रागनी ताकी उत्पत्ति लिख्यते । शिवजी ने बाकी रागनीन में सों बिभाग करिवे को अघोर मुख सों गाय के तीसरी बंगाली नाम रागनी भैरव की छाया जुक्ति देखी । भैरव को दीनी । स्वरूप । गौर रंग मनोहर जाकी मूर्ति है । अरु सुन्दर मुंज की कण गाती पेहेरे है । और वृक्ष की वल्क के वस्त्र पेहेरे है । लम्बो जाको शरीर है और बडो जामें क्रोध है । अरु सामवेद को गान करत है । शास्त्र में तो यह पांच स्वरन सों गाई है । स ग म प नि स । अथवा म प ध नि स रि ग म यातें संपूरन है । याको दिन ऊगतें ले घडी एक दिन चढे जहां तांई गावनी । इ० ।"

यह वर्णन करने के बाद ग्रन्थकार ने रागिनी की "आलापचारी" इस प्रकार बताई है:—

"ध़ु नि़ु सा म गु म प म धु प म गु रे़ु गु म गु प म गु रे़ु गु म गु रे़ु सा ।"

प्रश्न—अर्थात् वह बंगाली का थाट भैरवी मानता है ?

उत्तर—हां, यही दिखाई पड़ता है । उसने वर्णन में "औडव व संपूरन है" इस प्रकार कहा है । जिस शास्त्र का उसने उल्लेख किया है, वह "सङ्गीत दर्पण" है । इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मैं आगे बताऊँगा ।

सङ्गीत रागकल्पद्रुमे:—

मनोज्ञमुक्तागुणभूषितांगी शुकं दधाना धरणीधरस्था ॥
प्रांशुः कुमारी कमनीयमूर्तिः बंगालिकेयं शुचिहास्यमाना ॥

इसके आगे दर्पण के श्लोक आड़े-तिरछे नकल कर, पाठकों को रागस्वरूप की कुछ कल्पना कराने के लिये "टोडीवराडी जयश्रीश्च त्रयमिलाग्बंगालिका" इस प्रकार का श्लोकार्थ रचकर रख दिया है !

प्रश्न—अब हमें बङ्गालभैरव के प्रचलित रूप का समर्थन करने वाले आधार बताइये ?

उत्तर हां, सुनाता हूं।

भैरवे मेलके तत्र बंगालोत्पत्तिरीरिता ।
भैरवस्यैव भेदोऽसाविति तज्ज्ञैः सुनिश्चितम् ॥
आरोहे चावरोहेऽत्र निषादो वर्जितस्वरः ।
अवरोहे समादिष्टा गांधारे वक्रता क्वचित् ॥
भैरवस्य प्रभेदत्वात्तदंगं स्यात् सुसंमतम् ।
निवर्ज्यत्वादृनवक्रत्वाद्भैरवस्य स्फुटा भिदा ॥
गांधारस्य परित्यागे स्वर्णाकर्षणकाव्हयः ।
भेदः स्याद्भैरवस्यान्यः षाडवो मध्यमांशकः ॥
संगतिः सधयोर्नूनं रागेऽस्मिन् रक्तिदायिनी ।
गानमभिमतं चास्य प्रथमप्रहरोचितम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

संभेदः किल भैरवस्य कथितो बंगालसंज्ञो बुधै-
रारोहेऽप्यवरोहणे च नियतं वर्ज्यो निषादस्वरः ॥
अन्यद्भैरवतुल्यमेव सकलं वक्रोऽवरोहे तु गो
गायंति प्रचुरं प्रभातसमये षड्भिः स्वरैर्गायकाः ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

यदि भैरवरागेऽस्मिन् निषादः परिवर्जितः ।
गांधारस्य च वक्रत्वं भवेद्बंगालभैरवः ॥

चन्द्रिकायाम् ॥

याही भैरव रागमें सुरनिखाद जब नाहिं ।
वक्र होय गंधार सुर कहत बंगाला ताहिं ॥

—चंद्रिकासार ॥

प्रश्न—अब हमें यह राग स्वरों में गाकर दिखा दीजिये। इसके विषय में और अधिक जानकरी नहीं चाहिये।

उत्तर—अच्छी बात है, सुनोः—

सरगम झपताल (सम से शुरू)

ध॒	ध॒	प	ग	म	प	ग	म	रे॒	सा
सा	रे॒	सा	ध॒	सा	ग	म	रे॒	रे॒	सा

सा		रे	सा	ग	म	प		प	ध	ध	प
ध		ध	सां	ध	प	ग		म	रे	रे	सा

अन्तरा—

म		प	प	ध	ध	सां		ऽ	सां	रें	सां
सां		ध	ध	सां	सां	रें		सां	सां	ध	प
म		ग	म	रे	सा	ध		ध	सां	ध	प
रें		रें	सां	ध	प	ग		म	रे	रे	सा

पं० व्यंकटमखी ने संगीत संप्रदाय-प्रदर्शिनी में ऐसा ही एक मत बताया है:—

"रागः कंनडबंगालः षाडवो गग्रहान्वितः ।
निवर्जः प्रातरुद्गेय आरोहे गच्युतः क्वचित् ॥"

बंगालभैरव का विस्तार तुम इस प्रकार आसानी से कर सकते हो:—

"धध, प, गमप, गमरे, सा, सारेसा, धसा, रेरेसा, गमरेपगमरे, सा; गमपप, धध, प, गमप, रेगमप, गमरे, सा, सारेसा, ध, साध, मपध, सा, सारेगम, रेगम, पमगप, रेपगम, रेरे, सा; गमपधप, धपसांधप, मप, रेगमप, सांधप, गमपगमरे, सा; सारेसा, रेमगम, रे, पगमरे, सा, धधसा, गमधध, प, गमरेसा; मपध, सां, सांरें, सां, सांध, सां, रेंरेंसांधप, मपध, रें सां, गमधपगमरे, पगमरे, सा, सारेसा।

यह राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आगया है, यह मैं पहिले ही समझ चुका हूं। तो भी तुम्हारी अधिक सहायता करने के ध्येय से यह स्वरविस्तार बताना पसंद किया है।

प्रश्न—जो लोग स्वल्प रूप में निषाद का प्रयोग करते हैं, वे किस प्रकार विस्तार करते हैं ?

उत्तर—वे इस प्रकार करते हैं:—

धध, प, गमपमग, मरेसा, ध, ध, पगम, ध, प, गमपगमरेसा, साध, रे, रे, सा।

ध, निसां, सां, सांध, निसां, निसांरें, रें, सां, निसांध, ध, प, मप, धध, सां, रेंसांनिसांधप, गमगमप, गमरे, सा। धधप, गमपगमरेसा।

रेरे, गमपगमरे, सा, धधपगम, गमपगमरे, सा, सांधध, पगम, धसांधपगम, धप, गमपगमरे, सा। ध, पगमपगमरेसा।

इनके गायन में निषाद स्वर को गौण करने का प्रयत्न समझदारों को आसानी से दिखाई पड़ जाता है तुम्हारे लिये तो निषाद वर्ज्य करने का क्रम निश्चित करना उचति होगा। मेरे इतना कहने का भाव यह है कि जो भी काम करो, उसे नियमित रीति से व समझ बूझकर करना चाहिये।

प्रश्न—अब कौनसा राग बता रहे हैं?

उत्तर—अब हम भैरव थाट के "विभास" राग को लेंगे।

प्रश्न—मालूम होता है कि शायद विभास राग अन्य थाटों में भी गाया जाता है?

उत्तर—हां, देशकार राग का विवरण बताते हुये मैं इस सम्बन्ध में कुछ संकेत कर भी चुका हूं, शायद वह तुम्हें विस्मृत हो गया है। कोई हानि नहीं। अपने गायक विभास राग को दो-तीन तरह से गाते हैं। अपने-अपने तरीके से प्रत्येक प्रकार ठीक ही होता है। यह कहना चाहिए कि जिसकी जैसी रुचि हो। मेरे गुरु ने मुझे भैरव और मारवा थाट के प्रकार बताये हैं और ये दोनों प्रकार ही मैं तुम्हें बताने वाला हूँ। अभी हम जिस विभास को देख रहे हैं वह भैरव थाट का औडव राग-स्वरूप है। इसमें मध्यम और निषाद स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। कोई-कोई विद्वान केवल मध्यम वर्ज्य करने की व्यवस्था देते हैं। वे कहते हैं कि इतने मात्र से यह राग अन्य समप्राकृतिक रागों से सहज में ही भिन्न दिखाया जा सकेगा; यह मत भी अवश्य विचारणीय है। इसके लिये भी ग्रन्थों का आधार निकल आयेगा। थोड़ा सा निषाद का प्रयोग करते हुए विभास राग गाने वाले गायकों को भी मैंने सुना है। मैंने देखा कि उन्होंने इस स्वर का प्रयोग अवरोह में किया था। यह विशेष बुरा नहीं दिखाई दिया। मेरे गुरु 'विभास' को औड़व रूप में गाते थे। "मारवा" थाट का प्रकार वे अवश्य सम्पूर्ण गाते थे। पूर्वी थाट में भी एक प्रकार का विभास गायक कभी-कभी गाते रहते हैं।

प्रथम तो तुम्हारे मन में यही प्रश्न उत्पन्न होता होगा कि "विभास" नाम क्या है? "विभास" एक प्रकाश वाचक शब्द ज्ञात होता है। "विभावसु" एक सूर्य का नाम है। कदाचित् इस शब्द से ही इस विभास नाम का थोड़ा बहुत सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। यह हम भी देखते हैं कि इस राग का गायन-समय सूर्योदय काल माना जाता है। यह बहुमत है कि विभास की प्रकृति बहुत गंभीर है। प्रथम तो प्रातःकाल का समय ही गंभीर रागों के अनुकूल होता है। ठीक है न? इस पवित्र समय में उत्तम संस्कार वाले गायक ने यदि भक्ति रस पूर्ण कोई गीत सुनाया तो निश्चय ही उसका परिणाम अच्छा होगा। मेरे कहने का उद्देश्य यह हरगिज नहीं है कि विभास में शृङ्गारिक पद्य कभी कोई नहीं गाते। अपने बड़े-बड़े गायक तो अधिकांश रूप में इसी प्रकार के ही गीत सुनाते हैं, परन्तु मैं इस समय का महात्म्य बता रहा था।

प्रश्न—विभास में वादी स्वर कौनसा मानना चाहिये?

उत्तर—वादी धैवत मानते हैं। उस वादी स्वर पर देर तक ठहरकर आगे पंचम पर आकर जब गायक विश्रान्ति लेता है तब श्रोताओं के हृदय पर कुछ विलक्षण ही परिणाम होता है। यह तुम्हें स्मरण ही होगा कि यही ध, प, की जोड़ी देशकार में भी मैंने

महत्वपूर्ण बताई थी। कोई-कोई गायक अपना अनुभव सुनाते हैं कि विभास के रे॒ ध॒ स्वर भैरव के रे॒, ध॒ स्वरों से कुछ ऊँचे होते हैं। उनके कथन में कितना तथ्य है, यह अवकाश में तुम्हें देखना होगा। राग के अलंकार पसन्द करना गायक की खुशी पर निर्भर है। अभी तो मेरा कथन इतना ही है कि विभास के ऋषभ धैवत कोमल हैं अर्थात् तीव्र नहीं हैं। इस मत से सूक्ष्मस्वर वादी पंडितों को भी विरोध होने का संदेह नहीं रहता। "ध॒, प" स्वर सुन्दर रूप में आगे बढ़ाकर गाना सीख लो, फिर तुम्हें कोई दूसरी उलझन नहीं है। मैं इसे किस प्रकार उच्चारित करता हूं, उसे ध्यानपूर्वक देखलो, जिससे तुम्हें अच्छी तरह अनुकरण करना आ जावेगा। सूक्ष्म अथवा अलंकारिक स्वर सावकाश गाई हुई चीजों में तो थोड़े बहुत देखे जा सकते हैं, परन्तु तानबाजी में गायक के स्वर सदैव कितने आन्दोलन के रहते हैं, यह शोध करना तुम्हारे जैसों को कठिन ही होगा। हां, कितनी ही जलद लय में कोई क्यों नहीं गावे तो भी स्वरज्ञानी श्रोता को इतना तो तत्काल समझ में आ जावेगा कि उसके स्वर कोमल हैं या तीव्र।

प्रश्न—भला, यह किस प्रकार समझा जाता होगा कि द्रुत गायन में गायक के स्वर योग्यस्थान पर लगते हैं या नहीं?

उत्तर—रागों के नियमित अङ्ग, नियमित स्वरसमुदाय में आते हैं और वे बारबार सुनने से श्रोताओं के हृदय में जम जाया करते हैं। राग का सम्पूर्ण प्रभाव श्रोताओं के कानों पर तत्काल हो जाता है और वे यह समझ लेते हैं कि यह ठीक है अथवा दोष-युक्त है। मैं यह नहीं कहता कि यही कसौटी सर्वथा समाधानकारक है, परन्तु आन्दोलनों से स्थापित किये हुए स्वरों से सीखे हुए गायक आजकल हमारे यहां नहीं हैं और न ऐसे श्रोता ही हैं जो कि आन्दोलनों की तराजू लेकर रागों की परीक्षा करते हों। अतः यह कहना गलत नहीं है कि रागों की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता उसके प्रभाव पर अथवा परिणाम पर निर्भर हो जाती है। अब इसके आगे रागों के श्रुति कोष्ठक प्रसिद्ध होंगे वे समाज में निर्विवाद रूप से लोकप्रिय होंगे, उन्हें स्वीकार कर गायक तैयार होंगे। समस्त देश में एक ही स्वरूप की सङ्गीत पद्धति होगी; बारह स्वरों की सहायता से सङ्गीत-पद्धति का वर्णन करने वाले प्राचीन एवं अर्वाचीन पंडित अलज्ञ ठहराये जायँगे, परन्तु अभी इस बात को बहुत समय लगेगा। अभी तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। प्रथम तो जलद तानों के स्वर पहिचानने वाले ही थोड़े मिलते हैं, फिर उन स्वरों के आन्दोलनों को तो शायद ही कोई परखता होगा तो भी हम ऐसी कोई बात नहीं कहेंगे जो शास्त्रीय प्रगति के लिये घातक हो।

विभास राग में पंचम स्वर बहुत मधुरता पूर्वक लगाना सीखना चाहिये। इसके लिए गायक कहते हैं कि—"यह स्वर चमकता हुआ होना चाहिये।" एक दिन एक गायक ने इस स्वर को वर्ज्य कर इस राग को गाने का साहस किया, परन्तु उसका प्रयत्न बिलकुल बेकार दिखाई दिया। श्रोताओं का बहुमत यही निश्चित हुआ कि यह गायक की ज्यादती ही थी। प्रथम तो श्रोतागण कोई नवीन रागस्वरूप समझ कर स्तब्ध बैठे रहे, परन्तु आगे देखते हैं कि उस उस्ताद ने एक प्रसिद्ध ध्रुपद को आजादी से तोड़-मरोड़ कर उसे ख्याल के रूप में उपस्थित किया और उसमें अण्ट-शण्ट तानें लगाने लगे! यह गीत एक बहुत प्राचीन विभास का ध्रुपद था और श्रोताओं में से दो-चार व्यक्तियों को मालूम भी था।

यदि यह प्रसिद्धि प्राप्त गायक न होता तो वास्तव में लोग वह चीज़ वहीं पर प्रत्यक्ष में गा दिखाते और उसको परेशान कर देते।

प्रश्न—क्यों गुरुजी! इस तरह से तो ये गायक लोग श्रोताओं की श्रद्धा का फायदा उठा लेते हैं! हमें उसकी भाषा चाहे समझ में न आती हो, परन्तु वह चाहे जो कुछ बड़बड़ाता रहे और हम सिर हिलाते रहें। पञ्चम वर्ज्य करने से आगे उसका राग कैसा क्या रहा?

उत्तर—पञ्चम वर्ज्य करने से तीव्र म और तीव्र ध स्वर उसे ग्रहण करने पड़े। इनसे तानबाजी कैसे हो सकेगी? कोमल म और कोमल ध एक के बाद एक उससे गाते नहीं बने। परिणाम यह हुआ कि उसका राग हिंडोल और सोहनी का एक बेढब मिश्रण दिखाई देने लगा। गायन का रङ्ग नहीं जमा। जिन लोगों का ध्यान तबले के सम की ओर अधिक था, वे प्रत्येक सम पर सिर हिलाते थे, परन्तु आगे जाकर स्वयं गायक ही रुक गये। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि विभास यदि गाया जावे तो पञ्चम स्वर अवश्य लिया जावे। इस राग में गांधार और पञ्चम की संगति बहुत मधुर होती है। विभास राग का स्वरूप स्मरण रखने के लिये एक सरल युक्ति है। स्थूल मान से यह स्मरण रखना चाहिये कि भैरव थाट में विभास का सम्पूर्ण 'चलन' देशकार राग जैसा है। देशकार में रे ध स्वर हम तीव्र मानते हैं और ये ही स्वर विभास में कोमल हैं। जिस तरह कोई-कोई विभास में निषाद ग्रहण करना पसन्द करते हैं, उसी प्रकार देशकार में भी निषाद लगाने वाले निकल आयेंगे। रिषभ और धैवत स्वर कोमल तथा मध्यम और निषाद वर्ज्य करने वाला एक सायंकालीन राग 'रेवा' और भी है, परन्तु वह विभास से सरलता से अलग किया जा सकता है। उसका वर्णन आगे आयेगा।

प्रश्न—मालूम होता है, इस राग में वादी कोई पूर्वाङ्ग का ही स्वर होगा?

उत्तर—हां, इस राग का वादी स्वर षड्ज या गांधार माना जाता है। इसे मान लेने पर राग पर प्रातःकाल की छाया बिलकुल नहीं पड़ती। अपने सङ्गीत की अनेक खूबियों में से यह भी एक खूबी है। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। मेरे गुरुदेव का सदा कहना रहा है कि प्रभात व संध्या के रागों का योग्य वर्गीकरण मध्यम स्वर और वादी स्वर की सहायता से किया जा सकता है। इसे करने से पद्धति में बहुत कुछ सरलता हो जावेगी। उनका यह कथन मुझे भी सत्य प्रतीत हुआ, परन्तु यह कार्य साध्य होने के लिये समाज को पहिले रागस्वरूपों के विषय में एकमत होना चाहिए। हमारे अज्ञ गायकों ने कुछ राग व्यर्थ ही भ्रष्ट कर डाले हैं और केवल अपने कण्ठ की तैयारी के बल से थोड़े बहुत लोक-प्रिय कर लिए हैं, यह हमें दिखाई पड़ता है। इन रागों को वास्तविक मूलरूप देने का कार्य अब बहुत ही जोखिम का होगा। अभी तो हम इतना ही समाज के सम्मुख नम्रतापूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें कि प्रचार कैसा है और शास्त्र में क्या है? अपने पास का हम कुछ भी नहीं कहने वाले हैं। एक बार यह समझ लिया गया कि सुधार होना आवश्यक है, फिर यह अपने आप समझ लिया जावेगा कि वह कहां और किस प्रकार किया जाना चाहिए। अस्तु—

प्रश्न—विभास का कौनसा मुख्य अङ्ग हमें ध्यान में रखना है ?

उत्तर—ऐसा याद रखो—"ध ध प, ग प ध प ग रे सा" इस प्रकार से यदि तुमने अपने राग का उठाव किया, तो तत्काल ही श्रोताओं को विभास जान पड़ेगा। धैवत को अच्छी तरह लम्बा करना है। इसे भैरव के धैवत जैसा आन्दोलित नहीं करना चाहिये। 'प, प, प ध ग' यह टुकड़ा भी तुम्हें बार-बार दिखाई देना सम्भव है। गांधार और पञ्चम की संगति बहुत मधुर होने के कारण 'ग प, प, ध प, ग प ग रे सा' स्वर अधिक आयेंगे। प्रातःकालीन राग होने के कारण इसका उत्तरांग प्रबल है। मेरे गुरु ने एक बार सूर्योदय के समय शान्त-चित्त से और बड़ी गम्भीर आवाज से 'ध ध, सां सां ध प, प, प ध, प, ग रे सा' इस प्रकार एक चीज शुरू कर यह राग भैरव से किस प्रकार भिन्न किया जाता है, यह दिखाया था। 'प, ग रे सा' स्वरसमुदाय गाने में उन्होंने बड़ी कुशलता दिखाई थी। इन स्वरों को झटके से उच्चारित करने में ही सारी खूबी दिखाई दी। रिषभ पर किंचित मात्र आन्दोलन लेना उपयोगी नहीं होता। इसी कारण से कोई-कोई कहते हैं कि विभास में सम्वादित्व गांधार को देना चाहिये। रिषभ की अपेक्षा यही स्वर अधिक उपयोग में आता है और शोभनीय भी होता है। विभास में अधिकांश पंचमान्त तानें लेनी चाहिये, इससे श्रोताओं पर इसका प्रभाव अच्छा होगा।

प्रश्न—क्या इस प्रकार की तानें शोभनीय होंगी:—

धधप, गप, धप, गरेसा; सारेसा, गपधप, गपधसांधप, धधप, सारेगप, सांधरेंसांधप, गपधप, गरेसा, ध, प।

उत्तर—हां ये अच्छी रहेंगी। आगे अन्तरा कैसे लोगे ?

प्रश्न—वह इस प्रकार लेंगे। गप, धसां, सां, सांरेंसां, रेंगंरेंसां, सांधप, पधगप, सांधप, गपधप, गरेसा। क्या यह ठीक रहेगा ?

उत्तर—ठीक है ! जोगिया में निषाद स्वर आरोह में वर्ज्य होता है। यह मालूम है न ?

प्रश्न—यह हमारे ध्यान में है। जोगिया के अन्तरे में—'प प ध सां, सां रें रें सां, मं रें सां, नि ध, नि ध प, इस प्रकार किया जायेगा। विभास में 'प ग प प ध ध, सां, सां, रें सां, सां ध सां, रें रें सां, ध प, ग प ध ध, सां, ध प, ग ध प प ग, ग रे सा' इस प्रकार से जोगिया बिलकुल टाला जा सकेगा। भैरव तो सम्पूर्ण ही है और गुणक्री, सावेरी, रामकली आदि रागों में मध्यम स्वर पर ही बहुत कुछ राग वैचित्र्य निर्भर है। अतः इन रागों से विभास की गड़बड़ नहीं हो सकती।

उत्तर—इन सभी महत्वपूर्ण बातों को तुमने अच्छी तरह ध्यान में रखा है। यह मैं कह चुका हूं कि कोई-कोई गायक अवरोह में निषाद का थोड़ा सा उपयोग करते हैं। यदि तुम्हें भी इसका प्रयोग करना हो तो आरोह में बिलकुल नहीं किया जावे, तभी अच्छा रहेगा। अवरोह में 'ध नि ध प, सां ध, प ग प, ग रे सा' इस प्रकार यदि इस स्वर को लिया गया तो यह विशेष रागहानि नहीं कर सकेगा।

तार षड्ज पर थोड़ा ठहर कर फिर धैवत पर आ जाने से निषाद का संसर्ग हटकर इष्ट परिणाम हो जायेगा। यह मैं किस प्रकार से करता हूं, इसे ध्यान से देखलो, तो तुम्हें तत्काल ही सध जाएगा। 'ग प धु प, ग, रे सा, ग प धु, प' इतने ही स्वर प्रथम अच्छी तरह तैयार कर लेने चाहिए, क्योंकि विभास की पकड़ 'ग प, धु, प' है। आगे फिर छोटी-छोटी तानों से रागविस्तार किया जावे। देखें तुम किस प्रकार करते हो?

प्रश्न—सा, ग प धु प, ग ग धु प ग प ग रे सा, प़ सा रे सा, ग प धु प ग रे सा, सा रे सा, धु, नि धु प, सां धु प, ग प, रें सां धु प, धु धु प ग प, धु प ग रे सा, धु, धु, प, सा सा रे सा धु़ सा धु़, प़, प़ धु़, सा, ग प धु प ग रे सा।

उत्तर—शाबास! शाबास!! मेरा कथन अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आता जा रहा है। राग की गंभीरता अवश्य अच्छी तरह सँभालते रहना चाहिये। 'धु प, धु प, ग प धु, सां धु, प, रे ग प, रें, सां, धु, सां धु प, धु धु प ग रे, सा' ये स्वर सावकाश रीति से गाने पर मनोस्थिति कुछ विलक्षण ही हो जाती है। तार स्थान में गांधार के ऊपर जाने की आवश्यकता नहीं है, वहां यदि खींच तानकर धैवत, पंचम लगायें, तो भी शायद उतने मधुर नहीं हो सकेंगे। कोई यह भी कहेगा कि प्रातःकाल के समय तार स्थान का वैचित्र्य अब समाप्त होता जा रहा है। विभास का आरोह अवरोहः—सा रे ग प धु सां। सां धु प ग रे सा। इतना ही अभी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिये क्यों कि अपना विभास-औडव है। यहां बीच में ही मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। यदि मैं विभास में "सा, रे रे सा, रे ग रे प ग रे सा, रे ग, प ग धु प ग रे ग रे सा' इस प्रकार का स्वर—भाग अधिक आगे लाऊँ तो बताओ क्या हो जायेगा?

प्रश्न—यहां श्रोताओं को किसी सायंकालीन राग का आभास होगा। हम अभी यह तो विश्वासपूर्वक नहीं बता सकेंगे कि अमुक राग होगा, परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि प्रातःकाल का रंग अवश्य ही कम हो जावेगा।

उत्तर—यह तुमने ठीक बताया है। ऋषभ बढ़ा देने से हिन्दुस्थानी 'श्रीराग' आगे आ जायेगा और गांधार बढ़ा देने से 'रेवा' राग दिखाई देगा। विभास राग में जिस प्रकार तार सप्तक की अधिक आवश्यकता नहीं रहती, उसी तरह मन्द्र सप्तक में भी अधिक नीचे नहीं जाना पड़ता। उत्तम गायकों को सुनकर इस बात को ध्यान में जमा लेना चाहिये। परन्तु वे गायक अपनी चीजें सम्पूर्ण व वास्तविक रूप से गाने वाले अवश्य होने चाहिये।

प्रश्न—यह आप क्या कह रहे हैं? मालूम होता है कि अधूरे गीत गाने वाले गायक भी मिल सकते हैं?

उत्तर—हां, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आजकल इस प्रकार के गायक भी दिखाई देने लगे हैं। ये लोग खुशी-खुशी घण्टे दो घण्टे तक चीखते रहेंगे और इतनी अवधि में चार-पांच रागों की लँगड़ी-लूली चीजें भी गाने का प्रयत्न करेंगे, परन्तु मजा

यह है कि उकता देने वाली पुनरुक्ति-युक्त तानबाजी करते हुए ये प्रत्येक चीज़ अधूरी रख देंगे। ये ऐसा क्यों करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जा सकता है। जैसे-उन्हें स्वतः को उत्तम प्रकार से तालीम नहीं प्राप्त हुई होगी, समाज में गाते समय मनचाहे शब्दों को लेकर वे गाते होंगे । किसी प्राचीन और प्रसिद्ध चीज़ को रूपांतरित करते हुए गाने में उन्हें यह भी भय रहता होगा कि श्रोताओं में से किसी को मूल चीज़ आती होगी, साथ ही उन्हें यह डर भी रहता होगा कि कोई हमारी चीज़ सुनकर नहीं उड़ालें या अन्तरे में रागभिन्नता सँभालना नहीं आता होगा, आदि अनेक कारण अधूरी चीज़ गाने के हो सकते हैं। इस प्रकार के गायकों को हम कभी भी उच्चस्तर का नहीं मान सकेंगे और उनके इस प्रकार के कार्य को कभी भी प्रोत्साहन नहीं देंगे। अन्तरा व स्थाई आदि गीतों के अवयव उत्तम घरानेदार गायक अपने-अपने घरानों के प्रसिद्ध ढङ्ग से गाते हैं। किसी अधूरे गायक का भ्रष्ट गायन सुनकर महफिल से बाहर होने पर श्रोतागणों को आपस में इस प्रकार चर्चा करते हुए मैंने सुना है—'क्यों जी ! इस गायक ने जो दूसरी चीज गाई थी, वह कैसी थी ? मैंने यही चीज़ अमुक खाँ के मुँह से अमुक राग में सुनी थी। परन्तु इसने तो अन्तरा ही नहीं गाया। इसमें कहीं-कहीं दोनों ऋषभ लगाता गया, और एक दो-बार तो तीव्र धैवत भी इसमें धकेल दिया। यह तो मुझे अजीब ही अनुभव हुआ। कौन जाने, उसका यह कौनसा राग था।' यदि गायक ने अपने राग के सम्पूर्ण नियम अच्छी तरह पालन किये हों तो श्रोताओं में इस प्रकार निरुत्साह नहीं जान पड़ेगा। मैं तुम्हें बार-बार यह सुझाता हूं कि प्रत्येक उत्तम गायक यदि हो सके तो अपनी चीज़ गाने के पूर्व, राग का नाम, उसके मुख्य नियम, उसमें दिखाई देने वाले समप्राकृतिक राग, राग के अङ्ग आदि बातें श्रोताओं को स्पष्ट बता दे तो समाज में सङ्गीतज्ञान बहुत कुछ बढ़ जावेगा। कम से कम तुमसे तो मैं कहूंगा कि ऐसा करते रहना चाहिये। अस्तु, रामकली का एक औड़वसम्पूर्ण प्रकार मैं तुम्हें बता चुका हूं, उसका तुम्हें स्मरण होगा ही।

प्रश्न- जी हां, उसके आरोह में मध्यम व निषाद वर्ज्य हैं ।

उत्तर— हां, उसके आरोह और विभास के आरोह में कुछ सादृश्य दीख पड़ेगा, परन्तु यह भी भिन्न करके दिखाया जा सकता है। अवरोह अम्पूर्ण होने का भेद तो स्पष्ट ही है। रामकली में "ध़, प" इस प्रकार विश्रांति नहीं ली जा सकती और सदैव भैरव-अङ्ग दिखाने का प्रयत्न होता है। विभास में मध्यम स्वर न होने के कारण भैरव व रामकली उत्पन्न होने का महत्वपूर्ण साधन ही नष्ट हो जाता है । यह "मगरेसा" स्वरों की शरीर को रोमाञ्चित करने वाली मींड़, भैरव की एक पकड़ ही हो गई है। कुछ रागों में कुछ नियमित स्वरभाग इतने स्पष्ट होते हैं कि यदि वे राग में नहीं हैं तो बहुत कुछ साहस के साथ कहा जा सकता है कि फिर वह राग ही नहीं है। तुम्हारे इस विभास में 'ध़, प" यह छोटा सा टुकड़ा इसी प्रकार माना जाता है। मध्यम का अभाव होने से प्रभात राग भी दूर ही हो जायेगा। तुम्हारे जैसे मर्मज्ञ और चतुर अध्येताओं को लम्बे-चौड़े उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। रागों के मर्मस्थान गुरु द्वारा शिष्य को अवश्य बताये जाने चाहिये, इसीलिये मैं यह बता रहा हूं। यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि इस समय सीखने-सिखाने का ढङ्ग बदल गया है, तथापि मैं कुछ मात्रा में अपने प्राचीन ढङ्ग से चल रहा हूँ। प्राचीनकाल का "गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।" यह मार्ग मैं पसंद

नहीं करता क्योंकि अब ऐसा करने की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती। आज भी अपने कुछ प्रसिद्ध गायक इसी मार्ग का अवलम्बन करते हुए दिखाई पड़ते हैं और 'या तो कायदा नहीं तो फायदा' इस प्रकार का सिद्धांत हमें बताते हैं, परन्तु इस सिद्धांत को अमल में लाने योग्य कला उनमें नहीं होती।

प्रश्न—"कायदा नहीं तो फायदा" अर्थात् ?

उत्तर—इसमें कोई बड़ा भारी रहस्य नहीं है। मैंने तुम्हें अभी जो संस्कृत श्लोकार्ध सुनाया है, उसी का यह रूपांतर समझना चाहिये। इसको सङ्गीत-परिभाषा में 'उस्तादी-शागिर्दी' कहते हैं। हम इसे गुरु-शिष्य का नाता कहेंगे। 'कायदे से' सीखने वाले शिष्य अपने गुरु के घर का काम नौकर के समान करते हैं। इस प्रकार सीखने वाले शिष्यों को प्रथम 'सुर-भरना' फिर कुछ छोटे व सरल पलटे सिखाये जाते हैं। इसके पश्चात् दस-पांच ध्रुपद या 'अस्थाई' (ख्याल) बताये जाते हैं। गुरु गाने लगे कि उसके साथ-साथ इन्हें भी चाहे जैसी तान लगाने की छुट्टी रहती है। इस प्रकार करने से दो बातें सध जाती हैं। प्रथम तो शिष्यों की झिझक दूर हो जाती है और वे लोगों में थोड़े आगे आने लगते हैं, दूसरे उनकी इच्छित तानों से गुरु के गायन का रंग अधिक जम जाता है। गुरु को विश्रांति मिलती है, यह तो और भी एक लाभ है। जो गुरु कपटी होते हैं, वे अपनी चीजें जितने मुक्त हृदय से अपने लड़के, बच्चों, को सिखाते हैं, उस प्रकार इन पराये पुत्र शिष्यों को नहीं बताते। वे कहते हैं—'औलाद का हिस्सा औलाद को ही मिलेगा।' बाहिरी शिष्यों से गुलामी करवाने की लज्जा उन्हें बिलकुल नहीं होती। अनेक गायक जो बांकी-टेढ़ी तानबाजी कर पेट भरने वाले हमें दिखाई पड़ते हैं, उन्हें इसी प्रकार के फँसे हुए शिष्यों में से समझना चाहिये। वे टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी भाषा बोलकर उत्तर हिन्दुस्तान से सीखकर आने का ढोंग करते हैं, यह सत्य है, परन्तु उनमें बहुत ही कम कला होती है। उनसे यदि किसी ने दो-चार मुद्दे के प्रश्न पूछे तो वे तत्काल ही गड़बड़ा जाते हैं, परन्तु वे सब ऐसा ही करते रहते हैं।

विभास के सम्बन्ध में मैं तुम्हें बहुत कुछ महत्वपूर्ण बातें बता चुका हूं। यह प्रातःकालीन राग है, इस प्रकार ग्रन्थकार भी कहते हैं। ग्रन्थों में जहां राग-समय योग्य जान पड़े, वहां वह निःसन्देह स्वीकार कर लेना है। जहां पर असम्बद्धता हो, वहां प्रचार को ग्रहण करते हुए चलना ही अधिक सुविधापूर्ण होगा।

प्रश्न—अपने हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के रागों का गायन बताने वाला एक कोष्ठक यदि कोई बनाले, तो अच्छा होगा। ठीक है न ?

उत्तर—सङ्गीत कल्पद्रुमकार ने इस प्रकार एक प्रयत्न किया है, और अपने मतको "इन्द्रप्रस्थमत" के नाम से बताया है। यह ग्रन्थकार अधिक पुराना नहीं है, अतः मैं समझता हूँ कि उसका मत आज के प्रचार के लिये काम आ जाने योग्य है।

प्रश्न—तो फिर हमें उसका मत बता दीजिये ? उसका जितना उपयोग हो सके, उतना ही हम करलें।

उत्तर—ठीक है, सुनाता हूँ। इसमें कविता की ओर ध्यान न देकर, आशय की ओर लक्ष रखना ही अच्छा होगा:—

पहिले भैरव राग है दूजे कौशिक जान।
तृतिय हिंडोल बखानिये चौथे दीपक मान ।।
पंचम श्रीराग गुनि कहे छठ्ठे मेघ प्रमान।
पांच-पांच भार्या कहीं अष्ट पुत्र प्रति जान ।।
भैरवी रामकरी पुनि टोडि गुर्जरि नारि।
भैरव रागकि रागिणी मत संगीत हो सारि ।।
खंबावति वागीश्वरी ककुभ परज मनमान।
कह्यो मत संगीत तें और शोभनी जान ।।
प्रथम बसंती पंचमी बेलावली बिचारि।
ललित देशाखी संग है हिंडोलहि की नारि ।।
धन्नाश्री मुलतानि नटि जयतश्री पुन जान।
भीमपलासी रागणी दीपक संग बखान ।।
मालवि त्रिवणी गौरिका पूरबि टङ्की ठान।
श्रीराग की रागिणी संगीत मत मन मान ।।
सोरट मल्लारी लिये सारंग बहुरी मान।
बड़हंसी मधुमाधवी मेघ जोषिता जान ।।

अब रागों का समय सुनो:—

प्रातसमे में गाइये भैरव प्रथम सुराग।
ललित भैरवी रामकलि खट गुनकलि अनुराग ।।
देशकार बीभास पुनि भटियारी भंखार।
बसंत बहार पंचम पुनि हिंदोल अरु हीलार ।।
वेलावली अलायिका सरपरदा काकूभ।
देवगिरी शुक्ला शुभा प्रहर चढ़े दिन धूप ।।
लच्छशाख भूशाख पुनि रामशाख देशाख।
सुहा सुघरै सूही शुभा देवगंधारी भाख।
डेढ़ प्रहर दिन चढ़त ही टोड़ी गुर्जरि गान ।।
देशी आसा जौनपुरि टोड़ि बरारी जान ।।
सारंग सुध बिन्द्राबनी बड़हंसी सामंत।
लंकदहन लुम लूहरी दो पहरे मेवंत ।।

मेघमल्लारी गौड़ पुनि गौड़गिरी जलधार ।
नटमल्लारी सूर पुनि रामदासि मल्लार ॥
मुलतानी अरु धनासिरि भीमपलासी जान ।
बरवा धानि अहीरिका तृतिय प्रहर कर गान ॥
जंगला मंगल पीलु पुनि सिंधु तिलंग प्रदीप ।
दीपक-दीपकि काफि पुनि चौथे प्रहर प्रलीप ॥
जैतश्री श्री मालसिरि मालश्री गौराह ।
गौडसारङ्ग अरु मारवा पूर्वी और पूर्व्याह ॥
त्रिवणी श्रीगौरी बहुरि चैती टंकी मान ।
चौथे प्रहर दिन अन्त में श्रीटंकी कर गान ॥
प्रथम जाम रजनी समै कल्याणी सुध गान ।
हेम खेम एमन पुनि शाम हमीरहि जान ॥
जेत भूपाली पूरिया कामोदी कर गान ।
प्रहर रजनि जातें गुनी छायानाट बखान ॥
डेढ़ प्रहर निसिके समै नायकी वख्त प्रमान ।
अष्टादश है कानरा कौशिक कान्हर जान ॥
अड़ाना शहाना शोभना सोहन सोहनि मान ।
केदारा मलुहा पुनि नाटकेदार बखान ॥
विहंग बिहारि बिहागरा बिहाग पुनि विनोद ।
भरन अरन संकीर्ण अरु शंकरा आमोद ॥
सोरट देश सौराष्ट्रिका सिंदूरा सावेरि ।
परज खंबावति सुखावती कलिंगरा आभेरि ॥
मालकोश और कौशिकी कुसुमकास कर्नाटि ।
ललित कलिंग लिलावती अरुणोदय में बांटि ॥
सोलै सहस्र और आठसौं राग-रागिनी जान ।
बृन्दाबनहरि रास में गोपिन किये हैं गान ॥
देश-देश के भेद में भिन्न-भिन्न है नाम ।
मारग ब्रह्मादिक कहे देशी दशहूं धाम ॥

इनमें अधिकांश राग अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति के हैं। इतना ही नहीं, अपितु इनका समय भी हमारे गायकों को स्वीकृत हो जायेगा। कल्पद्रुमकार का शुद्धस्वर थाट बिलावल

ही होगा, यह इस ग्रन्थ के पाठकों को अनुभव होने लगता है। वह कुछ भी रहा हो, परन्तु उसने अपने प्रचलित संगीत पर जो उपयुक्त जानकारी प्राप्त की होगी, उसे हम हृदय से स्वीकार करेंगे और इसके लिये उसका आभार भी मानेंगे। जहां उसने प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण व्यर्थ ही तोड़-मरोड़ दिये हैं तथा उनमें अपने पास से कुछ जोड़ दिया है, वहां हम उसकी प्रशंसा कैसे कर सकेंगे? इस प्रकार से मिथ्या प्रशंसा करने पर उस ग्रन्थकार के प्रति बड़ा अन्याय होगा, और हमारी गुण ग्राहकता की भी बहुत कुछ परीक्षा हो जायेगी। एकाध बार स्वल्प गुणों की अधिक प्रशंसा खप जायेगी, परन्तु दुर्गुण की थोड़ी सी प्रशंसा भी शोभनीय नहीं हो सकेगी। सङ्गीतकल्पद्रुम में "राग-मिलाप" शीर्षक के अन्तर्गत कुछ हिन्दी दोहे दिये गये हैं; वे भी कहीं-कहीं उपयोग में आने योग्य हैं। ये दोहे एक साथ की अपेक्षा भिन्न-भिन्न राग बताते हुए, तुम्हें सुनाते जाना अधिक सुविधाजनक होगा।

प्रश्न—तो फिर जो राग आप हमें बता चुके हैं, उनके दोहे भी सुना दीजिये?

उत्तर—ठीक है, सुनाता हूं:—

टोडी गौरी मिलत ही रामकली सुर होय।
संपूरन है सप्तस्वर प्रथमहि भैरव जोय॥
भैरव गुर्जरि टोडि मिलि रामकली प्रकटाय।
देशकार मार्वा मिली गौरासुरहुँ मिलाय॥
परजरु ललिता सम मिले भटियारी सम भाग।
राग कलिंगा होत है उपजत है अनुराग॥

किन्तु इन दोहों की ओर देखकर तुम्हें अपने राग का नियम भ्रष्ट नहीं करना चाहिये। यह तो तुम्हारे मनोरंजनार्थ सुना रहा हूँ। यह बात नहीं है कि इनका लेखक कोई अधिकारी व्यक्ति रहा होगा। ये दोहे कल्पद्रुमकार ने कहीं से उद्धृत कर लिये होंगे। संस्कृत ग्रन्थों में भी हमें रागमिश्रण दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ रागतरंगिणी ही देखो न? इस ग्रन्थ में इस प्रकार के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। ये सभी श्लोक मैं कभी न कभी आगे सुना दूंगा। फिलहाल उन श्लोकों के बिना हमें कुछ भी अड़चन नहीं है। कल्पद्रुम में भी रागमिश्रण प्रकरण संस्कृत में लिखा हुआ मैंने देखा है। आगे कभी अवकाश निकालकर उसे तुम्हारा पढ़ लेना ही पर्याप्त है। मैं बीच-बीच में दोहे सुनाना केवल इसीलिये पसन्द कर रहा हूं कि अब कल्पद्रुम ग्रन्थ सहज में प्राप्त होने योग्य नहीं है, और यह भी सम्भव नहीं कि वह निकट भविष्य में पुनः प्रकाशित हो सके। अच्छा, अब अपने विभास राग के सम्बन्ध में सारामृतकार क्या कहता है, यह भी सुनो:—

मेलान्मालवगौलीयादुत्पन्नोऽयं विभासकः।
महीनः षाडवः सांशग्रहः प्रातः प्रगीयते॥

यह आधार हमारे लिये विशेष उपयोगी है। इसमें विभास का थाट मालवगौड़ बताया है, वह ठीक ही है। हम औडव प्रकार गाते हैं और यह षाडव है, इस विषय में मैं बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—अब हमें प्रचलित राग-स्वरूप के समर्थन करने वाले ग्रन्थाधार सुना दीजिये?

उत्तर—वे इस प्रकार हैं:—

मेले भैरवके प्रोक्तो मनिहीनो विभासकः ।
औडवो धैवतांशोऽपिःपंचमन्यासमंडितः ॥
संगतिर्गपयोश्चित्रा सुशांतप्रकृतिस्तथा ।
उत्तरांगप्रधानोऽयं प्रभातार्हो मतः सताम् ॥
धैवतात्पंचमे न्यासो रागेऽस्मिन् क्रियते यदा ।
न कोऽपि शक्नुयात् ख्यातुं श्रोतृचित्तगतं सुखम् ॥

—लक्ष्यसंगीते ॥

चतुर पंडित का किया हुआ, यह लक्षणों का विवेचन यथा योग्य ही हुआ है। यह पण्डित आगे कहता है:—

अवरोहे मनित्यागे कृतो रामकली भवेत् ।
न कोऽप्यन्यो मनित्यक्तो रागः प्रातः सुलक्ष्यते ॥

प्रश्न—इस पंडित का यह कथन ठीक है। यह सब हमारे ध्यान में अच्छी तरह आ गया है। यह युक्ति इस राग को ध्यान में रखने के लिये उत्तम है।

उत्तर—हां, आगे देखो:—

सायंकाले यथा रेवा तथा प्रातर्विभासकः ।
गांशिकाद्या मता तज्ज्ञैर्द्वितीयो धांशको मतः ॥
भैरवस्तु सुसंपूर्णो गुणक्रीः स्यान्निगोज्झिता ।
रामकेली मनित्यक्ता ह्यनुलोमे सुसंमता ॥

प्रश्न—यह सब हमें अक्षरशः ठीक मालूम होता जा रहा है।

उत्तर—ठीक है, अब ये एक दो आधार और भी सुनो:—

विभास इह वर्ज्यमध्यमनिषादकस्त्वौडुवो ।
रिकोमलधकोमलो भवति तीव्रगांधारकः ॥
अमात्यऋषभस्वरो भवति धैवतोऽशस्वरो ।
मनो हरति शृण्वतामुषसि पंचमन्यासतः ॥

—कल्पद्रुमांकुरे ॥

विभासो मनिहीनस्तु कोमलर्षभधैवतः ।
धवाद्यृषभसंवादी गीयते प्रातरौडुवः ॥

—रागचन्द्रिकायाम् ॥

प्रश्न—अब हमें विभास राग का स्वर-विस्तार कर दिखाइये ?

उत्तर—ठीक है, दिखाता हूँ:—

विभास

धधुपप, गपधुप, गरेसा, सारेसा, गप, प, धु, प, सा, रेगप, धुधुप, गपधुप, गरेसा, धुधु, प।

सारेसा, धुधुपप, धुसा, रेरेसा, गपधुपगरेसा। धुधु, प। सारेसा, गरेसा, गगपपगरे, सा, सारेगप, गप, धुधुप, गपधु, धुप, सां, धुप, रेग, प, धुधुप, पग, रेसा; धुधु, प।

रेरेसा, गपधुधु, सां, धुधु, प, रेंसां, धुधुप, गपधु, सां, धुप, रेगप, धुधुप, गपधुपगरेसा, धु, धु, प।

पगप, धुधु, सां, सां, सांरेंसां, सांरेंगंरेंसां, सांरेंसां, धु, प, गगपपधु, सां, धुधुप, गपधुप, गरेसा, धु, धु, प।

सारेसा, सारेगरेसा, सारेगपगरेसा, गपधुपगसांरेंसां, धुप, गपधु, रेंसां, धु, प, पधुग प, सांसां, धुपगपधुपगरेसा, धु, धु, प।

सासा, धुधु, पधुधुप, गपधु, सांधुधुप, सागप, रेंसां, धुप, गपधुप, गरेसा, धुधु, प।

सरगम—झपताल

धु ×	धु	प	धु	प	ग	प	ग	रे	सा
रे	रे	सा	ग	प	धु	धु	प	धु	प
प	ग	प	धु	धु	सां	ऽ	सां	रें	सां
सां	रें	सां	धु	प	धु	प	ग	रे	सा

अन्तरा—

प ×	ग	प	धु	धु	सां	ऽ	सां	रें	सां
रें	रें	सां	गं	रें	सां	रें	सां	धु	प
प	धु	ग	प	धु	रें	रें	सां	धु	प
सां	रें	सां	धु	प	धु	प	ग	रे	सा

प्रश्न—अब आप कौनसा राग आरम्भ कर रहे हैं ?

उत्तर—अब हम "शिवमतभैरव" को लेंगे, यह एक बिल्कुल अप्रसिद्ध राग है। यह तुम्हें क्वचित ही सुनने को मिलेगा। प्रथम तो "शिवमत" विशेषण ही श्रोताओं को कुछ विचित्र सा लगता है। अपने प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी "शिवमतभैरव" नाम नहीं दिखाई पड़ता।

प्रश्न—हम भी यह पूछने ही वाले थे कि "शिवमत" यह कौनसा मत है ?

उत्तर—ऐसे प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देना कुछ कठिन ही होगा। प्रचार में हमारे गायक भिन्न-भिन्न मतों के नाम सुनाते रहते हैं, परन्तु कोरी नाम-सूची के अतिरिक्त उनके कथन में विशेष-तथ्य नहीं पाया जाता; क्योंकि वास्तविक रूप में उन्हें एक भी मत की यथार्थ जानकारी नहीं होती। अपने पुराणों के प्रत्येक देवता के साथ एक-एक संगीत-मत बांध देने मात्र से कौन सा कार्य सिद्ध हो जायेगा ? कल्पद्रुमकार ने इस प्रकार के अनेक मतों के केवल नाम बताये हैं। जैसे शिव-मत, भरत-मत, हनुमतमत नारद-मत, ब्रह्मा-मत, विष्णु-मत, महेश-मत, पार्वती-मत, लक्ष्मी-मत, हाहा हूहू-मत, सोमनाथ-मत, कल्लिनाथ-मत, इन्द्रप्रस्थ-मत, नन्दिकेश्वर-मत, भैरवनाथ-मत इत्यादि। इन नामों का क्या उपयोग हो सकता है ? यदि तुम समस्त देश में पर्यटन करो, तो तुम्हें ऐसा पंडित क्वचित ही दिखाई पड़ेगा, जिसे इनमें से किसी एक मत की भी अच्छी जानकारी हो। इतने पर भी, जहां दो गायक एकत्र हुए कि वे परस्पर प्रश्न करते हैं "आपका कौनसा मत ?" यह सुनकर बड़ी हँसी आती है। उनके इस प्रकार के प्रश्नोत्तरों का कुछ भी अर्थ नहीं होता।

प्रश्न—परन्तु आपके बताये हुए इस प्रश्न का उत्तर गायक क्या दिया करते हैं ?

उत्तर—वे निरर्थक रूप से, शान में आकर-उत्तर देते रहते हैं कि हम 'हनुमत-मत' गाते हैं। इन सभी मतों की अपेक्षा, रत्नाकर-मत, कलानिधि-मत, रागविबोध-मत, चन्द्रोदय-मत, रागमाला-मत, अनूप-मत, तरंगिणी-मत, पारिजात-मत, आदि कहना अधिक शोभनीय होगा, क्योंकि ये सब अच्छे व्यवस्थित पद्धति ग्रन्थ तो हैं। कल्प-द्रुम के समर्थन में "शिवमत" है, परन्तु इस मत का कौनसा ग्रन्थ है, और उस ग्रन्थ को कब तथा किसने लिखा, इन प्रश्नों का उत्तर इस ग्रंथ में बिलकुल नहीं मिलता। यह जानकारी एकत्र करने का प्रयत्न मैंने किया था, परन्तु मुझे इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। मुझे याद है, बंगाल प्रान्त में प्रवास करते समय मेरी भेंट वहां के एक प्रसिद्ध विद्वान से हुई थी। मेरी भेंट होने के पश्चात् उस पंडित ने मुझसे सर्वप्रथम यही प्रश्न किया कि "आप कौनसा मत मानते हैं ?" मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया "महाराज ! जो मत सुव्यवस्थित और सुनियमित होगा, वह मेरे लिये सदैव आदरणीय है।" यह सुनकर वह पंडित कहने लगा—"मैं संगीत-महेश मत के सिवाय अन्य सभी मतों को झूंठा समझता हूं। रत्नाकर वत्नाकर उसके सामने मैं कौड़ियों की कीमत का समझता हूँ ! नाद शास्त्र के पाश्चिमात्य सभी ग्रन्थ मैं देख चुका हूं। Helmholtz, Tyndal, Huxley आदि विद्वानों की गलतियां दिखा सकता हूं।" उसके इस कथन की अतिशयोक्ति मुझे सहज ही समझ में आ गई, क्योंकि उसे स्पष्ट रूप से इंग्लिश बोलना भी नहीं आता था। अल्प-शिक्षा होने पर भी सम्भवतः उसके संग्रह में कोई महत्व-पूर्ण जानकारी दिखाई पड़ जावे, इस हेतु से मैंने उससे वार्तालाप जारी रखा। उससे मैंने उसके आधार-ग्रन्थ

'संगीत महेश' दिखाने का बहुत आग्रह किया, परन्तु वह व्यर्थ गया। अन्त में मेरी समझ में यह आया कि ये महाशय संगीत के सहारे उदर-पोषण करने वाले एक मध्यम स्थिति के कलावन्त हैं, परन्तु इनके पास उल्लेख करने योग्य विद्या आदि नहीं है। जिस हेतु से मैं उससे शास्त्रचर्चा करने की ग़लती कर गया था उस हेतु उसके गायन-वादन सुनने का कोई अच्छा अवसर मुझे प्राप्त न हो सका। अपने इस अनुभव से मैं तुम्हें भी सावधान कर रहा हूँ कि जिस व्यक्ति से तुम सङ्गीत के विषयों में वार्तालाप कर रहे हो, उसकी आरम्भ से यह अच्छी तरह परख करते जाओ कि उसका इस विषय पर कितना अधिकार है। दूसरे सङ्गीत चर्चा करने वाले एक और वर्ग के व्यक्ति भी होते हैं, देखो—"क्या आपको इंगलिश आती है? आती है, मगर साधारण काम-काज करने योग्य आती है। बचपन में पाँच-छः पुस्तकें पढ़ली थीं; परन्तु अब अभ्यास न होने से अच्छी तरह लिखना-बोलना नहीं आता। क्या आपको संस्कृत आती है? हां, परन्तु पद्धति से सीखा हुआ नहीं हूं। इधर-उधर से कुछ जानकारी प्राप्त करली है। क्या आपने संस्कृत के संगीत-ग्रन्थों का अध्ययन किया है? ऐसा कुछ अध्ययन तो नहीं किया, परन्तु उन ग्रन्थों के कुछ रागों की जानकारी किसी-किसी के पास से कुछ मात्रा में ग्रहण करली है। मैंने स्वतः तो अधिक अध्ययन नहीं किया, परन्तु वैसे ही कुछ बातों का कुछ सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है। क्या आपको गायन आता है? गायन आता है यह तो नहीं कहा जा सकता, हां कुछ रागों के स्वर वैसे ही गुनगुना लिया करता हूँ। चार-आदमियों में बैठकर गाने के लिये कहा जाने पर यह नहीं कर सकता। किसी गायक के पास रहकर मैंने नहीं सीखा। वैसे ही गायन सुन-सुनकर कुछ कानों का संस्कार हो गया है। क्या आपको वाद्य बजाना आता है? वैसे ही सितार पर हाथ फेरता हूं, तालीम प्राप्त नहीं की। कुछ-कुछ नकल करता रहता हूं, हाथ बिलकुल तैयार नहीं है। किसी तरह स्वयं अपने को खुश कर लिया करता हूँ।" पंडितों का यह वर्ग जो प्रायः समाज में प्राप्त होता रहता है उससे सदैव दूर रहना होगा। यदि ऐसा वर्ग रुष्ट भी होता है तो भी इन्हें अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिये। अस्तु,

उत्तर की ओर प्रवास करते समय एक धूर्त पंडित से मेरी भेंट हुई थी। वे संस्कृत जानने वाले थे और उनसे मेरा बहुत कुछ वार्तालाप हुआ था। उस पंडित का प्रधान आधार ग्रन्थ "शिव-सङ्गीत" ही था!

प्रश्न—क्या आप हमें सुनायेंगे कि उनसे आपका वार्तालाप क्या हुआ था?

उत्तर—यह कुछ विषयांतर तो हो जायेगा परन्तु मेरा निश्चय तुम्हें अपने अनुभव सुना देने का भी रहा है, अतः उस वार्तालाप का कुछ अन्श सुना देता हूं। सुनोः—

मैं—महाराज! आप अपने प्रचलित संगीत का आधारग्रन्थ कौनसा मानते हैं?

महाराज—मैं शिव-सङ्गीत का अनुयायी हूँ। वह स्वयं शिवजी का ग्रन्थ है।

मैं—उस ग्रन्थ में क्या जन्य-जनक रागव्यवस्था है?

महाराज—नहीं, केवल ऐसी व्यवस्था नहीं है।

मैं—तो फिर कैसी व्यवस्था है? उसमें कुछ मुख्य राग तो माने ही गये होंगे न?

महाराज—महादेव के पांचों मुखों से पांच राग उत्पन्न हुए, वे पांच "ग्रामराग" हुए। 'शिव सङ्गीत" ग्रंथ योगशास्त्र पर है और इस शास्त्र को जानने वाले को ही उसमें

सङ्गीत सम्बन्धी जानकारी मिल सकती है। अन्य व्यक्तियों को इसमें कुछ पता नहीं लग सकता।

मैं—चलिए, मेरा वह परिश्रम बच जायेगा; क्योंकि मुझे यह जानकारी आपकी ओर से विस्तृत रूप से मिल जायेगी। मुझे योगशास्त्र नहीं आता, और अब इस अवस्था में वह शास्त्र सीखना कष्टसाध्य ही कहना चाहिए। आप "शिव-सङ्गीत" ग्रन्थ मुझे दिखायेंगे तो दो-चार दिन उस पर परिश्रम कर देखूँगा। जहां कठिनाई होगी वहां आपसे पूछ लूँगा। आपने रत्नाकर तो देखा ही होगा ?

महाराज—निस्सन्देह। रत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने अनेक गलतियां की हैं।

मैं—शार्ङ्गदेव का शुद्धस्वर थाट कौनसा होगा ?

महाराज—यह प्रश्न तुमने बड़ा "विकट" पूछा है। यह कुन्जी मैं किसी को नहीं बताता, परन्तु तुम्हारा उत्साह देखकर यह बात तुम्हें बताने की मुझे प्रेरणा हो रही है। यह जानकारी किसी दूसरे को हरगिज न बताना। रत्नाकर का शुद्ध थाट "काफी" है।

मैं—अर्थात् उसमें रे, ध तीव्र और ग, नि कोमल होंगे ?

महाराज—स्पष्ट ही है। वही उसका "षड्ज ग्राम" समझ लो। यही षाड्जी जाति भी है।

मैं—षाड्जी जाति को धैवत की मूर्छना बताया है। भला इसमें क्या खूबी होगी? प्रथम मूर्छना हुई या जाति ? इनका सम्बन्ध मुझे बता दीजिये ?

महाराज—शार्ङ्गदेव ने जाति और मूर्छना का सारा विषय गड़बड़ कर लिख मारा है। उसके लिखने से ज्ञात होता है कि उसे प्राचीन शास्त्र अच्छी तरह समझ में नहीं आये थे। यह मेरा मत है।

मैं—महाराज ! पहिले आपने पांच ग्रामराग बताये, इसके पश्चात् ?

महाराज—इसके पश्चात् प्रत्येक राग की पांच-पांच रागिनी हैं। शार्ङ्गदेव का ग्रामराग प्रपंच यथार्थ नहीं है। उसने न जाने कहां से कुछ बातें उद्धृत करदी हैं।

मैं—"शिव-सङ्गीत" में रागवर्गीकरण किन-किन तत्वों पर हुआ है ?

महाराज—उसमें स्वरों के तीन प्रकार माने गये हैं। (१) तीव्र (२) कोमल (३) समान, इन्हीं पर रागवर्गीकरण किया गया है। जिस राग में सभी स्वर तीव्र अथवा कोमल हों उसे "शुद्ध" राग कहा गया है। जिस राग में कुछ तीव्र और कुछ कोमल ऐसे मिश्रित स्वर आते हों उसे "विकृत" राग माना गया है। भैरवी, कल्याण, हिन्दोल, मालकंस, ये सब शुद्धराग हैं। शार्ङ्गदेव इन रागों के अलग ही नाम देता है। उसका भैरव वह अपना "मालकंस" उसका हिन्दोल, वह अपना बिहाग; यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। प्रत्येक स्वर के दो भाग अर्थात् अर्धान्तर हो जाते हैं। भैरवी को कल्याण की अर्धाङ्गी (भार्या या रागिनी) शास्त्रों में इसीलिये बताई है। कल्याण में पूर्णस्वर हैं और भैरवी में अर्धस्वर हैं। परन्तु पहिले "स्वर" शब्द का अर्थ तो देखो-

"स्वतो रंजयतीति स्वरः" मैं तो पाणिनि का अर्थ ही स्वीकार करूँगा। आजकल देखते हैं कि व्यञ्जनों को भी स्वर कहा जाता है। सा रे ग म प ध नि ये सभी व्यञ्जन हैं स्वर नहीं हैं। यह रहस्य किसी के ध्यान में ही नहीं आया।

मैं—परन्तु क्या शार्ङ्गदेव भी इन्हें स्वर नहीं कहता है?

महाराज—अजी, मैं तुम्हारे शार्ङ्गदेव को जानता हूं। वह काश्मीर का एक वैदिक ब्राह्मण था। दक्षिण की ओर जाकर इधर-उधर से एकत्र करके उसने अपना "रत्नाकर" खड़ा कर दिया। क्या उसे वास्तविक सङ्गीत आता था? उसकी अनर्गलव्याख्या और चाहे जैसे असम्बन्धित वर्णनों को देखकर प्रत्येक समझ लेगा कि उसे अधिक बोध नहीं था।

मैं—महाराज! यह कथन आपके जैसे महान् विद्वानों को शोभा देगा, परन्तु यदि मैं भी इसी प्रकार कहने लगूँ तो मेरी गणना पागलों में होने लगे। प्रथम तो मुझमें वैसा कहने का साहस ही नहीं हो सकता। हमारी ओर तो इस समय शार्ङ्गदेव एक देवता के रूप में पूज्य हो गया है।

महाराज—अजी! ऐसी क्या बात है? व्याकरण के अ, आ, इ, ई, आदि स्वर क्या तुम नहीं जानते? तब क्या सा, रे, ग, म ये व्यंजन नहीं हो सकते?

मैं—अहा हा! आपका कथन अब मेरी समझ में आगया। अच्छा महाराज? क्या आप मुझे यह समझा दीजियेगा कि सङ्गीत में ग्रामों की आवश्यकता कहां और कैसे हो जाती है?

महाराज—'ग्राम' शब्द गांववाचक है। "स्वराणां समूहो ग्रामः" स्वरों का समूह ही ग्राम है। अतः सा रे ग म प ध नि यह समूह "ग्राम" हो गया।

मैं—इसका क्या उपयोग है? ये तीन ही क्यों माने गये? क्या इन्हें आप थाट समझते हैं?

महाराज—यह बात शार्ङ्गदेव समझ ही न पाया। यहां भी उसने कहीं से कुछ न कुछ अनर्गल बातें नकल करली हैं। मेरे मत से प्रत्येक स्वर "ग्राम" हो सकेगा।

मैं—किन्तु ग्राम की पहिले आवश्यकता ही क्यों हुई? इसके बिना हमें क्या रुकावट होती है?

महाराज—"यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूता वसंति हि।" इस प्रकार शास्त्र में कहा गया है और वह स्पष्ट है।

मैं—मुझे यह बात समझनी है कि ग्राम मूर्छना का आधार किस प्रकार हो जाता है? ग्राम शब्द का अर्थ इस दृष्टिकोण से किये जाने पर मुझे अपने आप ही सब समझ में आ जायेगा। मूर्छना की व्याख्या "क्रमात्स्वराणां सप्तानां" इत्यादि मैंने पढ़ी है।

महाराज—यह व्याख्या बिल्कुल "गलत" (अशुद्ध) है। "मूर्छा" आना अर्थात् "गिर पड़ना" (नीचे गिरना) यह अर्थ प्रत्येक के ध्यान में आजाने योग्य है। मूर्छना का अर्थ स्वरों को "मूर्छित करना" इतना ही होगा। इसे न कहते हुए "सप्त स्वरों का आरोह अवरोह यानी मूर्छना"। मैं कहूंगा कि ऐसा कथन शार्ङ्गदेव का घोर अज्ञान है। वह था

वैदिक ब्राह्मण, उसे दक्षिण के ग्रन्थों ने संदेह में डाल दिया। यदि वह केवल उत्तर की पद्धति को पकड़े रहता तो ऐसी गड़बड़ में नहीं पड़ता। उसने दक्षिण की अनेक बातें बिना समझे बूझे व्यर्थ ही रत्नाकर में सम्मिलित करदी हैं।

मैं—कुछ न समझते हुए भी उसने इतना प्रचण्ड ग्रन्थ लिख दिया, यह बात सचमुच आश्चर्य करने योग्य है। अच्छा अभी पहिले बोलते-बोलते आप नारद-संहिता, भृगु-संहिता, वाल्मीकि-संहिता ये नाम बोल गये। क्या सचमुच इन ग्रन्थों का आज के हिन्दुस्थानी संगीत से कुछ साम्य हो जाता है ?

महाराज—भला यह संगति कैसे होगी ? इस समय सम्पूर्ण 'मनमौजी' (स्वेच्छानुसार) सङ्गीत चल गया है। इसका मेल किसी भी शास्त्र से नहीं हो सकता। मैं तो कहूँगा यह स्थिति मुसलमान गायकों के कारण ही हमारे सङ्गीत की हुई है। फिर भी यह बात नहीं कि योग्य शोधक को प्राचीन शास्त्र बिलकुल ही प्राप्त न हो सकें। उसे रत्नाकर के पूर्ववर्ती ग्रन्थ अवश्य देखने पड़ेंगे। शार्ङ्गदेव को मैं पुराने पण्डितों में बिलकुल नहीं मानता।

मैं—शार्ङ्गदेव के बारह स्वर वे ही हैं न, जिन्हें हम बाजे (हारमोनियम) पर बजाते हैं ?

महाराज—हां वे ही ! दूसरे कहां के हो सकते हैं ?

मैं—महाराज ! मूर्छना का एकाध उदाहरण भी यदि आप बतादें तो वह मेरे ध्यान में शीघ्र बैठ जायगा। यह सम्पूर्ण विषय नाद का है, इसलिये आपसे कह रहा हूँ।

महाराज—सुनो ! दरबारीकानड़ा में गांधार धैवत स्वर मूर्छित है। अब देखो, शार्ङ्गदेव क्या कहता है:—"ऐसा स्वर समूह जिसमें वर्ण और अलंकार हैं, मूर्छना कहा जाता है।" अजी ! आरोह और अवरोह हो गये तो क्या तान नहीं हो जायेगी ?

मैं—आपका कथन मैं समझ गया। भला, ग्राम दो ही क्यों हैं ? इस प्रश्न पर कल्लिनाथ कहता है:—

"ननु समूहित्वाविशेषेण सप्तानामपि स्वराणां ग्रामव्यपदेशकृत्वसंभवे कथं धरातले द्वौ ? उच्यते, शुद्धविकृतरूपेण द्विविधस्वरप्रयोगवशात्। 'द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ लोके षड्जमध्यमसंज्ञकौ' इति मुनिवचनात्। शुद्धाश्रयत्वात्षड्जग्राम आदिमो विकृताश्रयत्वाद्द्वितीयो मध्यमग्राम इति उपपद्यते।"

क्या उसके इस कथन में आपको कोई गूढ़ार्थ दिखाई पड़ता है ? क्या कल्लिनाथ की समझ में प्राचीन ग्रामों का रहस्य आ गया होगा ?

महाराज—कुछ नहीं ! मेरा मत है कि ये लोग इन बातों को कुछ समझे ही नहीं।

मैं—अपने गायक आज अति कोमल, तीव्रतर आदि सूक्ष्मस्वर मानते हैं, क्या आप भी इसी प्रकार मानते हैं ?

महाराज—निस्सन्देह ! मुझे यह व्यवहार अस्वीकार नहीं।

मैं—परन्तु आपके मत का शास्त्रीय आधार कौनसा है ?

महाराज—प्रथम तो कोमल और तीव्र नाम ही अयोग्य हैं। "विकृत" नाम ही योग्य है। "च्युत खरज, अच्युत खरज, ऐसे नाम शास्त्रोक्त हैं। "साधारण खरज" अर्थात् निषाद समझा जावे। यह खण्ड बहुत ही गहन है। एक दम समझ में नहीं आवेगा।

मैं—हां, बड़ी अच्छी याद आई। ग्रंथों में "साधारण" प्रकरण किसलिये डाला जाता है?

महाराज—उसमें बड़ी विशेषता है। षड्ज स्वर साधारण ऋषभ है। तीव्र म, पंचम की विकृति है। ये बातें मैं पहले ही कह चुका हूँ न, वे तुम्हारे ध्यान में एकदम नहीं आयेंगी।

मैं—अच्छा ! मूर्छना चार प्रकार की क्यों मानी हैं? जैसे—सांतरा, सकाकली आदि।

महाराज—यह भाग भी शार्ङ्गदेव की समझ में आया हुआ नहीं दिखाई पड़ता। उसने तो नवीन प्राचीन बातों का "गोल माल" (मिश्रण) करके रख दिया है। कभी-कभी मुझे उस पर बहुत क्रोध आ जाता है।

मैं—महाराज ! संगीत की 'जाति' के विषय में आपका क्या मत है? क्या उसका इस समय कुछ उपयोग हो सकेगा? शार्ङ्गदेव के समय 'जाति' का कुछ उपयोग होता था? यदि होता था तो कौन सा?

महाराज—मैं तो कहूंगा कि "जाति" का अर्थ सारे ग्राम ही हैं। षाड्जी, आर्षभी आदि सात ग्राम ही मैं मानूंगा।

मैं—आपने 'सङ्गीत दर्पण' देखा ही होगा। क्या उसके राग आज हम गाते हैं?

महाराज—निस्संदेह, गाते हैं।

मैं—क्या अपने रागरूप उसमें वर्णित लक्षणों के अनुसार ही हैं?

महाराज—नहीं, रागलक्षण हम वैसे नहीं रखते। रागों के नाम वे ही हैं।

मैं—तो फिर हम भी "मनमौजी" सङ्गीत ही गाने वाले हुए। आपके कथन का भाव इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे अशुद्ध और निरुपयोगी हैं, और जो ग्रंथ शुद्ध और उपयोगी हैं, वे मिलते नहीं हैं।

महाराज—क्यों? कोई सामवेद तक खोज करे तो पता लगेगा। शोधक चाहिये!

मैं—किस प्रकार की खोज की जानी चाहिये? किन-किन ग्रंथों की अथवा किस संगीत की?

महाराज—मेरी बताई हुई भिन्न-भिन्न संहिताओं की शोध होनी चाहिये। इनके लेखक ऋषि बड़े-बड़े आचार्य हो गये हैं। दर्पणकार तो बेचारा बिल्कुल अनाड़ी था। वह स्वयं स्वीकार करता है "न रागाणां न तालानामंतः कुत्रापि वर्तते" फिर क्या कहा जाय?

मैं—महाराज! अपने संगीत की श्रुतियों के सम्बन्ध का मेरा भ्रम क्या आप दूर कर सकेंगे? इनमें क्या रहस्य है? इन्हें किस प्रकार प्राप्त किया जावे, नाप कैसी की जावे और उपयोग कहां पर, क्यों, और कैसे किया जावे? इस बात का स्पष्टीकरण कोई भी अच्छी तरह नहीं करता है। किसी से यदि पूछा जाय तो व्यर्थ की गप्पें लगा दिया करते हैं। प्रथम स्वर या प्रथम श्रुति?

महाराज—इसे अब अच्छी तरह समझलो। एक बात अच्छी तरह से ध्यान में जमा लो कि स्वर कोमल अथवा तीव्र होने से बिलकुल भी ऊँचा या नीचा नहीं होता। कोमल करने के लिये उसका उच्चार अवश्य धीमे रूप में किया जाता है तीव्र अर्थात् तेज, बड़े रूप में उच्चारित हो, इतना ही समझ लेना चाहिये। यही इन शब्दों का वास्तविक अर्थ है।

मैं—आपका यह कथन मैं नहीं समझा। जरा ठहरिये, आप कल्पना करें कि मेरी उँगली सितार के सातवें परदे 'षड्ज' पर है। अब दाहिने हाथ से मैं धीरे अथवा जोर से तार पर आघात करने लगा, तो क्या खटा-खट भिन्न-भिन्न श्रुतियां बनने लगेंगी? परदा नहीं बदला जावे, मींड आदि नहीं ली जावे, केवल आघात छोटा-बड़ा किया जावे। तो फिर षड्ज की चार श्रुतियों के लिये भिन्न-भिन्न जोर के चार आघात लगेंगे। यही बात है न? यह कल्पना मेरे लिये बहुत ही नवीन है।

महाराज—तुम ठीक-ठीक समझ गये। इसी तरह रिषभ आदि स्वरों को भी समझ लो। सितार पर जो विकृत भिन्न-भिन्न परदे होते हैं वे श्रुति नहीं होते। तुम जहां भिन्न-भिन्न श्रुतियों के भिन्न-भिन्न नाद मानने लगे कि फँसे। तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, इन शब्दों की ओर देखो। आवाज कर्कश हुआ कि "तीव्रा" हुई। धीमी और मधुर आवाज हुई कि "मंदा" हुई। इसी प्रकार आयता, करुणा आदि श्रुति "सार्थ" समझ लेना चाहिये। यह बहुत सूक्ष्म बात है, मैं इसे किसी को नहीं बताता।

मैं—महाराज! मुझे तो ऐसा ख्याल होता है कि आयता, करुणा आदि श्रुतियों की जाति हैं। इनके तो पुनः स्वतंत्र ही नाम हैं।

महाराज—यह सारा भाग वही है। "श्रुति" शब्द का अर्थ ठीक न समझ पाने के कारण अनेक लोग गड़बड़ी में पड़ जाते हैं। तुम्हारी भी ऐसी ही स्थिति देखकर मुझे बिल्कुल आश्चर्य नहीं हो रहा है।

मैं—"जाति" के सम्बन्ध में पुनः एक बार पूछ रहा हूँ। आपने पहिले सब जातियों के सम्बन्ध में बताया। रत्नाकर में जाति का उपयोग रागों में किया हुआ दिखाई पड़ता है। शार्ङ्गदेव ने अट्ठारह जाति बताई हैं और उन्हें दो ग्रामों में विभाजित कर दिया है रागों में जाति क्या कार्य करती है, यही मैं आपसे समझना चाहता हूँ। यह जानकारी आपके जैसे व्यक्तियों से थोड़ी बहुत प्राप्त होना संभव है। अनाड़ी और अशिक्षित गायकों के पास तो आधार "वालिद" और शास्त्र "गाली" यही सामग्री

कदाचित होगी, परन्तु मेरे जैसों के लिये इसका क्या उपयोग हो सकेगा ? आप संस्कृत ग्रंथों के अध्येता प्रतीत होते हैं, और आप ग्रंथकार भी हैं, यह भी मैं सुनता हूँ । "शुद्ध साधारित" राग "षड्ज मध्यमया सृष्टः" बताया गया है । आप मुझे प्रत्यक्ष उदाहरण से बता दीजिये कि यह कौनसी जाति है और इसके स्वर कौन से हैं ? फिर मुझे शंका उत्पन्न नहीं हो सकेगी।

महाराज—अच्छा सुनाता हूं । "षड्ज मध्यमा सृष्टः" इस प्रकार जो कहा गया है, तो यहां धैवत कोमल होगा।

मैं—कोमल का अर्थ आपके पहिले बताये हुए अर्थ से ही समझना है न ? भैरव में हम कोमल ध ग्रहण करते हैं, ऐसा अर्थ तो नहीं लेना है न ?

महाराज—मालूम होता है तुम मुझे रत्नाकर के रागों के थाटों की व्याख्या करने के लिये कह रहे हो ? तो ठहरो; प्रथम तो "षड्ज मध्यमा" यह विकृत जाति है, शुद्ध नहीं है । शार्ङ्गदेव का "जाति" नाम ही अनुचित है । यहां "जातित्व" कहां है ? "समान धर्म" कहां है ? मैं उसे एक क्षण में कुण्ठित कर सकता हूँ।

मैं—महाराज ! इतनी गहरी चर्चा में भाग लेने का मुझे अधिकार ही क्या है ? मैं तो आपका साधारण विद्यार्थी हूं । हमारे महाराष्ट्र के पाठक आपकी जितनी सूक्ष्म दृष्टि भी नहीं रखते। रत्नाकर के राग कौन से स्वरों से व कैसे गाने चाहिये, इतना ही वे समझ जावें तो संतुष्ट हो जावेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है । साथ ही यह बात भी नहीं है कि इस "जाति" शब्द का प्रयोग केवल शार्ङ्गदेव ने ही किया हो। ये ही अट्ठारह जाति भरत की भी हैं और दोनों का वर्णन भी बहुत ही निकट है ! आप तो उस राग को ही अभी समझा दें।

महाराज—ठीक है "चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः" यह शुद्धस्वर व्यवस्था तो तुम्हें ज्ञात ही होगी ? यह सब तो अपने संगीत की जड़ ही है।

मैं—जी हां आगे ?

महाराज—यह मध्यमा जाति है तब मध्यम का "सा" हुआ और पंचम का ऋषभ हुआ । तीसरा स्वर धैवत हुआ क्योंकि रिषभ के आगे गांधार दो श्रुतियों पर है ठीक है न ?

मैं—यह मैं अच्छी तरह नहीं समझ पाया। मध्यमा जाति के स्वर "काफी" के हैं क्या आप ऐसा कह रहे हैं ? परन्तु यह जाति "षड्ज मध्यमा" है केवल 'मध्यमा' नहीं है।

महाराज—हां, हां, इसीलिए मैंने कहा कि "षाड्जी" का स्वरांतर "मध्यम" से लगाया जावेगा और वह 'षाड्जी' "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" इत्यादि है। इस प्रमाण से मध्यम को षड्ज मानकर चलने पर मेरे बताये हुए स्वर हो जायेंगे।

मैं—यह सब मेरे लिए नवीन होने के कारण समझने में थोड़ा विलंब हो जावे तो कृपा कर आप रुष्ट न होइयेगा। सौभाग्य से यह तो "षड्ज-मध्यमा" नामक जाति है परन्तु आंध्री, नंदयंती, कार्मारवी, इस प्रकार के जो नाम हैं, वहां बहुत कठिनाई होगी । उदाहरणार्थ "कैशिकी" जाति देखिये । इसके सम्बन्ध में सिंहभूपाल कहता है:—

"षाड्जीगांधारीमध्यमापांचमीनैषादीभ्यः जायते सा कैशिकी" इस जाति का थाट और नियम यदि हम प्राप्त करना चाहें तो क्या करना पड़ेगा ? शुष्क वर्णन मात्र पढ़ कर हृदय निराश सा हो जाता है ।

महाराज—क्या तुम्हें संस्कृत आती है ?

मैं—जी हां, रत्नाकर आदि ग्रन्थ मैंने शास्त्रियों की मदद से पढ़ रखे हैं । शास्त्री लोगों को प्रत्यक्ष सङ्गीत नहीं आता, अतः उनसे भी जाति-प्रकरण की स्पष्टता योग्यरूप में नहीं हो सकी । इसमें तो संस्कृत भाषा और प्रत्यक्ष सङ्गीत जानने वालों की मदद ही उपयोगी हो सकती है ।

महाराज—तुम्हारा यह कथन उचित है । इसमें शास्त्री क्या अपना सिर बतायेगा ? इसमें तो वही सच्चा विद्वान कहा जावेगा, जो समझा दे कि यह ग्रन्थवाक्य, यह उसका अर्थ और ये स्वर हैं ।

मैं—यह तो आपने बिल्कुल मेरे मन की बात कह दी । इसी प्रकार की जानकरी मुझे चाहिये । यह ग्राम, यह मूर्छना, यह जाति, यह थाट और यह राग, इस प्रकार एकबार स्पष्टीकरण हो जावे तो फिर हृदय में किसी प्रकार संदेह नहीं रहता । इसी तरह का स्पष्टीकरण मैं चाहता हूँ । ठीक है, परन्तु रत्नाकर में वर्णन की हुई जाति क्या सचमुच आपके शिवसङ्गीत में भी है ?

महाराज—कुछ हैं । कुछ शार्ङ्गदेव ने अपने पास से मिला दी हैं ।

मैं—उसने नहीं मिलाई होंगी, क्योंकि वे ही भरत ने भी बताई हैं । यह कहा जाता है कि भरत उसके पाँच सौ वर्ष पूर्व हो गया है । अस्तु; शुद्ध-जाति का क्या अर्थ ?

महाराज—यह भी एक बड़ा भारी सङ्गीत-रहस्य है । यह भी मैं किसी को नहीं बताता । तुम योग्य दिखाई पड़ते हो अतः यह तुम्हें बताने की मुझे प्रेरणा होती है ।

मैं—मैं आपका आभारी हूँ । आपसे प्राप्त जानकारी का मैं अवश्य उपयोग करूँगा ।

महारा—शुद्ध जाति के स्वर अर्थात् तुम्हारा "काफी" थाट है यही समझो । इसी मान्यता से सभी जाति हल करली जाती हैं । आर्षभी जाति कहने पर रिषभ से काफी का थाट आरम्भ किया जावे । आर्षभी का थाट निकालने के लिये षाड्जी का थाट लेकर उसमें रिषभ को षड्जत्व दिया जावे और आगे चला जावे ।

मैं—क्या यह कुन्जी शिवसङ्गीत में है ?

महाराज—हां, मेरा संपूर्ण आधार वही है । वही प्रामाणिक ग्रन्थ है । मैं 'रत्नाकर' को दक्षिण पद्धति का ग्रन्थ समझता हूँ । यह ग्रन्थ उत्तर पद्धति के लिये अधिक उपयोगी नहीं है ।

मैं—महाराज ! मेरे जैसे अपरिचित व्यक्ति पर आप इतनी कृपा कर रहे हैं इसलिये मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं । अब आप इस आर्षभी का थाट एक बार लेकर मुझे प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखा दीजिये तो शंका नहीं रहेगी ।

महाराज—ठीक है काफी का थाट रिषभ से रिषभ तक कायम करो। आर्षभी की दृष्टि से तो यह 'शुद्ध' ही है। ठीक है न? षाड्जी की दृष्टि से यह अवश्य विकृत है। अथवा 'शुद्धार्षभी' को 'विकृत-षाड्जी' थोड़ी देर के लिये समझ लो। आता है कुछ ध्यान में?

मैं—जरा ठहरिये! एक मुख्य प्रश्न वैसा ही रह गया। यदि किसी ने यह प्रश्न किया कि मूल षाड्जी का थाट काफी कैसे हुआ? तो फिर? यह बात भी आपसे पूछ लेना अच्छा है।

महाराज—"चतुश्चतुश्चतुश्चैव" ·· ·· श्लोक से यही थाट होगा।

मैं—आपकी श्रुति की व्याख्या निराली थी, इसलिए मुझे सन्देह हुआ था। अस्तु, यदि यही श्लोक आधारभूत हो तो फिर यह प्रश्न ही नहीं उठता। एक दूसरी बात पूछता हूं। षाड्जी जाति को धैवत की मूर्छना बताने में भला क्या अर्थ होगा? मंद्र-धैवत पर षड्जत्व खींचकर क्यों व कैसे रखा जावेगा? इसका सम्बन्ध किससे होगा? इसे आप कैसा समझते हैं?

महाराज—मैं तो इसे शार्ङ्गदेव की अज्ञानता समझता हूं। यह उसने कहीं से उद्धृत किया होगा।

मैं—कोई हर्ज नहीं, हम इस बात को ही छोड़ दें। आप मुझे अपने तरीके से ही इस समय एक-दो जाति के थाट समझा दीजिये, इतना ही पर्याप्त होगा।

महाराज—जाति किस प्रकार हल की जावे यह मैं पहिले ही समझा चुका हूँ। उसी प्रकार से चलने पर हो जायेगा।

मैं—महाराज! मैं सत्य एवं स्पष्ट कहता हूँ कि थोड़े से समझाने या संकेत मात्र से स्वमेव मार्ग खोज निकालने योग्य तीक्ष्णबुद्धि ईश्वर ने मुझे प्रदान नहीं की। आप ही यदि वे सभी स्पष्ट रूप से समझा दें तो अच्छा होगा। कष्ट तो आपको सचमुच होगा, परन्तु मेरा सदैव के लिये भला हो जावेगा।

महा०—ठीक है। तो इस पुस्तक (पोथी) में यह सभी विषय मैंने स्पष्ट लिख रखा है। तुम चाहो तो वह उद्धृत करलो।

प्रश्न—वह पुस्तक किस प्रकार की थी?

उत्तर—रत्नाकर में वर्णित जातियों व ग्रामरागों का स्पष्टीकरण उन्होंने लिखा था। उनके मन में अपने ग्रंथ को प्रकाशित करने की अभिलाषा थी, परन्तु अब उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण शायद तुम्हें वह पुस्तक दिखाई नहीं पड़ सकेगी। उस पुस्तक के एक दो उद्धरण मैंने ले रखे हैं। वे ये हैं; देखो:—

शुद्धार्षभी जाति।

शुद्धार्षभी जातिमों अनुवादी ये चार।

रिखब षड्ज यहां होत है रिखब तीव्र गंधार ।
पुनि कोमल गंधार है जुगश्रुति मध्यम सार ॥
पंचम सो मध्यम भयो धैवत पंचम रूप ।
त्यौं निषाद धैवत भई संज्ञा तीव्र अनूप ॥
जुगश्रुतिनको सा यहां भयो हे निषाद ।
शुद्धार्षभी जातिमों गावत मिटे विवाद ॥

सा — रे + ग — म — प — ध + नि — सा — रे
सा — रे + ग — म — प — ध + नि — सा

शुद्धसाधारित राग ।

शुद्धसाधारित रागषड्ज ग्राम को है । षड्जमध्यमा स्वरजाती सें उत्पन्न है । तारषड्ज है ग्रह अन्श जामें । द्विश्रुति निषाद गांधार थोड़े लगते हैं । मध्यम समाप्ति कर न्यास है । षड्जस्वर आदि में है ऐसी उत्तरमंद्रा मूर्छना है । सातों स्वरों का राग है । अवरोही प्रसंनांत संज्ञक वर्णालंकार सें भूषित है । सूर्य देवता है । वीर रौद्र रस है । दिवस के प्रथम प्रहर में प्रयोग है । इस राग में तीव्र रिषभ, कोमल गंधार, कोमल मध्यम, शुद्ध पंचम, तीव्र धैवत, कोमल निषाद ये स्वर लगते हैं । देव कुल, ब्राह्मण जाति, रक्त वर्ण, जंबुद्वीप, अग्नि ऋषि इ० इ० यह राग अनेक दोषों से मुक्त करता है । गानैश्रवणसे मंगल होता है ।

उसने रत्नाकर की मुख्य सात जातियों के थाट अपनी पोथी में इस तरह लिख रखे थे:—

षाड्जी…सा रे ग म प ध नि । आर्षभी…सा रे ग म प ध नि ।
गांधारी…सा रे ग म मं प ध नि । मध्यमा…सा रे ग म प ध नि ।
पंचमी…सा रे ग म प ध नि । धैवती…सा रे ग म प ध नि ।
नैषादी…सा रे ग म प ध नि ।

हम उसके इन थाटों के औचित्य, अनौचित्य का विचार नहीं करने वाले हैं । उसकी पोथी देखकर मैं भी प्रथम दर्शन में कुछ प्रभावित हुआ था, परन्तु कहते हैं न कि 'अधिक परिचय से अधिक ज्ञान होता जाता है ।' इसी के अनुसार दो-तीन दिन उनसे चर्चा करने का समय मिल जाने से मुझे सहज में यह दिखाई देने लगा कि इन सज्जन को रत्नाकर का जाति प्रकरण और ग्रामराग प्रपंच समझ में नहीं आ सका है । इन्होंने मुझे सामवेद के मन्त्र भी गाकर दिखाये । वे इन्होंने खमाज राग के स्वरों में गाये और उनमें टप्पे जैसी सैकड़ों तानें लगाईं । मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ, तब उन्होंने कहा—"शिव सङ्गीत में स्वयं महादेव ने मार्ग और देशी, इस तरह दोनों भेद बताये हैं ।" जब कि वे सज्जन अब जीवित नहीं हैं, तब उनकी चर्चा हम अब यहीं समाप्त करेंगे । शिव-मत का मुख्य ग्रन्थ कौनसा है और उसमें क्या है, इसी मुद्दे पर से हम इस चर्चा में पड़ गये थे, ठीक है न ? मैं तुम्हें बीच-बीच में अपने अनुभव की बातें सुनाता

जा रहा हूं, इनसे तुम्हारा मनोरंजन भी होगा और कभी उनका उपयोग भी हो सकेगा। और कुछ नहीं तो इन बातों से तुम अधिक सावधान अवश्य हो जाओगे। अस्तु,

किसी का मत है कि ग्रन्थों में जिसे सोमेश्वर मत बताया गया है, उसे ही शिवमत समझना चाहिये। कोई कहते हैं कि सङ्गीत-दर्पण में "केरागाः काश्चरागिण्यः" इस पार्वती के प्रश्न का उत्तर देते हुए महादेवजी ने जो राग-कुटुम्ब बताया है, वह सम्पूर्ण वर्णन 'शिवमत' शीर्षक के अन्तर्गत माना जावेगा। इस विधान पर आक्षेप करने वाले कहते हैं कि यदि ऐसा ही है तो फिर भैरव के आगे ही 'शिवमत' का उपपद क्यों लगाया जाता है ? मैं समझता हूं कि शिवमत शब्द के इतिहास में अधिक गहरे जाने से हमें विशेष लाभ नहीं होने वाला है।

प्रश्न—जब कि संस्कृत ग्रन्थकारों ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, तब हमें व्यर्थ तर्क करने का श्रम क्यों करना चाहिए ?

उत्तर—तुमने बिलकुल ठीक कहा, यही मैं भी कहने वाला था। यह तुम सहज में समझ जाओगे कि शिवमत-भैरव भी भैरव का एक प्रकार है, अतः यह राग प्रातर्गेय है। एक पण्डित ने मुझे यह भी सुझाया था कि संस्कृत ग्रन्थों के शुद्ध भैरव को ही आगे चलकर गायक 'शिवमत भैरव' कहने लगे होंगे। ग्रन्थोक्त शुद्ध भैरव में गांधार व निषाद कोमल हैं और अपने 'शिवमत भैरव' में दोनों ग और नि लगते हैं, यह बात भी विचारणीय है। 'नाद विनोद' ग्रन्थ में शिवमत भैरव' भैरवी थाट में बताया गया है। मेरे गुरु ने मुझे दोनों ग, नि लगाकर यह राग गाना सिखाया है। इस प्रकार करने पर इस राग में भैरव-अङ्ग अच्छी तरह दिखाया जा सकता है। भैरवी थाट वाले स्वरूप में भैरव-अङ्ग बिलकुल नहीं दिखाई पड़ेगा। मुझे स्मरण है कि एक बार एक गायक ने शिवमतभैरव मेरे सम्मुख भैरव थाट में रे, प वर्ज्य करते हुए गाया था।

प्रश्न—वह उसने किस प्रकार गाया था ?

उत्तर—उसकी चीज़ की स्थायी के स्वर इस प्रकार थे, देखो:—

सा	ध़	ध़	नि़	सा	ध़	ध़	नि़	सा	सा
×									
सा	ग	म	ध॒	नि॒	ध॒	म	ग	ग	सा
×									
नि़	ध़	ध़	नि़	ध़	सा	म	ग	म	ध॒
×									
नि	सां	नि	ध॒	म	ग	म	ध़	नि़	सा
×									

प्रश्न—इस रागस्वरूप को गाने में बहुत प्रयास पड़ता होगा, क्यों ठीक है न ?

उत्तर—तुमने ठीक कहा। यह हुआ ही ! किसी पंडित ने यह रूप उस गायक को बता दिया होगा। वह गायक वृद्ध और अनुभवी था। उसने यह राग 'शास्तर का भैरों' कह कर सुनाया था। मगर इसमें उसे 'फिरत' करना नहीं आया।

प्रश्न—न जाने किसने उसके गले से यह संकट क्यों बांध दिया ?

उत्तर—इन गायकों को नये-नये रागस्वरूप अपने संग्रह में रखने की सदैव उत्कट लालसा रहती है। अतः ये गायक भी किसी पंडित के पास संस्कृत-भैरव समझने सीखने गये होंगे। उस पंडित ने संगीतदर्पण में "धैवतांशग्रहन्यासो रिपहीनत्वमागतः" देखकर और श्लोक के नीचे दी हुई मूर्छना "ध नि सा ग म ध" देख कर यह रूप कर दिया होगा। इसे गाकर रञ्जक बनाने की जवाबदारी उसने गायक को सौंप दी होगी।

प्रश्न—परन्तु क्या यह नहीं दिखाई देता कि वह पण्डित भैरव का थाट खुशी-खुशी आजकल का हिन्दुस्थानी समझ कर ही आगे बढ़ गया है ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है ! ग्रंथों का थाट बिलावल मानने वाले असंख्य पण्डित तुम्हें मिल जायेंगे। परन्तु उनको सिवाय पारिजात के एक भी ग्रंथ समझा हुआ नहीं होगा। पारिजात में कोमल और तीव्र संज्ञायें हैं, इसीलिये कोई-कोई राग उन्हें इच्छित रूप से मिल जायेंगे; तो भी यह ख्याल उन्हें स्वप्न में भी नहीं आयेगा, कि पारिजात का शुद्धस्वरमेल कौनसा था ?

मेरा यह मत नहीं कि ग्रंथोक्त रूपों को प्रचार में लाना बुरी बात है। यह तो होना ही चाहिये, परन्तु यह कार्य योग्य एवं अधिकारी व्यक्तियों का है। कुछ ग्रन्थोक्त राग इस समय प्रचलित होने लगे हैं और उन्हें लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है। इस समय गायकों को भी अच्छी दिशा की ओर मोड़ने का उत्तम अवसर है। गायकों के कण्ठ उत्तम रूप से तैयार होते हैं और नवीन रागरूप सीखने की उन्हें उत्कण्ठा भी रहती है। यदि उन्हें उचित सहायता प्राप्त हो, तो वे थोड़े ही दिनों में पाँच-पचास बिलकुल नवीन रागस्वरूप प्रचार में ला सकते हैं। इन स्वरूपों को उत्तम नियमों और शास्त्र का समर्थन प्राप्त होने पर समाज द्वारा भी आदर प्राप्त हो सकता है। तानसेन आदि गायकों के समाप्त होने से देश का सम्पूर्ण सङ्गीत ही सदैव के लिये डूब गया, यह बात फिर कोई कैसे कह सकेगा और ऐसा कहना कैसे शोभनीय होगा ? हम गायकों को अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार नये-नये रागस्वरूप उत्पन्न करते हुए देखते हैं, परन्तु उन्हें इन स्वरूपों को नाम देने और उनके नियम स्थिर करने की उलझन रहती है। उनके इन रूपों को जांचकर उन्हें ग्रंथों से मिलाने का प्रयत्न यदि कोई व्यक्ति करे तो वास्तव में सङ्गीत की उन्नति होगी। पूर्व-कथित उस गायक ने मेरी सहायता से भैरव के दो-तीन बिलकुल नये प्रकार तैयार कर गाये और वे मुझे भी पसन्द आये। परन्तु वे आज तुम्हें नहीं बता रहा हूँ, क्योंकि वे अभी तक प्रचार में नहीं आये। अस्तु, पुण्डरीक की रागमाला में शुद्ध भैरव 'प्रथम-गतिगनिः' होने के कारण वह अपने भैरवी थाट में ही जायेगा।

प्रश्न—क्या आप पुण्डरीक की वह दूसरी सम्पूर्ण नवीन राग-रचना हमें सुना रहे हैं ?

उत्तर—तुम चाहते हो तो सुना देता हूं। सुनोः—

शुद्धभैरवहिंदोलौ देशिकारस्ततःपरम् ।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणश्च षट् ॥
रागा देवमयाख्यातास्तद्धेतुः कथ्यतेऽधुना ।
सद्योजातोद्भवः शुद्धभैरवो वामदेवतः ॥
हिंदोलो देशिकाराख्यस्त्वभूत्तत्पुरुषाह्वयात् ।
श्रीरागः शुद्धनाटाख्योऽपीशानवदनोद्भवः ॥
नटनारायणो रागो गिरिजामुखजस्ततः ।
एतेषां वनिताः पुत्राः पंच पंच क्रमाद् ब्रुवे ॥
धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मारवी तथा ।
आसावरीति पंचैताः शुद्धभैरवसुभ्रुवः ॥
भैरवः शुद्धललितः पंचमः परजस्तथा ।
बंगालश्चेति पंचैते शुद्धभैरवसूनवः ॥
भूपाली च वराटी च तोडी प्रथममंजरी ।
तुरुष्कतोडिका चेति हिंदोलस्य हि नारिकाः ॥
वसंत शुद्धबंगालः श्यामः सामंतकस्तथा ।
कामोदश्चेति पंचैते हिंदोलस्य सुता इमे ॥
रामक्री बहुली देशी जयन्तश्रीश्च गुर्जरी ।
देशिकारस्य पचैता विख्याताश्च वरांगनाः ॥
ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।
कल्याण इति पंचैते देशिकारस्य सूनवः ॥
गौडी पाडी गुणकरी नादरामक्रिया तथा ।
गुंडक्री चाथ पंचैताः श्रीरागे हि समाश्रिताः ॥
टक्कश्च देवगांधारो मालवः शुद्धगौडकः ।
कर्णाटबंगाल इति श्रीरागस्य तनूद्भवाः ॥
मालवश्रीश्च देशाची देवक्री मधुमाधवी ।
आहीरी चेति विख्याताः शुद्धनाटवरस्त्रियः ॥
जिजावन्तश्च सालंगनाटः कर्णाटनाटकः ।
आयानाटो हमीरादिनाटो नाटस्यसूनवः ॥

वेलावली च कांभोजी सावेरी सुहवी तथा ।
सौराष्ट्री चेति पंचैता नटनारायणस्त्रियः ॥
मल्लारगौंडकेदारशंकराभरणास्ततः ।
बिहागडश्चेति सुता नटनारायणस्य च ॥
अथैषां लक्षणं वक्ष्ये मूर्त्याभरणपूर्वकम् ।
चन्द्रनेत्रादिकां संज्ञां जानातु लोकतः सुधीः ॥

यह 'रागमाला' ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होना सम्भव है, अतः इसके सम्बन्ध में अधिक नहीं बता रहा हूँ । भिन्न-भिन्न रागों का विचार करते समय इस ग्रंथ के लक्षणों पर भी विचार किया जायेगा । इस ग्रन्थ की आवश्यंक जानकारी मैं तुम्हें देता रहूंगा ।

प्रश्न—तो अब यही समझ लेना चाहिये कि शुद्ध भैरव का आजकल प्रचार नहीं है ?

उत्तर—वास्तव में यही कहा जायेगा । भैरवी थाट में रे, प वर्जित स्वरूप मालकंस जैसा दिखाई देगा । यह सत्य है कि इसमें वादी स्वर भिन्न रहेगा, परन्तु कुल मिलाकर रागस्वरूप इसी प्रकार दिखाई देगा । पुण्डरीक 'अरिः' कहता है । यह स्वरूप कुछ भिन्न हो जायेगा । मैंने स्वयं जो शिवमत भैरव सीखा है, वह लक्ष्यसंगीत में बताये हुए विवरण से मिल जायेगा, यह मैं पहिले भी कह चुका हूं । इस राग में दोनों गंधार व निषाद लेकर भैरव-अङ्ग कायम रखने में सारी खूबी है । कोमल ग, नि स्वर अवरोह में प्रयुक्त होते हैं, इसलिए उन्हें उचित मात्रा में ही रखना बहुत ही कुशलतापूर्ण कार्य है। यह प्रातःकालीन राग है, अतः अवरोह की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा । अवरोह में कोमल निषाद ग्रहण करने की स्वीकृति है, परन्तु 'सां, नि॒, ध॒, प' इस प्रकार स्वर कभी नहीं चल सकेंगे, क्योंकि इन्हें सावकाश रूप से गाने पर आसावरी और जौनपुरी राग आगे आ जायेंगे और जलद (द्रुत) लय में गाने पर भैरवी आगे आ जायगी ।

प्रश्न—यह ठीक है, क्योंकि उस थाट का वह उत्तरांग हमें भी ज्ञात है । फिर क्या किया जायेगा ?

उत्तर—यहां कोई युक्ति आवश्यक है, इसलिये गायक यहां पर "नि़, सा, ध़नि़प़" इस प्रकार मार्ग निकाल लेते हैं । इसी तरह गांधार (कोमल) लगाते समय "नि़सा, ग॒रे॒सा" इस प्रकार एक टुकड़ा अपने भैरव में गा दिया करते हैं । ये दोनों टुकड़े आ जाने पर अपने कानों पर कुछ भिन्न ही प्रभाव होता है । मैं इन्हें किस प्रकार लेता हूं; यह देखो:—

"सा, ग, गमरे॒, ग, पमगमरे॒, सा, नि़सा, ग॒रे॒सा, नि़सा, ध़नि़प़, गगमरे॒, रे॒ग, म, पमगरे॒, सा" ।

इसमें ऋषभ का प्रसिद्ध आन्दोलन और "मगरे॒सा" यह भैरव की प्रमुख तान मैं कितनी सावधानी से सँभालता हूं, यह देखते हो न ?

प्रश्न—ऐसे रागों में गायक "फिरत" किस प्रकार करते होंगे ?

उत्तर—मिश्ररागों में प्रायः गायक मुख्य राग की "फिरत" ही करते हैं। इस राग में भैरव की "फिरत" की जाती है। कहीं-कहीं "सा, गरेसा" और "धनिप" "प, धनिधप" इस प्रकार टुकड़े सम्मिलित कर लेते हैं और तत्काल इन्हें छोड़कर पुनः भैरव अङ्ग घिसने लगते हैं। मिश्ररागों में रागनियमों की ओर लक्ष्य रखते हुए रचे गये ध्रुपद-गीत उत्तम होते हैं; परन्तु इस समय यह कहना गलत नहीं होगा कि ख्यालों ने ध्रुपदों को बहुत पीछे डाल दिया है। ख्यालगायकों की 'फिरत' अनेक बार दोषपूर्ण समझी जाती है। इन लोगों में यह बात नहीं है कि उत्तम गुणी नहीं हों, परन्तु यह भी असत्य नहीं है कि अधिकतर आँखें बंदकर दौड़ने वाले ही मिलते हैं। ऐसे लोग तुमसे शायद यह कहेंगे कि तुम लोग हमारे जैसी "फिरत" नहीं कर सकते, इसीलिये तुम तानबाजी की निंदा करते हो।' परन्तु इस उत्तर में कुछ भी तथ्य नहीं है। हम "फिरत" के विरुद्ध हरगिज नहीं हैं। हम राग-नियम सँभालकर और समझदारी से की जाने वाली 'फिरत' तो आवश्यक समझते हैं। गायकी के संपूर्ण गुणधर्म निभाते हुए जो अपना राग उत्तम रूप से सँभालते रहे, वही उच्चकोटि का गायक है। अस्तु,

शिवमत भैरव में "निसा, गरेसा" इस जगह टोड़ी से इसे बचाना है और 'धनिप' अथवा 'धनिधप' यहां भैरवी या आसावरी से बचाना है। अतः यह भाग मैं किस प्रकार गाता हूं, उसे अच्छी तरह देखकर सीखलो। शिवमतभैरव तुम्हें इस प्रकार से शुरू करना है—'सा, ग, गमरे, रेगपमगमरे, सा, सा, निसा, गरेसा, निसा, धनिप, मप, ध, निसा, गमगरे, सा"।

"भैरव" राग समझाते समय मैं तुम्हें यह बता ही चुका हूं कि इसमें गायक कोमल निषाद का प्रयोग किस प्रकार करते हैं। वही युक्ति इस राग में भी योजित की जावे। "प, निधप, गमग, रेसा" इस प्रकार का स्वरभाग अशुद्ध नहीं होगा। "निसा, रेगरेसा" इस प्रकार लेने से तोड़ी अधिक स्पष्ट-स्पष्ट दिखाई पड़ेगी, इसलिये "निसा, रेग" इस प्रकार न लेते हुए "निसा, गरेसा" इस प्रकार स्वर लिए जावें। भैरव जहां-तहां भरपूर रखा जावे। देखें इसे तुम किस प्रकार करोगे?

प्रश्न—"सारेरेसा, गमपमगरेसा, निसा, गरेसा, धपगमपगमरे, सा, पपगम, रे, गमधप, गमरे, सा, ग, गमरे, गपमगरे, सा, निसागरेसा, निसा, ध, निधनिप, मपध, निसा, गमरे, गपमग, रे, सा" इस प्रकार स्वरविस्तार करना उचित होगा?

उत्तर - हां, ठीक रहेगा। सदैव यह बात ध्यान में रखकर चलना पर्याप्त होगा कि टोड़ी का वह टुकड़ा केवल रागभिन्नता के लिये प्रयुक्त करना है। मेरे गुरु ने मुझसे कहा था कि यह राग जितना सावकाश गाया जावे उतना अधिक शोभनीय होगा। पहले ही हम भैरवराग को गंभीर प्रकृति का मान चुके हैं, अतः उनका यह कथन भी यथार्थ है। एक गायक ने मुझे अपने शिवमतभैरव में दोनों धैवत लगाकर दिखाये थे, परन्तु उसने अपना तीव्र धैवत ध्रुपद के आभोग में एक जगह प्रयुक्त किया था और वह भी आरोह में ही रखा था। यह विशेषता ध्यान में रखी जावे।

प्रश्न—वह आभोग उसने किस तरह गाया था?

उत्तर—"सासा, धधुप, प, पधुनिसां, धुप, गमरे, गपमगमरे, सा; (संचारी) पधु, निसां, निसां, धुनिसां, गुंरेंसांनिसां, धुनिप, पधनिसां, धुप, निधुप, गमपग, मगरे, सा"।

इस प्रकार उसने अपना आभोग गाया था। यह भी सुनने में बुरा नहीं लगता। तुमने ध्यान दिया कि वह तीव्र ध इस उत्तर राग में आरोह में रखा गया है? यह मैं कह चुका हूँ कि कुछ ग्रन्थकार भैरव में तीव्र ध मानने वाले भी निकल आयेंगे। तीव्र ध लेकर और आरोह में रे, प वर्ज्यकर एक गायक ने मुझे इस प्रकार भैरव सुनाया था:—मम, गमप, मगरेरेसा। सासागगमगगरेरेसा। सासागमपगमधधप। गमधमपगम-रेरेसा। ममगममधनिसांरेंसां। सांगंमंपंमंगंगंरेंरेंसां। सांरेंसांनिधपमधपम। गमनि-धपमगरेरेसा।

हम इस स्वरूप को भैरव नहीं कहेंगे, यह तो एक भिन्न राग हो जायेगा। यदि भैरव में पंचम वर्ज्य कर रे, धु स्वर आन्दोलित गाये जावें तो गायक कहते हैं कि वह "ललितभैरव" हो जाता है। जबकि पंचम वर्ज्य करना है और ललित अङ्ग बनाये रखना है तो उसमें मध्यम अवश्य ही महत्व प्राप्त करेगा। ललित में दोनों मध्यम लगते हैं, परन्तु ललितभैरव में इस प्रकार नहीं लिये जाते, इसलिये भी यह राग भिन्न दिखाई देगा। एक बार मैंने एक गायक को अपना राग रामकली का औडव-सम्पूर्ण प्रकार गाकर सुनाया था। इसे उसने "भोली-भैरव" बताया; परन्तु इसमें उसने निषाद वर्ज्य न करने की सूचना दी। उसने एक प्रधान विशेषता यह बताई कि आरोह में भिन्न-भिन्न स्वर वर्ज्य कर अवरोह स्पष्ट रूप से भैरव का रखने पर भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न हो जाते हैं। अवरोह में उत्तम रूप से आंदोलित रे, धु स्वर दिखाये गये कि श्रोतागण भैरव की ओर आये। मध्यम या धैवत स्वर वादी बनाया जावे, गांधार, निषाद को आगे बढ़ाया कि प्रभात का प्रभाव नष्ट हो जावेगा। मुझे इस गायक का कथन बहुत सार्थक प्रतीत हुआ।

तो फिर अब एक बार मुझे यह बताओ कि तुम शिवमतभैरव के लक्षण किस प्रकार ध्यान में रखोगे?

प्रश्न—हम इस राग को इस प्रकार याद रखेंगे—शिवमतभैरव एक सम्पूर्ण राग है। इसका अधिकांश स्वरूप भैरव के समकक्ष होता है। आरोह में ग, नी स्वर तीव्र ही लिये जावें। अवरोह में तोड़ी की झलक मात्र दिखाई पड़ेगी, परन्तु श्रोताओं को यह राग तोड़ी का प्रकार ज्ञात नहीं होना चाहिये। आन्दोलित रे, धु योग्य स्थलों पर उचित प्रमाण से दिखाई देने चाहिये। वादी स्वर धैवत रखा जावे।

उत्तर—मैं समझता हूं कि अभी इतनी जानकारी पर्याप्त होगी। यह राग विवाद-ग्रस्त रागों में से एक है; क्योंकि यह अप्रसिद्ध राग है। अर्वाचीन ग्रन्थकार इस राग के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं दे सकते और यह बात समझ में आने योग्य भी है। ये लोग अपना स्वत: का मत बताकर, निर्णय पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। यह बात सदैव प्रचार के अनुसार ही रहने वाली है। स्थानभिन्नता के कारण प्रचार में भी भिन्नता हो सकती है, तो भी प्रत्येक गायक द्वारा अपनी पद्धति को दृढ़ता से पकड़े रहना सदैव हितकारी ही होगा।

प्रश्न—लक्ष्यसंगीतकार ने शिवमतभैरव का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—मैंने उसी के मत के अनुसार तुम्हें यह बताया है। वह कहता है:—

भैरवस्यैव संस्थाने भैरवः शिवपूर्वकः।
नियुक्तो नित्यमाचार्यैर्मिश्रमेलसमुद्भवः ॥
आरोहे गनितीव्रत्वं भैरवांगं प्रदर्शयेत्।
अवरोहे तन्मृदुत्वं तोडीभेदं प्रसूचयेत् ॥
प्रसिद्धिविधुरत्वात्स्याद्रागोऽयं वादमूलकः।
लक्ष्यमार्गमनुसृत्य कुर्यादिह सुनिर्णयम् ॥
भैरवांगरिधौ योज्यौ रागेऽस्मिन् गायकोत्तमैः।
तदंगं तत्त्वतो येन सुव्यक्तं प्रकटीभवेत् ॥

रागकल्पद्रुमकार का मत भी ऐसा ही है। वह कहता है:—

संस्थान एवाजनि भैरवस्य।
मिश्रस्वरूपः शिवभैरवोऽसौ ॥
भेदस्त्वियान् भैरवतोऽस्य दृष्टो-
वरोहणे यन्निगयोर्मृदुत्वम् ॥

शार्ङ्गदेव ने "शुद्धभैरव" राग का वर्णन रत्नाकर में इस प्रकार किया है –

धैवतांशग्रहन्याससंयुतः स्यात्समस्वरः।
तारमंद्रोऽयमाषड्जगांधारं शुद्धभैरवः ॥

प्रश्न– इसे उसने किस ग्रामराग का 'जन्यराग' माना है ?

उत्तर—ऐसा कुछ नहीं बताया। उसने जो दशविधि रागवर्ग माने हैं, उसमें 'राग' शीर्षक के नीचे उसने बीस नाम दिये हैं, उन्हीं में ही एक शुद्धभैरव है। लक्षणों में जाति, ग्राम, मूर्छना आदि कुछ नहीं बताये गये। शार्ङ्गदेव के ये बीस राग अगले कुछ ग्रंथकारों द्वारा व्यर्थ ही उद्धृत किये हुए प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—भला ऐसी जगह भाषांतरकार विश्वनाथ ने कैसा किया है ?

उत्तर—उसने केवल भाषांतर मात्र किया है। जैसे—

"शुद्ध भैरव जो राग है सो धैवत अन्श ग्रहन्यास स्वर ताकरिके भली-भांति युक्त है, समान हैं स्वर जामें, षड्ज और गंधार जे स्वर तिन्हें अवधि करके तार और मंद्र स्वर हैं जामें ऐसो है"।

इस भाषांतर से भला क्या खुलासा होगा ?

प्रश्न—धन्य है गुरु जी इन लोगों को ! इस विश्वनाथ ने संपूर्ण रत्नाकर का इसी प्रकार नमूनेदार भाषांतर कर रखा है न ?

उत्तर—मैं तो इसे ऐसा ही समझता हूं। कदाचित् किसी राजा ने उससे यह टीका कराई होगी।

प्रश्न—यदि कोई इसे प्रकाशित करना चाहे तो हजारों रुपये लग जावेंगे, ठीक है न ?

उत्तर—यह सत्य है, परन्तु यह श्रम भला कौन करने जायगा ? जिसमें अब तो राधा-गोविन्द संगीतसार प्रकाशित हो ही गया है। मैं समझता हूं, उस पर अभी हिन्दी भाषांतर करने की आवश्यकता नहीं है। जब संगीतसार से शिक्षा लेकर गायक तैयार होने लगेंगे और उन्हें कठिनाई होगी, तब फिर अन्य हिंदी ग्रन्थों की आवश्यकता हो सकती है। वह समय अभी बहुत दूर है।

भैरवस्यावरोहे तु कोमलौ भवतो गनी।
शिवभैरवमाहुस्तं तदा गीतविशारदाः ॥

चन्द्रिकायाम्—

दक्षिण की ओर शिवमत भैरव का प्रचार नहीं है। अपना हिंन्दुस्तानी भैरव उस तरफ अब बहुत प्रिय हो रहा है। अपने यहां कुछ अप्रसिद्ध रागों के सम्बन्ध में मैंने उधर बहुत खोज की परन्तु कोई उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त न हो सकी। उस ओर भी इस समय प्राचीन सङ्गीत का अधिक ज्ञान नहीं दिखाई पड़ता। अनेक जगह तो व्यंकटमखी नाम का भी पता नहीं था। जिस प्रकार अपने यहां नवीन और प्राचीन कल्पनाओं का मिश्रण हो गया है, उसी प्रकार उधर भी पाया जाता है। त्यागय्या (त्यागराज) के पांच-पच्चीस कीर्तन गाने आये कि उस व्यक्ति को उधर बड़ी भारी कीर्ति मिल जाती है। "मेल कर्त्ते" और कुछ जन्यराग समझ गये कि "शास्त्रज्ञान" उत्तम हो गया, इस प्रकार की मायता वाले व्यक्ति उधर अनेक निकल आयेंगे। यह मैं बता चुका हूँ कि 'रत्नाकर' को अच्छी तरह समझ चुका हो, ऐसा एक भी पण्डित मुझे उस तरफ नहीं दिखाई दिया। यह बात नहीं है कि उनके सङ्गीत में 'रत्नाकर' का बोध होना आवश्यक ही हो, परन्तु मैंने वहां की स्थिति बताई है। खैर, उन्हीं पर क्यों हँसा जावे ? क्या अपने यहां के एक विद्वान ने कुछ दिन पूर्व सामयिक पत्रों में अपना यह मत प्रकाशित नहीं किया था कि श्रुति, मूर्छना और ग्रामों की चर्चा करने वाले पागल लोग हैं ? जिसका विषय पर जैसा अधिकार है, उसी उसी प्रकार उसका मत भी होगा। ऐसा कहने वालों पर हमें कभी भी कुपित नहीं होना चाहिये, बल्कि वे तो दया के पात्र हैं। अधिक अच्छा अभ्यास हो जाने के पश्चात् मैं तुमसे भी प्रवास करने की शिफारिस करूंगा।

प्रश्न—क्या आप हमें इस बात की रूपरेखा समझा देंगे कि प्रवास में आप सङ्गीत-सम्बन्धी जानकारी किस प्रकार पूछते थे ? शायद आपका अनुभव हमें भी आगे-पीछे उपयोगी सिद्ध हो ?

उत्तर—प्रवास पर जाते समय मैं कुछ निश्चित प्रश्न कागज पर लिख लिया करता था। और प्रत्येक सङ्गीतप्रसिद्ध नगर में जिन-जिन विद्वानों से भेंट होती वे प्रश्न उनसे पूछता था। उनके दिये हुए उत्तर भी लिख लिया करता था। निश्चित

प्रश्न पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तर प्राप्त होने से फिर हमें स्वतन्त्र विचार करने में सुविधा रहती है।

प्रश्न—तो फिर वे प्रश्न हमें भी सुना दीजिये ?

उत्तर—ठीक है, सुनलो ! परन्तु आरम्भ में इन प्रश्नों के सम्बन्ध में दो शब्द कहना आवश्यक है। इन प्रश्नों में से कुछ अब निरुपयोगी हैं, कुछ प्रश्नों के उत्तर अब तुम भी दे सकते हो, कुछ प्रश्न एक ही मुद्दे पर भिन्न-भिन्न शब्दों के हैं और कुछ खासतौर से टेढ़े रखे गये हैं। यद्यपि ये प्रथम दृष्टि में कहीं-कहीं कलहोत्पादक से दिखाई दिये, परन्तु ईश्वर की कृपा से किसी भी विद्वान से मेरा कभी भी झगड़ा नहीं हुआ। प्रवास में हमें जो जानकारी हो, उसे मुक्त हृदय से दूसरों को बताने को हमें तैयार रहना चाहिये, इतना काफी है। यह अच्छा ही हुआ कि पिछली चर्चा के समय इन प्रश्नों को मानने की प्रेरणा तुम्हें नहीं हुई, क्योंकि तब तुम इस विषय में बिल्कुल नये थे, और भली प्रकार इन्हें पूछ भी नहीं सकते थे। प्रश्न पूछने के पूर्व सामने वाले विद्वान का अधिकार, उसका स्वभाव, उस की प्रतिष्ठा, इन सभी बातों की ओर ध्यान दिया जाता है। साथ ही किसी समय इन प्रश्नों को देखकर और इस सम्बन्ध में समाज की अज्ञानता एवं उदासीनता देखकर तुम्हारा विचार यह भी हो सकता है कि यह विषय बहुत जटिल और असाध्य है, किन्तु अब तुम्हारी स्थिति भिन्न है। मेरा यह दावा नहीं है कि इन सभी प्रश्नों के समाधानकारक उत्तर मुझे प्राप्त हो गये हैं। मैं यह नम्रतापूर्वक स्वीकार करूँगा कि अभीतक कुछ बातों पर मेरी खोज चालू है। ये प्रश्न तुम शुद्ध अन्तःकरण से, नम्रतापूर्वक व दूसरे का अपमान न हो, इस रीति से पूछकर अपनी जानकारी प्राप्त कर सकते हो, परन्तु अभी तुम्हें इन प्रश्नों को हल करने का कार्य अपने सिर पर लेना ही नहीं चाहिये, क्यों कि यह तुम्हारा विषय नहीं है।

—प्रश्न—

१—आपके प्रदेश में उत्तर की संगीत पद्धति प्रचलित है या दक्षिणी की ? इसमें भेद कौनसा है ?

२—आपकी पद्धति का आधार ग्रन्थ कौनसा है, और क्यों ? क्या वह उपलब्ध है ?

३—आपके यहां प्राचीन संगीत शास्त्र पढ़े हुए पण्डित कौन-कौन हैं ?

४—क्या इस तरफ ग्रंथोक्त नियमों का अनुसरण कर 'साम' गाने वाले लोग हैं ? 'साम' इधर किस रीति से सिखाया जाता है ?

५—क्या आपने 'साम' गायन सुना है ? उसमें कितने व कौन-कौन से स्वर लिये जाते हैं ? क्या आप उन स्वरों की तुलना हिन्दुस्थानी स्वरों से कर सकते हैं, किस प्रकार ?

६—क्या आपके यहां राग-रागिनी-पुत्र-पौत्रादिक कुटुम्ब स्वीकार करने की प्रथा है ? यदि है, तो आप किस ग्रन्थ का वर्गीकरण मानते हैं, और क्यों ?

७—क्या आपने राग, रागिनी और पुत्र आदि को अलग-अलग पहिचानने के उपाय किसी भी ग्रन्थ में देखे हैं ? क्या आपने कोई फारसी अथवा उर्दू ग्रंथ भी देखे हैं ? कौन-कौन से ? क्या उनके आधार संस्कृत ग्रन्थ ही हैं ?

८—इस समय यह समझा जा रहा है कि प्राचीन संगीत परिवर्तित हो गया है, तो फिर क्या आज प्राचीन वर्गीकरण सुविधाजनक हो सकेगा ? यदि आप नवीन रचना करना उचित समझते हों, तो उसे आप किन-किन सिद्धान्तों पर और किन-किन साधनों से करना चाहेंगे। क्या भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रचार होने से अनेक प्रकार की रचना होना सम्भव है ? इसमें क्या उपाय हो सकता है ?

९—आप प्राचीन शुद्धस्वरमेल किसे समझते हैं ? शार्ङ्गदेव ने अपने रत्नाकर के आरम्भ में श्रुति वीणा रचकर दिखाई है, क्या वह उपयुक्त है ? क्यों ? उसके कथनानुसार श्रुतियों की रचना करने पर कौनसा शुद्ध थाट उत्पन्न होगा ? क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं कि शार्ङ्गदेव आदि पण्डितों को नाद के आन्दोलन की जानकारी थी ? यदि नहीं तो वे अपने स्वर किस प्रकार कायम करते थे ?

१०-आज हिन्दुस्थानी पद्धति का शुद्ध थाट 'बिलावल' माना जाता है, यह शार्ङ्गदेव का कौनसा थाट होगा ? शार्ङ्गदेव का यह 'शुद्ध' क्यों नहीं हो सकेगा ?

११-अपने यहां तीन प्रकार के स्वरान्तर हैं और पश्चिम की ओर भी तीन ही हैं। क्या केवल इतने साम्य से पश्चिम के त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक आदि स्वर अपने ग्रन्थों पर लादे जा सकेंगे ? इस बात का प्रमाण किस ग्रन्थ से दिया जा सकेगा ?

१२-प्राचीन ग्रन्थकार अन्तर और काकली स्वरों को विकृत मानते हैं, इससे क्या बोध होता है ?

१३-प्राचीन ग्रन्थकारों के पास 'श्रुति' नापने के कौनसे साधन होंगे ? यूरोप के प्राचीन सङ्गीत का आदि सप्तक कौनसा होगा और क्यों ? क्या उस सङ्गीत का इतिहास हमारे लिये उपयोगी होगा ? क्या उधर का Doric थाट अपने 'तोड़ी' थाट के निकट आ जाता है ? अपना आदि राग 'शुद्धभैरव' ग्रंथोक्त तोड़ी थाट का ही कोई-कोई मानते हैं, इन सम्पूर्ण बातों में आपको क्या कोई सम्बन्ध दिखाई देता है ? इस प्रमाण का उपयोग कहां किया जा सकेगा ?

१४-'श्रुति' और 'स्वर' में आप क्या भेद मानते हैं ? इस विषय पर आपको किस ग्रन्थ का मत पसन्द आता है ? आप 'अनुरणन' का क्या अर्थ समझते हैं ? क्या आपको मतंग और भरत का श्रुति-प्रमाण व्यवस्थित ज्ञात होता है ? क्यों ? शार्ङ्गदेव ने चार 'सारणा' किस हेतु से बताई हैं ? "द्वाविंशतिरेव श्रुतयः इति इयत्ता" इसे सिद्ध करने के लिये क्या श्रुति स्वर-स्थानों को नियत स्थान पर स्वीकृत करना पड़ेगा ? क्या यह विभाग सन्तोषजनक हो जायेगा ?

१५-पहले ग्रामों की क्या आवश्यकता रही थी ? ये तीन क्यों माने गये ? मध्यम ग्राम से प्राचीन संगीत का क्या हित हुआ ? अब वह क्यों नहीं होता ? क्या हिंदुस्थानी पद्धति के प्राचीन व अर्वाचीन भेद किए जा सकते हैं ? नवीन पद्धति में आप किन-किन ग्रन्थों को स्थान देंगे ? क्या आप यह समझते हैं कि शार्ङ्गदेव के समय देश में तीव्र कोमल आदि संज्ञा बिलकुल प्रचार में नहीं थीं ? ये संज्ञा "भुजवसुदशमितशाके"

के समय 'तरंगिणी' में हैं, क्या इससे आपको आश्चर्य होगा ? क्या वास्तव में शार्ङ्गदेव के बहुत से राग (रागों की बड़ी संख्या) दक्षिणी ग्रन्थों में तथा प्रचार में हैं ? क्यों भला ? उसके किन-किन रागों को आप खास उत्तर के कहेंगे ?

१६-क्या शार्ङ्गदेव ने वादी-विवादी स्वर प्रकरण यथा योग्य लिखा है ? इसमें शार्ङ्गदेव ने 'निगौ अन्यविवादिनौ, रिधयोरेव वा स्यातां, तौ तयोर्वा रिधावपि' इस प्रकार कहा है। इसे आप उदाहरणों से समझा देंगे ? क्या विवादी की व्याख्या शार्ङ्गदेव की कुछ जातियों में प्रयुक्त कर दिखा सकेंगे ? क्या प्राचीन सङ्गीत में विवादी का उपयोग हो सका था ? किस नियम से ? वह कहां किया हुआ दिखाई देता है ? क्या इन स्वरों का सम्बन्ध थाट-रचना से रहा था ? क्या इस प्रकरण पर सिंहभूपाल द्वारा की हुई टीका आपने देखी है ? क्या आप समझते हैं कि यह सब यथार्थ है, क्यों ?

"ननु संवादित्वेन क उपयोगः ? ब्रूमः । यस्मिन् गीते अंशत्वेन परिकल्पितः षड्जः तत्स्थाने मध्यमः क्रियमाणो रागो न भवेत् । षड्जपंचमयोः स्थाने पंचमषड्जौ प्रयुज्यमानौ जातिहानिकरौ भवतः ।+। गांधारनिषादयोः स्थाने निषादगांधारौ प्रयुज्यमानौ जातिरागहानिं न कुरुतः ।"

इसे उदाहरणों से समझाइये। इसी प्रकार अनुवादी की स्पष्ट व्याख्या कीजिये। क्या अनुवादी के उपयोग के कुछ नियम थे ? कौनसे ?

१७-मतङ्ग कहता है:—

"मूर्छनाशब्दो निष्पन्नो मूर्छामोहसमुच्छ्रये । मूर्च्छयते येन रागोहि मूर्छनेत्यभिसंज्ञिता ॥" स्वराणामेव मूर्छनात्वं न त्वारोहावरोहणरूपायाः क्रियायाः। 'आरोहणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकं । मूर्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः ॥'

क्या मतंग का यह मत आपको मान्य है ? तो फिर 'मूर्छना' शब्द सम्बन्धी उलझन क्या शार्ङ्गदेव के पूर्व से चलती आ रही है ? मतंग द्वादश स्वर मूर्छना ही मानता है। क्या इस बात से कोई हित होगा ? अहोबल की मूर्छना से क्या भला हुआ ? भरत ने मूर्छना की व्याख्या कैसी की है ? क्या उसके 'पूर्णाः' 'प्रक्रमयुक्ताः षाडवौडवितीकृताः' इस कथन से मूर्छना का सम्बन्ध अगले ग्रन्थकारों के मूर्छना प्रस्तार से लग जायेगा ? किस तरह ?

१८-शार्ङ्गदेव ने मूर्छना का उपयोग किस उद्देश्य से किया ? शुद्धा, "सांतरा, सकाकली, सकाकल्यंतरा" यह भेद उसने किसलिए किये ? इनका उपयोग उसने कहां और किस प्रकार किया। क्या उसके भेद भरत के भेदों से मिल जाते हैं ? क्या यह भाग उदाहरण से समझा देंगे ? "स्वराणामेव मूर्छनात्वम्" आदि विधान क्या भरत, शार्ङ्गदेव के मतों से विसंगत हो जाते हैं ? किस प्रकार ?

१९-भरत ने स्वयं मूर्छना का उपयोग कहां और किस प्रकार किया है ? उसके ग्रन्थों में राग नहीं हैं, परन्तु 'जाति' है। तो भी प्रत्येक जाति की मूर्छना जिस प्रकार शार्ङ्गदेव

बताता है, उस तरह भरत नहीं बताता । ऐसा क्यों ? शार्ङ्गदेव ने भला ऐसा क्यों किया होगा ? ऐसा करने की आवश्यकता कैसे हुई ?

२०–'ग्रामराग' जाति से उत्पन्न कहा जाता है। क्या इनकी मूर्छनायें जाति की मूर्छनाओं से भिन्न होती हैं ? क्यों ? क्या आप पांच व्यवस्थित रागों को लेकर उनकी मूर्छना और जनक जाति की मूर्छना बताकर उनका परस्पर सम्बन्ध दिखा सकेंगे ? जाति के लक्षणों में ग्रह आदि स्वर होते हैं; इनका मूर्छना से कौनसा सम्बन्ध रहेगा ? जाति के अंश स्वर अनेक, और मूर्छना का एक, भला ऐसा क्यों ?

२१–जाति लक्षण तेरह थे, उनमें से शार्ङ्गदेव ने कितने प्रयुक्त किये ? शेष क्यों छोड़ दिये ? शार्ङ्गदेव के समय राग थे, फिर उसने "जाति" क्यों बताई होंगी ? 'षाड्जी जाति' अर्थात् कौन सा मेल और इस मेल का कौन सा ग्रामराग हुआ ? यदि नहीं तो क्यों ?

२२–"षड्जादिक मूर्छना" कुछ ग्रामरागों में बताई गई है, परन्तु यह किसी भी जाति के लिये बताई हुई नहीं दिखाई पड़ती । इसका स्पष्टीकरण अथवा समाधान आप कैसे करेंगे ?

२३–शार्ङ्गदेव अपने बारह विकृत स्वर बतलाता है । क्या ये एक ही सप्तक में प्रयुक्त करने के लिये उसने एकत्र बता दिये हैं ? यदि नहीं तो इनका उपयोग करने का नियम कौन सा है ? क्या रत्नाकर की परिभाषा आपको उत्तर के किसी भी ग्रन्थ में दिखाई दी ? यदि नहीं तो क्यों ? रत्नाकर की पद्धति उत्तर की ही है, इसे मानने के लिये आप कौनसा निर्विवाद आधार बता सकेंगे ? इसमें की परिभाषा दक्षिण पद्धति में क्यों दिखाई देती हैं ? उत्तर की ओर वे क्यों और कब नष्ट हो गई ?

२४–"राग तरंगिणी" क्या आप प्रत्यक्ष देख चुके हैं ? क्या इस ग्रन्थ के रागों का सम्बन्ध रत्नाकर के रागों से किया जा सकता है ? सङ्गीत दर्पण ग्रंथ के बहुत से राग उत्तर पद्धति में होने पर भी इसमें तीव्र कोमल आदि संज्ञाऐं नहीं हैं, क्या इससे आपको आश्चर्य अनुभव नहीं होगा ? दक्षिण की ओर जाति-मूर्छना की व्यवस्था नहीं है । क्या इतने से ही रत्नाकर उत्तर का ग्रन्थ ठहराया जा सकेगा ? आप ऐसा कौनसा प्रमाण देंगे कि 'रत्नाकर' ग्रन्थ दक्षिण पद्धति का होना संभव ही नहीं है ?

२५–रत्नाकर का "साधारण-प्रकरण" भरत के साधारण-प्रकरण से क्या बिल्कुल अच्छी तरह मिल जाता है ? भरत ने "च्युत स्वर" किस प्रकार बताये हैं ? यदि नहीं तो क्यों नहीं बताये हैं ? वह सम्पूर्ण कितने स्वरों का उपयोग करता है ? किस आधार पर ? शार्ङ्गदेव ने नये नाम कहां से और क्यों ग्रहण किये ?

२६–"ग्राम साधारण" का अर्थ क्या ? इसकी आवश्यकता कैसे उत्पन्न होती है ? क्या मूर्छना के चार भेद और साधारण प्रकरण अलग-अलग खास तौर पर बताये गये हैं ? ऐसा क्यों ? "अल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चान्तरस्वरः ।" इस प्रकार शार्ङ्गदेव ने क्यों कहा ? उसकी अठारह जाति में अन्तरगांधार व काकलीनिषाद आपको कितने स्थलों पर दिखाई देते हैं ? क्यों ? क्या उसके रागों में भी ये स्वर दिखाई देते हैं ? क्यों ? "षड्जे षड्जसाधारणं," "मध्यमे मध्यमसाधारणं" इस उक्ति का क्या स्पष्टीकरण किया जावेगा ? "प्रयोज्यौ षड्जमुच्चार्य काकली धैवतौ क्रमात् ।" इत्यादि, यह नियम विशेष रूप से क्यों कहा गया ? भरत कहता है:—

"अंतरस्वरसंयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः। कार्यः स्वल्पविशेषेण नावरोही कदाचन। क्रियमाणोऽवरोही स्यादल्पो वा यदि वा बहुः। जातिरागं श्रुतिं चैव नयंते त्वंतरस्वराः।"

इस श्लोक का अर्थ किस तरह किया जावेगा ? इसकी एकवाक्यता रत्नाकर से किस प्रकार की जायेगी ? "जाति राग" अर्थात् ? भरत ने "अस्य तु प्रयोग-सौक्ष्म्यात्कैशिकमिति नाम निष्पद्यते" इस प्रकार कहा है; क्या इसमें से त्रिश्रुतिक ग, नी स्वर निकालने ठीक होंगे ? कैसे ? ये उसने कैसे प्रयुक्त किये ?

२७-भरत के नाट्यशास्त्र में इस प्रकार कहा गया है:—

"द्विविधैकमूर्छनासिद्धिः। तत्र-द्विश्रुतिप्रकर्षाद्धैवतीकृते गांधारे मूर्छना-ग्रामयोरन्यत्र षड्जग्रामे। मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवान्निषादोत्कर्षाद्वैविध्यं भवति। तुल्यश्रुत्यंतरत्वाच्च संज्ञान्यत्वम्।"

इस उक्ति की स्पष्ट व्याख्या कीजिये। (पृ० ३०५ निर्णयसागर प्रति) इस भाग की तुलना, रत्नाकर के तत्सम्बन्धी भाग से की जावे। इस प्रकार करने पर क्या ४, ३, २ श्रुति के स्वर अर्थात् Major Minor, Semi ही समझे जावेंगे ?

२८-रत्नाकर में "शुद्ध तानें" ८४ क्यों बताई गई हैं ? शार्ङ्गदेव ने क्या इनका कुछ प्रयोजन बताया है ? क्यों ? भरत ने इसी प्रकार ८४ तानें बताकर साथ ही दो प्रकार की "तान-क्रिया" प्रवेश व निग्रह बताई है, ऐसा उसने क्यों किया होगा ? वही आगे कहता है:—"मध्यमस्वरास्पर्शः। मध्यमस्वरेण तु वैणेन मूर्छनानिर्देशो भवत्यनाशित्वात्।" इससे पाठक क्या तर्क कर सकता है ? 'मूर्छना प्रयोजनं स्थानप्राप्त्यर्थः। स्थानं त्रिविधं। त्रीणि स्थानानि-उरुः कंठः शिरः इति।" इससे क्या बोध होगा ? षड्ज और मध्यम ग्राम के थाट क्या एक से ही दिखाई देते हैं ? क्यों ? यदि ऐसा है तो फिर अलग-अलग क्यों माने गये ? अब उसका कार्य किस प्रकार पूरा किया जाता है ? उदाहरण ?

२९-शार्ङ्गदेव ने पूर्वप्रसिद्ध एवं अधुनाप्रसिद्ध इस प्रकार संगीत के भेद किस आधार पर किये होंगे ? क्या इससे यह समझा जावे कि उसके समय में पूर्वप्रसिद्ध सङ्गीत नष्ट होगया था ? अधुनाप्रसिद्ध सङ्गीत के राग तो आज भी अपने यहां एवं दक्षिणी पद्धति में दिखाई पड़ेंगे। फिर जाति और मूर्छना का प्रपंच उसने कहां से और क्यों प्राप्त किया होगा ? शार्ङ्गदेव ने अपना नाम "निःशंक" क्यों ग्रहण किया था ? क्या आपने "दंतिलकोहलीयम्" इस प्रकार का ग्रंथ-नाम सुना है ?

३०-रत्नाकर के रागों में अति कोमल रे, ध ग्रहण करने वाले राग हैं क्या ? कौन से ? किस आधार से ? इन स्वरों को शार्ङ्गदेव क्या कहता है ? क्या इस समय अपने गायक अति कोमल रे, ध वाले राग गाते हैं ? क्या उनके गायन के लिये शास्त्राधार निकल आयेगा ? हिन्दू संगीत में Quarter Tones प्रयुक्त होता है, ऐसा किसी पाश्चात्य पंडित ने लिखा है इसमें क्या कुछ तथ्य है ? यह खोज सर्व प्रथम किसने और कब की ? इसका सर्व प्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में प्राप्त होता है ?

३१–रत्नाकर के ग्रामरागों में भैरव, पूर्वी और मारवा थाटों के राग अलग-अलग कागज पर लिखकर दिखाइये और राग-लक्षणों से सरल अर्थ करते हुए इन थाटों को सिद्ध कीजिये। क्या इन थाटों के जन्यराग अपने प्रचलित रागों से मिलते हैं? यदि ये नहीं मिलते तो क्या रत्नाकर को उत्तर पद्धति का ग्रंथ कहा जा सकता है?

३२–रत्नाकर के रागों के थाट योग्य हैं या नहीं, इन्हें उसके पश्चात् रचे हुए किसी भी ग्रंथ के राग-मेलों से मिलाकर दिखाइये? कौन ग्रंथकार रत्नाकर को समझ पाया है? यदि नहीं तो आज के यावनिक संगीत से उनकी तुलना की जा सकती है?

३३–उत्तर पद्धति में जो राग-रागिनी की व्यवस्था थी, उसका उल्लेख क्या कहीं शार्ङ्गदेव ने किया है? हनुमन्मत का ग्रन्थ कौनसा है? यदि यह मत 'दर्पण' में दिया हुआ हो तो क्या उसकी समता ग्रामरागों से अथवा उसके जन्यरागों से हो सकेगी? दर्पणकार रत्नाकर का स्वराध्याय ग्रहण करता है और रागों में जाति न बताते हुए केवल मूर्छना बताता है। इसका क्या कारण हो सकता है? दर्पण ग्रंथ उत्तर का है या दक्षिण का? क्यों? उदाहरण से बताइये?

३४–स्वरों के रङ्ग और श्रुतियों की जाति बताने में शार्ङ्गदेव का क्या उद्देश्य रहा होगा? आपके यहां के गायक राग और रस में कैसा सम्बन्ध रखते हैं? और वह किस आधार पर? क्या यहां के गायक ग्रन्थोक्त गमकों को उनके नियमों के अनुरूप गाते हैं? प्रचलित गमकों और शास्त्रीय गमकों की एकरूपता करके दिखाइये?

३५–रत्नाकर में वर्णित 'भाषा' आदि पन्द्रह जनक ग्रामरागों का एक कोष्ठक बनाकर उन रागों के थाट स्पष्ट लिखिये और उससे निकलने वाले जन्यरागों की आज के प्रचलित स्वरूपों से कैसी और कितनी तुलना हो सकती है, यह बताइये? यदि बिलकुल संक्षेप में भी यह बात समझाई जा सके तो भी पर्याप्त होगी।

३६–'सोमनाथ' उत्तर का पंडित था या दक्षिण का? यदि वह दक्षिण का था तो रागविबोध में तीव्र और तीव्रतर आदि संज्ञाएं क्यों हैं? यदि यह उत्तर पद्धति का पंडित था तो अन्तर, काकली, साधारण और कैशिक नाम क्यों हैं? क्या 'सोमनाथ' रत्नाकर को समझे हुआ था?

मित्रो! अब और अधिक प्रश्न नहीं सुनाऊँगा। ये प्रश्न प्राचीन सङ्गीत पर जानकारी एकत्र करने के उपयोग में आ सकेंगे। अन्य प्रश्न प्राचीन ग्रंथों पर और प्रचलित सङ्गीत पर हैं, जो अभी तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं हैं। हां तो, मैं शिवमतभैरव के आधारों के सम्बन्ध में बोल रहा था। ठीक है न?

धैवतांशग्रहन्यासयुक्तः स्याच्छुद्धभैरवः।
सकंपमंद्रगांधारो गेयो मध्यान्हतः पुरा॥

मैं समझता हूं कि अब हमें शुद्धभैरव के लक्षण, ग्रंथों से खोज निकालने का परिश्रम ही नहीं करना चाहिये क्योंकि उस राग को यदि कोई शिवमतभैरव मानने को तैयार नहीं हुआ तो यही समझा जायगा कि हमने निरर्थक कार्य किया है। 'नादविनोदकार' ने शिवमतभैरव का स्वरूप स्वरों में इस प्रकार बताया है:—

निनिधपमगमरेरेसा, निसागमधधुपसांनिधपमगरेसा। पपधधसां, सांरेंसां, निधपमगम, रेरेसा, गरेंसां, निधप, गमरेरेसा।

मैं समझता हूं कि इस स्वरूप में रे, ध स्वरों पर आंदोलन लेकर और संपूर्णरूप सावकाश एवं गंभीर रखकर इस राग को भैरवी अथवा आसावरी से अलग रखने का प्रयत्न अवश्य किया जाता होगा। इस राग का वर्णन भी संभवतः उसने अपनी कल्पना के अनुसार लिखा होगा जो कि इस प्रकार है:—

"शरीर में उज्वल भस्म लगाये, कानों में मुंदरे पहने, सर्प हात में लपटे हुए, लाल लंगोट बांधे, डमरू हात में लिये, त्रिशूल आगे रक्खा हुआ, बड़े बाल, धूनी रमाये, लाल-नेत्र जिसके, ऐसा शिवमतभैरव है"।

लक्षणों की दृष्टि से इसमें बिलकुल तथ्य नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु गायकों के विनोद की दृष्टि से यह उपयुक्त है।

सङ्गीतकल्पद्रुम में इस प्रकार कहा गया है:—

सचंद्रहासं फलकं दधानो।
निलीमकंठः शशिबद्धचूडः॥
व्याघ्रांबरावेष्टितगौरगात्रः।
शिवस्वरूपः किल भैरवोऽयम्॥
गांधारांशग्रहन्यासो गांधारादिकमूर्छना।
हनूमत मत प्रोक्तो भैरव प्रात गीयते॥

अथोत्पत्तिः।

रामकली गौडी टोडी च भैरवोत्पत्ति कथ्यते।
क्वचिद्धैवतसंमुख्य धनिसरेगमपस्तथा॥

गगमगरेसासामगपनिधपमपमगमगरेगरेसा। मपधसारेसानिनिसानिनिधसासा-निधनिनिधपधपपमपपमगममगरेसा॥

भाषा तो तुम्हारी पहिचानी हुई ही है।

प्रश्न—अब हमें यह राग गाकर दिखा दीजिये तो फिर यह पूरा हो जायेगा।

उत्तर—अच्छी बात है सुनो:—

शिवमतभैरव-सरगम-(चौताल)

स्थाई—

ग	ग	म	रे	ग	प	म	ग	म	रे	सा	ऽ
×											

नि़	नि़	सा	ग॒	रे॒	सा	नि़	सा	ध़॒	नि़॒	प़	प़
×											
म़	प़	ध़॒	ध़॒	सा	ऽ	ग	प	म	ग	रे॒	सा
×											

अन्तरा—

म	प	ध॒	ध॒	नि	नि	सां	ऽ	नि	नि	सां	ऽ
×											
ध॒	ध॒	नि	नि	सां	गं॒	रें॒	सां	नि	सां	ध॒	प
×											
म	म	प	प	ध॒	ध॒	नि	सां	ध॒	नि॒	प	प
×											
म	ग	रे॒	रे॒	ग	प	म	ग	रे॒	रे॒	सा	ऽ
×											

संचारी—

सा	सा	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	प	प	प	ध॒	नि	सां
×											
ध॒	ध॒	प	प	प	म	प	ग	ग	ग	म	रे॒
×											
रे॒	ग	रे॒	ग	म	प	म	ग	म	रे॒	सा	ऽ
×											

आभोग—

म	म	प	प	ध॒	ध॒	सां	ऽ	नि	नि	सां	ऽ
×											
ध॒	ध॒	नि	सां	गं॒	रें॒	सां	नि	सां	ध॒	नि॒	प
×											
ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	प	प	प	ध॒	नि	सां	ध॒	प
×											
नि॒	ध॒	प	ग	म	रे॒	ग	प	म	ग	रे॒	सा
×											

सरगम–झपताल (झंपताल)

स्थाई—

ग	ग	रे॒	ग	प	म	ग	म	रे॒	सा
×									
नि़	सा	ग॒	रे॒	सा	नि़	सा	ध़॒	नि़॒	प़
×									
म़	प़	ध़॒	नि़	सा	रे॒	रे॒	सा	नि़	सा
×									
ग	रे॒	ग	म	प	म	ग	रे॒	रे॒	सा
×									

अन्तरा—

म	प	प	ध॒	ध॒	सां	ऽ	नि	सां	सां
×									
ध॒	ध॒	नि	सां	गं॒	रें॒	सां	ध॒	नि॒	प
×									
प	प	ध॒	नि	सां	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	प
×									
म	ग	रे॒	ग	प	म	ग	रे॒	रे॒	सा
×									

यह देखते जा रहे हो न कि मैं इन सरगमों को गाते हुए किस–किस प्रकार ठहरता हूँ और रे॒ ध॒ स्वरों पर आन्दोलन लेकर भैरव अङ्ग किस प्रकार आगे लाता हूँ। आभोग का तीसरा चरण जहां मैंने "प ध॒ नि सां" स्वर गाये हैं, वहां कभी–कभी कोई तीव्र धैवत लेते हुए तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। यह स्वर इस राग में चमत्कार के लिये किसी ने जानबूझकर लगाया भी तो हम उससे नहीं उलझेंगे। भैरवीथाट का प्रकार तुम्हें गाना हो तो "नि॒ सा ग॒ म, रे॒ रे॒, सा, ग॒ म, प ग॒ म, रे॒ रे॒ सा। ध॒, ध॒, प, ग॒ म रे॒, नि॒ ध॒, प, ग म रे॒, सा" ये स्वर मैं जिस प्रकार गाता हूँ, उसी प्रकार गाने चाहिए। मध्यम ऋषभ की सङ्गति अच्छी तरह सँभालकर रखनी पड़ेगी। यहां थोड़ा भैरव का आभास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिये। गांधार कोमल है, अतः यहां तोड़ी का भ्रम हो जाना संभव है किन्तु "ग॒ म रे॒, रे॒, सा" इस प्रकार स्वर लेने से तोड़ी की छाया कम हो जायेगी। ग॒ म ग॒ रे॒ सा" यदि इस प्रकार लिया तो भैरवी आगे आ जावेगी। इस राग-स्वरूप में द्रुत तानें ली गईं तो यह राग भैरवी में मिश्रित हो जायेगा, अतः इसमें इस तरह की कोशिश ही नहीं करनी चाहिये।

प्रश्न—हम तो अपने ही मत से चलने वाले हैं, अन्य मत तो केवल संग्रहीत रखेंगे।

उत्तर—यही मार्ग उत्तम है। अपना स्वयं का कोई एक निश्चित मत होना ही चाहिये। ऐसा होने पर भी अन्य मतों का अनादर करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती। ये सब बातें तुम समझ ही चुके हो।

प्रश्न—इस राग को हम समझ गये, अब दूसरा लीजिये ?

उत्तर—हां अब "अहीर-भैरव" राग लेता हूं। यहां तुम्हें एक बात ध्यान में रख लेनी चाहिये कि "अहीरभैरव" और "अहीरी" अथवा "आहीरी" ये भिन्न-भिन्न राग-रूप माने जाते हैं।

प्रश्न—जिस तरह "बंगाल" और "भैरवबंगाल" अथवा "बंगालभैरव" राग हमने भिन्न-भिन्न माने हैं, उसी तरह इसे भी मानेंगे। ठीक है न ?

उत्तर—हां, ग्रंथों में "आहीरी" अथवा "आहेरी" नाम हैं, परन्तु अपना "अहीर-भैरव" इनसे अलग है। "अहीरभैरव" बहुत ही कम गायकों को आता है, अतः इसे दुर्मिल रागों में से ही एक समझा जाता है। इसके स्वर-स्वरूप के संबन्ध में भी मत-भेद दिखाई पड़ना संभव है। मुझे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में "अहीरभैरव" ऐसा संयुक्त नाम नहीं दिखाई दिया। यह रागस्वरूप अपने गायकों ने नवीन ही उत्पन्न किया होगा। मेरे गुरु ने यह मुझे जिस प्रकार सिखाया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें बताऊँगा। यही स्वरूप तुम्हें लक्ष्यसङ्गीत में प्राप्त होगा, क्योंकि यह ग्रंथ आधुनिक पद्धति पर है। इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत मधुर और स्वतंत्र रागस्वरूप है।

प्रश्न—इस राग के कौन-कौन से मुख्य लक्षण हमें ध्यान में रखने होंगे ?

उत्तर—यह एक भैरव प्रकार है, अतः गायक मुख्य अंग भैरव का ही रखते हैं, परन्तु उत्तरांग में काफीथाट के स्वर सम्मिलित होते हैं, अतः श्रोताओं के कानों को कुछ विचित्र स्वरूप लगता है। कोई-कोई गायक अन्तरे में तीव्र रे स्वर भी लेते हैं। मेरे गुरु ने भी ऐसा ही किया था।

प्रश्न—तो फिर हम इस प्रकार एक स्थूल नियम स्वीकार कर लेते हैं कि पूर्वाङ्ग में 'भैरव' और उत्तरांग में 'काफी' थाट के स्वर ग्रहण करने पर 'अहीरभैरव' उत्पन्न होगा। परन्तु अन्तरे में यदि कहीं तीव्र रे ग्रहण किया जाता हो तो कोई यह कहेगा कि इस राग में भैरव और खमाज थाट मिल जाते हैं ?

उत्तर—यह बात मैं समझने वाले की सुविधा पर छोड़ दूंगा। इसमें तीव्र गांधार भैरव अंग से है, खमाज अंग से नहीं, यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये। मेरे कथन का तात्पर्य सहज ही तुम्हारी समझ में आ जायेगा।

प्रश्न—मुख्य राग भैरव रखने के कारण अधिकतर तानबाजी अथवा रागविस्तार भैरव का ही किया जाता होगा ?

उत्तर—जब कि कुल प्रभाव भैरव का ही रखना है तो अन्तिम भाग भैरव का दिखाना ही पड़ेगा, तथापि उत्तरांग में तानों में भी बिलकुल भिन्न स्वरूप अच्छी तरह

स्पष्ट रखा जा सकता है। इस राग में भैरव का आन्दोलित धैवत ग्रहीत न होने से, कुल मिलाकर स्वरूप बहुत कुछ भिन्न हो जाता है। वह सब मैं अब तुम्हें स्वरों से प्रत्यक्ष समझाने वाला हूँ।

प्रश्न—जी हां, इससे हमें अच्छी तरह और शीघ्र ही समझ में आजावेगा। इस राग में वादी स्वर कौनसा होता है? धैवत तो होगा ही नहीं?

उत्तर— वादी 'षड्ज' माना जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि जगह-जगह मध्यम मुक्त रूप से प्रयुक्त होता है, अतः इसे वादी माना जावे। स्थाई का भाग भैरव अङ्ग से गाया जाता है, अतः गायक बड़ी युक्ति से आरम्भ में श्रोताओं के हृदय पर भैरव का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वह इस प्रकार—"ग, मरे॒, रे॒, सा, सारे॒ग, म, रे॒, पगम, रे॒, रे॒, सा, सा, रे॒, सा, रे॒, गमपगम, रे॒, रे॒, सा"। ये स्वर अच्छे सावकाश रूप से गाये गये तो भैरव का संकेत अवश्य हो जायेगा। अब देखें कि तुम मध्यम बढ़ाकर पंचम तक कैसा विस्तार करते हो।

प्रश्न—हम इस प्रकार करेंगे:—सारे॒रे॒, सा, ग, म, रे॒गम, गमप, ग, म, रे॒गम, पमग, मरे॒, रे॒, सा; सारे॒सा, गमरे॒सा, गमनि॒सा, गम, पगम, सारे॒गम, रे॒पगमरे॒, सा, सारे॒सा।

उत्तर—यह अच्छा रहा। यह पूरा विस्तार इस 'अहीरभैरव' राग में निभ जायेगा। मेरे गुरु ने जो चीज गाई थी, उसका उठाव उन्होंने इस प्रकार रखा था, देखो; "गरे॒सा, नि॒सा, रे॒ग, रे॒ग, म" अन्तिम 'म' उन्होंने मजे से खुला छोड़ दिया।

प्रश्न—इतना करने के बाद, आगे?

उत्तर—आगे उन्होंने इस प्रकार भैरव अङ्ग लिया:—

"पमग, रे॒, सा, सारे॒सा, ग, म, रे॒, सा, गम, प, रे॒गमप, मपगम, रे॒, सा, गरे॒सा, रे॒गम"।

प्रश्न—इसमें बिलकुल सन्देह नहीं कि यह एक चमत्कारिक स्वरूप हो जाता है। इसमें वह खुला मध्यम आया कि तत्काल ही निराला प्रभाव हो जाता है। 'सा, रे॒गम' यह टुकड़ा भी हृदय को आकर्षित करता है।

उत्तर—यह सत्य है। यह मध्यम बार-बार आगे आने से कहीं-कहीं पर किसी को थोड़ा सा 'ललित' का आभास हो सकता है, परन्तु आगे पंचम आने से और रिषभ का आन्दोलन देखकर वह भ्रम सहज में दूर हो जायेगा।

प्रश्न—हम सोचते हैं कि कुछ 'प्रभात' राग का आभास होगा, क्योंकि उसमें ललित अङ्ग का मध्यम है और भैरव अङ्ग मुख्य रहता है?

उत्तर—परन्तु यह ध्यान में होगा ही कि 'प्रभात' भैरव से किस प्रकार अलग हो जाता है।

प्रश्न—हां, हां, प्रभात का उत्तरांग भैरवी का होने पर भी इसमें दोनों मध्यमों का उपयोग होता है, ऐसा इस राग में बिलकुल नहीं होता। यहां कुछ और ही आनन्द है। यह

"सा रे ग, रे ग, म प, ग म, रे, सा" का टुकड़ा कुछ स्वतन्त्र ही प्रभाव उत्पन्न करता है। गुरूजी ! थोड़ी देर के लिये तो यही सोच हो जाता है कि इसकी तुलना किस राग से की जावे।

उत्तर—यह खूबी तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ गई है। तुम मर्मज्ञ तो हो ही, तुम्हें इसे समझने में देर कैसे लगेगी ? यह राग बहुत ही कम दिखाई पड़ने योग्य है, अतः इसके सम्बन्ध में बहुत सी जानकारी तो मैं क्या दे सकता हूँ ? तो भी जितनी जानकारी मुझे प्राप्त है, उतनी तुम्हें प्रामाणिक रूप से बता देना मेरा कर्तव्य है। अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न तुम आगे चलकर करोगे ही। मुझे मिली हुई जानकारी से मिलती जुलती तुम्हें और बातें प्राप्त हो जाने पर तुम्हारे पास रागनियम कायम करने का एक बड़ा भारी साधन हो जायेगा। इस समय तो तुम्हारे लिये लक्ष्यसङ्गीत एक सुदृढ़ आधार है ही। मेरे एक मित्र ने मुझे सुझाया था कि 'अहीरभैरव' में आरोह तीव्र स्वरों से और अवरोह कोमल स्वरों से करने का नियम स्वीकार किया जावे। परन्तु इस मत को स्वीकार करने पर आरोह में 'सा रे ग, रे ग म' इस प्रकार स्वर नहीं लिये जा सकेंगे, अतः उत्तरांग में 'मिश्रमेलत्व' स्वीकार करना ही अधिक युक्तिसंगत दिखाई देता है।

प्रश्न—परन्तु आपने तीव्र रिषभ ग्रहण करने की जो बात बताई थी, क्या वह भाग बतायेंगे ?

उत्तर—हां, यह स्वर अन्तरे में ग्रहण किया जाता है, ऐसा ही मैंने कहा था। ठीक है न ? वह भाग इस तरह है, देखो:—"म, म, रे, म, म, प, प ...."

प्रश्न—यह क्या ? क्या इस तरह सोरठ का अङ्ग मध्य में लिया जायेगा।

उत्तर—तुम व्यर्थ ही जल्दी कर गये। अगला टुकड़ा तो सुनो:—"ममरे, मम, प, प, म म, पधनि, धपधम, पमगरे, सा, पमग, सारेगरेगम।"

प्रश्न—वास्तव में यह बिलकुल निराला स्वरूप है। इसमें कहीं-कहीं उत्तरांग में हमें खम्बावती का मिश्रण ज्ञात होता है, परन्तु इस राग में दूसरे राग का आभास होने से रागवैचित्र्य ही बढ़ेगा, बशर्ते कि उस भाग को नियमों के अनुसार और समझ कर ही लिया जाय।

उत्तर—हां, तुम्हारा यह कथन ग़लत नहीं है। नियमानुसार रागमिश्रण करना बड़ी कुशलता मानी जाती है। अपनी पद्धति में भिन्न-भिन्न प्रकार से मिश्रण होते हैं। कहीं आरोह एक थाट का और अवरोह दूसरे थाट का होता है। कहीं उत्तरांग तो एक से आरोह-अवरोह का होता है, परन्तु पूर्वाङ्ग का आरोहावरोह अलग-अलग थाटों का होता है। कहीं इसका उच्च स्वरूप होता है। कहीं दो रागों के स्वतन्त्र अन्श, रागवैचित्र्य न बिगाड़ते हुए बड़ी खूबी से मिला दिये जाते हैं। कहीं प्रस्तुत राग में वादी स्वर लगाने का तरीका अन्य राग का ग्रहण किया जाता है। कहीं-कहीं तानबाजी के लिये आश्रय-रागों का सम्बन्धित भाग ग्रहण कर लिया जाता है। कहीं जान-बूझ कर आवश्यकतानुसार बिना मुख्य राग को बिगाड़ते हुए विवादी स्वर नियत मात्रा में सम्मिलित किया जाता है।

कहीं-कहीं तो विवादी स्वरों की सहायता से प्रचार में रागों के उपांग ग्रहण कर लिये जाते हैं। थोड़ी देर के लिये हम देवबिहाग, पटबिहाग आदि रागस्वरूप इसी प्रकार के मानेंगे। ये सभी तुम्हारे कानों तक पहुँच ही चुके हैं।

प्रश्न—गुरूजी! 'पटबिहाग' का नाम तो हमने अभी तक नहीं सुना?

उत्तर—सच है, इसके सम्बन्ध में मैंने तुम्हें कुछ नहीं बताया। उत्तर के एक उर्दू ग्रन्थ में मैंने यह नाम देखा था। मैंने इस राग के नाम से एक प्रसिद्ध ख्याल अपने गायकों द्वारा गाते हुए सुना है, परन्तु यही ख्याल उत्तर के एक हिन्दी ग्रन्थ में 'नटबिहाग' के नाम से बताया गया है।

प्रश्न—अब चाहे वह राग 'नट' हो अथवा 'पट' हो। हमें तो उसके नियम समझ में आने चाहिये?

उत्तर—ठीक कह रहे हो। यह तो तुम समझ ही गये होगे कि बिहाग के स्वरूप में परिवर्तन करने से नटबिहाग अथवा पटविहाग उत्पन्न किया जाता होगा।

प्रश्न—जी हां, पर बिहाग का जीवभूत भाग इस प्रकार है:—"गमपमगसानि़, प़नि़सागमप, निप" भला इसमें कहां पर मोड़-तोड़ की जावेगी?

उत्तर—उस समय मैंने दो बातें देखी थीं। प्रथम, अवरोह में बीच-बीच में कोमल निषाद ग्रहण करना और द्वितीय, आरोह में कहीं-कहीं ऋषभ लेकर झिंझोटी का आभास उत्पन्न करना। "गमनि॒धप, गमरेगमप, गमग, सानि़, प़नि़सा" इस रीति से गाये जाने पर बिहाग का एकाध नवीन स्वरूप दीखने ही लगता है। ऐसे मिश्रण में तुम्हें कहीं पर बिहाग की और कहीं पर झिंझोटी की तानें ली जाती हुई दिखाई देंगी।

प्रश्न—अच्छा, उस उर्दू ग्रन्थ में "पटबिहाग" का थाट कौनसा बताया है?

उत्तर—उस ग्रन्थ में इसे बिलावल थाट का राग बताया है। इस राग के सम्बन्ध में कोई कहते हैं कि हम कोमल नी का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में करते हैं और कोई-कहते हैं कि हम इस राग को खमाज थाट के अन्तर्गत मानते हैं। किन्तु हम इस उलझन में व्यर्थ ही क्यों पड़ें? हमारा सिद्धान्त यही है कि नियमबद्ध प्रचार में विरोध न किया जावे। मैंने तुम्हें पिछले किसी संभाषण में तिलककामोद राग बताया था। तुम्हें उसका स्मरण है न?

प्रश्न—जी हां, आपने उसे खमाज थाट का राग बताया था।

उत्तर—ठीक है! अपने यहां इस राग में दोनों निषाद ग्रहण किये जाते हैं। परन्तु लखनऊ आदि स्थानों के गायक कोमल निषाद बिलकुल नहीं लेते।

प्रश्न—तो फिर वे किस प्रकार गाते हैं।

उत्तर—उस तरफ इस राग (तिलककामोद) को इस प्रकार गाया जाता है:— प़नि़सारेगसा, रेपमग, सारेग, सानि़, प़नि़सारेगसा, रेमपधमप, सां, पधमग, सारेग, सानि़" एक प्रकार से यह स्वरूप भी अच्छा दिखाई पड़ता है क्योंकि देस, सोरठ आदि समप्राकृतिक राग इस तरह से भिन्न दिखाये जा सकते हैं। वे लोग इस राग को कहीं-

कहीं "बिहारी" नाम भी देते हैं। उत्तर की ओर एक और मतभेद इस प्रकार पाया जाता कि वे गौड़मल्हार में कोमल निषाद वर्ज्य करते हैं!

प्रश्न—क्या हम भी इस राग में इस स्वर को अल्पप्राय नहीं रखते?

उत्तर—हां रखते हैं; परन्तु उधर तो उसे बिलकुल ही वर्जित करने का प्रचार है। आगे चलकर तुम उधर के गायकों के गायन में, इस राग में यह अवश्य देखना कि अवरोह करते हुए कोमल निषाद का "कण" धैवत में शामिल होता है या नहीं? अरे हां अच्छी याद आयी। पिछली बार मैंने तुम्हें उत्तर का 'सावनीकल्याण' राग भी शायद नहीं बताया था। ठीक है न?

प्रश्न—जी हां, यह राग भी नहीं बताया। कोई बात नहीं, इसे अब बता दीजिए?

उत्तर—'सावनीकल्याण' की रूपरेखा का अनुमान तुम्हें इस प्रकार हो सकेगा—"पपधप, सा, सारेसा, सा, मग, पप, गमपगरेसा; पपधप, सा;" थोड़ी देर के लिये ये स्वर 'हेमकल्याण' के समझलो और—

"गरेसा, निधनिधप, पसा, रेगरेसा, सासामग, पपध, पधपग, रेसाध गरेसा;"

ये स्वर 'सावनीकल्याण' के समझो। देखते हो न, कि ये राग किस प्रकार निकट आ जाते हैं? कुछ अंशों में यह राग तुम्हें शुद्धकल्याण जैसा दिखाई देगा, परन्तु शुद्धकल्याण में तीव्र मध्यम अवरोह में लिया जाता है, वैसा इसमें नहीं लिया जाता। सारांश यह है कि इस 'संगीत' विषय में प्रचार से जितना कम झगड़ने का प्रसंग आवे उतना ही अच्छा है। मैं तुम्हें वही बता रहा हूं, जो मैंने सीखा है और सुन पाया है। आगे चलकर तुम्हें जैसा अनुभव प्राप्त हो, उसे तुम भी प्रसिद्ध करना और अपने शिष्यों तथा मित्रों को मुक्त हृदय से बताते रहना। तुम्हारी अगली पीढ़ी तुम्हारा अनुभव लेकर और अधिक आगे बढ़ जावेगी। अस्तु, अब हमें अपने प्रस्तुत विषय की ओर बढ़ना चाहिये।

मैं यह कह चुका हूं कि "अहीरभैरव" में षड्ज और मध्यम का संवादित्व है। संस्कृत ग्रंथकार "आहीरी" और आभीरी" इस प्रकार भिन्न-भिन्न राग मानते हैं। हम भी इसी प्रकार मानकर आगे बढ़ें। "आभीरी" नामक राग दक्षिण की ओर प्रसिद्ध ही है।

प्रश्न—दक्षिण की ओर "आभीरी" राग किस थाट में माना गया है और उसके आरोह-अवरोह किस प्रकार रखे गये हैं?

उत्तर—उस तरफ के ग्रन्थों में "आभीरी" "आहीरी" "आभेरी" इस तरह के नाम प्राप्त होते हैं। आभेरी राग अपने आसावरी थाट में है। उसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है। "सागमपनिसां। सांनिधपमगरेसा" यह स्वरूप मैंने उत्तर के एक गायक से ही सुना है। रेल की सुविधा के कारण शायद उसने यह स्वरूप दक्षिण से ही प्राप्त किया हो तो आश्चर्य नहीं। उसने यह राग अपने उत्तर के तरीके से सुन्दरतापूर्वक गाया था। कुछ ग्रन्थों में "आहीरी" राग दक्षिण के तोड़ी थाट में अर्थात् अपने भैरवी थाट

में बताया है। प्रदर्शिनीकार "आहीरी" को नटभैरवी थाट (अपने आसावरी थाट) में बताता है। वह "आभेरी" और "आहीरी" को एक ही थाट में मानता है और उनके आरोह-अवरोह इस प्रकार बताता है:—

सामगमपनिसां। सांनिधपमगरेसा। (आभेरी) सारेसा, गम, पधनिसां। सांनिध, पमग, रेसा। (आहीरी)

यदि गायक चाहें तो ये दोनों स्वरूप योग्य, वादी-संवादी नियत कर अपनी पद्धति में भी गाये जा सकते हैं।

रागविबोधे:—

आभीरनाटमेले शुद्धसमपधाश्च तीव्रतरऋषभः ॥
साधारणमृदुसौ चेत्यतः स्युराभीरनाटाद्याः ।
आभीर्यपि प्रदोषे पूर्णा गांशग्रहा च सन्यासा ॥

स्वरमेलकलानिधौ:—

शुद्धाः समपधाश्चैव पंचश्रुत्यृषभस्तथा ।
साधारणोऽपि गांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
स्वरैरमीभिः संयुक्त आहरीमेलको भवेत् ।
सन्यास आहरीरागः सांशः षड्जग्रहोऽपि च ॥
संपूर्णश्चरमे यामे गातव्योऽसौ विचक्षणैः ॥

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम्:—

षड्जश्च पंचश्रुतिको रिषभश्च तथापरः ।
साधारणाख्यगांधारःशुद्धाश्च मपधास्तथा ॥
काकल्याख्यनिषादश्चेत्याहीरीमेलके स्वराः ॥

ये तीनों ग्रन्थकार एक ही मत के हैं। आजकल व्यंकटमखी का ग्रन्थ ही दक्षिण का सर्वोच्च व अन्तिम आधार ग्रन्थ है, यह मैं तुम्हें पहिले भी बता चुका हूँ।

प्रश्न—जी हां, आपने यह भी कहा था कि पं० व्यंकटमखी ने रामामात्य की बड़ी कठोर टीका की है। हमें यह देखने की प्रबल अभिलाषा है कि उसने यह टीका किस तरह की है। इससे यदि कुछ विषयान्तर होता हो तो भी कोई हानि नहीं। क्या आप वह सुनायेंगे?

उत्तर—तुम चाहते हो तो मैं संक्षेप में सुनाये देता हूं। आरम्भ में सन्दर्भ समझने के लिये एक दो बातें अच्छी तरह समझलो। "स्वमेल-कलानिधि" ग्रन्थ अब अनुवाद सहित प्रकाशित होगया है। यदि तुम उसे पढ़ लोगे तो इस टीका का मर्म अधिक अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जावेगा। रामामात्य ने आरम्भ में मुख्य बीस मेल बताये हैं। इन्हें बताकर फिर इनमें से पांच मेल कम करने की सम्मति दी है।

प्रश्न—यह कैसे।

उत्तर—वह कहता है कि अन्तरगांधार और काकलीनिषाद स्वरों को च्युत-मध्यम गांधार और च्युत-षड्ज निषाद में अन्तर्भूत मानलें तो पन्द्रह मेल ही काफी होंगे। उसके इस विधान पर और शंकराभरण, गौड़ी, पाड़ी आदि रागों के स्वर-स्वरूपों पर मुख्यतः व्यंकटमखी ने टीका की है। इस समय दक्षिण का प्रचार देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस टीका में कुछ सचाई भी है। अब यह टीका कैसी है, इसे देखो:—

"अथेदानीं विचार्यंते रामामात्येन लक्षिताः।
मेलप्रकरणे मेलाः स्वरमेलकलानिधौ ॥
तथा हि विंशतिर्मेलानाह रामो विमूढधीः।
युज्यते तत्कथं वेति तत्पृच्छामो वयं पुनः ॥
त्वदुक्तरीत्या सारंगनाटकेदारगौलयोः।
संप्राप्तमेकमेलत्वं मेलाः स्युर्विंशतिः कथम् ॥
ननु विंशतिमेलानां मध्ये पंचदशस्वपि।
मेलेषु पंचमेलानामंतर्भावस्त्वयेरितः ॥
अन्यस्य पुनरन्यस्मिनांतर्भावो भविष्यति।
अन्तराख्यातगांधारकाकल्याख्यनिषादयोः ॥
स्थाने प्रतिनिधित्वेन संगृह्येते यदा स्वरौ।
च्युतमध्यमगांधारच्युतषड्जनिषादकौ ॥
तदा विंशतिमेलानां मध्ये पंचदशस्वपि।
मेलेषु पंचमेलानामंतर्भावस्त्वयेरितः ॥
सालंगनाटकेदारगौलमेलद्वयेऽपि च।
अविशेषेण भवता संग्राह्यत्वे सकर्मकौ ॥
च्युतमध्यमगांधारच्युतषड्जनिषादकौ।
अन्यस्य पुनरन्यस्मिन्नंतर्भावो भवेत्तदा ॥
ततो विंशतिमेलोक्तिर्व्याख्यातेयं दुरुत्तरा।
मेलानां विंशतेर्यानि लक्ष्मारायुक्तानि हि त्वया ॥
तानि सर्वाणि दृश्यंते विरुद्धान्येव केवलम्।
तत्रस्थविपुलाख्यानन्यायेन कतिचित् पुनः ॥
लक्षणानि प्रदर्श्यंते राम एष्वेव मोहितः।
न हि तान्यत्र शक्यंते दूषणानि त्वयेरिते ॥

ग्रंथे गणयितुं दोषसहस्रग्रथने मया ॥
तथा हि भैरवीरागः शंकराभरणस्तथा ।
गौडीरागश्च कथितास्त्वया श्रीरागमेलजाः ॥
तत्कथं, भैरवीशुद्धधैवतेनान्विता खलु ।
शंकराभरणो रागोंतरगांधारवांस्तथा ॥
सकाकलीनिषादश्च गौडीरागस्त्वयं पुनः ।
जातो मालवगौलाख्यरागमेलादिसंस्थितः ॥
रागाणां पुनरेतेषां जन्म श्रीरागमेलकः ।
कथं विकत्थसे राम-राम-राम तव भ्रमः ॥
यच्चोक्तं भवता शुद्धरामक्रीरागमेलकः ।
पाडीरागार्द्रदेशाख्यरागजन्म भवेदिति ॥
तद्दोषजातये राम रामस्मरणमातनु ।
पाड्यार्द्रदेशीरागौ च प्रसिद्धौ गौलमेलजौ ॥
यदप्यदेवता राम रामबुद्धिविरामता ।
देशाक्षीमेल एवैष कैशिक्याख्यनिषादकम् ॥
प्राप्य कन्नडगौलः स्याद्गौलस्यातिमृषावहा ।
कन्नडगौलः श्रीरागमेलनतो मतो न किम् ।
यच्च कन्नडगौलस्य मेले समुपजायते ।
घंटारव इति प्रोक्तं पातकेनामुना पुनः ॥
सत्यं विमोच्यस्ये राम रामसेतुं गतोऽपि न ।
भैरवीमेलसंभूतो रागो घंटारवः खलु ॥
यद्यप्युक्तं त्वया नादरामक्रीरागमेलके ।
साधारणाख्यगांधारः संग्राह्य इति तत्वतः ॥
अपूर्वत्वयकारत्वमावेदयति राम ते ।
नादरामक्रियामेलगांधारोऽप्यंतराभिधः ॥
यच्चोक्तं रीतिगौलाख्यरागमेलस्य लक्षणम् ।
शुद्धाः सरिगमाः पश्च पंचश्रुतिकधैवतः ॥
कैशिक्याख्यनिषादश्चेत्यत्र रामक्रियस्तथा ।
भैरवीरागमेलोत्थो रीतिगौलः प्रकीर्त्यते ॥
यच्च केदारगौलाख्यरागमेलस्य लक्षणे ।

संग्राह्यश्च्युतषड्जाख्यनिषाद इति कल्पितम् ॥
तत्रस्थानैव शोचामि तव रामाभिधां पुनः ।
कैशिक्याख्यनिषादो हि मेले केदारगौलके ॥
यदप्युक्तंत्वया राम हेजज्जीरागमेलके ।
काकल्याख्यनिषादस्तु संग्राह्य इति तत्पुनः ॥
अतितुच्छं यतस्तस्मिन्मेले शुद्धनिषादकः ।
गृह्यते सकलैर्लोकैर्वादकैर्गायकैरपि ॥
यच्चोक्तं भवता राम कांभोजीमेललक्षणम् ।
गनी ह्यन्तरकाकल्यौ रिधौ पंचश्रुती तथा ॥
शेषाः शुद्धाश्च समपाः कांभोजीमेलके त्विति ।
तत्तावत्त्वदगीतज्ञबहिष्कार्यत्वसाधनम् ॥
कांभोजीरागमेलस्य कैशिक्याख्यनिषादकः ।
इति नो वेत्ति किं वीणावादिनां गृहदास्यपि ॥
तस्माद्वैकाररामोक्तान्मेलान्विश्वस्य वैणिकैः ।
कांतारकूपे वेष्टव्या उद्धृत्य भुजमुच्यते ॥

प्रश्न—यह कैसी टीका है गुरुजी ? क्या यह एक प्रकार का अन्याय नहीं है ? रामामात्य ने अपना स्वतः का अनुभव अपने ग्रन्थ में लिखा, अब यदि वह व्यंकटमखी के मत से नहीं मिलता, तो क्या उस पर इस प्रकार टीका करनी चाहिये ? उसके आधार व्यंकटमखी से भिन्न रहे होंगे ?

उत्तर—यहां तुम यह भूल गये कि व्यंकटमखी, रामामात्य के सौ–डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् हुआ था । मालूम होता है कि इस टीका को देखकर तुम्हें रोष हो आया है । परन्तु इसमें रुष्ट होने का कोई भी कारण नहीं है । व्यंकटमखी के हृदय में पिछला सम्पूर्ण सङ्गीत समाप्त कर अपना मत स्थापित करने की अभिलाषा रही होगी, इसीलिये उसने इस प्रकार कठोर टीका की होगी । उसकी वह अभिलाषा पूर्ण भी हो चुकी है, यह हम आज दक्षिण की सङ्गीत पद्धति को देखकर जान सकते हैं । व्यंकटमखी की पद्धति के मूलतत्व संपूर्ण देश के सङ्गीत के लिये उपयुक्त थे । मैं तुम्हें अनेकबार यह समझा चुका हूं कि हमें आलोचना से कभी भी कुपित या भयभीत नहीं होना चाहिये । यदि हमारा मत सचमुच टीका करने योग्य हो तो उस पर की हुई टीका से उपकार ही होगा, और यदि वह टीका अयोग्य या दूषित बुद्धि से भी की गई हो तो अपना बचाव समाज के सत्पुरुषों को ही सौंप देना चाहिये ।"**स्निह्यंति च निसर्गेण संतः सन्मार्गगामिनि ।**" यह उक्ति सदैव ध्यान में रखनी चाहिये ।

प्रश्न—क्या सोमनाथ के 'रागविबोध' के सम्बन्ध में व्यंकटमखी ने कहीं पर कुछ उल्लेख किया है ?

उत्तर—नहीं, मुझे इस ग्रंथ के सम्बन्ध में उसके द्वारा किया हुआ उल्लेख कहीं पर भी प्राप्त नहीं हुआ। अब यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे सोमनाथ का ग्रन्थ ही नहीं दिखाई दिया था अथवा उसे सोमनाथ का गंगाजमनी स्वरूप ही पसन्द नहीं आया?

प्रश्न—यह बात शायद आपने इसीलिये कही है कि सोमनाथ ने आधी परिभाषायें दक्षिण की और आधी उत्तर की ग्रहण कर विचित्र ढांचा खड़ा कर दिया है। ठीक है न?

उत्तर—यह तो मेरा अपना तर्क है। मैं यह नहीं कह सकता कि व्यंकटमखी ने रागविबोध देखा था या नहीं। यह तो स्पष्ट ही है कि उसने तीव्रतर, तीव्रतम आदि शब्दों की गड़बड़ स्वीकार नहीं की है। शायद उसे सोमनाथ द्वारा किया हुआ घोटाला पसंद नहीं आया हो। शायद उसने एक ही शुद्ध सप्तक में दक्षिण का शुद्ध री और उत्तर का शुद्ध ध सम्मिलित करना पसंद नहीं किया होगा। फिर सोमनाथ की संपूर्ण व्यवस्था में कोमल धैवत का स्थान न देखकर भी उसे निराशा हुई होगी। क्योंकि दक्षिण की ओर कोमल रि, ध ग्रहण करने वाला "मालवगौड़ मेल" सम्पूर्ण सङ्गीत का मुख ही समझा जाता है। यदि सोमनाथ ने केवल उत्तर की परिभाषा एवं रचना यथार्थ रूप में स्वीकार की होती, तो व्यंकटमखी को इतनी कठिनाई नहीं पड़ती।

प्रश्न—क्या सोमनाथ ने अपने आधार ग्रन्थ का उल्लेख किया है?

उत्तर—सोमनाथ अपने ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार कहता है:—

रागविबोधं विदधे विरोधरोधाय लक्ष्यलक्षणयोः।
वाचां वाचां किंचित्सारं सारं समुद्धृत्य ॥

आगे चलकर टीका में इस प्रकार और खुलासा करता है:—

"प्राचीनानां हनुमन्मतंगनिःशंकादीनां वा वाचो ग्रन्थरूपास्तासां किंचित्सारं मुख्यमुख्यांशं समुद्धृत्य"।

भला! इससे व्यंकटमखी जैसे पंडित को क्या सन्तोष हो सकता है? प्रथम तो यही मुख्य प्रश्न पैदा होता है कि सोमनाथ ने ऐसा कौनसा ग्रंथ देखा होगा जिसमें तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञायें दी गई हों? और यदि उसने कोई ऐसा ग्रंथ देखा हो तो उसका नाम अथवा उसके प्रत्यक्ष उद्धरण 'रागविबोध' में क्यों नहीं दिखाई पड़ते?

प्रश्न—पिछले समय आपने "रागतरंगिणी" ग्रन्थ के सम्बन्ध में बताया था। उसमें तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञाऐं भी थीं। सोमनाथ ने कहीं उसी ग्रन्थ को तो न देखा हो?

उत्तर—अब यह विश्वासपूर्वक कैसे कहा जा सकता है? सोमनाथ ने इस बात का कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। उसके ग्रंथ से यह अवश्य ही स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उसने उत्तर का सङ्गीत सुना था। उत्तर के सङ्गीत की उसकी जानकारी कोरी सुनी सुनाई थी या प्रत्यक्ष थी, यह कौन बता सकता है? यह ग़लत नहीं है कि उत्तर की परिभाषाऐं, दक्षिण की रचना में सम्मिलित करते हुए उसने बहुत सा मैटर अपने पास से मिलाकर असम्बद्ध कार्य किया है।

प्रश्न—यह तो निर्विवाद है कि वह दक्षिण का ही पंडित था ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह बात थोड़ी देर में ही सिद्ध की जा सकती है। दक्षिण की ओर अपने हिन्दुस्थानी कोमल रिषभ की जगह शुद्ध रिषभ मानने का प्राचीन व्यवहार है। सोमनाथ ने भी अपना रिषभ वही माना है; क्योंकि उसकी व्यवस्था में कोमल रे स्वर शुद्ध रे से भिन्न नहीं है। भैरव, तोड़ी आदि रागों में वह इसी प्रकार का शुद्ध रिषभ मानता है, जो ठीक ही है। अब एक महत्वपूर्ण सिद्धांत और देखो। दक्षिण के 'साधारण ग' और कैशिक 'नी' स्वरों को हिन्दुस्तानी 'कोमल ग' और 'कोमल नी' मानने का प्रचार किसी को अस्वीकार नहीं है। अपने विद्वान इन स्वरों के आंदोलन क्रमशः २८८ और ४३२ बताते हैं। अहोबल का कथन "षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्।" तुम्हें याद ही होगा। अब उत्तर पद्धति का शुद्ध ग पारिजात के प्रमाण से २८८ आंदोलन का लेकर हमें सोमनाथ के किये हुए स्वर-वर्णन को परखना है। सोमनाथ कहता है:—

तीव्रश्चतुःश्रुतित्वे पंचश्रुतिकत्व एव तीव्रतरः।
षट्श्रुतिकत्वे तीव्रतम, इति, परं ता यथायोग्यम् ॥

इससे यह जान पड़ता है कि सोमनाथ चार श्रुति पर तीव्रत्व मानता था। दक्षिण की ओर चतुःश्रुतिक रि, पंचश्रुतिक रि, षटश्रुतिक रि, इस प्रकार की संज्ञाएँ हैं। इन के स्थान पर उसने उत्तर के नाम स्वीकार करना पसन्द किया।

प्रश्न—परन्तु उत्तर का शुद्ध री २७० आंदोलन का होता है, फिर उसका उत्तर की संज्ञाओं को ग्रहण करना सुरक्षित कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में आगया, बड़ा अच्छा हुआ। यह गड़बड़ तो होती ही है। सोमनाथ कहता है:—

"पंचश्रुतिः रिः शुद्धादूगांधारात् न पृथक्। षट्श्रुतिकश्च रिः साधारणाख्य-विकृतगांधारात् न पृथक्।"

इतना कहने के पश्चात् तत्काल वह कहता है:—

"चतुःश्रुतित्वे एव तीव्र इति रिधादीनां संज्ञेत्यर्थात्। एवं पंचश्रुतिकत्व-षट्श्रुतिकत्वयोरेव तीव्रतरस्तीव्रतम इति च संज्ञेयं ॥"

यदि सोमनाथ ने शुद्ध री अहोबल की समता का माना हो तो साधारण ग कभी भी तीव्रतम री नहीं हो सकता।

प्रश्न—और अहोबल की दृष्टि से साधारण ग, तीव्र री हो ही जाता है, क्योंकि उसका स्थान शुद्ध के आगे एक श्रुति पर होता है। यही बात है न ?

उत्तर—हां, यह तो स्पष्ट ही है। क्या अहोबल इस प्रकार नहीं कहता ?

साधारणो रिस्तीव्रः स्तादिति सूरिविनिश्चयः ।
साधारणांतरौ गौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥

मजा यह हुआ है कि अहोबल को दक्षिण के स्वर और सोमनाथ को उत्तर के स्वर पूर्णरूपेण समझ में नहीं आसके । अहोबल ने अपने स्वरों की एकवाक्यता दक्षिण के स्वरों से कर दिखाने की असफल चेष्टा अवश्य की है, परन्तु साथ ही यह बुद्धिमानी भी की है कि अपने रागों में दक्षिण की परिभाषाओं का उपयोग नहीं किया। सोमनाथ ने व्यर्थ ही अपनी रचना में उत्तर की परिभाषाएँ उपस्थित कीं और इस तरह अपने सुन्दर ग्रंथ का नाश कर डाला। कहीं-कहीं पर तो ग़लती की अपेक्षा दुराग्रह करने जैसा प्रयास दिखाई पड़ता है । उसके शुद्ध गांधार के सम्बन्ध में अभी दो शब्द और कहने हैं। वह अपने ३२ वें श्लोक की टीका में कहता है:—

"एवं सति गमयोरपि संज्ञात्रये प्राप्ते आह। परं ता इति परंतु ताः संज्ञा यथायोग्यं यथार्हं गस्य मस्य च षट्श्रुतिकत्वपंचश्रुतिकत्वयोः अन्तरमृदुमसंज्ञयोः प्रवृत्तेः मस्य तु चतुःश्रुतिकत्वस्याव्यभिचारात् पंचश्रुतिकत्वस्य चासंभवा-दित्यर्थः ।"

इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सोमनाथ 'साधारण ग' को त्रिश्रुतिक, और 'अन्तर ग' को चतुःश्रुतिक मानता था, अर्थात् उसने उत्तर के शुद्धगांधार का स्थान दक्षिण की ओर का ही समझा था।

प्रश्न—अब ये समस्त बातें हमारी समझ में आगईं । इसमें संदेह नहीं कि सोमनाथ दक्षिण का पंडित सिद्ध हुआ, परन्तु उसने 'मृदु म' और 'तीव्रतम ग' ये नाम क्यों ग्रहण किये होंगे ?

उत्तर—'मृदु म' तो 'च्युत म' के स्थान पर ग्रहण करना उसे आवश्यक ही होगया था, परन्तु वह स्थान उत्तर के 'तीव्रतम ग' की जगह आता था, इसलिये उसने 'तीव्रतम ग' को खींचकर 'शुद्ध मध्यम' पर बैठा दिया ! उत्तर की ओर 'शुद्धमध्यम' का दूसरा नाम 'अतितीव्रतम ग' भी था। उसने इसमें से 'अति' शब्द निकाल फेंका !

प्रश्न—परन्तु 'तीव्रतम म' नाम सोमनाथ ने किस प्रकार ग्रहण किया होगा ?

उत्तर—क्यों भला ? ३२ वें श्लोक में उसने नियम दे रखा है न ? "षट्श्रुतिकत्वे तीव्रतम इति।" इस नियम के अनुसार मध्यम स्वर दो श्रुति चढ़ने पर 'तीव्रतम म' हो हो जावेगा। उसके आगे 'मृदु प' आ जायेगा । मैं समझता हूं कि सोमनाथ का यह कृत्य तुम्हें 'नाम तेरा और गांव मेरा" जैसा दिखाई देता होगा ?

प्रश्न—जी हां, हम तो यही समझ रहे थे कि जब मध्यम स्वर पंचम की एक दो और तीन श्रुतियां ग्रहण करे तब क्रमशः तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम हो जाता है।

उत्तर—उत्तर पद्धति के नियम से यह ठीक है । अहोबल भी सर्व प्रथम इसी प्रकार समझ कर चला था:—

"तथा तीव्रतमो गोऽपि मृदुर्म इति कीर्तितः।
साधारणांतरौ मौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥
मश्च तीव्रतमोऽप्युक्तो मृदुप इति पंडितैः ॥ ७५–६ ॥

परन्तु आगे चलकर सोमनाथ का पांडित्य देखकर अहोबल घबरा गया। यह बात मैं तुम्हें पहिले भी समझा चुका हूं। सोमनाथ ने "षट्श्रुतिक म" के आधार के लिये कल्लिनाथ को प्रस्तुत किया (श्लोक ३४) 'सप्तश्रुतिक म' अथवा 'मृदु प' यह स्वर 'च्युत प' का प्रतिनिधि था। अहोबल यही समझा होगा कि कल्लिनाथ ने 'तीव्रतम म' नाम 'षट्श्रुतिक मध्यम' को दिया है। परन्तु अहोबल चतुर था अतः उसने अपने रागों में 'तीव्रतर म' नाम ही पसन्द किया। यह मैं तुम्हें बता चुका हूं।

प्रश्न—ठीक है, परन्तु सोमनाथ ने 'तीव्रतर म' की जगह 'तीव्रतम म' किस आधार से बताया होगा?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। यह कहना भी ठीक नहीं दिखाई देता कि सोमनाथ एक श्रुति के चढ़ने उतरने की विधि निषेध नहीं मानता था। पिछली बार "तरंगिणी" के विकृत स्वर बताते हुए मैंने तुम्हें बतलाया ही था कि:—

"षड्जस्य च निषादश्चेद् गृह्णाति प्रथमां श्रुतिम्।
तदा संगीतविद्भिः स तीव्र इत्यभिधीयते ॥
द्वितीयामपि चेदेवं तदा तीव्रतमः स्मृतः।
षड्जस्य द्वेश्रुती गृह्णन्निषादः काकली मतः ॥
तीव्रतमे निषादे च गेया सैव विचक्षणैः ॥

शायद सोमनाथ इसी विचारधारा से प्रभावित रहा हो। उसकी विचारधारा कुछ भी क्यों न हो, पूर्वांग में उसकी परिभाषाओं से अधिक हानि नहीं होती। तमाम गड़बड़ उत्तरांग में हुई है क्योंकि वहां उसने अपने दक्षिण के शुद्ध धैवत को बिलकुल दूर फेंककर उत्तर का धैवत (४०५ आन्दोलन कहा जावे) शुद्ध कहकर स्वीकार कर लिया है। ऐसा कर डालने से उसकी पद्धति में कोमलधैवत अशक्य होगया। दक्षिण के शुद्ध निषाद का स्थान शुद्ध धैवत द्वारा ग्रहण कर लिये जाने पर कैशिक निषाद की जगह 'शुद्ध नी' आया और:—

"कैशिकिनः प्रादुर्भावाय अंतरा निषादमृदुषड्जसार्योर्मध्ये परा अन्या सारी स्यात् सा तु निषादसार्याः समीपे स्थाप्या"।

इस प्रकार वीणाप्रकरण के २७ वें श्लोक की टीका में उसे कहने को विवश होना पड़ा। ऐसा करने का कारण वह चाहे जो कहता हो, परन्तु मर्मज्ञों को यह दिखाई दे जाता है कि यह अनर्थ शुद्ध धैवत का स्थान गलत मान लेने से हुआ है।

प्रश्न—परन्तु क्यों गुरुजी! काफी-थाट का उत्तरांग हो जाने पर सोमनाथ के रागस्वरूप कैसे हो जावेंगे? उसके अनुयायी लोगों ने उसके राग कैसे गाये होंगे?

उत्तर—मैं तो समझता हूँ कि उन लोगों ने शुद्ध धैवत को उचित जगह पर स्थापित कर उसके ग्रन्थ का उपयोग कर लिया होगा। मैं तो लगभग ऐसा ही करूँगा व्यर्थ ही "कील के लिये नाल गँवा बैठना" के अनुसार एक उपयोगी ग्रन्थ क्यों छोड़ दिया जावे ?

प्रश्न—जरा ठहरिये ! सोमनाथ के शुद्धथाट को शार्ङ्गदेव का काफी थाट मानकर यदि ग्रहण किया जाय तो क्या कुछ उपयोग हो सकेगा ?

उत्तर—मैं नहीं समझता कि कुछ उपयोग हो सकेगा। अपने विद्वानों को कोमल रे, ध चाहिये; ये कहाँ से आयेंगे ? सोमनाथ के मत में जाति मूर्छना की कुछ भी व्यवस्था नहीं है। तुम कह सकते हो कि कोमल रिषभ का कार्य शुद्ध रे (२६६३ आन्दोलन) से चल जायेगा, परन्तु शुद्ध ध सोमनाथ ने वीणा पर "मृदु म" के परदे पर 'शुद्ध म के' तार के नीचे माना है यह स्पष्ट तीव्र ध हो जायेगा। उस धैवत के नीचे उसकी व्यवस्था में स्वर ही नहीं है। अन्य स्वरों के सम्बन्ध में भी बड़ी गड़बड़ हो जायेगी। इसीलिये अहोबल के स्वरों के सम्बन्ध में बताते हुए मैंने तुम्हें पहिले भी कुछ इशारा किया था कि सोमनाथ से भी उसी तरह की कुछ गड़बड़ हुई होगी। सोमनाथ एक दक्षिण का पंडित था। इसके सम्बन्ध में मुझे इस प्रकार कहने वाले भी मिले हैं कि सोमनाथ ने व्यर्थ ही उत्तर पद्धति का ज्ञाता होने का आडम्बर किया है। हमारे पंडित इस विद्वान की आलोचना करने में प्राय: हिचकिचाया करते हैं क्योंकि "रागविबोध" ग्रन्थ की बहुत प्रशंसा सुनी जाती है। "Sir William Jones" कहते हैं:—

The most valuable work that I have seen, and perhaps the most valuable that exists on the subject of Indian Music is named Rag Vibodha or the Doctrine of Musical modes; and it ought here to be mentioned very particularly, because non of the Pandits in our provinces, nor any of those from Kasi or Kashmere to whom I have shown it appear to have known that it was extant; and it may be considered as a treasure in the history of the art, which the zeal of Colonel Polier has brought in to light and perhaps has preserved from destruction. Rag Vibodha seems a very ancient composition but is less old unquestionably than the Ratnakar of Sarang-Dewa which is more than once mentioned in it and a copy of which Mr. Burrows procured in his journey to Haridwar; the name of the author was Soma and he appears to have been a practical musician as well as a great scholar and an elegant poet; for the whole book without excepting the strains noted in letters which fill the fifth and last chapter of it consists of masterly couplets in the malodious metre called Arya; the first, third and fourth chapters explain the doctrine of musical sounds, their division and succession, the variations of scales by temparament and the enumeration of

modes on a system totally different from those which will presently be mentioned; and, the second chapter contains a minute description of different Vinas with rules for playing them. This book alone would enable me, were I master of my time, to compose a treatise on the Music of India with assistance in the practical part from an European professor and a native player on Vina; but I have leisure only to present you with an essay, and even that, I am conscious, must be very superficial; it may be sometimes, but I trust, not often erroneous; and I have spared no pains to secure myself from error.

अस्तु, अब मैं 'आहीरी' राग के सम्बन्ध में अपनी चर्चा को आगे बढ़ाता हूं। सुरेन्द्रमोहन टागोर ने 'अहीरी' का जो स्वरूप बताया है, उसका थाट भैरव ही माना है। उनका बताया हुआ स्वरूप इस प्रकार है :—

"निसानिसासासामधुधमसागरेगप, सागरे, निसानिसा, रेगगमगरे, पसानिध-निसासारेगरेसा। ममम, प, प, मपमप, धसांनिसांनिधप, धधमप, धपमय, सामप पधधप, धनिनिधमप, धम, मपधधम, सागरेगप, गरेनिसानिसा, रेरेगगम, गरेप, सानिधनिसासारेगरेसा।"

प्रश्न—क्या इन्होंने अपने बताये हुए स्वरूप का कोई आधार भी दिया ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में इन्होंने इस प्रकार कहा है:—

"दामोदरमतेऽपि अस्याः जातिः संपूर्णा"। "अभीरी त्रिवर्णातुल्या संपूर्णा कथिता बुधैः।

सम्भवत: ये स्वयं इस बात को स्वीकार कर लेंगे कि इतने मात्र से पूर्ण संतोषजनक बोध नहीं हो सकता। अस्तु,

तुम जानते हो कि पं० भावभट्ट के मेलों में भी एक 'अहीरी' नामक मेल है। इस 'अहीरी' मेल के स्वर इस प्रकार बताये गये हैं:—

एकतृतीयगतिकौ गनीस्वरौ यथाक्रमम्।
द्वितीयगतिको रिश्च त्वाहेरीमेल एष हि ॥
सत्रिका सायमाहेरी संपूर्णादिरसाश्रिता।

—अनूपरत्नाकरे।

यहा पर 'एकगतिक ग' अर्थात् 'कोमल ग' और तृतीयगतिक नि' अर्थात् 'तीव्र नि' स्वर होंगे। 'द्वितीयगतिक रे' अपने स्वरों में 'तीव्र रे' होगा।

सङ्गीत पारिजाते:—

धकोमला नितीव्राद्या षड्जपूर्वकमूर्छना।
धगयोः कंपसंयुक्ता सपांशाभीरिका मता ॥
आरोहणेऽवरोहेऽपि क्वचिन्मध्यमवर्जिता ॥

यह वर्णन भावभट्ट के वर्णन से मिलाकर देखो तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इन संस्कृत ग्रंथकारों ने 'आभीरी' 'आहीरी' आदि नामों के प्रयोग में प्रायः गड़बड़ी की है।

चन्द्रोदये:—

शुद्धौ सपौ शुद्धमधैवतौ च
साधारणो गोऽपि च शुद्धगश्च ।
षड्जाभिधानो लघुशब्दपूर्व
आभीरिकाया गदितः स मेलः ॥

मैं आरम्भ में ही तुम्हें बता चुका हूं कि हमारा प्रस्तुत राग 'अहीरभैरव' है 'अहीरी' नहीं है। तुम्हारे रागस्वरूप का समर्थन करने वाले इन प्रमाणों को ध्यान में रखना :—

भैरवस्यैव संस्थाने जाताऽऽहीरी सुनामिका ।
संपूर्णा भैरवांगाऽपि षडजांशा व्यस्तमध्यमा ॥
पूर्वांगे भैरवो मेलो उत्तरांगे हरिप्रियः ।
रागेऽस्मिन्लक्षितो लोके सर्ववैचित्र्यकारणम् ॥
ग्रन्थेषु केषुचित्प्रोक्ता भैरवीमेलनोत्थिता ।
आभीरीनामिकाऽप्यन्या नटभैरविकाश्रया ॥

—लक्ष्यसङ्गीते ।

पूर्वांगे किल भैरवः स्फुटतरं यत्रोत्तरांगे पुनः ।
स्पष्टं भाति हरप्रिया भवति तद्रूपं विचित्रं ततः ॥
वादित्वं त्विह षड्ज एव निहतं संवादिता पंचमे ।
द्वैरूप्येण हि गीयते सुमतिभिः रागिण्यहीरी प्रगे ॥

—कल्पद्रुमांकुरे

भैरव पूरब अङ्ग में, काफी उत्तर भाग ।
अति विचित्र द्वैरूप सें, होत अहीरी राग ॥

—चन्द्रिकासार ।

रागमालायाम्:—

चन्द्रद्विर्निर्गताः स्युर्गरिनय इह हि स्निग्धनेत्रा प्रगल्भा ॥
श्यामाभीरी त्रिषड्जा मृदुवचनपरा मूर्ध्नि वेणीं दधाना ॥
मृद्वङ्गी नीलवस्त्रा मृदुगलविलसद्विद्रुमालिश्च कर्णे ।
ताटंकाढ्या हि सायं रसपतिनिनदे रासदंडे रमंती ॥

अब हमें इससे अधिक ग्रन्थ-मतों की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—अब यह राग गाकर सुना दीजिये ?

उत्तर—ठीक है ! सुनोः—

सरगम-रूपक

स्थाई—

ग रे̲	सा रे̲	ग म म	ग रे̲	ग म	रे̲ रे̲ सा
		×			×
सा रे̲	सा रे̲	ग म म	म म	प ग	प म ग
		×			×
रे̲ ग	ग प	म रे̲ सा			
		×			

अन्तरा—

म म	रे म	प प प	म म	प ध	नि̲ नि̲ ध
		×			×
प ध	मप ध	ग रे̲ सा	रे̲ ग	गम प	गम रे̲ सा
		×			×

विस्तार--

गगरे̲सा, सासारे̲सा, नि̣सारे̲सा, नि̣सागरे̲, गगम, गमरे̲प, गमरे̲सा; रे̲रे̲सासा, गरे̲गम, ममपग, मरे̲रे̲सा, सारे̲साम, गरे̲साप, गमपग, मगरे̲सा।

ममरेम, पपमप, पमपध, नि̲धपध, मपगम, रे̲रे̲गम, पगरे̲सा।

इस तरह धीरे-धीरे राग विस्तार किया जाना चाहिये। बीच-बीच में अच्छे प्रमाण में भैरवअङ्ग ग्रहण किया जावे, जिससे श्रोताओं को यह दिखाई देता रहे कि यह एक भैरव-प्रकार है। उत्तरांग में अधिक तानें लेकर 'भैरव-बहार' नामक प्रसिद्ध राग का आभास कराने की भूल नहीं करनी चाहिए। इस राग को मैं आगे चलकर बताऊँगा।

प्रश्न—अब आप हमें कौनसा राग बतलायेंगे ?

उत्तर—अब हम 'सौराष्ट्र' राग को लेंगे। 'सौराष्ट्र' नाम कानों में पड़ते ही हमें एकदम यह ध्यान आ जाता है कि यह राग सम्भवतः इसी नाम के प्रदेश से प्रचलित होकर आया होगा। इस प्रकार का अनुमान बिलकुल ग़लत भी नहीं कहा जा सकता। तुम्हें याद होगा, पिछली बार मैंने तुम्हें खमाज थाट का 'सोरठ' नामक राग बताया था, उस समय भी मैंने 'सौराष्ट्र' के सम्बन्ध में सूचना दी थी। सम्भवतः ये

दोनों राग सौराष्ट्र नामक पाठ से संग्रहीत किये गये होंगे । रागों के नामों का इतिहास खोजने का श्रम करना हमें स्वीकार नहीं है । हम तो आज जो नाम प्रचलित हैं उन्हें स्वीकार करके चल रहे हैं। इस सौराष्ट्र राग को पंडितगण 'सौराष्ट्रटंक' कहते हैं और गायक लोग 'चौर्यायशी टंक' या 'चौरासी टंक' कहते हैं। सोरठ राग से इसे अलग रखने के लिये यह युक्ति ठीक भी है। संस्कृत ग्रंथकार अर्थात् प्राचीन ग्रन्थकार 'सौराष्ट्र-टंक' ऐसा संयुक्त नाम प्रयुक्त नहीं करते।

प्रश्न—फिर यह संयुक्तीकरण कैसे हुआ ?

उत्तर—हम इसी पर विचार करेंगे। 'टंक' नाम राजपूताने का कहा जाता है। यह तर्क किया जाता है कि 'टंक' रागनाम प्राचीन नाम 'टक्क' से उत्पन्न हुआ होगा। 'टोंक' नामक एक छोटा सा राज्य अभी भी मालव प्रांत में है। मालवा और राजपूताना पास-पास के प्रदेश हैं। 'मालव' नामक एक प्रसिद्ध राग भी है । मालवा, मालवगौड, टक्क, इन सभी रागों का एक ही थाट में माने जाने का आधार भी हमें प्राप्त हो सकता है। 'सौराष्ट्र' राग भी तुम्हें उसी थाट में प्राप्त होगा। टक्क और सौराष्ट्र में जन्य-जनक सम्बन्ध मानने के ग्रन्थाधार भी मिलते हैं। सुविधा के लिये हम सौराष्ट्र और सौराष्ट्री भिन्न-भिन्न रागस्वरूप मानेंगे । थोड़ी देर के लिये सोरठ को ही 'सौराष्ट्री' नाम देने पर 'सौराष्ट्र' अथवा भैरव थाट का 'सौराष्ट्र टंक' ही समझलो । अपने गायक 'टंकी' नामक एक प्रकार का राग सांयकाल के समय गाते हैं । इसे वे एक संधिप्रकाश राग मानते हैं। कदाचित् इसकी उत्पत्ति प्राचीन 'टक्क' से हुई होगी।

प्रश्न—सांयकालीन राग होने से 'टंकी' किस थाट में माना जाता है ?

उत्तर—यह राग पूर्वी थाट के अन्तर्गत माना जाता है। इसके विषय में मैं आगे तुम्हें बताऊँगा। एक मजेदार बात देखो कि शार्ङ्गदेव ने अपने रत्नाकर में 'टक्क' नामक ग्रामराग की जो भाषा (जन्यराग) बताई है, उसमें एक 'सौराष्ट्री' भी दिखाई पड़ती है। टक्क की व्याख्या में 'काकल्यन्तरराजित' पद होने के कारण दक्षिण के कुछ पण्डित उसका थाट 'भैरव' मानते हैं । अपने गायक 'सौराष्ट्र टंक' संयुक्त नाम स्वीकार कर उसे एक मिश्रमेलजन्य रूप मानते हैं । पूर्वाङ्ग में वे भैरव अङ्ग स्वीकार करते हैं और उत्तरांग में बड़ी खूबी से दोनों धैवत का प्रयोग करते हैं। अब यह नहीं कहा जा सकता कि यह मिश्रण कब से होने लगा है ? सङ्गीतप्रदर्शिनीकार ने सौराष्ट्र राग को प्रथम मालवगौड़ थाट में बताकर आगे इस प्रकार कहा है:—

सौराष्ट्ररागः संपूर्णः सग्रहः सार्वकालिकः।
पंचश्रुतिर्धैवतस्तु क्वचित्स्थाये प्रयुज्यते ॥

इस श्लोक में 'क्वचित्स्थाये' पद बड़ी विशेषता से दिया हुआ है। एक पण्डित ने इसका अर्थ 'कभी-कभी' किया है। दूसरे पंडित ने इसका अर्थ 'बीच-बीच' में किया है। इन द्वितीय पंडित का कथन है कि—'स्थाय' गीत का एक छोटा भाग समझा जाता है। सौराष्ट्र की व्याख्या में इसलिये यह सूचना दी गई है कि यदि गायक ने राग का मुख्य अङ्ग मालवगौड़ का रखा और किसी-किसी भाग में तीव्र धैवत का उपयोग भी किया तो अनुचित नहीं होगा। यह सत्य है कि अपने हिंदुस्थानी गायक इस राग को इसी प्रकार

गाते हैं। इन गायकों को नियम आदि का बिलकुल ज्ञान नहीं होता। यह भी ठीक है कि यह राग अप्रसिद्ध रागों में से माना जाता है। मैंने तुमसे सदैव यह कहा है कि दुर्मिल राग समाज में भिन्न-भिन्न तरीकों से गाये जाते हुए हमें दिखाई पड़ सकते हैं। आश्चर्य नहीं कि सौराष्ट्र और सौराष्ट्रटंक को भिन्न-भिन्न मानने वाले लोग भी निकल आवें। यह सत्य है कि ग्रन्थों में मुझे कहीं भी संयुक्त नाम 'सौराष्ट्रटंक' नहीं दीख पड़ा।

प्रश्न—'सौराष्ट्रटंक' में मुख्य अङ्ग तो भैरव का ही ग्रहण किया जाता होगा?

उत्तर—हां, यह राग प्रातर्गेय माना जाता है। प्रचार में जो सायंकालीन स्वरूप है, उसे हिन्दुस्थानी गायक 'श्रीटंक' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह युक्ति भी बड़ी अच्छी है। ध्रुपदगायक भी कभी-कभी सौराष्ट्रटंक गाते हैं। ये लोग इस राग का एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार गाते हैं:—

"मग, मग, रे॒रे॒, सा, सारे॒सा, गमरे॒, रे॒, सा; पगमगरे॒रे॒, सा, सासारे॒सा, ध॒ध॒सा, मम, धनिसां, निसां, निधम, गग, पमगरे॒रे॒, सा"।

कहीं-कहीं "सा, गमध, सांधम, ध, निसांधमग, पमगरे॒, सा" इस प्रकार का टुकड़ा ले लेते हैं। इस स्वरसमूह के प्रयोग से यह प्रकार कुछ विलक्षण दिखाई देने लगता है। बीच-बीच में मध्यम को मुक्त रखकर थोड़ासा ललितअङ्ग भी प्रस्तुत कर दिया करते हैं।

प्रश्न—यह किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—देखो:—"साध॒नि॒सा, म, म, धनिसांनिध, मगमगरे॒सा" इस टुकड़े से श्रोताओं को थोड़ा सा ललित का संकेत हो सकेगा। अन्तरे में भैरव और कालिंगड़ा का मिश्रण जैसा दिखाई देगा।

प्रश्न—यह तो एक विचित्र रागस्वरूप दिखाई देता है। यही कहिये न, कि इस राग में भिन्न-भिन्न रागों के टुकड़े सम्मिलित किये गये हैं। न जाने इस राग में तानें कैसी ली जाती होंगी?

उत्तर—मुख्य भाग तो भैरव का ही रहेगा। बीच-बीच में 'मध, निसां, सांनिधम' इन दोनों टुकड़ों से रागप्रभेदक अनेक छोटी-छोटी तानें उत्पन्न की जायेंगी। देखें, तुम स्वयं इस राग का थोड़ा बहुत विस्तार कैसे करते हो?

प्रश्न—अच्छी बात है, हम प्रयत्न करते हैं।

"सा, ध॒नि॒सा, गरे॒, सा, मगरे॒सा, गमपगमरे॒, सा, सागम, रे॒गम, पगमरे॒सा, ध॒नि॒सा, ग, म, ग, म, पगम, धग, गमध, म, निसांम, गम, पगमरे॒, सा;"

क्या इस प्रकार की तानें इस राग में ग्रहीत हो सकेंगी?

उत्तर—मैं समझता हूँ ये तानें ली जा सकती हैं। अब मैं कहीं-कहीं किस तरह से ठहरते हुए रागविस्तार करता हूं, इसे ध्यान से देखते जाना।

"गम, धध, मधनिसां, धनिसां, गमगसा, म, धनिसां, गमग, रे॒, सा, नि॒सागम, पगमगरे॒, सा; सा, रे॒सा, गमग, रे॒सा;"।

यहां मैं तुम्हारे मन में भिन्न-भिन्न रागों की छाया उत्पन्न कर रहा हूँ, परन्तु तुम यह भी देख रहे हो कि अन्त में भैरव अङ्ग लाने का प्रयत्न भी मैं अवश्य कर रहा हूँ। अब अन्तरे में स्वल्परूप में कालिंगड़ा का अङ्ग दिखाता हूँ। देखो—

"मम, गम, पप, ध़ध़, प, निध़प, म, गम, ध़प, गम, रे़गम, पगम, ग, रे़सा, सांरे़सां, ध़प, गमपगमरे़, सा।"

तुम्हारे जैसे बुद्धिमानों को इतना इशारा मिलते ही तुम स्वयं इसमें सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर तानें उत्पन्न कर सकोगे। जैसे-जैसे तुम्हारा गला तैयार होता जावेगा वैसे-वैसे तुम्हें अपने आप स्फूर्ति उत्पन्न होती जावेगी। रागनियमों को अच्छी तरह जान लेने के कारण तुम्हारी तानबाजी असंगत एवं उकताने वाली नहीं हो सकती। धीरे-धीरे तानों के स्वर और उनका वेग बढ़ते जाने से श्रोतागण भी गायक के साथ आनन्द-सागर में निमग्न हो जाया करते हैं। मेरे गुरु ने मुझे गला तैयार करने की एक सरल युक्ति बताई थी, उसे यदि तुम चाहो तो आगे अपने शिष्यों को भी बता सकते हो।

प्रश्न—वह कौनसी युक्ति है?

उत्तर—मेरे गुरु ने मुझे बताया कि जब नवीन विद्यार्थी गण अनुकरण करते हुए "सा, रे, ग, म, प, ध, नी, सां" स्वर गाना सीख जावें तब उन्हें भिन्न-भिन्न थाटों के स्वर गाने का अभ्यास कराना चाहिये। अकेले 'बिलावल' थाट के स्वरों का अभ्यास उनसे प्रतिदिन एक दो घण्टे कराना चाहिये। प्रथम सावकाश रीति से स्वर गवाये जावें और फिर सामर्थ्यानुसार क्रमशः लय बढ़ाई जावे। बार-बार इसी कार्य को करने में विद्यार्थियों का उकताना स्वाभाविक है, परन्तु उन्हें बीच-बीच में विश्रांति देकर और इस प्रकार स्वर-गायन का महत्व अच्छी तरह समझा कर दूसरी और कोई चीज गाने न देना चाहिये और केवल शुद्ध स्वर सप्तक ही उत्तम रूप से सिद्ध कराया जावे। अब तो "मेट्रॉनम" (ताल यन्त्र) का साधन ऐसे कामों में बहुत उपयोगी होगा। प्रथम यह यन्त्र मध्यलय में लगाया जावे और उसके साथ स्वर गाये जावें, फिर क्रमशः लय बढ़ाई जावे। तैयारी इस कोटि की होनी चाहिये कि केवल शुद्ध स्वरों का आरोह-अवरोह श्रोताओं को मधुर लगने लगे। मेरे गुरु ने बताया था कि उनके उस्ताद ने आरम्भ के ६ महीनों में उन्हें शुद्धस्वर सप्तक के सिवाय कुछ भी नहीं गाने दिया। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य अवश्य होगा, परन्तु उनके कथन में बहुत कुछ तथ्य है। उन्होंने अपनी भाषा में कहा:—

"पंडित जी! पहले-पहले मैं बोहोत नाराज हुआ, मगर छे महिनों के बाद मेरा गला सात सुरों पर ऐसा दौड़ने-भागने लगा कि उसको कुछ अटक ही न रही। मुजको खुद भी मजा आने लगा। मेरे सुर ऐसे चलने लगे कि जैसा पानी का रेला। फिर मेरे उस्ताद मेरे साथ-साथ सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। तेज लय पर गाने लगे। उनके साथ गाने से मेरे गले में तरह-तरह के कन और तरह-तरह की हरकतें पैदा होने लगीं। फिर उनोनें मुजको जगे-जगे रोकना शुरू किया। कभी धैवत पर तो कभी निखाद पर मुझको ठेहेराया, और वहीं से लौटाया। मतलब ये है कि एक संपूरन तान में से मेरे मूं से हजारों तानें उनोनें निकलवाईं। ये मैं नहीं जानता था कि राग क्या चीज है, मगर गला किसी जगे बंद नहिं था। उस्ताद सिरफ हात से लय का इशारा करते और मैं उनके इशारे पर अपना गला फेंकता था। पंडित जी! ऐसी मेहनत करने से गवैया होता है। आजकल के शागिरद आठ दिन में गवैये होने चाहते हैं। आज भटियार, कल भंखार, परसों पटमंजरी मांगने लग जाते हैं और केहेते हैं हम गवैये

होने चाहते हैं ? गाना तो सब गले पर ही रहेगा । गले में कुत्ते भौंक रहे हैं और राग पटमंजरी केह रहे हैं । पेहेले दसों ठाठ के संपूरन सुरों की लड़ीकी लड़ी बन जाय, फिर अपने रागों के नेम धरम देखले । मैं सच केहेता हूँ, कई गवैयों के गले आप ऐसे बुरे देखेंगे कि आप उनका गाना कभी पसंद न करेंगे । हम अपने शागीरदों को एक-एक दो-दो बरस तक सुर भरवाते हैं, मगर उनके गले भी तो ऐसे हो जाते हैं कि जैसी रेशम की डोर । तैयार गले में आप चाहे सो रंग डाल दीजिये ।"

यह कैसे कहा जा सकता है कि मेरे गुरु के उपरोक्त कथन का कोई तथ्य नहीं है ? मेरा भी यही मत है कि अपने आश्रयरागों के स्वर उत्तम रूप से तैयार कर लेने से सङ्गीत-विद्यार्थी को बहुत लाभ होता है ।

प्रश्न—यह सम्पूर्ण चर्चा हमारे ध्यान में अच्छी प्रकार आ गई है । अस्तु, क्या 'प्रदर्शिनीकार' ने अपने 'सौराष्ट्र' के स्वर बताये हैं ?

उत्तर—हां, उसने इस राग का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताया है:—

"सा रे॒ ग म प ध॒ नी सां । सां नी ध॒ प म ग रे॒ सा" केवल इतना बता देने से विशेष बोध होना संभव नहीं है । उसके मत से यह एक सम्पूर्ण भाषांग राग है ? इसका ग्रहस्वर उसने षड्ज माना है ।

प्रश्न—तो फिर उसने इसी स्वर को वादी भी माना होगा ? अपने गायक इस राग का वादी स्वर कौनसा मानते हैं ?

उत्तर—बहुमत प्रायः मध्यम स्वर को वादी मानने के पक्ष में है । अब हम कुछ संस्कृत ग्रन्थों में सौराष्ट्र के लक्षण और देखलें ।

रत्नाकरे:—

> पंचमादेव सौराष्ट्री भाषा षड्ज ग्रहांशिका ।
> रिहीना सगधैस्तारा ममंद्रा समभूयसी ॥
> नियुक्ता सर्वभावेषु मुनिभिर्गमकान्विता ॥
> सांशग्रहांता सौराष्ट्री टक्करागेतिभूरिनिः ।
> भूरितारा ममंद्रा च पहीना करुणे रसे ॥

सारामृते:—

> मेलो मालवगौलस्य स्यात्सौराष्ट्रयाः स एव हि ।
> षड्जन्यासग्रहांशेयं सर्वकालेषु गीयते ॥

अस्य रागस्यारोहावरोहयोः स्वरगतिः समविषमतया आगच्छति ।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्:—

> सौराष्ट्ररागो मेलस्य गौलस्याभ्युदयः पुरा ।
> संपूर्णश्चैष वादी च षड्जः संवादिनौ मपौ ॥
> सर्ववेलासु गातव्यं ख्यातं संगीतवेदिभिः ।

'सद्रागचन्द्रोदय' में जो 'सौराष्ट्री' बताई गई है, वह 'केदारमेल' की है। अपना राग भैरवथाट में है। 'रागमंजरी' में भी केदारमेल की सौराष्ट्री बताई गई है।

रागमालायाम्:—

सावेरीमेलरक्ता स्वरसकलयुता सत्रिका स्वैरिणी या।
चित्रं वस्त्रं दधाना कठिनकुचतटे कंचुकी मेचकी च॥
गौराङ्गी पंकजाक्षी हिमकरवदना दाडिमीबीजदन्ता।
सायं शृङ्गारपूर्णा मदनसहचरी याति सौराष्ट्रिका सा॥

पुण्डरीक ने 'सावेरी' का थाट इस प्रकार बताया है:—

'धाद्यंतांशाऽसपा या नयनगुणगती चात्र धांत्यौ रिगौ स्तः।'

यहां पुण्डरीक ने इसे 'असपा' बताया है। इसे देखकर पाठकों को अवश्य ही आश्चर्य होगा।

रागलक्षणे:—

मायामालवगौलाच्च रागः सौराष्ट्रनामकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥

लक्ष्यसंगीते:—

भैरवे मेलके तत्र सौराष्ट्रो वर्ण्यते बुधैः।
संपूर्णो मध्यमांशश्च प्रातर्गेयो निदुर्बलः॥
प्रयोगः संमतो ह्यत्र द्वयोर्धैवतयोर्मतः।
अनुलोमे भवेत्तीव्रो विलोमे कोमलस्तथा॥
कलिंगाख्योऽथ बंगालस्तृतीयः पंचमाव्हयः।
संमिलंति स्वरूपेऽस्मिन्निति लोके क्वचिन्मतम्॥
सुसंगतिर्बिलावल्याः समर्थयन्ति केचन।
उत्तरांगे पुनस्तत्र बुधः कुर्याद्यथोचितम्॥

चतुर पण्डित ने अपना निजी मत बताते हुए निर्णय का कार्य पाठकों को सौंप दिया है। उसे यह ज्ञात ही होगा कि अपने कुछ गायक आरोह-अवरोह में तीव्र धैवत ग्रहण करते हैं। उसकी दी हुई सूचना को केवल सिफारिश के रूप में समझ कर ग्रहण करना चाहिये।

कल्पद्रुमांकुरे:—

सौराष्ट्रोऽयं भैरवस्यैव मेले।
मांशः पूर्णो धैवतद्वन्द्वयोगी॥
आरोहे स्यात्तीव्रधोऽन्योऽवरोहे।
प्रातर्गेयो दुर्बलोऽस्मिन्निषादः॥

चन्द्रिकायाम्:—

भैरवस्यैव संस्थाने धैवतद्वयसंयुतः ।
समसंवादसंपूर्णः सौराष्ट्रो गीयते बुधैः ॥

प्रश्न—अब हमें इस राग का प्रचलित रूप स्वरों में सुना दीजिये ?

उत्तर—अच्छा, एक प्रसिद्ध गीत के आधार पर तुम्हें इस राग की एक सरगम ही बताये देता हूं ।

सरगम—तीव्रा

सा ×	सा	ध़	नि़	सा	ऽ	सा
सा	सा	म	म	ग	म	म
म	ग	म	ध	म	ध	ध
म	ध	सां	ऽ	रें॒	सां	ऽ
सां	सां	ग	म	रे॒	रे॒	सा

अन्तरा—

म ×	म	ग	म	प	ऽ	प
ध॒	ध॒	प	प	ध॒	ध॒	प
प	ध॒	प	म	ग	ग	रे॒
ग	म	प	ग	म	रे॒	सा
सां	रें॒	सां	ऽ	रें॒	सां	सां
ग	म	प	म	रे॒	रे॒	सा

इस राग का विस्तार प्राय: भैरव और ललित के मिश्रण जैसा ही थोड़ा बहुत करना पड़ता है। जैसे:—

सारेरे, सा, ध़, सा, सा, रेसा, गमगरे, सा, पगमरेसानि़सा, गम, गम, धम गमध, मधनिसां, रेंरेंसां, निसां, धम, मधनिसां, रेंसां, ग, मपगमरे, सा; सासागमप, गमरेसा, रेंरें, सां, गमपगमरे, सा।

गमगम, पप, गमप, धधप, गमधप, रेगम, पमरे, पगम, रेसा, सारेसा, ध़, सा, गमधधप, गमपगम, रे, सा, रेंरेंसां, गमपगम, रे, सा।

मुख्य अङ्ग भैरव का लिया जावे। बीच-बीच में तीव्र धैवत के टुकड़े उपस्थित किए जावें। तुम्हें यह प्रत्यक्ष दिखाई देगा कि जिस थाट में कोमल रिषभ और तीव्र धैवत का उपयोग होता हो, उसमें प्राय: पंचम स्वर को गौणता प्राप्त हो जाती है। इसी नियम के आधार पर तीव्र धैवत की तानें योजित की जावें। मैं इसके अवरोह में कहीं-कहीं पर तीव्र धैवत का प्रयोग प्रचार की ओर देखते हुए कर रहा हूँ। यदि यहां किसी ने कुशलतापूर्वक कोमल धैवत का प्रयोग किया, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। इस राग को नियमबद्ध करना ही अभीष्ट है।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग बतायेंगे ?

उत्तर—अब मैं 'हिजाज' अथवा 'हिजेज' नामक राग के विषय में दो शब्द बताऊंगा। यह बिलकुल अप्रसिद्ध रागों में से एक है। मुझे इस राग के दो गीत भिन्न-भिन्न दो गायकों ने बताये हैं। उनके स्वरूप मुझे बहुत कुछ मिलते-जुलते प्रतीत हुए, तुम्हें यह राग शायद ही कहीं दिखाई पड़े। मैंने इस राग के सम्बन्ध में कई नगरों में खोज की, तो यही पाया कि कई लोगों ने तो इसका नाम तक नहीं सुना है। मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूं कि ऐसे अप्रसिद्ध राग के सम्बन्ध में पूर्ण सन्तोषजनक जानकारी दे सकना मेरे लिये सम्भव नहीं है। यद्यपि यह राग अप्रसिद्ध है, फिर भी कुछ संस्कृत ग्रंथकारों ने इसका वर्णन अपनी-अपनी रीति से अपनी रचनाओं में किया है। सर्वप्रथम प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'हिजाज' का थाट कौनसा है ?

प्रश्न—क्यों भला ? यह तो भैरवथाट का ही एक राग है न ?

उत्तर—'लक्ष्यसंगीत' में इसे भैरवथाट में बताया गया है और मैं भी यही थाट पसन्द करता हूं। कठिनाई यह है कि कोई-कोई इस राग को मिश्रमेल का राग मानने को तैयार हो जायेंगे।

प्रश्न—अर्थात् इसमें पूर्वाङ्ग एक थाट का और उत्तरांग दूसरे थाट का लिया गया होगा ?

उत्तर—हां, इस राग के पूर्वाङ्ग में भैरवथाट और उत्तरांग में भैरवीथाट का मिश्रण है।

प्रश्न—इसे दक्षिण की ओर कौनसा नाम दिया गया होगा ?

उत्तर—मैं समझता हूं कि दक्षिण में इस थाट को "बकुलाभरण" कहेंगे। इस थाट का नम्बर १४ वां है। यह एक मजेदार थाट है और इसमें हमें दो-चार नवीन राग भी मिल सकते हैं। जैसे:—

बकुलाभरणान्मेलाद्रागो वासंतभैरवी ।
धन्यासं धांशकं चैव धैवतग्रहमुच्यते ॥
आरोहे तु पवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम् ॥१॥
बकुलाभरणान्मेलात्संजातः सोमनामकः ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहे तु गवर्जं चाप्यवरोहे पवर्जितम् ॥२॥
बकुलाभरणान्मेलाद्वासंताख्यमुखारिका ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
रिवर्जं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम् ॥३॥

दक्षिण के तेलगू ग्रन्थों में इन रागों का आरोह-अवरोह इस प्रकार दिया गया है:-

वसंतभैरवी-सा रे॒ ग म ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ म प म ग रे॒ सा ॥

सोमराग- सा रे॒ म प म ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ म ग रे॒ सा ॥

वसंतमुखारी-सा म ग म प ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ प म ग रे॒ सा ॥

ऐसे रागस्वरूप हम लोग सहज ही प्रचलित कर सकते हैं। केवल उच्चस्तर का स्वरज्ञान एवं रागज्ञान होना आवश्यक है। इस थाट के अधिकांश राग प्रातःकालीन ही हो सकते हैं, यह तुम देख सकते हो। वादी, संवादी की स्थापना का कार्य विशेष कठिन नहीं होगा रामामात्य कहता है:—

देशीरागाश्च सकलाः षड्जग्रामसमुद्भवाः ।
ग्रहांशन्यासमंद्रादिषाडवौडुवपूर्णताः ॥
देशीत्वात्सर्वरागेषु भवंति न भवंति वा ॥

व्यंकटमखी कहता है:—

चतुर्विधस्वरेष्वेषु वादी राजा प्रकीर्त्यते ।
संवादी त्वनुसारित्वादस्यामात्यो विधीयते ॥
विवादी विपरीतत्वाद्धीरैरुक्तो रिपूपमः ।
स्वरूपमर्दनं तेन प्रयोगे स्याद्विवादिना ॥
स्वरूपमर्दनाभावे गीतरक्तिर्न लक्ष्यते ।
शत्रूपमर्दने हि स्याद्राज्ञां लोके प्रकाशनम् ॥

प्राय: ये सब बातें अधिकांश रूप में मैं तुम्हें बता ही चुका हूं। अस्तु, 'हिजाज' को हम थाट 'बकुलाभरण' में मान लेते हैं। यह नहीं बताया जा सकता कि इस राग को मिश्रमेल जन्यत्व कैसे और क्यों प्राप्त हुआ ? संस्कृत ग्रन्थकार इसे भैरवथाट का ही रागस्वरूप मानते हैं परन्तु हमें तो प्रचार के अनुरूप चलना ही उचित है। इसके उत्तरांग में भैरवी के अनुसार ही 'प ध॒ नि॒ सां' स्वर गाये जाते हैं। आरोह में निषाद ग्रहण करने से आसावरी से यह भिन्न हो जाता है। आगे चलकर तुम्हें दिखाई देगा कि 'प ध॒ नि॒ सां' स्वरों से जैसा 'समत्व' भैरवी में होता है वैसा 'जौनपुरी' में नहीं होता। 'देसी' राग के आरोह में ध, ग वर्ज्य होते हैं और देवगांधार के आरोह में रे, ध वर्ज्य किये जाते हैं; इसलिये ये सभी राग इस राग से अलग हो जाते हैं। प्रथम तो इस राग के पूर्वाङ्ग में भैरव है, यह एक लक्षण ही इसे सभी रागों से अलग कर देता है। 'हिजाज', 'झीलफ' 'जंगूला' ये सभी मुसलमानी रागप्रकार माने जाते हैं। इनके सम्बन्ध में सदैव मतभेद दिखाई पड़ेगा। कोई-कोई कहते हैं कि 'झीलफ' में पूर्वाङ्ग भैरव का और उत्तरांग आसावरी का रखा जावे, तो इससे हिजाज और झीलफ अलग-अलग हो जावेंगे। ऐसे स्थलों पर तुम्हें अच्छी तरह विचार और उत्तम घरानेदार गायकों का अनुसरण करना ही अच्छा है। सम्पूर्ण झगड़ा उत्तरांग का ही है। यहां भैरवी, काफी, बिलावल और भैरव इनमें से कौनसा भेद स्वीकार किया जावे, यह प्रश्न सदैव उत्पन्न होता है। जहां दोनों धैवत अथवा दोनों निषाद नियम से लगाने हों, वहां वे स्वर कैसे लगाये जावें; यह भी ध्यान में जमा लेना आवश्यक है। अच्छा तो अब इस राग के स्वर कैसे रचोगे, देखें बताओ ? आरम्भ में भैरवअङ्ग रखना है, क्योंकि श्रोताओं को अन्य किसी राग का आभास होने का अवसर नहीं देना चाहिये।

प्रश्न—अच्छी बात है। हम भैरवअंग इस प्रकार रखेंगे:—

"मगरे॒सा, सारे॒सा, ध॒सा, मगरे॒, गमपमगरे॒, सा; मगमप, ध॒प, सांध॒प, मगरे॒, पमगरे॒सा।"

उत्तर—यह ठीक है, परन्तु उत्तरांग में भैरवी के स्वर आने वाले हैं, अत: उनसे बिलकुल विसंगत रखने वाला भैरव का भाग इस राग में स्वीकार नहीं हो सकेगा।

प्रश्न—तो फिर पूर्वाङ्ग में स्वल्प रूप में गांधार दिखाकर 'सा रे॒ रे॒, सा, म म, प, म रे॒ सा, ध॒ ध॒, प म प' इस प्रकार किया जावेगा और अन्त में 'ध॒ ध॒ प, म प म ग, रे॒ ग म प, ग म रे॒, रे॒, सा' रखा जावेगा।

उत्तर—अच्छा, उत्तरांग में कैसा विस्तार करोगे ?

प्रश्न—'सा, म म, प ध॒ प, नि॒ ध॒ प, प ध॒ नि॒ सां, ध॒ नि॒ ध॒ प, सां ध॒ प, रें॒ सां ध॒ नि॒ ध॒ प' ऐसी तानें लेकर आगे 'ध॒ ध॒ प, ध॒ म प, ग म, नि॒ ध॒ प, गं म, रे॒ ग म, प म ग, म रे॒, सा।' इस प्रकार का अन्त हमारी समझ से अनुचित नहीं कहा जा सकेगा।

उत्तर—मैं समझता हूं कि यह विस्तार ग्रहण किया जा सकता है। इस राग में वादी स्वर कोई मध्यम और कोई पंचम मानते हैं। यदि तुमने मध्यम स्वीकार किया तो कोई हानि नहीं।

प्रश्न—अब हम आपको इस राग का थोड़ा सा विस्तार करके दिखाते हैं:—

"सा, रेसाध, सा, गमगरे, सा । निसागम, रेगम, पम, गमप, मपगम, रेगमप, गमरेसा, निध, प, गमपगमरेसा, निसा, म, मप, प, धनिधप, मप, सांनिधप, गमपधमप निधमप, गमधधप, मप, गमरे, गमपगमरे, रे, सा" ।

उत्तर—शास्त्रनियम के अनुसार तो इनके प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती, किन्तु बड़े गायकों को ये तानें 'सिलसिलेवार' (सुव्यवस्थित) नहीं जान पड़ेंगी। फिर भी ऐसे अप्रसिद्ध राग में किया हुआ तुम्हारा यह प्रयत्न बिलकुल ग़लत नहीं ज्ञात होगा। मैंने एक बार एक गायक को इस राग के तारसप्तक के अवरोह में कोमल गांधार और तीव्र रिषभ का प्रयोग करते हुए भी देखा है । उसने इसका कारण यह बताया कि "मैं यहां पर आसावरी का मिश्रण कर रहा था।"

प्रश्न—आपने जो गीत इस राग में सीखे हैं, उनके आधार से हमें एक छोटी सी सरगम बना कर दे दीजिये । इससे यह राग हमारे ध्यान में अच्छी तरह जम जायेगा ?

उत्तर—बहुत अच्छा ! मैं एक सरगम बनाये देता हूं:—

सरगम, झपताल राग–हिजाज

सा	सा	म	ग	म	प	प	ध	ध	प
ध	प	ध	नि	सां	ध	प	नि	ध	प
रें	रें	सां	रें	सां	ध	ध	नि	ध	प
म	ग	म	ध	प	म	ग	रे	रे	सा

अन्तरा—

म	प	प	ध	ध	नि	सां	ध	नि	सां
ध	ध	नि	सां	सां	रें	रें	सां	ध	प
मं	मं	रें	रें	सां	रें	सां	नि	ध	प
म	ग	रे	ग	प	म	ग	रे	रे	सा

मुझे स्मरण है कि इस राग को सुनकर प्रथम दृष्टि में दक्षिण के पंडितों ने इसे "वसन्तमुखारी" नाम दे दिया था।

प्रश्न—परन्तु, शायद यह बात उनके ध्यान में नहीं आ सकी होगी कि अपने इस राग में रिषभ स्वर प्रयुक्त होता है। सम्भवतः उन्होंने समझा होगा कि अवरोह में यह स्वर चल सकता है। आपके बताये हुए तेलगू प्रकार में यह अवरोह में बताया भी है ठीक है न?

उत्तर—हां, ठीक है! अब हम एक-दो संस्कृत आधार देखलें:—

राग विबोधे:—

शुद्धा वसंतमेले सरिमपधा अन्तरश्च काकलिका।
अस्माद्वसंतटक्कहिजेजा हिंदोलमुख्याश्च ॥
मांशग्रहसन्यासोऽखिलो हिजेजस्तु सायान्हे।

यह तुम सहज में समझ जाओगे कि इस मत से हिजाज का थाट भैरव होगा।

स्वरमेलकलानिधौ:—

शुद्धौ च षड्जऋषभौ शुद्धाश्च मपधास्तथा।
गांधारोऽन्तरसंज्ञश्च काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतावत्स्वरसंयुक्तो हिजूजीमेलको भवेत्।
हिजूज्याद्या भवंत्यत्र ग्रामरागाश्च केचन ॥
इत्येव शार्ङ्गदेवस्य संमतो मार्गवेदिनः ॥

अन्तिम श्लोक में रामामात्य ने शार्ङ्गदेव के सम्बन्ध में जो मत प्रदर्शित किया है, वह उसे यदि उत्तम प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करके प्रस्तुत करता, तो वह हमारे लिये कुछ न कुछ उपयोगी होता। "हिजूजी" के रागलक्षण उसने इस प्रकार बताये हैं—

हिजूजीरागः सम्पूर्णो मन्यासो मग्रहांशकः।
गेयोऽन्हः पश्चिमे यामे काकल्यंतरभूषितः ॥

दक्षिण के एक ग्रन्थ में "हिजूजी" राग का थाट "गायकप्रिय" कहा गया है। हिन्दुस्तानी पद्धति से उस थाट के स्वर "सा रे॒ ग म प ध॒ ध सां" होंगे। यह तुम जानते ही हो कि दक्षिण की ओर तीव्र धैवत को शुद्ध निषाद कहा जाता है। उत्तर के ग्रन्थों का शुद्ध निषाद, हिन्दुस्तानी कोमल निषाद स्वर होता है। इससे यह माना जा सकता है कि 'हिजाज' राग उत्तर का ही होगा।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्:—

गांधारोऽन्तरनामान्ये स्वराः शुद्धाः प्रकीर्तिताः।
एतावत्स्वरसंभूतो हेजज्जीमेल ईरितः ॥
अयं त्रयोदशो भेदो मेलप्रस्तारके भवेत् ॥

यह भी 'गायकप्रिय' थाट हुआ, इसके स्वर मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूं। राग का प्रत्यक्ष लक्षण व्यंकटमखी ने इस प्रकार बताया है:—

"हेजज्जीरागः सम्पूर्णो यामेऽन्हे गीयतेऽन्तिमे"।

अपने गायक इस राग को सायंकालीन मानने को हरगिज तैयार नहीं होंगे।

लक्ष्यसंगीते:—

भैरवाभिधमेले तु हिजेजो गीयते बुधैः।
यावनीकमिदं रूपं स्वीकृतं चातिरक्तिदम् ॥
संपूर्णो मग्रहांशश्च सायंगेयस्तथैव हि।
द्विधैवतो निहीनोऽपि केषांचित्कथ्यते मते ॥
धैवतो मृदुरारोहे ह्यवरोहे तु तीव्रकः।
आदिशंति क्रमं भद्रं लक्ष्यमार्गविचक्षणाः ॥
भैरवे मेलनं चात्र भैरव्याः संगिरंत्युत।
ग्रंथेषु तूपरिख्यातं वर्णनं दृश्यते ध्रुवम् ॥
सायंगेयेषु रूपेषु मांशत्वमपवादकम्।
इति मन्ये सुरागोऽयं प्रथमप्रहरे दिने ॥

इस राग के विषय में अधिक जानकारी मिलना कठिन है। इसलिये यहीं पर रुक जाना पड़ेगा।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग बता रहे हैं?

उत्तर—अब 'आनन्दभैरव' पर चर्चा करेंगे। आगे बढ़ने के पूर्व एक बात याद रखना आवश्यक है। बात यह है कि हम 'आनन्दभैरव' और 'आनन्दभैरवी' इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न राग मानने वाले हैं, किन्तु इस बात पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। क्या भैरव और भैरवी के भिन्न-भिन्न प्रकार प्रचार में नहीं माने जाते? उनका मिश्रण भैरव से होने पर यदि दो भिन्न राग बन जाते हों तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। राधागोविन्दसंगीतसार में भी तुम्हें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी अलग-अलग राग दिखाई पड़ेंगे।

प्रश्न—इस ग्रन्थ में इन रागों के थाट कौनसे बताये हैं?

उत्तर—इस ग्रन्थ में इन दोनों रागों का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"आनन्दभैरवी की उत्पत्ति लिख्यते। शिवजी ने उन रागनमें सों विभाग करिवेको। अपने मुखसों राग गाईके वाको आनन्दभैरवी नाम करिके कीनो। अथ आनन्दभैरवी को स्वरूप लिख्यते। भैरवी की मेल में जाकी उत्पत्ति होई जाको ग्रहस्वर निषाद में होय, गांधार में उत्तर होय। ऐसी जो रागनी तांही आनन्दभैरवी जानिये। शास्त्र में तो सात सुरन सों गाई है। सा रे ग म प ध नि सा यातें सम्पूर्ण है। याको चाहो जब गावो। यह राग मांगलिक है। याकी आलापचारी सात सुरनमें किये राग बरते।"

रागों का प्रत्यक्ष स्वरूप इस प्रकार बताया है। देखोः—

आनन्दभैरवी-संपूर्ण

नि़ सा रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ सा। रे॒ ग॒ म प नि॒ ध॒ प म म ग॒ रे॒ ग॒ रे॒ सा।

मैंने इस राग के स्वरों को उस ग्रंथ से उद्धृत किया है।

प्रश्न—यहां तो 'आनन्दभैरवी' भैरवी थाट में बताई गई है। इन स्वरों को गाने पर श्रोताओं को भैरवी जैसा ही रागस्वरूप जान पड़ेगा। यह तो ठीक है, परन्तु 'आनन्द-भैरव' का इस ग्रन्थ में कैसा स्वरूप बताया गया है?

उत्तर—उसकी भाषा भी इसी प्रकार हैः—

"अथ आनन्दभैरव को स्वरूप लिख्यते। जामें निषाद सुर उतर्यो होई। गांधार में जाको ग्रह स्वर होई। बहुली गुजरीको जामें लछन होई। आनन्दभैरव जानिये। शास्त्र में तो सात स्वरन सों गायो है। ग म प ध नि सा रे ग। याको प्रभात समें गावनो।"

इसके स्वर उस ग्रंथ में मुझे इस तरह प्राप्त हुएः—

आनन्दभैरव-सम्पूर्ण

नि॒ सा रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ सा रे॒ ग॒ म प। नि॒ ध॒ प म ग॒ रे॒ ग॒ रे॒ सा।"

सम्भव है उसके स्वर क्रमानुसार उद्धृत करने में मुझसे भूल हो गई हो, किन्तु अभी तो तुम्हें यही देखना है कि इस राग का थाट कौनसा है।

प्रश्न—भला, इस राग में भैरव का अङ्ग कहां दिखाई पड़ना सम्भव है? हम तो यही कहेंगे कि दोनों रिषभों के प्रयोग से तो भैरवअङ्ग बिलकुल नष्ट ही हो जायेगा।

उत्तर—हमें 'सङ्गीतसार' के इस मत का करना ही क्या है? चलते-चलते मैं एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। ग्रन्थकार ने अपने लक्षणों में यह कहा है कि आनन्दभैरव में बहुली और गुजरी इन दो रागों का योग होता है। प्राचीन ग्रंथों के प्रमाण से ये दोनों राग भैरव थाट के ही हैं। फिर भी संगीतसारकर्ता ने यह नवीन थाट कहां से उत्पन्न कर लिया, यह कैसे बताया जा सकता है। अस्तु,

दक्षिणी ग्रन्थों में 'आनन्दभैरवी' राग आसावरी थाट में माना गया है और उसके आरोह-अवरोह इस प्रकार बताये गये हैंः—

"सा ग॒ रे ग॒ म प ध॒ सां। सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे सा।"

कदाचित सङ्गीतसारकर्ता ने भावभट्ट का आधार ग्रहण किया होगा।

प्रदर्शिनीकार कहता हैः—

आरोहे ऋषभस्त्यक्तो धवक्रं च समाचरेत्।

जब कि हम अभी आनन्दभैरवी पर विचार नहीं कर रहे हैं, तो हम उस राग के वर्णन पर विचार करना भी स्थगित ही रखेंगे। अपना 'आनन्दभैरव' एक भैरव का

प्रकार है और जब कि यह भैरव-प्रकार है, तो इसमें भैरव अङ्ग प्रधान रहेगा ही। मेरे गुरु ने मुझे बार-बार बताया है कि भैरव के प्रत्येक प्रकार में भैरवअङ्ग अच्छी तरह दिखाने का प्रयत्न किया जावे। यहां एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि अपने गायक लोग कभी-कभी जिस 'नन्दभैरव' राग की बातें किया करते हैं, वह राग यही 'आनन्द-भैरव' तो नहीं है ? मुझे एक गायक ने 'नन्दभैरव' के जो लक्षण बताये, उसमें धैवत कोमल था; अतः वह अपना आनन्दभैरव नहीं हुआ। यदि कोई थोड़ी देर के लिये दोनों धैवत का प्रयोग स्वीकार करे तो हम उसे भी सुन लेंगे। अपने आनन्दभैरव में भैरव और शंकराभरण का मेल उत्तरांग में होता है। यदि हो सके तो वहां हम तीव्र धैवत का ही प्रयोग करें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने पर यह राग स्पष्ट रूप से निराला हो जावेगा।

प्रश्न—उत्तराङ्ग में तीव्र धैवत ग्रहण करने वाला कोई थाट दक्षिण पद्धति में तो होगा ही ?

उत्तर—हां, है न ? उस थाट को वहाँ 'सूर्यकान्त मेल' या 'वेगवाहिनी मेल' कहते हैं। इस थाट से हमें भी कुछ सुन्दर रागस्वरूप प्राप्त हो सकते हैं। जैसेः—

सेनामणी—सा <u>रे</u> ग म प ध सां। सां नि ध प म ग <u>रे</u> सा ॥

ललित—सा <u>रे</u> ग म ध नि सां। सां नि ध म ग <u>रे</u> सा ॥

सुप्रदीप—सा <u>रे</u> म प ध नि सां। सां नि ध प म ग म <u>रे</u> सा ॥

नागचूड़ामणी—सा ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग सा ॥

इनमें ललित प्रकार के अवरोह में पंचम लगाने पर 'ललितभैरव' जैसा स्वरूप निकल सकता है। 'चूड़ामणि' के अवरोह में रिषभ स्वर अल्प रूप में ग्रहण किया जावे।

प्रश्न—परन्तु, क्यों गुरुजी ! जबकि 'आनन्दभैरव' में भी भैरव की प्रधानता है तो उसका कुछ भाग 'हिजाज' के कुछ भाग से मिलता हुआ नहीं होता क्या ?

उत्तर—वह तो निस्संदेह मिलेगा। अच्छा बताओ, कौन से स्वरसमुदाय दोनों में साधारण होंगे।

प्रश्न—यह भाग देखियेः—

"सा, <u>रे</u><u>रे</u>, सागगम, ग<u>रे</u>, गमग<u>रे</u>सा; पमग<u>रे</u>, गमपगम<u>रे</u>, सा"।

यह समुदाय तो भैरव के प्रत्येक भेद में आना ही चाहिये न ?

उत्तर—तुम यथार्थ कह रहे हो। यह स्वरसमूह तो दोनों में आयेगा ही। सारी खूबी उत्तरांग को अलग-अलग सँभालने की है। उसमें भैरव अङ्ग जोड़ देने में भी बड़ी-चतुराई चाहिये। "सांनिधपमग<u>रे</u>सा" इस प्रकार की सरल तान द्रुत रूप से ली गई तो शोभनीय नहीं होगी। इसीलिये उचित स्थलों पर रुकते हुए, कहीं पर कुछ वक्रता दिखाते हुए गायक भैरव अङ्ग में प्रवेश करते हैं। बार-बार अभ्यास करने से तुम्हें भी यह काम सध जायगा। तार षड्ज से चलकर हम धैवत पर आकर ठहरें, और फिर वहां से पंचम की ओर झुकें तो अपने आप इस जगह कोमल निषाद का स्पर्श हो जाता है और

वह बहुत सुन्दर दिखाई देता है। यह स्वर इस प्रकार 'आनन्दभैरव' में आ जावे तो रंजकता को हानि नहीं पहुँचाता। अब देखो यह अवरोह की तान कैसी दिखाई देती है:-

"सांधनि॒प, मग, रे॒गपमग, रे॒ सा"।

प्रश्न—ठीक है। इसमें तीव्र धैवत है और अवरोह में कोमल निषाद का कण भी है, फिर भी भैरव अङ्ग से यह असंगत ज्ञात नहीं होती।

उत्तर—ठीक है। ऐसी तान 'आनन्दभैरव' में लगाई गई तो राग स्वतन्त्र हो जायेगा। मैं तुम्हें "आनन्दभैरव" की एक सरगम दे रहा हूँ:—

आनन्दभैरव—झपताल

स्थाई—

म	ग	रे॒	ग	प	म	ग	म	रे॒	सा
नि॒	सा	रे॒	रे॒	सा	रे॒	ग	ग	म	म
म	म	ग	म	म	प	प	म	प	प
प	सां	ध	नि॒	प	म	ग	म	रे॒	सा

अन्तरा—

म	प	प	ध	प	सां	ऽ	सां	रें॒	सां
रें॒	गं	गं	मं	पं	मं	गं	रें॒	रें॒	सां
सां	सां	रें॒	रें॒	सां	ध	ध	ध	नि॒	प
ग	रे॒	ग	म	प	म	ग	रे॒	रे॒	सा

अब देखें तुम इसका स्वरविस्तार कैसा करोगे ?

प्रश्न—"सा, रेरेसा, निधप, सा, गरेगमपमगरे, रे, सा; सारेसा, गरेसा, गमपगमरे, पगमरेसा, निसागमप, गमपगमरे, सा; पपगमप, धध, प, गमपगमरेसा, निनिध, प, गमरे, पपगमरे, गरेसा; पपधधप, सां, सां, गंमंगंरेंसांनिसां, धध, प, गमरे, पगमरेसा; निसागम, रेगम, पम, धपम, पम, रेग, निसाग, पमगरे, गमपगमरे, रे, सा"।

उत्तर—मैं समझता हूं कि अब तुम इस राग को गा सकते हो। प्राय: ऐसे राग गाये नहीं जाते, परन्तु जब कभी इसे सुनने का अवसर प्राप्त हो, तब सावधानी से देखते जाना चाहिये कि गायक इन दोनों अङ्गों को किस युक्ति से सुसंगत करते हैं। इस कृत्य को गायक लोग "जोड़ मिलाना" कहते हैं। मिश्ररागों की सारी विशेषता इस जोड़ मिलाने में ही है। अच्छा, अब यह कह देने में कोई हानि नहीं कि तुम 'आनन्दभैरव' को समझ चुके हो। जो सरगम मैंने तुम्हें बताई है, उसे केवल संकेत मात्र समझना चाहिये। तुमने देखा ही होगा कि मैं जहां-तहां किस प्रकार से ठहरता गया हूँ और उचित रागांग लाने का प्रयत्न कैसे किया है। मैंने सुना है कि बंगाल प्रान्त की ओर कुछ गायक एक "मंगलभैरव" राग भी गाते हैं। राजा साहेब टागोर ने "संगीतसार" में "मंगल" नामक एक राग बताया है। इन्होंने इस राग को भैरवथाट में माना है और उसका स्वरूप इस प्रकार बताया है:—

"गमगममनिधपम, सागरेगमगरे, सागमगम, प, धसांनिसांनिसांनिरेंसां, निधप, मपनिध, प, म, सागरेगमगरे, सा। मपनिधनिसां, सां, गंरेंसां, पनिसांनिध, सांनिसां, निध, निसां, पसांनिरेंसांनिध, प, गमगम, निधपम, सागरेगम, गरेसा"।

प्रश्न—यह प्रकार भी सम्पूर्ण जाति का दिखाई देता है। क्या इन्होंने 'मंगल' के कुछ विशेष लक्षण भी बताये हैं ?

उत्तर—नहीं, इन्होंने इसके सम्बन्ध में और कुछ नहीं बताया। अस्तु, अब यह कहा जा सकता है कि हम भैरवथाट के अधिकांश प्रचलित रागों को देख चुके हैं। मैंने एक राग "ललितपंचम" अवश्य छोड़ दिया है। "ललित" और "पंचम" दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र रागस्वरूप हैं, अत: प्रथम इन्हें अलग-अलग बताकर फिर मैं "ललितपंचम" बताऊँगा जिससे इसे समझना अधिक सरल हो जायेगा। भैरवथाट के राग बहुत ही मनोरंजक हैं अत: इन्हें रियाज़ करके तैयार रखना चाहिये। इन सभी रागों के नियमादि तो तुम्हें अच्छी तरह याद हो ही गये होंगे ?

प्रश्न—यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम आपको सुनादें कि इन रागों को हम किस प्रकार ध्यान में जमाये हुए हैं।

उत्तर—तुम्हारे द्वारा यह विवरण सुनकर मुझे अत्यधिक संतोष प्राप्त होगा।

प्रश्न—बहुत अच्छी बात है। सुनिये ! सर्व प्रथम हम भैरव आश्रयराग के मुख्य अङ्ग ध्यान में रखेंगे। इसका आन्दोलनयुक्त रिषभ और धैवत सैकड़ों बार गा-गा कर तैयार कर लेना है। भैरव की सारी खूबी इन्हीं दोनों स्वरों पर निर्भर है। यद्यपि भैरव एक सम्पूर्ण राग है, तथापि इसके आरोह में रिषभ स्वर कुछ अल्प रूप में ग्रहण

करने का प्रचार है। भैरव का वादी स्वर धैवत अच्छी तरह साध लेने की चीज़ है। आपने यह भी कहा था कि भैरव में कोई तीव्र ध, कोई कोई कोमल नी, कोई रि प वर्ज्य मानने वाले लोग मिलने संभव हैं। एक याद रखने योग्य बात यह भी है कि भैरव के उत्तरांग में भिन्न-भिन्न थाटों का मिश्रण कर भिन्न-भिन्न रागप्रकारों की रचना गायकगण कर लिया करते हैं। उदाहरण के लिये 'अहीरभैरव' 'शिवमतभैरव' 'आनंदभैरव' आदि राग इसी प्रकार उत्पन्न हुए कहे जा सकते हैं। रामकली नामक जो मधुर राग प्रचलित है, उसमें भी भैरव अङ्ग दिखाना आवश्यक है। आपके कथनानुसार रामकली के अनेक प्रकार प्रचार में प्राप्त हो सकते हैं। एक प्रकार में आरोह में म नि वर्ज्य माने गये हैं। यह स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र किंतु दुष्प्राप्य है। यदि इस राग का अवरोह "सां ध प ग रे सा" होता तो इस औडव स्वरूप को 'विभास' से अलग करना कठिन हो जाता। 'रामकली' का सामान्य स्वरूप जो प्रायः देखने को मिलता है, कुछ विलक्षण ही है। इस स्वरूप में दोनों मध्यम और दोनों निषाद का प्रयोग किया जाता है। यह प्रातःकालीन राग का है। यह बात उसके भैरव अङ्ग से तत्काल प्रकट हो जाती है। इस राग की तीव्र मध्यम युक्त तान 'मं प ध नि ध प, ग म रे सा' जो उत्तम रूप से याद कर लेगा वह रामकली राग कुशलता से गा सकेगा। इस राग में पंचम को अच्छा चमकता हुआ रखना चाहिये, मन्द्र स्थान में अधिक तानें लेने की आवश्यकता नहीं है, आदि-आदि बातें, जो आपने हमें बताई हैं, हमें अच्छी तरह याद हैं।' प, प, मं प, ध प, ध नि ध प ग म रे सा' यह स्वरसमूह जितना अधिक आगे रखा जावेगा, उतनी ही मात्रा में राग रामकली जमता जावेगा। सावकाश रीति से इन स्वरों का गायन करने पर कुछ विलक्षण ही परिणाम होता है। कुछ लोग तो यह भी कह सकते हैं कि जहां यह तान नहीं, वहां रामकली भी नहीं। आपने रामकली का तृतीय प्रकार दोनों गांधार वाला बताया है। आपने यह भी कहा था कि इस राग में सावधानी रखनी चाहिये ताकि इसका मिश्रण 'तोड़ी' से न हो सके। इस रागस्वरूप में आपने 'म, ग प रे सा' स्वर बड़ी युक्ति से गाकर सुनाये थे।

भैरव सम्पूर्ण है और कालिंगड़ा भी सम्पूर्ण ही है, परन्तु ये दोनों राग बिलकुल भिन्न प्रकार के हैं। यह अन्तर हम एक क्षण में दिखा सकते हैं। 'ग म प ध म प, म ग, नि, सा रे ग' इन स्वरों को हम इस प्रकार गा सकते हैं कि उसमें कोई भैरव का स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकता। सर्व प्रथम तो कालिंगड़ा में भैरव का गांभीर्य ही कहां है? भैरव में आन्दोलित रे, ध स्वर; म ग रे, सा' स्वरों को विलम्बित मींड, मन्द्रस्थान का वैचित्र्य आदि बातें इस क्षुद्र गीतों के योग्य राग में कहां से आ सकती हैं? कहां कालिंगड़ा की 'ग म प ध म प' तान और कहां भैरव की 'ग, म प, ध, प, म प' तान! आपने बताया है कि भैरव अङ्ग अनेक रागों में ग्रहण किया जाता है और कुछ रागों में अलग कर दिया जाता है। भैरव अङ्ग का एक राग 'प्रभात' है। इसका कुछ भाग कालिंगड़ा जैसा दिखाई दे सकता है, परन्तु अन्तरा भैरव अङ्ग से गाने पर तत्काल कालिंगड़ा अदृश्य हो जाता है। यह भैरव भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें एक छोटा सा टुकड़ा 'ग म मं, ग म ग, रे सा' ललित अङ्ग का भी ग्रहण किया जाता है। इसे 'रामकली' कहना भी ग़लत होगा, क्योंकि रामकली की तीव्र मध्यम वाली विशिष्ट तान 'प्रभात' में ग्रहण नहीं की जाती। 'बङ्गाल भैरव' में निषाद बिलकुल वर्ज्य होता है

और "सा, ध" की स्वरसंगति तथा गांधार की वक्रता भी ग्रहण की जाती है। यद्यपि भैरव में रे ध प्रबल होने के कारण ग, नी का दुर्बल होना स्वाभाविक है, परन्तु "बंगाल-भैरव" तो स्वतन्त्र राग ही माना जावेगा।

हम अच्छी तरह जानते हैं कि "शुद्धबंगाल" और "बंगाली", यह बंगालभैरव से बिलकुल अलग राग-स्वरूप हैं। 'गुणक्री' 'जोगिया' और 'सावेरी' रागों में बहुत कुछ लक्षण-साम्यता प्रथम दृष्टि में दिखाई पड़ेगी, परन्तु इन रागों को प्रत्यक्ष सुन लेने पर कभी भी यह संदेह नहीं रह सकेगा। 'गुणक्री' को तो भैरव अङ्ग ही सबसे अलग कर देगा। केवल "म रे सा" इन तीन स्वरों से ही हम गुणक्री और जोगिया को अलग-अलग दिखा सकते हैं। "म, रे सा" और "म, रे, सा" इन स्वरों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विश्रांति लेने में ही विशेषता है। 'गुणक्री' में ग, नि स्वर बिलकुल वर्ज्य हैं परन्तु जोगिया के अवरोह में निषाद ग्रहण किया जाता है। 'जोगिया में "ध, म, रेसा" तान अच्छी तरह तैयार करनी पड़ेगी, क्योंकि यही जोगिया की पकड़ है। 'सावेरी' और 'जोगिया' अवश्य ही बहुत निकट आ जाते हैं परन्तु जोगिया के अवरोह में वर्जित गांधार सावेरी में वर्जित नहीं है; यह एक भेद है जिसे स्वीकार करना पड़ेगा। सावेरी राग का प्रचार दक्षिण की ओर अधिक है, परन्तु उस तरफ जोगिया राग नहीं होता, यह तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है।

"विभास" भैरव थाट का एक औडव रागस्वरूप है। इसके आरोह-अवरोह में म, नी स्वर बिलकुल नहीं लिये जाते, अतः यह बिलकुल स्वतन्त्र स्वरूप हो जाता है। 'विभास' गाने में "ध, प, गप, धप, गरेसा" तान उत्तम रूप से व्यक्त करना ही राग-परिचायक है। आपने बताया था कि इस राग के अवरोह में कुछ गायक निषाद स्वर ग्रहण करना स्वीकार करते हैं। हमें यह भी याद है कि आपने विभास और देशकार का चलन एक सा बताया था।

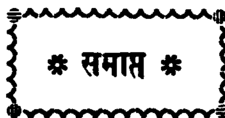
यदि कोई सङ्गीताभ्यासी भैरव थाट के 'मेघरंजनी' और "देशगौड़" रागों को भूल जावे, तो उसके लिये यही उचित है कि वह सङ्गीत का अभ्यास ही छोड़ दे। 'मेघ-रंजनी' में पंचम और धैवत दोनों स्वरों के वर्ज्य होने के कारण गायक को जो कठिनाई होती है, वह एक बार देखकर आजीवन स्मरण रखने की वस्तु है। "देशगौड़" में गांधार और मध्यम वर्ज्य होने के कारण कुछ देर तक यही समझ में नहीं आ पाता कि चीज़ (गीत) कहां से शुरू की जावे। "शिवमतभैरव" की याद तो हमें जीवन भर रहेगी, क्योंकि उस "सङ्गीतमहेश" और "ग्रन्थाभिमानी"—पंडित की मजेदार कथा हम कैसे भूल सकते हैं? "शिवमतभैरव" में दोनों गांधार और दोनों निषाद युक्तिपूर्वक लिये जाने चाहिये। यह सावधानी भी रखनी है कि कोमल गांधार के प्रयोग से "तोड़ी" और कोमल निषाद के प्रयोग से "आसावरी" अथवा भैरवी आदि का स्वरूप उत्पन्न न हो जावे। आप हमें यह भी बता चुके हैं कि कुछ विद्वान शुद्धभैरव को ही शिवमतभैरव समझते हैं और उसका थाट भैरवी का मानते हैं। "आनन्दभैरव" के सम्बन्ध में आपने जो मतभेद बताया है, वह हम अच्छी तरह समझ गये हैं। "आनन्दभैरवी" राग आनन्दभैरव से निराला है, जिसका थाट आसावरी सिद्ध होता है। "आनन्दभैरव" के उत्तरांग में शंकराभरण थाट का मिश्रण हो जाता है। हमें ध्यान है कि इसमें कोमलनिषाद का कण किस

तरह खूबी से लगता है। सङ्गीतसारकर्त्ता ने इस राग के सम्बन्ध में जो वर्णन किया है उस तरह का आज प्रचार नहीं है, ऐसा मानकर हम चल रहे हैं।

"अहीरभैरव" के उत्तरांग में काफी थाट का मिश्रण होने के कारण इसका स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र होगया है। इस राग में एक जगह तीव्र रिषभ इस प्रकार चमत्कारिक रूप से आता है कि कुछ देर के लिये गायक को यह भी भ्रम हो जाता है कि हम भैरव का कोई प्रकार नहीं गारहे हैं। "मरेमप, प, म, पधनि, धप" तान भैरव की कौन कह सकता है? परन्तु इस तान में जहां "ममपधम, गरे, पमगरे, सा" स्वर योजित किये कि अद्भुत परिणाम उत्पन्न हो जाता है। "सौराष्ट्र" का पूर्वाङ्ग भैरव का है और उत्तरांग में दोनों धैवत दो भिन्न-भिन्न टुकड़ों में दिखाये जाते हैं। एक टुकड़ा प्रायः बिलावल जैसा और दूसरा "कालिंगड़ा" का दिखाई पड़ेगा। प्रचार में गायक इस राग को "चौरासीटंक" नाम देते हैं। आपने कहा था कि एक अलग सायंकालीन रागस्वरूप "श्रीटंक" भी है। भैरव के और भी कुछ प्रकार हैं, परन्तु उनके लिये हम यही मानकर चल रहे हैं कि वे इस समय प्रचलित नहीं हैं। आपने हमें कुछ ग्रन्थोक्त प्रकार बताये भी हैं। हम उनके आधार पर नवीन रूप रचकर आगे देखने वाले हैं।

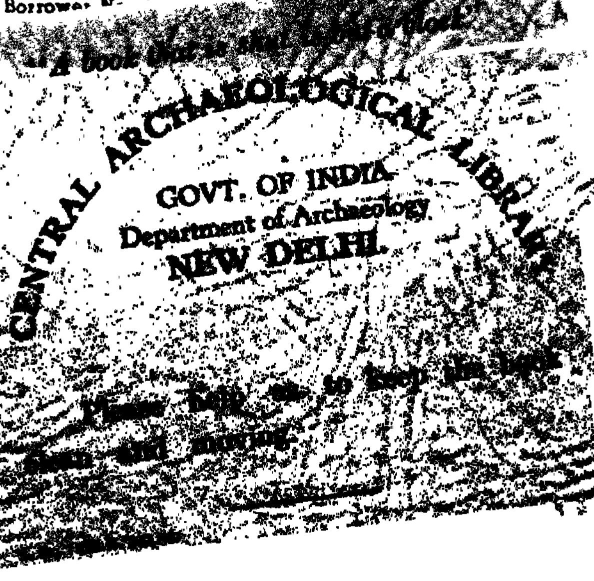
"हिजाज" एक यावनिक राग स्वरूप है, किन्तु वह संस्कृत ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। ग्रन्थों में यह राग भैरवथाट में ही बताया गया है। इस समय प्रचार में इस राग के उत्तरांग में भैरवी के स्वर सम्मिलित किये जाते हैं। ऐसे रागस्वरूपों में सदैव बड़े-बड़े प्रसिद्ध गायकों के मतानुसार चलना उचित है। आपके बताये हुए उपरोक्त उत्तम सिद्धान्तों के अनुसार ही हमने भी भविष्य में चलने का निश्चय किया है। चूँकि सङ्गीत परिवर्तनशील है, इसलिये समाज की रुचि-अरुचि को देखते हुए चलना ही आवश्यक है।

उत्तर—शाबास! शाबास!! मैं समझता हूं कि अब तुम इस थाट के राग अच्छी तरह समझ गये हो! मित्रो अब समय समाप्त होगया, अतः हम आज यहीं पर विश्राम लेंगे।




CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
New Delhi




CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.